हिन्दी के आधुनिक पौराणिक प्रबन्ध-काव्यों में पात्रों का चरित्र विकास

(इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि के लिए प्रस्तुत)

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका
डा० मालती सिह
रीडर, हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

शोधकर्त्री
सरला सिंह

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
1993

भूमिका

आदिम मानव की कल्पना, जिज्ञासा, भय, हर्ष तथा अनुभवों ने जिन मिथकीय अवधारणाओं, बिम्बों व कथाओं को जन्म दिया, वे शताब्दियों की यात्रा करके आज भी सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति की अनुपम सम्पत्ति के रूप में विद्यमान है। ये मिथक स्वयं साहित्य भी है तथा साहित्य के उपजीव्य भी। युगों से ये प्राचीन कथाएं साहित्य की विषय बनती रही है। विशेष बात यह है कि इन कथाओं में इतना लचीलापन है कि इन्हें प्रत्येक युग के रचनाकार इन कथाओं को संदर्भित करके अपने कथा को नवीन अर्थवत्ता प्रदान करते हैं।

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में आधुनिक युग का आरम्भ बौद्धिकता एवं वैज्ञानिक चेतना के साथ होता है। इस नवीन चेतना ने पौराणिक कथाओं से जुड़ी दिव्यता का निषेध सा किया. लेकिन आधुनिक काल में पौराणिक कथाओं एवं पात्रों का प्रयोग विभिन्न रूपों में सबसे अधिक हुआ।

अपने शोध में मैंने आधुनिक हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में प्रस्तुत पौराणिक पात्रों के चरित्र-निरूपण का विकासात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन के माध्यम से मैंने इन पात्रों की युगानुकूल प्रस्तुतीकरण को रेखांकित किया है।

सम्पूर्ण विषय को मैंने कुल छः अध्यायों में विभक्त किया है।

प्रथम अध्याय में मिथक की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए आधुनिक काल की परिस्थितियों, नवजागरण आन्दोलनों तथा तद्जनित नवीन चेतना का विवेचन किया गया है। यह विवेचन इसलिए आवश्यक था कि इनका प्रभाव आधुनिक युग के प्रबन्ध-काव्यों के पौराणिक पात्रों के चरित्र-निरूपण पर बहुत गहरा है। इसी अध्याय में पौराणिक पात्रों के चरित्र-निरूपण पर इस नवीन चेतना के विभिन्न प्रभावों का विवेचन किया गया है, जैसे-पौराणिक कथाओं की प्रति झुकाव तथा उसके कारण, दिव्यता का निषेध, कथाओं एवं पात्रों के चित्रण में नवीन तत्व, और पौराणिक पात्रों के प्रति परिवर्तित दृष्टि।

द्वितीय अध्याय में रामकथाधृत पौराणिक प्रबन्ध-काव्यों में वर्णित राम, सीता, भरत, माण्डवी, लक्ष्मण, उर्मिला, कैकेयी, अहल्या, शबरी, शम्बूक आदि पात्रों के चरित्र-निरूपण की मौलिकता तथा युगीन संदर्भों से सम्बद्धता का विकासात्मक विवेचन प्रस्तुत है।

तृतीय अध्याय में कृष्ण कथा से सम्बद्ध पात्रों, यथा-कृष्ण, राधा, बलराम, नन्द, यशोदा, विधृता, कंस के चरित्र-निरूपण एवं उसके विकास का अनुशीलन प्रस्तुत है।

चतुर्थ अध्याय में महाभारत की कथा से सम्बन्धित विभिन्न पात्रों के चरित्रांकन की समीक्षा प्रस्तुत है। ये पात्र हैं-- अर्जुन, युधिष्ठिर, कर्ण, कुन्ती, द्रौपदी, एकलव्य, भीष्म, भीम आदि।

पंचम अध्याय में जल प्लावन की कथा से सम्बद्ध प्रमुख पात्रों- मनु, श्रद्धा, इड़ा के चरित्र-विकास को प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय में शिवकथाधृत पात्रों यथा- शिव, पार्वती, कार्तिकेय, तारक के चरित्र-विकास को प्रस्तुत किया गया है।

अपना शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करते हुए मैं सर्वप्रथम उस परम असीम सत्ता को नमन करती हूँ, तथा उसकी वन्दना करती हूँ, जिसके असीम कृपा व दयादृष्टि ने मेरे हताश निराश मन को सम्बल प्रदान किया, कठिनाइयों को पार करने का साहस दिया।

इस शोध कार्य की निर्देशिका, मातृ-तुल्य तथा गुरुश्रेष्ठ डॉ0 मालती सिंह के विद्वतापूर्ण कुशल निर्देशन के कारण ही शोध की यह कठिन यात्रा अपना लक्ष्य पा सकी है। उन्होंने जिस स्नेह पूर्ण ढंग से तथा पूर्ण आत्मीयता के साथ अपना बहुमूल्य समय देकर मुझे निर्देशन प्रदान किया है, उसकी मैं चिर ऋणी रहूँगी। उनके प्रति मैं असीम श्रद्धा व कृतज्ञता भाव अर्पित करती हूँ।

शोध कार्य को पूर्ण करने में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय, इलाहाबाद, भारती-भवन पुस्तकालय प्रयाग, आर्य भाषा पुस्तकालय नागरी प्रचारिणी सभा काशी, कारमाइकल पुस्तकालय बनारस से मुझे महत सहायता मिली है। इनके समस्त कर्मचारियों व अधिकारियों के सहयोग के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। साथ ही इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कर्मठ व कर्तव्यनिष्ठ कर्मचारियों के प्रति भी मैं अपना हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ।

शोध कार्य के दौरान मेरे हताश मन को प्रेरणा प्रदान करने वाले अपने माता-पिता के प्रति मैं अपनी श्रद्धा अर्पित करती हूँ। यह शोध प्रबन्ध मेरी अभिलाषा व महत्वाकांक्षा रही है। इसके पूर्ण होने में मेरे पति के सहयोग व स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन का विशेष योगदान रहा है। शोधकार्य के दौरान मेरे आत्मीय स्वजनों, मित्रों तथा परिवार के लोगों ने अपने स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन द्वारा मेरा उत्साहवर्धन भी किया है। उनके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

अंत में टंकण कार्य के लिए पी0 सी0 वर्मा को धन्यवाद देते हुए उनके प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने इस शोध कार्य को अन्तिम रूप देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

सन् 1993 ई0

सरला सिंह
23/12/93

अनुक्रम

"मिथक" शब्द अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द में 'क' प्रत्यय जोड़कर बना है । कुछ विद्वान इसे संस्कृत शब्द के "मिथ" का पर्याय भी मानते हैं। किन्तु यह अंग्रेजी के 'मिथ' के सन्निकट है । यह शब्द ग्रीक भाषा के मूल शब्द "माइथास" ॥ Mythos ॥ से निःसृत हुआ है । इसका शाब्दिक अर्थ है मुख से उच्चरित वाणी । आगे चलकर इस 'मिथ' शब्द का अर्थ सकोच हुआ और इस मिथ शब्द के तात्पर्य नितान्त अविश्वसनीय व काल्पनिक कथाओं से माना जाने लगा । किन्तु हिन्दी के मिथक शब्द का अभिप्राय अलौकिकता का पट लिए हुए, ऐसी कथाओं से है जो लोकानुभूति कराने वा।। हो । "मिथक" शब्द का तात्पर्य पुरा कथा से है । आधुनिक युग में "मिथक" शब्द का प्रयोग हजारी प्रसाद दिवेदी दारा हिन्दी साहित्य में प्रारम्भ हुआ । दिवेदी जी इसे ग्रीक शब्द माइथास ॥ Mythos ॥ से ही जोड़ते हैं । "मिथक" शब्द से पूर्व हिन्दी साहित्य में मिथक के समानधर्मा पुरा कथा, दंतकथा, पुरावृत्त, धर्मगाथा आदि शब्दों का प्रचलन प्राप्त होता है । मिथक के अन्तर्गत पुराण कथा, लोककथा, आख्यानात्मक कथाओं आदि का समावेश होता है । समस्त वेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि में वर्णित अलौकिक शक्तियों से जुड़े आख्यान मिथक के अन्तर्गत ही आते हैं ।

मिथक के स्वरूप-विस्तार से पूर्व मिथकों के जन्म के मूल कारण को जानना अधिक समीचीन होगा । मिथक के पीछे आदिम विश्वासों व अन्य विश्वासों की भी प्रमुख भूमिका रही है । इसके अतिरिक्त प्रकृति भी मिथकों के जन्म में विशेष स्थान निभाती है । पृथ्वी व आकाश के असीम विस्तृत स्वरूप को देख आदिम मानव के मन उनके प्रति श्रद्धा व सम्मान की भावना जागृत हुई और पृथ्वी तथा आकाश देवी और देवता के रूप में सृष्टि-कर्ता बन गये । मानव दारा अपने धार्मिक विकास के प्रथम चरण में इन्हीं दो उपास्य को दैवीय नारी व पुरुष की संज्ञा देकर इनका मानवीकरण किया गया तथा इन्हीं से विश्व सृष्टि की कल्पना की । इसके अलावा प्राकृतिक आपदायें भी मिथकों के जन्म का कारण बनी । जल प्रलय से भयभीत मानव ने जल को उपास्य बनाया जंगलों में लगने वाली अग्नि तथा जीवन में उपयोग आने वाली अग्नि के दोनों रूपों ने अग्नि को उपास्य बनाया । इसी प्रकार सूर्य, विष्णु, सोम, इन्द्र, ऊषा, अदिति आदि देवताओं का जन्म हुआ । इन्हें आकाशवासी, अन्तरिक्षवासी व पृथ्वीवासी रूप में देखा जा सकता है । मानव ने पृथ्वी, आकाश, वृष्टि, अनावृष्टि, अन्धकार व अग्नि का प्रकोप देखा तथा उन्हें अलौकिक शक्ति मान लिया । जिस प्रकार मानव प्रसन्न व

होता है,उसी प्रकार उसने देवताओं के प्रसन्नता हेतु तथा नाराजगी से बचने के लिए उनकी स्तुति व उपासना प्रारम्भ की । धीरे-धीरे मानव ने अपनी दुर्बलता को देवताओं की सबलता के रूप में आरोपित किया । मानव मर्त्य दुर्बल, प्राकृतिक शक्ति के समक्ष पराधीन तथा विभिन्न गुणो व अवगुणों से युक्त होता है, इसी कारण उसने देवताओं को अमर, परम शक्तिशाली, सर्वथा स्वतन्त्र व केवल गुणों से सम्पन्न रूप में वर्णित किया । जैसे-जैसे समय बीतता गया देवी-देवताओं की संख्या में भी वृद्धि हुई । भारतीय पुराख्यानों में 64 करोड़ देवी-देवताओं की कल्पना हुई है । इन देवी-देवताओं के गुणों व महिमा का वर्णन करने के लिए कभी कपोल-कल्पित कथा का सहारा लिया गया है, तो कभी ऐतिहासिक पुरूषों पर इनका आरोपण किया गया । यही कथायें मिथक की सज्ञा से विभूषित हुई ।

"मिथ शब्द के कुछ कोशगत् अर्थ है- कोई पुरानी कहानी अथवा लोक विश्वास किसी जाति का आख्यान, धार्मिक विश्वासों एवं प्रकृति के रहस्यों के विश्लेषण से युक्त वृत्त देवताओं तथा वीर पुरूषों की पारपरिक गाथा, कथन, वृत्त, किवदन्ती, असत्य, परम्परागत कथा, आदिम विश्वास संकुल अलौकिक देवताओं से सम्बद्ध पारंपरिक किवदतियों से भरी कहानी तथा सुरों, नायकों के जीवन और कार्यो से युक्त काल्पनिक अथवा बनाई हुई रोचक कथा आदि ।"-1

"मिथक-सृजन एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है, और इसी से मिथकीय चरित्रों का क्रमिक विकास होता है और उनके दिव्य रूप के चारों ओर घटनाओं और व्यापारों का प्रभामंडल क्रमशः एकत्र होता रहता है । यह 'कथा तत्व' मिथक का इतिवृत्त है, जो एक प्रकार के प्रभामडल की सृष्टि करता है । दूसरे शब्दों में यह 'इति वृत्त' का अंश वह चतुर्दिक प्रभामंडल है जो मिथक चेतना का सार बनता है । अतः मिथक चेतना में दो तत्व समानान्तर रूप से चलते हैं- एक मिथ का सार

1· पुराख्यान और कविता - डा0 लक्ष्मी नारायण शर्मा, पृ0-9

तत्व §या विचार§ और दूसरा इतिवृत्त जो उस सार तत्व को घटनाओं और व्यापारों के द्वारा अधिक ग्राह्य बनाता है जिससे जन-मानस उसे सहजता से ग्रहण कर सके अतः मिथक केवल कथा या गल्प नहीं ।"-1 मिथकों का जीवन के साथ सहज सम्बन्ध व अर्थवत्ता जुड़ी हुई है । मिथकों के सृजन में प्राकृतिक शक्तियों का प्रभाव तो है ही, साथ ही मानव की नैतिक चेतना, जिज्ञासा वृत्ति कल्पनाशीलता का भी हाथ रहा है ।

मानव जीवन के समग्र क्षेत्र में मिथकों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । आदिम मानव से लेकर आधुनिक मानव तक के लिए मिथकों ने प्रेरणा व आदर्श का कार्य सम्पादन किया है । उन्हें मानवीय संवेदना से जोड़ते हुए नैतिकता का मार्ग दिखलाया है । अध्यात्म के नाम पर तथा दिव्य चरित्रों द्वारा जीवन का महत् आदर्श प्रदान किया । इन आदर्शों की प्रत्येक युग में उपयोगिता रही है राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक मिथक मुमूर्षु समाज को प्रेरणा शक्ति, शिथिल व असंयत् राष्ट्र को जागृति प्रदान करने वाले तथा बन्धुत्व व प्रेम का संदेश प्रदान करने वाले हैं । मिथकों में हमारे जातीय जीवन का जीवित अभिमान तो है ही, साथ ही राष्ट्रीय जीवन का उदात्त उत्साह भी निहित है ।

मिथकों के निर्माण के पीछे प्रमुख रूप से लोक चेतना, लोकरुचि और लोक-हित की ही भावना रही है । मिथकों के आदर्श समाज को प्रशस्त व जागरूक करने के लिए विशेषतः निर्मित हुए । मिथक समाज के, देश के अन्तःकरण के अभावों को समझने और उन्हें दूर करने को भी अपना उद्देश्य बनाते है । यही कारण है कि मिथकों की महत्ता जितनी आदिम मानव के लिए रही, उतनी ही आज भी है; हां उनके युग संदर्भो व अर्थक्ता को युगानुकूल परिवर्तित कर लिया

1· हिन्दुस्तानी §पत्रिका§ मिथक और साहित्य : संवाद के नये संदर्भ
डा0 वीरेन्द्र सिंह, पृ0 30

गया । मानव की एक दुर्बल पक्ष उसकी धर्मभीरूता भी होती है । अतः मिथकीय चरित्रों व कथावृत्त के माध्यम से, अधिक सहज रूप में मानव को युगानुरूप आदर्श की ओर उन्मुख किया जा सकता है । युगीन ज्वलन्त प्रश्नों का समाधान भावनात्मक ढंग से किया जा सकता है । "मिथक सम्पूर्ण मानवता के शताब्दियों के सारभूत अनुभव पुंज है और अवचेतन के सुषुप्त होने के बावजूद वे प्रकृति, ऋतु, नवीन विचार, यौन प्रवृत्ति, जनतंत्र या सामूहिकता, विज्ञान और मनोविज्ञान आदि सभी क्षेत्र में हमारा प्रत्यक्षा प्रत्यक्ष रूप में नियमन करते हैं, हमें प्रेरित करते हैं, अभिव्यक्ति की दिशाएं देते हैं ।---हम कह सकते हैं कि आधुनिक बोध की यथार्थता को नये क्षेत्रों से जोड़ने वाली शाश्वत मानवीय चिति, जो प्रकारान्तर से मिथकीय चेतना ही है, सर्जन और नव निर्माण की प्रेरणा और आधार भूमि देती रही है और दे रही है ।"-1

मिथकों के अन्तर्गत सर्वप्रथम सृष्टि उत्पत्ति की कथा को ही लिया जाय तो अनुचित न होगा । पुराणों में वर्णित-1 जलप्लावन की कथा तथा सृष्टि उत्पत्ति की कथा महत्वपूर्ण है । इनमें आदि पुरूष मनु के द्वारा जलप्लावन के बाद सृष्टि के विकास की कथा वर्णित हुई है । यह घटना तार्किक व बौद्धिक आधार पर सिद्ध नहीं की जा सकती फिर भी यह परम्परागत् रूप में विश्वसनीय मानी जाती है । यही मिथक है ।

भारतीय वाङ्मय में मिथकों का विस्तार अत्यधिक व्यापक है । वेदों, उपनिषदों, निरूक्तों, पुराणों सभी में मिथकीय कथा का विस्तृत कोष प्राप्त किया जा सकता है । समय के साथ-साथ इनके स्वरूप व भावधारा में परिवर्तन अवश्य प्राप्त होता है । इस तथ्य के पीछे कवियों द्वारा मिथको के सम-सामयिकता व युगानुकूलता का उद्देश्य ही रहा है । युगों के साथ-साथ युग सन्दर्भ भी परिवर्तित होते हैं, और उनकी अर्थवत्ता में पर्याप्त अन्तर आ जाता है । अतः युग के साथ-साथ साहित्य का स्वरूप भी बदलता रहता है । वेदों व उपनिषदों के मिथक, पुराणों तक आते-आते काफी कुछ परिवर्तित हुए, पुराणों के बाद युग

---

1 डा0 जगदीश श्रीवास्तव

परिवर्तन के साथ-साथ मिथकों की अर्थवत्ता व स्वरूप का भी परिवर्तन हुआ । भारतीय वाङ्गमय में कोई भी युग मिथकीय अवचेतना से रहित नहीं है । भाव बोध हो या कलात्मक अभिव्यक्ति का क्षेत्र, मिथको की उपादेयता सर्वत्र ही वर्तमान मिलती है । हां, उनकी अर्थवत्ता युगानुरूप परिवर्तित होती रही । हिन्दी काव्यधारा में आदिकाल, मध्यकाल, रीतिकाल व आधुनिक काल इन सभी कालों में मिथकों का अर्थ रूपान्तरण हुआ तथा युग-संदर्भो के अनुकूल व्यन्जना हुई ।

हिन्दी साहित्य में मिथकों का सह-सम्बन्ध विशिष्ट रूप से है । हिन्दी साहित्य के जन्म व विकास क्रम में मिथक निरन्तर सहगामी हुए। डा0 उषा वाचस्पति के शब्दों में-"समय-समय पर मिथकों की उपज साहित्य को नव आयामों से विभूषित करती रही है । अमूर्त सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए मिथक बिंब का कार्य करते है, तो उजड़ती नैतिकता को आरक्षित रखने के लिए वे अंकुश बन बैठते हैं । लोक मगल के उदात्त आदर्शो को पुष्ट करने का लक्ष्य होने के कारण मिथक कथाएं तदानुकूल मार्ग की ओर निरंतर बढ़ती रही हैं । समाज के बिखराव, उदासीनता, अनाचार पर अनुशासन की डोर थामने वाले मिथक किसी भी युग मे साहित्य के लिए अप्रासंगिक नही रहे हैं ।-1 प्रत्येक युग में मानव के आदर्शो को, नैतिकता को मिथको ने सम्बल प्रदान किया । मानव की इच्छायें, महत्वाकांक्षायें अनन्त है । इनकी सम्पूर्ति हेतु वह कठिन से कठिन तथा मानवीय क्षमता से भी आगे जाकर कार्य सम्पादन करता है । किन्तु कभी-कभी इस कार्य में अनैतिकता व अमानवीयता का समावेश होने लगता है । ऐसी परिस्थिति में मिथक उन पर अंकुश का भी कार्य करते हैं । मिथकों का प्रभाव उनके दृष्टिकोण को परिवर्तित करने में सहायक होती है । वह रावण व कंस जैसे दुष्चरित्रों के हनन के लिए राम व कृष्ण का आदर्श रूप भी प्रस्तुत करती है । मिथक आदर्श व यथार्थ तत्व का मिश्रण भी कहा जा सकता है । डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने मिथक और काव्य के निकट सम्बन्ध की ओर संकेत करते हुए लिखा है - "अपने रचनात्मक शील" को लेकर मिथक काव्य का समान

1· मिथक : उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य - डा0 ऊषा वाचस्पति, पृ0 62

धर्मा हो जाता है । मिथक आदिम काव्य ही है, ठीक उसी प्रकार जैसे सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित युगों में कविता आदिम स्वरों का संधान करने वाली हुआ करती है ।"-1

हिन्दी साहित्य के प्रत्येक युग में मिथकीय चेतना का प्रभाव रहा है । मिथकों के माध्यम् से आदर्श व नैतिकता के साथ-साथ सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में उदात्त विचारधारा की स्थापना हुई ।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में काव्य प्रवृत्ति पौराणिक न होते हुए भी मिथकीय रचना हुई । हिन्दी साहित्य के आदिकाल का साहित्य मुख्य रूप से दो रूपों में प्राप्त होता है पहला जैन तथा बौद्द धर्म के कवियों द्वारा रचित मिथकाश्रित साहित्य तथा दूसरा रासो काव्य जो श्रंगार प्रधान रचनाए थी ।

जैन धर्म, बौद्द धर्म व नाथ पथ के कवियों द्वारा मिथकों का आश्रय प्रमुख रूप से लिया गया । जैन साहित्य के अन्तर्गत मिथकीय रचयिताओं में स्वंयशंभू पुष्पदन्त, हरिभद्र सूरि, विनय चन्द्र सूरि धनपाल आदि का महत्वपूर्ण स्थान है । जिनके श्वर रचित "भारतेश्वर बाहुबली रास" में रामकथा और सुमतिगणि का "नेमिनाथ रास" में कृष्ण कथा को नवीन रूप में वर्णित किया गया है । जैन धर्म के मतावलंबियों ने अपने धर्म के प्रचार हेतु मिथकों का आश्रय लिया।

जैन कवियों में "स्वयभू" कवि का स्थान महत्वपूर्ण है । उनकी रचना पउम चरिउ जैन काव्य की महत्वपूर्ण कृति है । 800-900 ई0 के मध्य रची गयी इस प्रबन्ध कृति में रामकथा का वर्णन पांच काण्डो में किया गया है । अपृभंश में रचित इस काव्य कृति में रामकथा को जैन धर्म के अनुसार वर्णित है । स्वयंभू कृत "रिट्ठणोमि चरिउ" महाभारत के अनेक कथाओं के आधार पर रची गयी है । आरम्भ की तेरह सन्धियों में कृष्ण के जन्म, बाललीला, विवाह आदि का वर्णन है । "रिट्ठणोमि चरिउ" में द्रौपदी के चरित्र को कवि ने विशेष रूप से उभारा है । इन मिथकों का आश्रय कवि ने जैन धर्म के प्रचार प्रसार हेतु किया ।

1· डा0 जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव

बौद्द मतावलम्बियों ने भी अपने धर्म प्रचार हेतु मिथकों का आश्रय लिया । बौद्द धर्म के वज्रयान तत्व का प्रचार सिद्दों के साहित्य में प्राप्त होता है ।

हिन्दी साहित्य में मध्यकाल (सं0 1350 से 1600 वि0) का महत्वपूर्ण स्थान रहा है । इस काल को साहित्य की समृद्दि के कारण "स्वर्णकाल" की संज्ञा से विभूषित किया गया । इसे भक्तिकाल भी कहते हैं । भक्तिकाल में जैसा कि नाम से ही ध्वनित होता है, मिथकीय रचनाओं की प्रचुरता प्राप्त होती है । इस काल में निर्गुण व सगुण काव्यधारा में प्रवाहमान थी । निर्गुण भक्तिधारा के संतकाव्य में अवतारवाद के निषेध के कारण राम, गोपाल आदि मिथकीय नामों का उल्लेख मिल जाता है लेकिन पौराणिक आशय से नहीं, अतः संत काव्यों में मिथकों का अभाव ही है । यद्यपि ब्रह्म, माया, सृष्टि का अवधारणाएं, संत काव्य को भी उपनिषदों आदि से जोड़ता है, पर मिथक के इति वृत्तात्मक पक्ष का पूर्ण अभाव है ।

सूफी काव्यों में भी मिथकीय चरित्रों की महत्ता का वर्णन यत्र-तत्र हुआ है । सूफी काव्यों में जायसी कृत "पदमावत्" में इन्द्र, सरस्वती, गीता, राम आदि की महत्ता पर प्रकाश डाला गया है ।

> चतुरवेद मति सब ओहि पाहां । ऋग यजु साम अथरवन माहां ।
> एक एक बोल अरथ चौगुना । इन्द्र मोहबरम्हा सिर धुना ।।
> अमर, भारत पिंगल और गीता । अरथ जूझ पंडित नहीं जीता।
> भावसती व्याकरन सरसुती, पिंगल पाठ पुरान ।
> वेद भेद सै बात कह, तब जनु लागहिं बान ।।-1

"पदमावत्" में राम, कृष्ण, शिव, विष्णु के साथ-साथ मिथकीय घटनाओं का भी यत्र-तत्र वर्णन हुआ है ।

1· पद्मावत् - जायसी- नखशिख खंड-छन्द-10, पृ0-151

मिथकीय रचना प्रचुर रूप से सगुण भक्त कवियों ने किया । इन रचनाओं में बहुसंख्यक काव्य वैष्णव पुराणों से सम्बन्धित है । वैष्णव वर्ग के काव्य मुख्यतः रामायण, महाभारत एवं भागवत् पुराण पर आधारित है । अन्य पुराणों व उपनिषद आदि का भी कहीं-कहीं आश्रय लिया गया है । इस काल के पौराणिक प्रबन्ध रचनाओं की प्रमुख विशेषता यह रही कि इनका धर्म के क्षेत्र में समन्वयात्मक एवं व्यापक दृष्टिकोण था । सगुण भक्ति की धारा दो मिथकीय चरित्र यथा राम और कृष्ण पर मुख्य रूप से आधारित है रामकथाधृत शाखा व कृष्णकथाधृत शाखा ।

सोलहवी शती के मध्य भाग से इस परम्परा का विकास अत्यन्त द्रुतगति से हुआ । 16वीं से 20वीं शती तक अनेकों पौराणिक प्रबन्ध काव्यों की रचना हुई । स्थूल रूप से इन मिथकाश्रित रचनाओं को 3 भागों में बांटा जा सकता है । रामकथाश्रित, कृष्णकथाश्रित तथा महाभारतीय कथाश्रित मिथकीय प्रबन्ध काव्य । रामकथाश्रित काव्यधारा में तुलसीदास का महत्वपूर्ण स्थान है । तुलसीदास के "रामचरित-मानस" का इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान है । तुलसीदास जी की 25 रचनाओं का उल्लेख मिलता है किन्तु प्रमाणिक रचनायें 12 मानी गयी है । इनमें रामचरित मानस, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, वरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा, दोहावली, कवित रामायण, गीतावली, विनय पत्रिका व तुलसी सतसई रचनायें आती है ।-1 इन रचनाओं में राम के मर्यादापूर्ण आदर्श रूप को मानव जीवन का आदर्श बनाया गया है । तुलसी ने राम का सम्बोधन जिन नामों से किया है, वे सभी किसी न किसी मिथक से जुड़े हुए है । राम के अतिरिक्त अन्य सभी चरित्र भी मिथको से जुड़े चरित्र ही हैं । इन चरित्रों के माध्यम् से तुलसी ने समग्र मानवीय जीवन के आदर्शो का अंकन करते हुए, समाज के समक्ष कल्याणकारी व मंगलमयी आदर्श की प्रेरणा प्रस्तुत की ।

1· रामचरित मानस - तुलसीदास

तुलसी के पश्चात केशवदास, प्राणचन्द चौहान व हृदयराम भल्ला आदि कवियों का नाम महत्वपूर्ण है । केशवदास यद्यपि श्रृंगारी कवियों में आते हैं, किन्तु इन्होनें मिथकीय रचना भी की है । "रामचन्द्रिका"-1 केशवदास की मिथकाश्रित काव्य रचना है । "रामचन्द्रिका" दो भाग तथा उन्तालीस प्रकाशों में निबद्ध रचना है । प्रथम भाग में 20 प्रकाश है, इसमें राम के बचपन से लेकर रावण वध तक की कथा का वर्णन किया गया है । द्वितीय भाग में राम भरत मिलाप, राम का तिलकोत्सव, रामराज्य का वर्णन, शम्बूक वध, लवणासुर वध आदि प्रसंगों का चित्रण है ।

प्राणचन्द चौहान ने "रामायण महानाटक" लिखा इसमे राम के चरित्र को वर्णित किया गया है । हृदयराम भल्ला का मिथकाश्रित रचना "हनुमन्नाटक" है ।

इस परम्परा के कवियों ने धर्म और समाज के क्षेत्र में अपने व्यापक समन्वयवादी-दृष्टिकोण का परिचय दिया । इन मिथकीय चरित्रों के माध्यम् से समाज के समक्ष तदनुकूल आदर्श प्रस्तुत किया । साहित्य का प्रणयन जीवन का व्यापक आधार लेकर विकसित हुआ था । अतः उसमें राम के लोकोपकारी रामराज्य संस्थापक रूप के साथ ही लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, हनुमान आदि पात्रों का वर्णन प्राप्त होता है । तथा उनके सहारे मानव जीवन के व्यापक आदर्शो की स्थापना के लिए सभी पात्रों के पारस्परिक सम्बन्धों को सूत्र रूप में ग्रथित करके प्रस्तुत किया गया है ।"-2

1· रामचन्द्रिका - केशवदास, बारहवाँ संस्करण - 1972

2· आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - डा0 मालती सिंह, पृ0-14

कृष्ण भक्ति के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कवि सूरदास जी हुए हैं । उन्होंनें कृष्ण को आधार बनाकर, पौराणिक गाथाओं को समेटते हुए "सूरसागर"-1 की रचना की । इस रचना में कृष्ण विपत्ति में फंसे मानवों की अपनी अलौकिक कृत्यों से सहायक बनते हैं, वही कंस तथा उसके सहायक राक्षसों का वध करते हैं । इस रचना में कृष्ण अलौकिक होने के साथ-साथ, जन सामान्य के सुख-दुख से जुड़े हुए लोक मंगल हेतु सन्नद्ध दृष्टिगत् होते हैं ।

भक्तिकाल में कृष्ण काव्य में प्रबन्धात्मक रचनाओं की अपेक्षा गेय व मुक्तक शैली में रची मिथकीय रचनाओं की बहुलता है । कृष्ण-भक्ति काव्य लीलावादी काव्य है । लीला वर्णन के लिए लोकमंगल या समाज के सन्दर्भो से जुड़ना अनिवार्य नहीं होता । कृष्ण के चरित्रांकन की दृष्टि से रचनायें इसी कारण अत्यल्प है । जो प्रबन्ध रचनायें उपलब्ध होती है उनमें सन् 1530 ई0 में रचित लालचदास की प्रबन्ध रचना "हरिचरित्र" तथा नंददास का "भागवत दशम स्कन्ध" विशेष उल्लेखनीय है ।

मध्यकाल में मिथकाधृत रचनाओं में केवलराम और कृष्ण के तथा उनसे सम्बन्धित मिथकों का ही आश्रय नहीं लिया गया प्रत्युत अन्य मिथकीय चरित्रों का भी युगानुरूप अवतरण किया गया । डा0 ऊषापुरी के शब्दों में "गणेश का विघ्नहारी रूप, सरस्वती का ज्ञानेश्वरी रूप, विष्णु का जगतपालक रूप, शिव का संहारक रूप साहित्य विख्यात हो गया था । लक्ष्मी धनदेवी थी तो दुर्गा और काली शत्रु नाशिनी, ब्रह्मा सृष्टि को जन्म देने वाले आदि देव थे ।"-2 इन मिथकीय चरित्रों का भक्तिभाव से अंकन हुआ, इनके चरित्र-चित्रण हेतु प्रबन्धात्मक काव्य रचना का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है । मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में केशव, सेनापति व रहीम, मीराबाई आदि महत्वपूर्ण कवियों ने विशेषतः मुक्तक शैली में मिथकों को अपने काव्य में स्थान दिया ।

1· सूरसागर - सूरदास

2· मिथक : उद्भव औरविकास तथा हिन्दी साहित्य - डा0 ऊषापुरी वाचस्पति, पृ061-62

मध्यकाल में रचित मिथकाश्रित प्रबन्ध कृतियों का हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है । इस काल में मिथकीय चरित्रों को तथा मिथकीय प्रसंगो को युगीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का महत प्रयास हुआ । तुलसी ने राम को भारतीय जनमानस के आदर्शों के अनुरूप, मर्यादा पुरूषोत्तम के रूप में ढाला, वहीं कृष्ण भी योगेश्वर व लीला-पुरूष के साथ जन-सामान्य के अधिक निकट आये । सत् असत् पात्रों का निर्धारण भी कवियों द्वारा तद्युगीन संदर्भो के अनुकूल किया गया।

रीतिकाल तक आते-आते भक्तिकाल में रचित पौराणिक रचनाओं की श्रृंखला क्षीण हो गयी । भक्ति की पवित्र धारा श्रृंगार रस के धारा में बदल गयी । इसके पीछे तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था में आया विशद् परिवर्तन की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही । इससे सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश भी प्रभावित हुआ राजाओं की प्रसन्नता का लक्ष्य बनाकर रची जाने वाली रचनायें श्रृंगार प्रधान ही हो सकती थी । लोक-कल्याण व लोक-मंगल हेतु रची जाने वाली मिथकाश्रित प्रबन्ध कृतियां राज दरबारों में मनोरंजन का साधन नहीं बन सकती थी । इस कारण भी कवियों में श्रृंगारोन्मुखता प्राप्त होती है । "उस समय के कवि लौकिक सुखों से निर्लिप्त मन्दिरों से सम्बद्ध साधू सन्त नहीं थे जो भक्ति कालीन कवियों के सदृश उस परतन्त्रता के निराशापूर्ण वातावरण में भी अन्तर की ज्योति से प्रकाशमान भगवद्भक्ति का आधार ग्रहण करके आत्मोवृत्ति के शिखर पर पहुंच सके । इनके लिए लौकिक सुख त्याज्य नहीं था । अतः उन्होंने देवताओं के स्थानापन्न लौकिक भूपालों का आश्रय ग्रहण किया और उनके मनोरंजन के लिए काव्य रचना करते थे ।"-1 राजाओं की प्रसन्नता के लिए लोक मंगल व भक्ति भावना से रचित काव्य की नहीं अपितु श्रृंगार के आभूषणों से सजी हुई कविता कामिनी की आवश्यकता थी । इसी कारण इस काल में मिथकाश्रित प्रबन्ध कृतियों की धारा क्षीण पड़ जाती है ।

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - डा0 मालती सिंह, पृ0-15

इस काल में राम और कृष्ण जैसे पौराणिक चरित्रों को भी रीतिकाल की श्रृंगारी प्रवृत्तियों के अनुकूल ढालने का प्रयास हुआ । इस काल में राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम को भी रसिक बना दिया गया तथा राधा व सीता कवियों की आराध्या न होकर नख-शिख तक के सौन्दर्य वर्णन का माध्यम् बन गयी ।

आधुनिक काल में अलौकिकता से युक्त पौराणिकता का निषेध यद्यपि एक प्रवृत्ति के रूप में विकसित हुआ, फिर भी पौराणिक कथाधृत प्रबन्ध रचनाओं की विस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण परम्परा का अनवरत विकास होता है ।

आधुनिक काल की पौराणिक रचनाओं एवं उनके पात्रों के अध्ययन के पूर्व आधुनिक युग के सम्पूर्ण परिदृश्य एवं तज्जनित चेतना का अध्ययन समीचीन होगा क्योंकि इनके अध्ययन के बगैर प्रतिपाद्य विषय का विवेचन अपूर्ण होगा ।

आधुनिक काल

भारतीय इतिहास में आधुनिक काल का प्रर्दुभाव सन् 1850 ई0 से माना जाता है । यह काल सामन्तवादी और पूंजीवादी ताकतों के मध्य टकराहट का काल रहा है । इस समय तक सामन्तवाद लगभग मृतप्राय हो चुका था तथा पूंजीवादी परम्परा अपनी जड़ें जमाने लगी थी । सन् 1850 ई0 में हिन्दी साहित्य में नव-जागृति और मौलिकता के प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म भी हुआ था, इस कारण भी 1850 ई0 को हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की प्रारम्भिक सीमा माना जाता है ।

आधुनिक काल से तात्पर्य है मध्यकाल से भिन्न तथा नवीन दृष्टिकोण का उन्नायक काल । इस काल में प्राचीन रूढ़ियों तथा आडम्बरों को तोड़कर समाज को नवीन चेतना प्रदान की गई । रीतिकाल में साहित्य जिस प्रकार श्रृंगारिकता के पंक में फंसकर समाज के कल्याण के लिए अनुपयुक्त सिद्द हो चुका था, वह अब मनुष्य के सुख-दुख के साथ जुड़कर उसके और भी करीब आने लगा । धर्म

और साहित्य के प्रति नवीन दृष्टिकोण का प्रादुर्भाव हुआ । डा0 शम्भूनाथ सिंह के शब्दों में "आधुनिक शिक्षा तथा विज्ञान की उत्तरोत्तर प्रगति ने प्राचीनकाल से चली आती हुई अनेक मान्यताओं और प्राचीन जीवन मूल्यों के सम्मुख प्रश्नवाचक चिन्ह लगा दिया । आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के प्रकाश में पुराने विश्वासों, आचारो तथा संस्काररूप में बद्मूल धरणाओं और मान्यताओं की मनुष्य ने पुनः जांच और नये ढंग से व्याख्या की ।"-1

आधुनिक काल में उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध भारतीय जन-जीवन में नव-चेतना के संचार का प्रारम्भिक बिन्दु रहा है । इस नव चेतना के मूल में तद्युगीन परिस्थितियों का अनिवार्य योगदान दृष्टिगत होता है । अतः तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का अवलोकन करना समीचीन होगा ।

आधुनिक काल : परिदृश्य एवं नवीन चेतना

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में भारतीय राजनीतिक परिस्थिति अत्यधिक दयनीय रही । इस समय भारत अंग्रेजों के दासता के चंगुल में जकड़ा हुआ, छटपटा रहा था । अंग्रेजों द्वारा भारत में अपनी सत्ता जमाने का प्रारम्भ 1600 ई0 से ही हो जाती है, जब वह व्यापार का उद्देश्य लेकर "ईस्ट इंडिया कम्पनी" की स्थापना करता है । धीरे-धीरे कम्पनी द्वारा सम्पूर्ण भारतीय राजनीतिक व्यवस्था हस्तगत कर ली गयी तथा भारत अंग्रेजों का गुलाम बन गया । इसके मूल में भारतीय नरेशों की आपसी फूट और कलह का प्रमुख योगदान रहा है । अंग्रेज व्यापारियों द्वारा भारतीयों की पतनोन्मुखता व सुषुप्त मानसिकता का तथा उनकी दुरवस्था का लाभ पूर्णरूपेण प्राप्त किया गया । डॉ0 विश्वनाथ वर्मा के शब्दों में "भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना व्यवस्थित ढंग से दक्षिण के आंग्ल-फ्रांसीसी युद्धों (1740-1763), प्लासी की लड़ाई (जून 23, 1757) तथा बक्सर का युद्ध (अक्टूबर 23

1· हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, पृ0 236

1764§ और शाह आलम द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को दीवानी अधिकारों को दिये जाने §अगस्त 1, 1765§ के साथ-साथ आरम्भ हुई । बलशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने इस देश में कूटनीति, शासन पटुता तथा उच्च प्रकार के सैनिक शस्त्रास्त्र की सम्पूर्ण शक्तियों के साथ प्रवेश किया और इसलिए उसने भारतीय राजनीति में प्रलय मचा दी ।"-1 सन् 1846 के द्वितीय सिख युद्ध तथा 1857 के सैनिक विद्रोह का दमन करने के पश्चात अंग्रेजों का भारत पर शासकीय दृष्टिकोण से पूर्णरूपेण आधिपत्य स्थापित हो गया । 1857 की क्रांति के बाद ब्रिटिश शासक द्वारा गवर्नमेन्ट आफ इंडिया एक्ट 1858 के अन्तर्गत सम्पूर्ण भारतीय शासन हस्तगत् कर ली गयी । इस एक्ट के अनुसार भारत सरकार पर महारानी द्वारा और उसकी ओर से शासन चलाया जायेगा का नियम बना ।

भारतीय शासन ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के हाथों में आने के बाद भी कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ । अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों को सुविधाओं से तो वंचित किया ही, साथ ही उनके विशेषाधिकारों का भी हनन किया फलतः जनता में आक्रोश बढ़ता ही गया । जनता के आक्रोश को शान्त करने के लिए ह्यूम महोदय ने 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना की। इससे भारतीय जनमानस को बोलने की स्वतन्त्रता मिली और भारतीयों का असन्तोष मंच पर अभिव्यक्त होने लगा। डॉ0 विनय मोहन शर्मा के शब्दों में-"कांग्रेस की प्रथम पच्चीस वर्ष की अवधि में उसके नेताओं के प्रति सरकार उदार नीति भी बरतती थी । उन्हें अवसर आने पर न्याय विभाग में उचित नौकरी भी देती थी ।"-2 अंग्रेजों की यह कूटनीति थी लगभग इसी मध्य लार्ड कर्जन के बंग-भग की नीति §1905 ई0§ से भारतीय जनता पुनः असन्तुष्ट हुई । यह हिन्दू और अंग्रेजों के मध्य फूट डालने की नीति कही जा सकती है ।

1· आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन - डॉ0 वी·पी· वर्मा, पृ0-1

2· हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास भाग-8, सम्पादक-विनय मोहन शर्मा- पृ0-10

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी सत्ता अपने चरम सीमा पर थी । इस काल में प्रथम महायुद्ध {1914-1918 ई0} रोलट एक्ट {1918} तथा जालियाँ वाला बाग हत्याकाण्ड जैसी घटनाओं से, राजनीतिक क्षेत्र में वृहत परिवर्तन आया । अंग्रेजी सरकार भारतीय शासन को किसी भी हालत में अपने हाथ से नहीं निकलने देना चाहती थी, फलस्वरूप वह कठोर से कठोर दमनात्मक रूप धारण कर रही थी ।

उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध सामाजिक दृष्टिकोण से अज्ञानता व निष्क्रियता का रहा है । समाज में अशिक्षा के दुष्प्रभाव के परिणाम स्वरूप भारतीय जन-मानस बौद्धिक स्तर पर अत्यधिक पीछे था । अशिक्षा के साथ ही साथ गरीबी में जकड़े भारतीयों की दीनता और सामाजिक अप्रतिष्ठा ने गहरे नैराश्य भावना से ग्रस्त कर लिया था, जिसके कारण वे राजनीति से काफी हद तक विमुख ही रहे । यही कारण है कि इस काल में स्वतन्त्रता आन्दोलन काफी धीमी गति पर था ।

इसी काल में भारतीय समाज में पराधीनता के कारण जहां कुंठा व निष्क्रियता प्राप्त होती है, वहीं उसमें विभिन्न जड़ रूढ़ियों व रुग्णताओं का भी समावेश प्राप्त होता है । वर्ग-वैषम्य के कारण समाज का 3 वर्गो में विखंडन प्राप्त होता है । ये वर्ग उच्च वर्ग, मध्यम् वर्ग तथा निम्न वर्ग के रूप में एक दूसरे से पूर्णतया कटे हुए थे । इस कारण सामाजिक शक्ति अत्यधिक निर्बल पड़ गई । जाति-पाँति तथा अस्पृश्यता ने भारतीय समाज को और भी निर्बल किया सुधार आन्दोलनों द्वारा भारतीय जन-मानस की इस प्रवृत्ति में सुधार लाने के प्रयत्न किये गये किन्तु इन रूढ़ियों में कोई विशेष परिवर्तन न आ सका । उनमें कुछ नरमी अवश्य दृष्टिगत होती है । सुधार आन्दोलन के बावजूद सारी 19वीं शताब्दी में जात-पांत सबंधी निष्क्रियता चलती रही और अस्पृश्य वर्ग की स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ ।"-1

1· भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास - पी·एन· चोपड़ा पृ0-83

समाज के महत्वपूर्ण अंग "नारी" की दशा अत्यधिक दयनीय व शोचनीय था । पर्दा प्रथा के कारण शारीरिक व मानसिक रूप से अस्वस्थ नारी, क्मे निम्न वर्ग की ही भांति शिक्षा से भी लगभग वंचित थी । कुछ सम्पन्न वर्ग की लड़कियों को ही अपवाद स्वरूप विद्यार्जन का सुअवसर प्राप्त हो सका । बालवध, बाल विवाह, बहुविवाह, विधवाओं के लिए ब्रह्मचर्य तथा सती प्रथा जैसी भयंकर कुप्रथायें अभी भी छिटपुट रूप से वर्तमान थी ।विभिन्न सुधार आन्दोलनों व कानूनी अवरोध के कारण ये प्रथायें बहुत कम हुई । नारी की दयनीय स्थिति ने भारतीय समाज को अत्यधिक खोखला कर दिया था ।

भारतीय समाज की दुरवस्था का कारण उसमें व्याप्त धार्मिक अंधविश्वास व अज्ञानता प्रमुख रूप से रहा है । इस काल में लोग धर्म के नाम पर असंगत प्रथाओं को सहर्ष स्वकृति प्रदान कर देते थे । धर्म के प्रति अंधविश्वास के कारण भारतीय जनमानस भाग्यवादी था । इसी प्रवृत्ति के कारण लोगों ने गुलामी को भी नियति मानकर स्वीकार कर लिया तथा निष्क्रिय बने रहे, राजनीतिक उथल-पुथल और अव्यवस्था के घने अन्धकार में डूबे भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के प्रति उदासीन रहे ।

उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द आर्थिक दृष्टि से परिवर्तन का युग रहा । इस समय पुराने आर्थिक व्यवस्था का विखंडन तथा नवीन अर्थ व्यवस्था की शुरूआत हुई । यह व्यवस्था कई रूपों में भारतीय जनता के हितों के प्रतिकूल रही । अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व ने भारतीय अर्थ व्यवस्था को लगभग पंगु बना दिया । "भारतीय साम्राज्य ब्रिटेन की उपसंपदा बन गया, भारत के कृषि साधन, औद्योगिक संभावनायें और वाणिज्य उद्यम सभी कुछ ब्रिटेन के हितों के चाकर बन गये। इस राजनीतिक आर्थिक स्थिति ने धीरे-धीरे भारत के हर भाग पर और भारतीयों के आर्थिक जीवन के हर पहलू पर अपना असर डाला । इसने गरीबी को जन्म दिया।"1

1· भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास - पी·एन· चोपड़ा - पृ0 192

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध में पड़े भयंकर अकालों ने भारतीय अर्थ व्यवस्था को अत्यधिक प्रभावित किया । 1860-61 में उत्तर पश्चिम प्रातों में पड़ा अकाल, 1866-67 में उड़ीसा का व मद्रास के कुछ प्रान्तों का अकाल, 1968-69 में राजपूताना का अकाल, 1873-74 में बंगाल व बिहार का अकाल, 1876-77 में दक्षिण भारत के मद्रास और बम्बई तथा मेसूर व हैदराबाद का अकाल पड़ा । सर्वाधिक भीषण अकाल 1943 ई0 में बंगाल में पड़ा । इन प्राकृतिक विपदाओं ने भारतीय अर्थ व्यवस्था को अत्यधिक कमजोर कर दिया, जिससे देश गरीबी के महागर्त में गिरने हेतु विवश हो गया ।

पाश्चात्य औद्योगिक क्रांति के भारत में पदार्पण ने भारतीय अर्थ-व्यवस्था का बहुत प्रभावित किया । यहां के देशी उद्योग लगभग नष्ट हो गये । भारत कृषि प्रधान देश रहा है, यहां पर कुटीर उद्योगों की बहुलता रही है । अंग्रेज शासकों ने भारत में अपने उद्योगों के विकास हेतु भारतीय कुटीर उद्योगों, लघु उद्योग-धन्धों को अत्यधिक क्षति पहुंचाई । उद्योग के क्षेत्र में मशीनीकरण की प्रवृत्ति ने जहां मानव शक्ति को बेकारी व बेरोजगारी के महागर्त में धकेला । यहां के कच्चे माल व खनिज सम्पदा का उपयोग निजी हित के लिए करके, अंग्रेजी शासकों ने देश के अर्थ व्यवस्था को जर्जर कर दिया ।

1· नव-जागरण आन्दोलन

20वीं शताब्दी के पूर्व भारत राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में अत्यधिक पिछड़ा हुआ था । राजनीतिक क्षेत्र में दीर्घकालीन दासता के कारण भारतीय जनमानस एक प्रकार से परतन्त्रता का अभ्यस्त सा हो गया था । छिट-पुट आन्दोलनों को छोड़कर, सामाजिक क्षेत्र में जाति - भेद, वर्ण-भेद तथा स्त्री और पुरुष के मध्य विभेद की गहरी खाई थी, जो उन्हें विकास व बौद्धिकता से कोसों दूर रखे हुए थी । धार्मिक क्षेत्र में विभिन्न रूढ़ियों व मिथ्याडम्बरों ने जनमानस को नियति के आवरण में ढक रखा था । भारतीय जनमानस नियति व धर्म के नाम पर सब कुछ सहन करती रही ।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द में धीरे-धीरे पाश्चात्य शिक्षा तथा वैज्ञानिकता का प्रवेश भारतीय समाज में होने लगा । पाश्चात्य शिक्षा व सम्पर्क से हमारे सुप्त समाज में एक नवीन जागृति का प्रवेश होने लगा । भारतीय जनमानस में अपने समाज, धर्म तथा राष्ट्र के प्रति नवीन दृष्टिकोण का उन्मेष होने लगा । इसी चेतना ने नवजागरण आन्दोलनों को जन्म दिया । सामाजिक चेतना के जागरण के कारण ही विभिन्न धार्मिक व सांस्कृतिक आन्दोलन हुए । इन आन्दोलनों के द्वारा भारतीय समाज में व्याप्त पुरातन जर्जर रूढ़ियों व धार्मिक मिथ्याडम्बरों के बारे में जन-समाज को सचेत किया गया । उन्हें इन रूढ़ियों व मिथ्याडम्बरों को ध्वस्त कर नवीन समाज की प्रेरणा दी गयी । इसी प्रकार राष्ट्रीय आन्दोलनों द्वारा भी विभिन्न वर्गों में भ्रातृत्व भाव जगाने तथा नियति के जाल में फंसे मानवों को कर्म और श्रम की महत्ता सिखाते हुए, उन्हें रूढ़ियों से परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़े भारत को स्वतन्त्रता के स्वर्णिम मंजिल तक पहुंचाने की प्रेरणा दी गई ।

भारतीय जन-समाज को सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक क्षेत्र में नवीन चेतना प्रदान करने वाले महानुभावों में राम मोहन राय, स्वामी दयानन्द, एनी बेसेंट, विवेकानन्द, स्वामी रामकृष्ण, महात्मा गांधी आदि ने जहां धार्मिक व सांस्कृतिक पुर्नजागरण का महत् कार्य किया वहीं भारतीय जनमानस में स्वाभिमान, देशभक्ति व स्वातन्त्रय चेतना जाग्रत करते हुए राष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख भी किया । नव जागरण आन्दोलनों में "ब्रह्मसमाज", "आर्यसमाज", "थियोसाफिकल सोसायटी", "रामकृष्ण मिशन" आदि का महत्वपूर्ण योगदान व महत्ता रही है ।

ब्रह्म समाज

भारतीय जनमानस को परम्परागत् सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों, मिथ्याडम्बरों व समाज को जर्जर बनाने वाली रूढ़ियों के विखंडन की नवीन चेतना प्रदान करने वाले महान पुरूषों में राजा राम मोहन राय का महत्वपूर्ण स्थान है । आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना के अग्रदूत राम मोहन राय ने वेदान्त तथा अन्य धर्मो के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सम्मिलन से नवीन धार्मिक चेतना का उन्मेष किया ।

अपने इन्हीं विचारधारा के प्रचार प्रसार हेतु उन्होनें 20 अगस्त सन् 1928 ई0 में कलकत्ता में "ब्रह्म समाज" की स्थापना की । इसके द्वारा उन्होनें सामाजिक कुरीतियों व परम्परागत् रूढ़ियों का जमकर विरोध किया । राम मोहन राय का सर्वाधिक युगान्तकारी तथा विद्रोहात्मक कार्य रहा, समाज के वीभत्स रोग "सती प्रथा" का उन्मूलन । 1818 ई0 में उन्होनें सती प्रथा के उन्मूलन के लिए विख्यात आन्दोलन आरम्भ किया और 1829 ई0 में तत्कालीन गर्वनर जनरल लार्ड विलियम् वेंटिग ने विनियम 17 के अन्तर्गत सती प्रथा को अवेध घोषित कर दिया । इस दृष्टि से 1829 ई0 के वर्ष को भारत के सामाजिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण युग परिवर्तनकारी वर्ष माना जा सकता है ।"-1 राजा राम मोहन राय साम्प्रदायिकता अन्धविश्वास व मूर्ति पूजा के कट्टर विरोधी थे । वे सर्वधर्मसमन्वय के सिद्दान्त को मानने वाले एकेश्वरवादी थे । उन्होनें समाज में स्त्रियों के स्वत्व व महत्ता की प्रतिस्थापना हेतु महत् प्रयत्न किया । स्त्रियों को उत्तराधिकार प्रदान कराने के लिए वे विशेष प्रयत्नशील रहे । भारतीय जन समाज में युगों से उपेक्षा व तिरस्कार की शिकार नारी वर्ग के उन्नयन हेतु तथा उन्हें स्वतन्त्रता व समानता का अधिकार प्रदान करने के लिए प्रथम विद्रोह उन्हीं के द्वारा हुआ ।

"ब्रह्म- समाज" द्वारा बुद्दिवाद, सार्वभौमवाद, मानवधर्म के विचार तथा पूर्व और पाश्चात्य् आदर्शो के समन्वय ने भावी राष्ट्रीय आन्दोलनों हेतु प्रेरणा भूमि का कार्य किया । "ब्रह्म समाज" बुद्दिवादी जागरण आन्दोलन कहा जा सकता है । "ब्रहम समाज" का पुर्नजागरण तथा बुद्दिवादी चेतना के प्रसार में महत्वपूर्ण स्थान रहा ।

"ब्रह्म समाज" ने भारतीय जन समाज में एकेश्वरवादी सिद्दान्त का प्रचार करते हुए समस्त मानव जाति को बिना जाति भेद व वर्ण भेद

1· आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन - डॉ0 वी·पी· वर्मा, पृ0 13-14

के ईश्वर के आराधना का अधिकारी माना । "ब्रह्म समाज" ने मन्दिर, मस्जिद आदि के वाह्याडम्बर के स्थान पर हृदय की शुद्धता को महत्ता प्रदान की । "राजा राम मोहन राय ने अपना चिंतन उपनिषदों से ग्रहण किया, पर हिन्दू आराधना शैली की परम्परागत् एकांतिक पद्धति को छोड़कर उन्होंनें योरोपीय चर्च का संगठन स्वीकार किया, जिसमें पूजन की सामूहिक पद्धति प्रचलित थी । "ब्रह्म समाज" ने समाज को प्रगति पथ पर अग्रसित करने के लिए तथा विकास के उच्चतम् शीर्ष पर पहुंचाने के लिए उसमें निहित मिथ्या तथा रूढ़ आडम्बरों को दूर करने का महत् प्रयास किया । ब्रह्म समाज ने प्रथम बार समाज में व्याप्त छुआछूत तथा जाति भेद के उन्मूलन का तथा अन्धविश्वास व रूढ़ियों के स्थान पर विवेक सम्मत, बौद्धिक व तार्किक विचारधारा का प्रसार किया । समाज से विधवा-विवाह निषेध, बाल-विवाह तथा बहु विवाह, भ्रूण हत्या व सती प्रथा को समाप्त करने में महत्वपूर्ण स्थान निभाने वाली यह संस्था वह ज्योति थी जिसने भारतीयों के जीवन के अन्धकार को दूर कर उसे प्रकाश प्रदान किया । "ब्रह्मसमाज" की महत्ता का प्रमुख कारण था कि राम मोहन राय ने भारतीय और पाश्चात्य् संस्कृतियों के समन्वय पर बल दिया था । इससे भारतीय जन मानस में बौद्धिक चेतना का संचार हुआ ।

राम मोहन राय के बाद ब्रह्म समाज का नेतृत्व देवेन्द्र नाथ ठाकुर तथा केशव चन्द्र सेन के हाथों में आया । महर्षि देवेन्द्र नाथ "हिन्दू धर्म को रूढ़िवादिता से पृथक कर उसे योरोप के नवीन ईसाई मत के साथ प्रतिपादित करना चाहते थे । वे एक तत्वबोधिनी सभा भी चला रहे थे जो बाद में इसी समाज में विलीन हो गई । ठाकुर का ब्रह्म समाज बुद्धि और तर्क पर बल देता था । अतः उसे वैदिक शिक्षा वहीं तक मान्य हुई जहां तक वह बुद्धिसंगत समझी गई । केशव चन्द्र सेन ने सन् 1850 ई0 में ब्रह्म समाज को स्वीकार किया, पर वे ईसाई धर्म की ओर अधिक झुके हुए थे ।"2

1· हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी - पृ0 95

2· हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास - डॉ0 विनय मोहन शर्मा, पृ0 11,12

समग्रतः राम मोहन राय धर्म सुधारक, समाज सुधारक, राजनीतिक विचारक, महान देशभक्त, हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक, प्रेस स्वतन्त्रता के समर्थक, अन्तर्राष्ट्रीयतावादी, मानवतावादी व एक सफल शिक्षा शास्त्री के रूप में भारतीय जनमानस को नव जागरण प्रदान करने में बहुत हद तक सफल रहे । भारतीय समाज रूपी रथ को अन्याय, विसंगतियों और कुप्रथाओं, पिछड़ापन, अशिक्षा के गहरे धुंध से निकालकर प्रकाशमयी प्रगति के पथ पर अग्रसरित किया । उनके इन कार्यो को "ब्रहम समाज" ने उनके बाद भी कार्यरूप देते हुए जीवन्त रखा ।

आर्य समाज

"आर्य समाज" की स्थापना प्रसिद्ध समाज सुधारक दयानन्द के द्वारा 1875 ई0 में बम्बई में किया गया । दयानन्द वैदिक परम्पराओं के समर्थक थे किन्तु जाति प्रथा के कट्टर विरोधी थे । वे समाज को खोखला कर देने वाली अनेकों धार्मिक-सामाजिक कुरीतियों व मिथ्याडम्बरो का विरोध करने के साथ ही समाज में नारी उन्नति के लिए भी प्रयासरत रहे । "आर्य समाज" द्वारा नारी स्वतन्त्रता, नारी शिक्षा, पर्दाप्रथा का विरोध, तथा विधवा विवाह के लिए विशेष प्रयास किये गये । "स्वामी दयानन्द ने वैदिक पुनरूद्धार तथा सामाजिक सुधार के लिए शक्तिशाली आन्दोलन ही नहीं प्रारम्भ किया बल्कि उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने भारतीय राजनीतिक आन्दोलन को महान नेता तथा अनुयायी प्रदान किये हैं । उन्होनें धर्म शास्त्रीय तथा सामाजिक विषयों में बुद्धिवाद तथा स्वतन्त्रता का पक्ष पोषण किया । यह सत्य है कि उनका बुद्धिवाद मनुष्य की बुद्धि धर्म शास्त्रों के बन्धनों से पूर्णतः मुक्त करने की घोषणा नहीं करता, किन्तु उनकी यह घोषणा कि धार्मिक मामलों में निर्णय का अधिकार बुद्धि को है न कि अन्धविश्वास मूलक श्रद्धा को, एक महत्वपूर्ण अग्र कदम था ।"-1

1· आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन - डॉ0 वी·पी· वर्मा - पृ0 45

"आर्य समाज" हिन्दू धर्म के उत्थान तथा प्रचार व प्रसार के लिए विशेष प्रयासरत रहा । यही कारण है कि हिन्दुओं में स्वाजातीय गर्व व स्वाभिमान की भावना का नवीन उन्मेष प्राप्त होता है । "आर्य समाज" द्वारा एकेश्वरवादी मत का प्रचार करते हुए मूर्ति पूजा व तीर्थ यात्रा तक को व्यर्थ समझा और अन्धविश्वास तथा अवतारवाद को मिथ्या माना गया । यह उनका क्रांतिकारी कदम रहा । "आर्य समाज" संस्था ने जाति-पाँति के भेदभाव को समाज से दूर करने का प्रयत्न किया तथा मानवतावादी विचारों का प्रसार किया गया । यह संस्था समस्त मानव जाति के भौतिक सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति हेतु प्रयासरत रही राम स्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में "इन तीनों मुख्य समाजों (ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज व आर्य समाज) की कई साझी विशेषताएं परिलक्षित होती है । ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक है, आराधना की सामूहिक शैली पर बल देते हैं । हिन्दू समाज के दो पिछड़े समूहों नारी और शूद्र को शेष उच्च वर्गीय पुरूषों के साथ समानता का दरजा देते हैं । उपनिषद् और गीता इनके चिन्तन के केन्द्र में हैं । संगठन का ढांचा ये ईसाई चर्च का स्वीकार करते हैं । भारतीय हिन्दू विचारधारा और पाश्चात्य् ईसाई संगठन का सामन्जस्य, यह इनके आन्दोलन का मूल मंत्र है । अध्यात्म को पुनर्जागरण पहले लोक सेवा से जोड़ता है और फिर लोकसेवा क्रमशः राष्ट्रीय भावना से ।"-1

थियोसॉफिकल सोसायटी

थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना ब्लेवट्स्की और ओल्फाट महोदय द्वारा सन् 1875 ई0 में किया गया । इस संस्था में सन् 1889 ई0 में एनी बेसेंट ने सदस्या के रूप में प्रवेश किया, तदनन्तर वे अपने विशिष्ट कार्यों व निरपेक्ष समर्पित सेवा के कारण इस संस्था की अध्यक्षा बनी । आधुनिक हिन्दू धार्मिक पुनरूत्थान में उनकी भूमिका अति महत्वपूर्ण रही । यद्यपि आर्य समाज

---

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - डॉ0 राम स्वरूप चतुर्वेदी - पृ0 95

तथा स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म और आर्य संस्कृति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था, किन्तु अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों का इस पर इतना विश्वास नहीं होता था । जब इन विदेशी लोगों ने हिन्दू धर्म का गुणगान किया तो पढ़े लिखे व्यक्ति पादरियों के बहकावे में आने से बचे और हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ । मिसेज एनी बेसेंट ने इस संस्था की प्रमुख कार्यकर्त्री के रूप में भारत के सामाजिक और राष्ट्रीय जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की ।

हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के अतिरिक्त इस संस्था ने जातिवाद की भर्त्सना करते हुए मानवतावादी भावना का प्रचार प्रसार किया । मानव के विवेक को प्रमुखता प्रदान करते हुए उसके चारित्रिक उत्थान पर बल दिया समाज में व्याप्त कठोर रूढ़ियों के अंधकार को बुद्विवाद के प्रकाश से दूर करने का महत् प्रयास किया तथा बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसी प्रथाओं को समाज से दूर करने के लिए विशिष्ट रूप से योगदान प्रदान किया । यह संस्था गांधी जी के विचारों से पूर्णतः सहमत थी । डॉ० लक्ष्मी कान्त वर्मा के शब्दों में– "एक ओर गांधी जी का सर्वधर्म समभाव था और दूसरी ओर थियोसॉफिस्टों का धार्मिक आन्दोलन था जिसमें एक ईश्वर एक निष्ठा, को विभिन्न धर्मो में देखने का प्रयास किया गया था । एनी बेसेन्ट का यह नया आन्दोलन राष्ट्रीय-आन्दोलन से इतना मिला जुला था कि इन दोनों का एक विचित्र समन्वय सा देखने में आता है ।"-1

समग्रतः भारतीय जनमानस को अज्ञानान्धकार से बाहर निकाल कर बौद्दिक चेतना व नवीन जागरूकता प्रदान करने के क्षेत्र में थियोसॉफिकल सोसायटी का विशिष्ट योगदान रहा है ।

स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन

विवेकानन्द रामकृष्ण के त्यागी, वैरागी व भक्तिपूर्ण जीवन से प्रभावित होकर समस्त भारतीयों तथा हिन्दू धर्म के विकास व उन्नति हेतु

1· नयी कविता के प्रतिमान - डॉ0 लक्ष्मीकान्त वर्मा, पृ0-8

सन्नद हुए । उन्होनें विदेशों में हिन्दू धर्म की कीर्ति को प्रसारित करके भारतीयों के सोये हुए आत्मगौरव को जागृत किया । बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द में विवेकानन्द जी ने मानवतावादी तथा लोकोपयोगी धर्म की स्थापना की ।

रामकृष्ण मिशन की स्थापना सन् 1896 ई0 में स्वामी विवेकानन्द जी ने किया । इस मिशन के द्वारा उन्होनें भारत के धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जागरण में विशिष्ट योगदान दिया । धर्म के क्षेत्र में विवेकानन्द जी ने परम्परावादी ब्राम्हणों के पुरातन अधिकारवाद का खंडन करते हुए समस्त मानव जाति के आध्यात्मिक समता के आदर्श का पक्ष पोषण किया । उन्होनें अश्पृश्यता की घोर भर्त्सना की तथा कर्त्तव्य को महता दी । आर्य समाज की ही भांति उनके धार्मिक विचार वेदान्तों पर आधारित थे किन्तु ये विचार आधुनिक बौदिक तथा यथार्थपरक थे जो कि युगानुकूल, सामाजिक हितों के अनुरूप अभिव्यक्त हुए । "वेदान्त के जिन सब तत्वों को पारमार्थिक बताकर व्यावहारिक जगत में उनका प्रयोग करने में प्राचीन भारत असमर्थ हुआ था तथा मानवात्मा की मंगल महिमा पर जन्मगत् अपवित्रता का आरोप कर जिस गम्भीर अधःपतन का कारण उपस्थित किया गया था, उसी कमी की पूर्ति के लिए स्वामी जी ने समाज के हित की दृष्टि से वेदान्त के तत्वों का कार्यरूप में प्रयोग करने का परामर्श दिया है । जिस अज्ञानता से भेदबुदि व सामाजिक वैषम्यवाद उत्पन्न हुआ है, उसे दूर करने के लिए उन्होनें नव्य भारत से कहा– "वेदान्त के सब महान तत्व केवल अरण्यों या पर्वत की गुफाओं में सीमित न रहे वरन् न्यायालयों में, उपासनागृहों में, गरीबों की कुटियों में, साधारण व्यक्तियों के घर में, छात्रों का पाठशाला में---सर्वत्र ये तत्व आलोकित तथा कार्यरूप में परिणत् होगें ।"-1

विवेकानन्द जी ने हिन्दुत्व के पुनजार्गरण व आध्यात्मिक विचारों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलनों को विशिष्ट गति व नवीन दिशा की ओर उन्मुख

1· विवेकानन्द चरित - सत्येन्द्र नाथ मजूमदार, पृ0 338

किया । वे समाज में नवयुवकों में आत्मशक्ति जाग्रत करने के लिए प्रयत्नशील रहे ताकि वे अपने आत्मशक्ति व शौर्य से भारत को स्वतन्त्र करा सके । स्वामी जी की राष्ट्रभक्ति एवं देशप्रेम ने सोये हुए भारतीय नवयुवकों की राष्ट्रीय भावना को झकझोर दिया, परिणामतः ये सिंहनाद करते हुए देश को स्वतन्त्र कराना ही अपना मुख्य धर्म तथा कर्म समझने लगे । भारतीय युवकों में राष्ट्रीयता जाग्रत कर उन्हें बौद्धिक दृष्टिकोण से उन्नत करने का श्रेय स्वामी विवेकानन्द को ही है । एक बौद्धिक प्रणेता के रूप में, भारतीय इतिहास में जो स्थान स्वामी जी को प्राप्त है वही स्थान रूस में लेनिन, फ्रास में रूसो एवं मांटेस्क्यू को प्राप्त है । परन्तु इनमें मौलिक भेद सिर्फ इतना ही है कि इनका यह कार्य धर्म एवं नैतिकता पर पूर्णतः आधारित है जो विश्व के दार्शनिकों एवं बौद्धिक प्रणेताओं के समक्ष एक आदर्श उदाहरण है ।

2· राजनीतिक जागरण

नवजागरण आन्दोलनों द्वारा जहां सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र व्याप्त कुप्रथाओं व मिथ्याडम्बरों का उन्मूलन करते हुए मानवतावादी सिद्धान्तों की स्थापना हुई वहीं भारतीय जन-मानस में स्वाभिमान की भावना भी जाग्रत हुई । यही भावना उनमें राष्ट्रीय चेतना के रूप में उभरी । आधुनिक भारत का राजनीतिक जागरण 19वीं शती के भारतीय पुनर्जागरण का एक अंग है ।

भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन

भारतीय इतिहास में उन्नीसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध राजनीतिक जागरण के क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी कालखण्ड में प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन का श्री गणेश हुआ । 1857 ई0 में मंगल पाण्डेय के नेतृत्व में प्रथम सैनिक विद्रोह हुआ । यह क्रांति की प्रथम अग्नि थी जो समस्त उत्तर भारत में प्रसारित हुई । मेरठ में सैनिकों द्वारा सरकारी खजाना लूट लिया गया, कुछ अंग्रेजों को मौत के घाट भी उतार दिया गया । दिल्ली पर भी कब्जा किया गया, प्रत्येक जगह हिन्दू-मुस्लिम एकजुट थे । दिल्ली पर बहादुरशाह जफर का शासन स्थापित हो गया ।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई तथा तात्या टोपे ने बुंदेलखंड में अंग्रेजों को अपने रौद्र रूप का दर्शन कराया किन्तु सन् 1858 ई0 में झांसी अंग्रेजों के अधीन हो गयी तथा रानी लक्ष्मी बाई शहीद हुई । उधर तात्या टोपे की सेना भी परास्त हुई । ग्वालियर में विद्रोह के दमन के साथ ही क्रान्ति की यह प्रथम ज्वाला शान्त सी पड़ गई, किन्तु अन्दर ही अन्दर सुलगती रही । अपनी अत्यधिक क्रूर नृशंसता से अंग्रेज सरकार इन विद्रोहों को दबाने में सफल रही किन्तु छिटपुट विद्रोहात्मक गतिविधियां जारी रही ।

1885 ई0 में गठित कांग्रेस भी अंग्रेजों के बंग-भग नीति §1905§ से असन्तुष्ट होकर अंग्रेजों के विरूद्द आन्दोलन में प्रत्यक्ष रूप से सहभागी बनी । इसी समय विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन छिड़ा । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द में प्रारम्भ स्वतन्त्रता आन्दोलन बीसवीं शती के पूर्वार्द में अत्यधिक उग्र रूप धारण करने लगी । "स्वदेशी आन्दोलन" सन् 1911 तक चलता रहा । स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु किये जा रहे आन्दोलनों में यह प्रथम जनान्दोलन था इस आन्दोलन में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया गया । 1906 ई0 में भारत के राष्ट्रीय पितामह कहे जाने वाले नेता दादा भाई नौरोजी ने कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्ष पद से स्वराज की मांग की थी किन्तु यह विशेष सफल न हो सका । क्रांतिकारियों ने 1906 ई0 से क्रान्तिकारी गतिविधियों में अत्यधिक तेजी लाया, अंग्रेजों के विरूद्द हिंसात्मक रूप धारण किया । 1908 ई0 में खुदीराम बसु को मुजफ्फरपुर जिला जज को मारने के षड्यन्त्र के आरोप में फांसी की सजा मिली । भारत को स्वाधीन कराने में इन उग्रवादी नेताओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा । "इंडियन सोसालजिस्ट", "युगान्तर" और सन्ध्या आदि पत्र क्रान्ति के प्रेरक प्रचारक थे । क्रांतिकारियों ने जहां-तहां अंग्रेजों को बम फेंक कर मारा ।----1910-11 ई0 में बंगाल, महाराष्ट्र, मध्य भारत §ग्वालियर§ में क्रान्तिकारी षड्यन्त्र विस्फोट हुए । सरकार को नष्ट करने के लिए देश में वैसी ही गुप्त सभाएं संघटित हुई जैसी इटली और रूस में हुई

थी ।----पंजाब में लाला हरदयाल ने सशस्त्र क्रान्तिकारी दल संगठित किया जो अमेरिका में गदर पार्टी कहलाया ।"-1

सन् 1914 ई0 में प्रथम विश्व युद्व भारतीय सैनिकों व सैन्य सामग्री का अंग्रेजों द्वारा जबरन प्रयोग किया गया इसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय जनमानस की राष्ट्रीय चेतना में तेजी आयी । गरीबी, शोषण और क्रूर उत्पीड़न के बावजूद भारतीय, अंग्रेजी सरकार की पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए जी-जान से एकजुट हुए । 1919 ई0 में प्रथम विश्व युद्व समाप्त हुआ । साथ ही भारतीयों और राष्ट्रीय नेताओं का मोह भंग भी हुआ । प्रथम विश्व युद्व में अंग्रेजों ने भारतीयों को भाग लेने के लिए स्वराज्य देने के साथ-साथ अनेकों सुविधाओं को देने का प्रलोभन दिया था जो कि युद्व की समाप्ति के साथ समाप्त हो गया । अंग्रेजों ने भारतीयों को इन सबके बदले दमन और उपेक्षा दी । फलतः भारतीयों की उग्रता में तेजी आयी ।

सन् 1919 ई0 में 13 अप्रैल को नववर्ष के दिन अमृतसर में एक सार्वजनिक सभा हुई । यह सभा शान्तिपूर्ण थी फिर भी जनरल डायर ने नृशंसतापूर्ण ढंग से निर्दोष, निहत्थे जनता को गोलियों से भुनवा दिया इस भयंकर नरसंहार में कई हजार भारतीय शहीद हुए । यह हत्याकाण्ड जालियां वाला बाग हत्याकाण्ड कहलायी । इसने भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन की ज्वाला को अत्यधिक विकराल रूप प्रदान किया ।

महात्मा गांधी

भारतीय राजनीति में गांधी युग का प्रारम्भ असहयोग आन्दोलन {1920-22} के साथ ही माना जाता है । जालियां वाला बाग हत्याकाण्ड के बाद लोकमान्य तिलक से मिलकर गांधी जी ने 1 अगस्त 1920 ई0 से असहयोग

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - प्रो0 सुधीन्द्र - पृ0 26

आन्दोलन प्रारम्भ किया । इसके द्वारा सरकारी उपाधियों के त्याग, विधान मंडलों कानून की कचहरियों एव सरकारी शिक्षण सस्थाओं के बहिष्कार तथा सरकारी करों की अदायगी न करने की योजना बनी । इस आन्दोलन को जनसाधरण से काफी समर्थन प्राप्त हुआ । चौरी-चौरा के हिंसाकाण्ड से दुखी होकर गांधी द्वारा 1922 ई0 में असहयोग आन्दोलन समाप्त कर दिया गया तथापि इस आन्दोलन ने वृहत राजनीतिक जागरण किया । 1929 ई0 में गांधी के सहयोग से कांग्रेस ने लाहौर में भारत के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पास किया । 1930 ई0 में नमक सत्याग्रह का आन्दोलन गांधी के नेतृत्व में ही आरम्भ हुआ । 1932 ई0 में गांधी जी ने हरिजनों के भिन्न निर्वाचन के नियम का विरोध करते हुए आमरण अनशन किया । 1942 ई0 में गांधी जी ने जिस महामंत्र से भारत को स्वतन्त्रता की ओर ले गये वह था "अंग्रेजों भारत छोड़ो" आन्दोलन । अन्ततः 1947 ई0 में भारत को स्वतन्त्रता के स्वर्णिम दिवस के दर्शन प्राप्त हो ही गये ।

महात्मा गांधी का महत्व राजनीतिक क्षेत्र में नवीन युग प्रर्वतक का तो है ही साथ ही सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में उनका अनुपम योगदान रहा है । गांधी ने अहिंसा को अपना अस्त्र बनाकर राजनीति में प्रवेश किया तथा समाज को मानवतावादी आदर्शो की ओर उन्मुख किया । वे समाज में निम्न स्थिति में जी रहे मानव समाज के उत्थान हेतु कटिबद्ध रहे तथा भारत के प्रमुख अंग कृषकों के सम्पूर्ण विकास हेतु कुटीर उद्योगों के विकास को महत्ता प्रदान की । गांधीवाद भी वेदान्त दर्शन पर आधारित है, इसमें शाश्वत् सत्य और ज्ञान पर आधारित मूल्यों को सर्वोपरि स्थान दिया गया । गांधीवादी मार्ग सत्याग्रह का मार्ग है । गांधी जी पाश्चात्य् सभ्यता के विरोधी थे तथा स्वदेशी भावना के पक्ष पोषक थे । ग्राम उद्योगों व खादी उद्योग का विकास उनके स्वदेश प्रेम का द्योतक है । गांधीवाद केवल राजनीतिक सिद्वान्त नहीं है, वह एक सन्देश है । यह मानवतावाद का समर्थक

सिद्धान्त है जिसमें हिंसा का नहीं अपितु अहिंसा को महत्ता दी गयी है । "नैतिक उन्नति तथा आत्मशुद्धि के लिए सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि के चारित्रिक गुणों के ग्रहण पर भी बल देते हैं । उनकी दृष्टि सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति की ओर भी गई थी । सामाजिक क्षेत्र में अछूतोद्धार, मद्यनिषेध तथा आर्थिक क्षेत्र मे ग्राम सुधार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कुटीर उद्योग की उन्नति आदि उनकी कार्य योजनायें थी । महात्मा गाधी द्वारा निरूपित इन राष्ट्रीय, सांस्कृतिक एवं नैतिक उन्नति के विभिन्न कार्यक्रमों का प्रभाव तत्कालीन चेतना पर विशेष रूप से पड़ता है ।"-1

गाधीवादी विचारधारा समाज के बहुमुखी विकास का मार्गदर्शक कहा जा सकता है । देवी प्रसाद गुप्त जी ने गांधी जी के व्यक्तित्व और विचार दर्शन के बारे में लिखा है-"गांधीवाद के दार्शनिक आधार है सत्य, अहिंसा, आस्तिकता, नीतिमूलक धार्मिक आचरण, सामाजिक दृष्टि से सेवाभाव और सुधारवाद (जिसके अन्तर्गत अछूत, अस्पृश्य जातियों का उद्धार सम्मिलित है) आर्थिक दृष्टि से सर्वोदय और समान वितरण और राजनीतिक दृष्टि से रामराज्य के आदर्शों को साकार करना गांधीवादी विचारधारा की प्रमुख विशेषताए है ।"-2 गांधी जी के आदर्शों ने सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक सभी क्षेत्रों मे प्रभाव डाला । इन क्षेत्रों में नवीन विचारधारा का उन्मेष हुआ जो भारतीय जन समाज को उच्चतम् लक्ष्य तक पहुंचाने में सक्षम थी ।

समग्रतः गांधी जी के आदर्शो, उनकी विचारधारा तथा कार्यो का आधुनिक भारतीय समाज के उन्नयन व उत्कर्ष में विशिष्ट योगदान रहा है । रूढ़ियों से परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़े भारत को आजादी के स्वच्छ वायु

1· आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - डाॅ0 मालती सिंह, पृ0 60

2· आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य - द्वेवी प्रसाद गुप्त, पृ0 167

में सांस लेने का अधिकार प्रदान कराने में भी गांधी जी की भूमिका महत्वपूर्ण है भारत में नवीन युग लाने वाले युगान्तकारी गांधी विश्व के युगान्तकारी नायकों यथा लेनिन, मार्क्स आदि महापुरुषों के समतुल्य वन्दनीय है ।

३· नवीन चेतना

भारतीय जनमानस पर नवजागरण आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों का व्यापक प्रभाव पड़ा । इसके अतिरिक्त पाश्चात्य शिक्षा व वैज्ञानिकता के प्रवेश ने भी भारतीय सुषुप्त आत्मा को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में इन सबके संघटित प्रभाव से भारतीय जनमानस में नवीन चेतना का समावेश हुआ जिन्हें इन रूपों में रेखांकित किया जा सकता है -

आदर्शवाद

आदर्शवादी दृष्टिकोण के विकास में सांस्कृतिक नवजागरण आन्दोलनों की प्रमुख भूमिका दृष्टिगत होती है । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध व बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में इन आन्दोलनों ने एक तरफ जहां समाज में व्याप्त विभिन्न रूढ़ियों व मिथ्याडम्बरों का विखंडन करते हुए उन्हें समाज से दूर करने का महत्वपूर्ण कार्य किया वहीं रचनात्मक रूप से सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा राष्ट्रीय आदर्शों की स्थापना की । ये आदर्श समाज, धर्म तथा राष्ट्र के उन्नायक रूप में सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, समाज-सेवा, मानव प्रेम तथा देशप्रेम तथा स्वदेश हेतु बलिदान की भावना के आदर्श के रूप में प्रस्फुटित व विकसित हुए । आदर्शवादी दृष्टिकोण के विकास में गांधी के योगदान की विशिष्ट स्थान है । सत्य, अहिंसा व मानव-प्रेम तथा स्वदेश प्रेम की भावना को मूल रूप में लेकर चलने वाले महान आत्मा के रूप में इन्होने भारतीय जनमानस को विशेष रूप से प्रभावित किया ।

मानवतावाद

उन्नीसवी शती के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के नवजागरण आन्दोलनों के परिणामस्वरूप भारतीय जनमानस में नवीन मानवतावादी चेतना का संचार हुआ । मानवतावादी विचारधारा समस्त मानवों को सम्भाव से महत्ता प्रदान करती है । वह मानव को मानव होने के कारण महत्ता देती है न कि उनके वर्ण और जाति के कारण इसके द्वारा साधारण तथा असाधारण, उच्च तथा निम्न का भेद मिटाकर केवल मानव मूल्यों की स्थापना की गई ।"-1 इस कालावधि में विद्यमान सम्पूर्ण विचारधाराओं का अन्तिम तथा विशिष्ट उद्देश्य मानवतावाद का अभ्युदय ही रहा । ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, थियोसॉफिकल सोसायटी आदि संस्थाओं व गांधीवादी विचारधारा में मानवतावादी सिद्धान्तों को ही विशिष्ट महत्ता प्रदान की । इसी कारण इस समय समस्त मानव जाति को बिना भेदभाव के समान अधिकार प्रदान करते हुए समभाव से उत्थान का अवसर प्रदान किया जाने लगा गांधी जी ने छूत-अछूत, उच्च-नीच और जाति-पाँति के भेदभाव को मिटाने के लिए अछूतोद्धार सम्बन्धी आन्दोलन चलाकर मानवतावादी आदर्शों के स्थापना का महत् प्रयत्न किया ।

मानवतावादी दृष्टिकोण नवीन नहीं है अपितु युग विशेष के अनुरूप इसका स्वरूप परिवर्तित होता रहता है । प्राचीन समय में जो भाग्यवाद व अध्यात्मवाद पर केन्द्रित रहा वह मानवीय समता, मानव मूल्यों तथा यथार्थपरक हो गया । आज का मानवतावाद प्राचीन मानवतावाद का विकास होते हुए भी भिन्न है । आधुनिक युग में मानवतावाद मानव-गौरव की प्रतिस्थापना से जुड़ गयी । मानव को सर्वोपरि मानते हुए उसके कर्म व चरित्र की महत्ता स्थापित हुई ।

1· द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य - डॉ0 रामसकल राय शर्मा, पृ0 397

मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप युगों से उपेक्षित नारी वर्ग के महत्ता की स्थापना हुई, पुरूषों के समकक्ष अधिकारों की प्राप्ति हुई । नारी के स्वत्व स्वाभिमान व अहं की पुर्नस्थापना हुई । नारी को घर के चहारदिवारी के बाहर कदम रखने में इसी चेतना ने योगदान दिया । मानवतावादी चेतना के प्रभाव स्वरूप समाज के अशपृश्य व निम्न वर्गीय मानव को जाति व वर्णभेद के रूढ़ियों को तोड़ते हुए, केवल मानव होने के कारण महत्ता मिली । सभी मानव के समान उन्हें भी विकास का अवसर मिला तथा समाज में उचित स्थान मिलने लगा ।

देशाभिमान

पराधीन भारत में गुलामी के जंजीरों में नियतिवाद के चंगुल में जकड़ी, हताश-निराश भारतीय जनमानस में नवजागरण आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों ने जिस विशिष्ट चेतना का संचार किया वह थी भारतीय जनमानस में देशाभिमान की भावना । राजनीतिक चेतना के फलस्वरूप स्वदेश प्रेम की लहर तो आयी ही साथ ही राष्ट्रीय एकता और सर्वतोन्मुखी जागरण की चेतना भी आयी। राष्ट्रीय भावना तथा देशभक्ति की भावना का संचार जन-जन में होने लगा । वर्ण भेद, जाति भेद, ऊंच-नीच तथा नारी-पुरूष, बाल-वृद्ध सभी के अन्तर को मिटाकर, भारतीय जनसमाज स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु, सम्भाव से एकजुट होकर, सन्नद्ध हो गयी ।

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में भारतीय जनमानस में राष्ट्रीय चेतना का विकास विशिष्ट रूप से हुआ । इस अवधि में लगभग सम्पूर्ण जनता ही स्वतन्त्रता के आन्दोलन में कूद पड़ी थी । "यह युग राष्ट्रीय चेतना के विकास की दृष्टि से पिछली कई शताब्दियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण कहा जा सकता है । इसी काल में भारत छोड़ो आंदोलन हुआ और जनक्रांति के फलस्वरूप भारतवर्ष को कई सौ वर्षो की खोई हुई स्वतन्त्रता प्राप्त हुई ।"-1 इसके पीछे नवजागरण व राजनीतिक जागरण का विशिष्ट योगदान रहा है । इन आन्दोलनों ने भारतीय जनमानस में स्वदेश के प्रति नवीन चेतना जाग्रत किया ।

---

1 हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, भाग-14, पृ0 35

कर्मवाद

भारतीय जनसमाज की आत्मा जो सांसारिक नश्वरता व भाग्यवादिता के व्यामोह में ग्रसित हो निष्क्रिय सी पड़ गयी थी, उसे कर्मवादी मंत्र से जगाने का कार्य सांस्कृतिक नवजागरण आन्दोलनों द्वारा किया गया । इनके कर्मवादी सिद्धान्त देशसेवा, समाज सेवा तथा मानव सेवा के कार्य को महत्ता प्रदान करके नवजागरण आन्दोलनों के द्वारा मानव को निष्क्रियता तथा नियतिवाद से बाहर निकाल कर कर्म की महत्ता समझायी गयी । गांधी ने शरीरश्रम की महत्ता की स्थापना करते हुए समाज को कर्म की प्रेरणा दी । तिलक ने "गीतारहस्य" द्वारा कर्मवादी चेतना का प्रचार प्रसार किया । "भगवद्गीता" में कृष्ण ने जिस कर्मवादी सिद्धान्त की स्थापना की थी उन्हें आधुनिक युगानुकूल पुनः प्रतिस्थापित किया गया ।

आधुनिक काल की महत्वपूर्ण विशिष्टता यह भी रही कि मानव की महत्ता उनके कर्मों के आधार पर स्थापित हुई । भारतीय जनमानस की सबसे बड़ी कमजोरी थी, अध्यात्म व धर्म के नाम पर तथा भाग्य के नाम पर उनमें व्याप्त अकर्मण्यता । पुनर्जागरण आन्दोलनों द्वारा उनकी संकीर्णता को दूर करने तथा उन्हें श्रम की ओर उन्मुख करने का महत् कार्य सम्पन्न किया गया ।

बुद्धिवाद

बुद्धिवादी चेतना के प्रसार में नवजागरण आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों के साथ-साथ पाश्चात्य् शिक्षा व वैज्ञानिकता के प्रवेश का प्रमुख योगदान रहा । बुद्धिवादी चेतना के फलस्वरूप परम्परागत् रूढ़ परम्पराओं तथा धार्मिक मिथ्याडम्बरों की नवीन बौद्धिक दृष्टिकोण से व्याख्या की गई । धार्मिक क्षेत्र में जिसे ईश्वर का आदेश समझकर मानव स्वीकार कर लेता था, उसे अब तर्क और सत्यता की कसौटी पर कसकर, बौद्धिक आधार प्रदान करने का साहस भारतीय जनमानस को प्राप्त हुआ । परिणामतः धर्म के नाम पर चले आ रहे अन्धविश्वासों व कर्मकाण्डो की नवीन व्याख्या की गई, समाज कल्याण व उत्थान के लिए अहितकर मानते हुए उसका खंडन किया गया । प्रो0 सुधीन्द्र के शब्दों में, "सांस्कृतिक जीवन के अनुशीलन

में बुद्धिवाद की प्रवृत्ति सबसे प्रमुख दिखाई देती है । अन्ध श्रद्धा और मूढ़ विश्वासों ने ही रूढ़ियों का अविष्कार किया, और जीवन को जड़ता से बांध दिया था । ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि युग की बौद्धिक चेतना के ही प्रतीक थे । इनके द्वारा जनता को बुद्धिवादी दृष्टि प्राप्त हुई । गतानुगतिकता पर निर्मम प्रहार हुआ और गति और प्रगति का मार्ग खुला । सत्यान्वेषण की वृत्ति प्रवृत्ति बन गयी । व्यक्ति में ज्ञान की प्रेरणा से सत् के अन्वेषण और जिज्ञासा की वृत्ति आती है ।-----रवीन्द्र और गांधी जी ने अपने-अपने बौद्धिक अध्यात्म का जो सन्देश भारतीय समाज को दिया वह पूर्णतया कविता में भी प्रतिभाषित हुआ है ।"-1

आधुनिक युग में बौद्धिक चेतना के उन्मेष से सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त कुरीतियों, मिथ्याडम्बरों व अन्धविश्वासों के प्रति नवीन यथार्थपरक दृष्टिकोण का विकास हुआ, साथ ही नियतिवाद के कारण सुषुप्त भारतीय जनमानस में अपने राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्व के प्रति जागरूकता भी बढ़ी । विधि का विधान मानकर स्वीकार किये गये परतन्त्रता की बेड़ियों को तोड़ने के लिए, भारतीय जनमानस की अकुलाहट बौद्धिकता की ही देन थी ।

4· नवीन चेतना और पौराणिक पात्र

नवजागरण व राष्ट्रीय आन्दोलनों के प्रभाव स्वरूप भारतीय जनमानस में जिस नवीन चेतना का संचार हुआ उससे हिन्दी साहित्य भी विशेष रूप से प्रभावित हुआ । भारतीय जनमानस में व्याप्त नवीन भावधाराओं ने साहित्य को नया मोड़ प्रदान किया । नवीन चेतनाओं से युक्त हिन्दी साहित्य का यह कालावधि आधुनिक काल संज्ञा से विभूषित किया गया ।

1· हिन्दी कविता में युगान्तर - प्रो0 सुधीन्द्र, पृ0 50-51

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का शुभारम्भ 1850 ई0 से माना जाता है । यह काल भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होता है । हिन्दी साहित्य में यह काल कई दृष्टिकोण से विशिष्ट रहा है । गद्य का विकास इस काल की सर्वोत्तम उपलब्धि रही । प्रेस की स्थापना के कारण साहित्य जन-जन के लिए सहज प्राप्य होने लगी । प्रेस की स्थापना सर्वप्रथम 1837 ई0 में लिथोग्रोफिक नाम से हुआ । तत्पश्चात् कई प्रेस स्थापित हुए । इसके कारण साहित्य में गद्य की कई विधाओं का विकास कर, उनके माध्यम् से जनचेतना को और भी प्रचार-प्रसार प्राप्त हुआ । फलतः मध्यकाल में सामन्त वर्गो के विलास हेतु समर्पित साहित्य जनमानस को नव जागृति प्रदान करने के लिए रचना का विषय बनी । सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त उन तत्वों का विखडन भी आधुनिक साहित्य की आवश्यकता थी, जिनका आधुनिक युगीन परिप्रेक्ष्य में कोई उपयोगिता तथा सार्थक्य नही था साहित्य में समाजोपयोगी मानवतावादी, आदर्शवादी तथा बौद्दिक चेतना के साथ-साथ राष्ट्रीय जागरण की चेतना का भी प्रतिफलन हुआ । परम्परागत् रूढ़ियों , मिथ्याडम्बरों अन्धविश्वासों व कुरीतियों के विखंडन हेतु तथा नवीन, सार्थक तथा युगीन सन्दर्भो के अनुकूल साहित्य की रचना हुई ।

नवचेतना के उन्मेष के इस युग में काव्य साहित्य में पौराणिक कथाओं को मुक्तक रचना के रूप में कई कवियों ने अपनी रचना का विषय बनाया । किन्तु ये रचनायें रीतिकालीन प्रवृत्तियों के सन्निकट होने के कारण उनसे भी प्रभावित थी । "पौराणिक देवी-देवताओं तथा उनसे सम्बद्द कथाओं का उपयोग उसी रूप में होता रहा है, जैसा रीतिकाल के काव्य साहित्य में प्राप्त है स्वंय भारतेन्दु की रचनाओं में इस प्रकार के परम्परागत् काव्य प्रवृत्तियों का पोषण सबसे अधिक हुआ है । इसके अतिरिक्त इनके सामायिक अन्य कवि श्री प्रेमघन, शंकर, राधाकृष्णदास की रचनाओं में विशेष रूप से तथा अन्य अनेक कवियों में, गौण रूप में परम्पराओं का परिपालन होता रहा है ।"-1

1· आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - डाॅ0 मालती सिंह - पृ0 26-27

पौराणिक प्रबन्ध रचनाओं में नवीन चेतना का प्रतिफलन बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध से प्रारम्भ होता है । नवजागरण आन्दोलनों व राष्ट्रीय आन्दोलनों ने इस काल के कवियों को विशेष रूप से प्रभावित किया । फलतः पौराणिक चरित्रों को सामायिक उद्देश्य तथा नवीन चेतना के अनुरूप ही प्रबन्ध रचनाओं में वर्ण्य विषय बनाया गया । 19वीं शती के उतरार्द्ध में आर्विभूत नवचेतना का प्रभाव बीसवी शती के प्रबन्ध रचनाओं की मुख्य विशिष्टता बन गयी । इनमें स्वदेश प्रेम, बौद्धिकता, मानवतावाद व कर्मवाद आदि नवीन चेतनाओं का स्वर प्रमुख हो गया । इनके द्वारा स्वतन्त्रता की वाणी को अभिव्यक्ति मिली । नैतिक मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप देव-दानव, ऊंच-नीच व नारी-पुरूष का अन्तर बहुत कुछ कम हुआ ।

इस परिवर्तित नवीन चेतना के सन्दर्भ में तथा पौराणिक कथाओं द्वारा अभिव्यक्त होने वाले राष्ट्रीय प्रेम की व्याख्या करते हुए "मर्यादा" के सम्पादकीय लेख में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है, "भगवद् भक्तों की बड़ाई चाहे जितनी भी की जाये वह देश भक्तों की योग्यता कदापि नहीं प्राप्त कर सकते हैं । भगवद् भक्त अपने देश बन्धुओं को सदुपदेश करते हैं उन्हें सदाचार से रहने के लिए जप-तप करते है और ईश्वर भक्ति के द्वारा अपने देह का उद्वार करने का उपदेश देते हैं ।----परन्तु वे इष्टदेव से अपने देश-बन्धुओं को, आप ही मिला नहीं देते हैं । वह केवल ईशभक्ति का मार्ग अंगुली से दिखा देते हैं, पर इससे अधिक वह कुछ नहीं करते ।----किन्तु देशभक्तों की बात इससे भिन्न है ।---राष्ट्रदेव की अनन्य भाव से सक्रिय सेवा करके देह की मुक्ति अर्थात् स्वतन्त्रता की प्राप्ति कर लीजिए ऐसा सर्वांग सुन्दर उपदेश देशभक्त अपने बन्धुओं को देकर चुप नहीं बैठते वरन् इस उपदेश का अतिक्रमण करके अपने धैर्यहीन, शीलहीन बन्धुओं के लिए लड़कर उनकी देह मुक्ति {स्वतन्त्रता की} अपने पराक्रम से करा देते हैं आज तक ऐसा एक भी भगवद् भक्त नहीं हुआ जिसने अपनी भक्ति के जोर से अपने सर्वराष्ट्र को मोक्ष पद की प्राप्ति कराई हो । किन्तु आज तक इस भूतल पर ऐसे

सैकड़ो देशभक्त उत्पन्न हुए हैं जिन्होनें अपनी आयु में अपने स्वदेश के बन्धुओं के पैरों की दास्यवृत्ति की बेड़ियों को अपने पराक्रम और धैर्य से तोड़कर उनके बदले स्वतन्त्रता के तोड़े उनको पहनाये हैं ।"-1 ये पक्तिया नवीन चेतना की पुष्टि करती है, जिनके द्वारा परम्परागत् धर्म के स्थान पर सामायिक युगानुकूल कर्म को महत्ता प्राप्त हुई ।

1· पौराणिक कथाओं के प्रति झुकाव

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध हिन्दी काव्य के क्षेत्र में पौराणिक कथाओं के प्रति विशेष झुकाव दृष्टिगत् होता है । पौराणिक कथाओं पर आधारित लघु और वृहत् प्रबन्ध रचनाओं की बहुलता इस तथ्य की पुष्टि करता है । किन्तु इस काल में पौराणिक कथाधृत काव्यों का सृजन पौराणिक कथा वर्णन के उद्देश्य से न होकर सामायिक उद्देश्य पूर्ति हेतु, नवीन चेतनाओं की सम्पूर्ति हेतु किया गया । पौराणिक कथाओं के सन्निवेश का दूसरा कारण राष्ट्रीयता की भावना भी रही । पौराणिक कथाओं ने पुरातन काल से भारतीय जनमानस को अपने धार्मिकता व दार्शनिकता से तो प्रभावित किया ही है साथ ही कथात्मक मनोरंजन के कारण भी प्रभावी रहा । अतः भारतीय जन समाज में इन कथाओं के प्रति अगाध श्रद्धा भक्ति प्राप्त होती है । इसी कारण इस काल के कवियों ने नवीन चेतना के प्रसार हेतु पौराणिक पात्रों को सर्वाधिक उपयुक्त माना । पुराणों व महाभारत के चरित्रों द्वारा जहां देशभक्ति की प्रेरणा प्रदान की गई वहीं आदर्शवादी मानवतावादी कर्मवादी तथा बौद्धिक चेतना भी प्रदान की गई । ये आदर्श पौराणिक चरित्र जन मानस को गहराई से प्रभावित करने में समर्थ थे ।

हिन्दी काव्य जगत में पौराणिक कथाओं के प्रति झुकाव महावीर प्रसाद जी की प्रेरणा से भी तत्कालीन कवियों में जाग्रत हुआ । उन्होनें

1· आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा - डॉ0 मालती सिंह से साभार

सर्वप्रथम कवियों को आदर्श पौराणिक चरित्रों को आधार बनाकर काव्य रचना के प्रणयन की प्रेरणा प्रदान की । महावीर प्रसाद के शब्दों में, "भारत में अनन्त आदर्श नरेश, देशभक्त, वीर शिरोमणि और महात्मा हो गये हैं । हिन्दी के सुकवि यदि उन पर काव्य रचना करें तो बहुत लाभ हो । पलाशी का युद्व, वृत्र संहार, मेघनाद वध और यशवन्तराव महाकाव्य की बराबरी का एक भी काव्य हिन्दी में नहीं है । वर्तमान कवियों को इस तरह के काव्य लिखकर हिन्दी की श्रीवृद्वि करनी चाहिए ।"-1 द्विवेदी ने तत्कालीन कवियों को दिशा-निर्देश देते हुए सरस्वती में जो लिखा था वह तत्कालीन काव्य के विषय चयन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है । महावीर प्रसाद की भावयुक्त प्रेरणा से अनेकों कवियों का झुकाव पौराणिक कथाओं की तरफ हुआ और उन्होनें इसे अपने काव्य का विषय बनाया ।

आधुनिक युग में पौराणिक कथाओं के प्रति झुकाव का एक विशिष्ट कारण खड़ी बोली का विकास भी रहा । कथाधृत भाषा का विकास सुगम व सहज होता है । अतः भाषा परिमार्जन का उद्देश्य भी पौराणिक कथाओं के प्रति झुकाव का कारण बना । इसी सन्दर्भ में सरस्वती पत्रिका में मैथिलीशरण गुप्त ने पौराणिक चरित्रों के साहित्यिक तथा सामाजिक विशिष्टता के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, "आदर्श-चरित पढ़ने की ओर पाठकों की विशेष रुचि रहती है । उसमें एक कौतुहलपूर्ण आग्रह सा रहता है । कविता में उसका वर्णन और भी मधुर हो जाता है । इस देश में असंख्य आदर्श जन हो गये हैं । उनकी धार्मिकता, धीरता, वीरता, उदारता, परोपकारिता और न्यायप्रियता एवं शील और सौजन्य आदि गुणों से इतिहास आलोकित हो रहा है ।"-2 गुप्त जी का यह सन्देश पौराणिक कथाओं की ओर झुकाव का ही द्योतक है । स्वयं गुप्त जी का झुकाव पौराणिक कथाओं की ओर,उनकी रचना की ओर सर्वाधिक रहा ।

1· सरस्वती, अक्टूबर 1911 पृ0 470

2· सरस्वती, भाग - 15, पृ0 677

बीसवीं शती का पूर्वार्द्ध में भारतवासियों के सम्मुख स्वतन्त्रता प्राप्ति का उद्देश्य प्रमुख था । इस समय धर्म की संकीर्णता मिटकर व्यापक नवीन विचारधारा से समन्वित आदर्श मानव धर्म या युगधर्म के रूप में परिवर्तित हुई । इस समय राम और कृष्ण जन-जन के आराध्य तथा श्रद्धा भक्ति के प्रमुख केन्द्र रहे हैं । उनके चरित्रगान तथा आदर्श प्रस्तुति से भारतीय जनमानस को सहज रूप से प्रभावित किया जा सकता था । यही कारण है कि इस समय राम, कृष्ण के चरित्र को मानवीय संवेदना के विकास का माध्यम बनाया गया ।

यह काल नारी उत्थान का काल था । इस समय नारी शिक्षा, नारी के बहुमुखी विकास पर बल दिया गया । नारी से सम्बन्धित संकीर्ण व पुरातन रूढ़ियों के विखंडन की सम्पूर्ण चेष्टा की गई । इसी प्रवृत्ति को जनसामान्य तक सहज रूप से पहुंचाने के लिए तथा उनके द्वारा ग्राह्य बनाने के पौराणिक व महाभारतीय नारी चरित्रों को प्रमुख रूप से चुना गया तथा उनमें आधुनिक नवीन चेतना का आरोपण करते हुए प्रस्तुत किया गया ।

पौराणिक कथाओं के प्रति झुकाव का एक और कारण रहा, नवीन मानवतावादी चेतना का प्रभाव । पौराणिक चरित्र इस चेतना के संवाहक रूप में अधिक उपयुक्त थे । परम्परागत् रूप में उपेक्षित व निम्न माने गये चरित्रों का चयन आधुनिक मानवतावादी चेतना का ही प्रतिफल है । आधुनिक काल में मानव की महत्ता उसके कर्म से आंकी जाने लगी तथा जाति भेद को अस्वीकृत किया गया । इस सन्दर्भ में साहित्य में उन परम्परागत् चरित्रों का उत्थान व परिष्कार हुआ जो उदात्त होते हुए भी उपेक्षित रहे ।

द्विवेदी काल में पौराणिक कथाओं के प्रति झुकाव के पीछे आदर्शवादी चेतना का विशिष्ट महत्व है । द्विवेदी युग आदर्शों का युग था, अतः परम्परागत् अलौकिक चरित्रों का महामानव के रूप में चित्रित किया गया इसके पीछे एक मुख्य कारण यह भी था कि महामानव का उदाहरण इस युग की आवश्यकता थी । राम और कृष्ण जैसे चरित्रों का आदर्श रूप भारतीय जनमानस को गहराई से प्रभावित करने में सक्षम था ।

2· दिव्यता का निषेध

आधुनिक पौराणिक प्रबन्ध रचनाओं की प्रमुख विशिष्टता रही दिव्य चरित्रों का सहज मानवीय रूप में चित्रण । आधुनिक बौद्धिक चेतना के फलस्वरूप जनमानस में तार्किक दृष्टिकोण का विकास हुआ । इसी तार्किकता के कारण पौराणिक दिव्य चरित्रों की पुनर्व्याख्या हुई और उन्हें सहज मानवीय रूप में देखा परखा गया । उन्हें यथार्थ के धरातल पर ही रखा गया । पूर्व की भांति वे अलौकिकता के चकाचौंध से भ्रमित नहीं करते, अति की सीमा का अतिक्रमण नहीं करते, अपितु मानवीय धरातल पर ही जनमानस को अपने उच्च आदर्शो से प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं । पौराणिक चरित्र अब मनुष्य के सुख-दुख के साथ जुड़कर उसके और भी करीब आने लगे । दिव्य ईश्वरीय चरित्र का निषेध कर उन्हें राष्ट्रोद्वारक जनहितकारी, लोकपालक व समाज सेवक के रूप में चरित्रांकित किया गया । इसी सन्दर्भ में अपना मत प्रकट करते हुए डॉ० रामसकल राय शर्मा जी ने लिखा है "नवीन मानव मूल्यों की स्थापना के साथ ही अद्‌भुत या अलौकिकता के प्रति उदासीनता बढ़ रही है जो जमीन के पहुंच के बाहर था, उसके मानवीकरण का प्रयत्न चल रहा था ।"-1

आधुनिक काल में विरचित पौराणिक प्रबन्ध-कृतियों में पौराणिक व महाभारतीय चरित्र पूर्णरूपेण मानवीय तो नहीं है, किन्तु उनकी दिव्यता का निषेध अवश्य हुआ है । राम का चरित्र तुलसी के "रामचरित मानस" में जिस दिव्यता से समन्वित है, वह आधुनिक काल के रामचरित उपाध्याय के रामचरित चिन्तामणि में नहीं दृष्टिगत् होता । इसमें वे आदर्श महामानव तथा मानवीय दुर्बलता संयुक्त दोनों रूप में चित्रित हुए हैं । मैथिलीशरण गुप्त जी के "पंचवटी" व "साकेत" में राम दिव्य चरित्र न होकर आदर्श व उदात्त गुणों से युक्त महामानव है । "कौशल-

---

1· दिवेदी युग का हिन्दी काव्य - डॉ० राम सकल राय शर्मा, पृ० 397

किशोर" "वैदेही-वनवास", "साकेत-संत" व "राम-राज्य" में राम के आदर्श महामानवीय रूप का ही निरूपण हुआ है । "रावण महाकाव्य" व "भूमिजा" में राम में मानवीय दुर्बलता का आरोपण हुआ है । राम की शक्ति-पूजा में राम का चरित्रांकन पराजय की आशंका से ग्रस्त तथा शंकाग्रस्त मानव के रूप में हुआ है । "संशय की एक रात" में वे युद्ध के औचित्य-अनौचित्य के प्रश्न में फंसे आधुनिक युवा के रूप में वर्णित हुए हैं । इसमें राम का चरित्र द्वन्द्वग्रस्त सामान्य मानव तथा किसी सीमा तक दुर्बल मानव का है जो सामान्य मानव के सदृश संशय व चिन्ता से ग्रस्त है ।

३. पुराण कथाओं के नवीन तत्व

परम्परागत् रूप से धार्मिक भावनाओं की संवाहक पौराणिक कथायें आधुनिक काल में सामयिक चेतना की संवाहक बनी । आधुनिक काल के नव-जागरण आन्दोलनों तथा स्वतन्त्रता आन्दोलनों के प्रभाव स्वरूप इस काल के प्रबन्ध रचनाओं में नवीन चेतना दृष्टिगत् होती है । पुराण कथाओं के चरित्रों का सहज मानवीय व बौद्धिक दृष्टिकोण से चरित्रांकन हुआ । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में विज्ञान तथा पाश्चात्य् शिक्षा के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न तार्किक, बौद्धिक एवं यथार्थपरक दृष्टिकोण का भी प्रभाव पौराणिक चरित्रों पर पड़ा । आदर्शवादी चेतना के फलस्वरूप समाज, धर्म और राष्ट्र के उन्नायक सत्य, अहिंसा, सेवा, प्रेम, समाज-सेवा, मानव-प्रेम तथा स्वदेश-प्रेम, स्वजाति व स्वदेश हेतु बलिदान की भावना का समावेश पौराणिक चरित्रों में हुआ । मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप उच्च-निम्न, साधारण-असाधारण का भेद मिटाते हुए अश्पृश्यता तथा अछूतोद्धार की महत् भावनायुक्त चरित्रों को प्रस्तुत किया गया । साथ ही अछूते चरित्रों को काव्य का विषय बनाया गया । स्वदेश प्रेम की चेतना ने पौराणिक चरित्रों में स्वदेश प्रेम, देशभक्ति, स्वदेश पर सर्वस्व न्यौछावर कर देने की भावना तथा स्वजातीय प्रेम की भावना को अभिव्यंजित किया । व्यष्टि की तुलना में समष्टि कल्याण की भावना को महत्ता मिला । कर्मवादी चेतना के प्रभाव ने पौराणिक चरित्रों

के भाग्यवादिता की भावना को दूर करते हुए उन्हें कर्मवादी बनाया । भाग्य को सर्वप्रमुख मानकर उसके सहारे जीवन के उतार-चढ़ाव को जीने वाले चरित्र, अब कर्म को महत्ता देते हुए उसे ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं । बौद्धिकता के प्रभाव ने इन चरित्रों को जीवन के रूढ़ परम्पराओं के यथार्थता को देखने-परखने की मानसिकता प्रदान की ।

नवीन चेतना के प्रभाव स्वरूप— "वर्तमान काव्यों में कृष्ण का नीतिज्ञ रूप ही अधिक स्पृहणीय बना है और बौद्धिकता के प्राबल्य ने कृष्ण के अन्य रूपों की ओर आसक्ति उत्पन्न नहीं की । इसलिए कृष्ण के अलौकिक रूप के दर्शन यहां बहुत कम होते हैं । आस्था की अन्धता के आवरण को हटाकर प्रस्तुत युग में कृष्ण को महान व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया गया जो सुधारात्मक प्रवृत्तियों से प्रभावित होते हुए सुधारक बने रहे ।"-1 नवीन भावधारा के प्रबन्ध रचनाओं में सर्वप्रथम अयोध्या सिंह उपाध्याय की प्रबन्ध रचना "प्रिय-प्रवास" का नाम आता है । इस रचना के राधा और कृष्ण अलौकिकता व दिव्यता से परे आदर्श, देशभक्त, मानवतावादी, कर्मवादी तथा बौद्धिक चेतनायुक्त महामानव के रूप में वर्णित हुए है । "प्रिय-प्रवास के पश्चात कृष्ण कथाधृत रचनाओं में "द्वापर" तथा "कृष्णायन" का नाम आता है । "द्वापर" में गुप्त जी ने पौराणिक चरित्रों में नवीन चेतना का आरोपण किया है ।"द्वापर" में विधृता के चरित्र निरूपण पर तत्कालीन नारी जागरण आन्दोलनों का प्रभाव है । इसमें विधृता द्वारा नारी जागरण का सन्देश वहन किया गया है । इस रचना में गुप्त जी ने कृष्ण व राधा के सहज मानवीय रूप को उभारा गया है । "कृष्णायन" में द्वारिका प्रसाद मिश्र कृष्ण के अलौकिकता के मोह को नहीं त्याग सके है किन्तु इसमें भी कृष्ण को स्वजातीय प्रेम, स्वदेश भक्ति, मानवतावादी आदर्शवादी व कर्मवादी चेतना का आरोपण हुआ है । अन्य पौराणिक चरित्रों की भी युगानुकूल व्यञ्जना हुई है ।

1· मैथिलीशरण गुप्त का काव्य - एल· सुनीता - पृ0 259

रामकथाधृत रचनाओं में नवीन चेतना के संवाहक प्रबन्ध काव्यों में रामचरित उपाध्याय कृत "रामचरित-चिन्तामणि" का प्रमुख स्थान है । इसमें राम के अलौकिकता व दिव्यता का लगभग निषेध सा करते हुए उनके सहज मानवीय रूप की व्यंन्जना हुई है । इस रचना में राम का चरित्रांकन आधुनिक नवचेतना से प्रभावित है । "साकेत" में मैथिलीशरण गुप्त जी ने राम का चरित्र निरूपण धरती को ही स्वर्गीय वैभव प्रदान करने के लिए सन्नद्ध समष्टिवादी आदर्श महामानव के रूप में किया है । गुप्त जी के राम पर गांधी के अहिंसावाद, ग्रामोत्थान तथा मानवतावादी चेतना का प्रभाव है । इस रचना में सीता का चरित्र निरूपण नारी जागरण गांधीवाद से प्रभावित है । अन्य पौराणिक चरित्र भी नवीन चेतना से प्रभावित है । "साकेत" की उर्मिला तथा कैकेयी के माध्यम् से देशप्रेम की भावना की अभिव्यक्ति हुई है । यहां तक की गांधी द्वारा उत्प्रेरित विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को भी प्रस्तुत किया गया है । "साकेत" में उर्मिला कहती है -

गरज उठी वह-नहीं, नहीं पापी का सोना,
यहां न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना ।
सावधान वह अधम धान्य-सा धन मत छूना,
तुम्हें तुम्हारी मातृभूमि ही देगी दूना । - 1

"कौशल-किशोर" में राम का चरित्रांकन गांधीवाद तथा नवीन चेतना से प्रभावित है । आधुनिक युग की चिन्तन-धारा से प्रभावित कवि ने उन्हें राजनीतिक दृष्टिकोण से चरित्रांकित किया है । इस रचना में रावण को साम्राज्यवाद का प्रतीक मानकर तथा राम को साम्राज्यवाद के विनाशक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । "राम के चरित्र को केन्द्र में रखकर आधुनिक कवि न केवल सनातन प्रश्नों का समाधान ही उनके माध्यम से प्रस्तुत करता है अपितु वर्तमान

1· साकेत - द्वादस सर्ग, पृ0- 235

युग की जीवन समस्याओं नूतन अवधारणाओं एवं आन्दोलनों का व्यापक प्रतीकत्व भी उसने राम को समर्पित किया है । आधुनिक युग की मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य में राम के चरित्र का जैसा व्यापक एवं अन्तर्विरोधी मूल्यांकन हुआ है, वैसा किसी अन्य पौराणिक सांस्कृतिक चरित्र का नहीं ।"-1 "कौशल-किशोर" में अन्य चरित्रों का भी युगानुरूप, यथार्थवादी दृष्टिकोण से निरूपण हुआ है । इस काव्य रचना में अहिल्या के परम्परागत् उपेक्षित चरित्र को नवीन बौदिक व तार्किक दृष्टिकोण से व्यंजित किया गया है । स्वयं कवि के शब्दों में "विज्ञान की भाषा में हम कह सकते हैं कि प्राकृतिक क्रियाओं की संचालिका चित्त शक्ति ही देवता है । ऐसे सब देवों में इन्द्र की विघुत की संचालिका शक्ति का महत्व विशेष है ।----काव्य की भाषा में वह वज्रपाणि और बादलों का देवता है । इधर युवती अहिल्या कठोर तपस्वी गौतम की साध्वी पत्नी थी । एक दिन मेघाच्छादित निशा में गौतम् ऋषि निशीथ के समय ब्रह्म मुहुर्त के भ्रम से स्नान हेतु बाहर चले गये तो बिजली ने अपनी प्रभा दिखाई - इन्द्र ने अपना वैभव दिखाया यह देख एकाकिनी बालिका सरल हृदया अहिल्या मे स्वाभाविक ही पति साहचर्य की इच्छा हुई । लौटते समय गौतम ने उसके उद्‌गार सुन लिए । निष्ठुर तपस्वी को अहिल्या के हृदय की यह उच्छृंखलता बहुत बुरी लगी । मुनि ने पत्नी तथा परिस्थिति दोनों को ही दोषी ठहराकर इधर अहिल्या को उधर इन्द्र को शाप दिया।"2 यहां एक तरफ अहिल्या के पाषाणी होने के असम्भावित घटना को नवीन तार्किक यथार्थता मिली, तो राम द्वारा प्रस्तर बनी अहिल्या को नारी बनाने की अलौकिक घटना को सहज, वास्तविक व लौकिक आधार प्रदान किया गया है ।

"उर्मिला" प्रबन्ध कृति में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी ने परम्परागत् रूप से उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को नायिका रूप में निरूपित

1· हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप-विकास - प्रेमचन्द महेश्वरी, पृ0 139

2· कौशल-किशोर - भूमिका में कवि

किया है । इस रचना में उर्मिला का चरित्रांकन आधुनिक नारी जागरण से प्रभावित आदर्शवादी जीव प्रेमी, मानवतावादी रूप में तो हुआ ही है, साथ ही छायावादी भावाभिव्यंजकता तथा संवेदनाव्मकता से भी प्रभावित है । इस रचना में उर्मिला का निरूपण प्रकृति प्रेमी नारी के रूप में भी हुआ है । समग्रतः इस रचना में द्विवेदी युगीन तथा छायावादी दोनों ही काव्य प्रवृत्तियों का प्रभाव है ।

"वैदेही - वनवास" सीता के चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध रचना है । अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जी ने इस रचना में राम और सीता के चरित्र का निरूपण द्विवेदी युगीन चेतना के अनुरूप किया है । कवि ने राम का चरित्राकन आदर्शवादी, लोकाराधक, त्यागी व समष्टिवादी मानव के रूप में तथा सीता का चरित्र निरूपण आदर्शवादी, लोकहितकारी, लोकमत का समर्थन करने वाली मानवतावादी तथा कर्मवादी नारी के रूप में किया है ।

"राम की शक्ति पूजा" में निराला जी ने छायावादी काव्यधारा के प्रभाव स्वरूप सूक्ष्म कथावस्तु के आधार पर राम के प्रश्नाकुल संशययुक्त सामान्य मानवीय रूप का चरित्रांकन किया है ।

आधुनिक युग में कैकेयी के परम्परागत् रूप से उपेक्षित चरित्र के उदार हेतु कैकेयी के चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध रचनाओं का निरूपण हुआ । "कैकेयी" पर आधारित प्रबन्ध कृतियों में केदार नाथ मिश्र 'प्रभात' की "कैकेयी" शेषमणि शर्मा की कैकेयी तथा राधेश्याम द्विवेदी की "कल्याणी-कैकेयी" में कैकेयी के चरित्र का आधुनिक नवीन चेतना से समन्वित मनोवैज्ञानिक व तार्किक दृष्टिकोण से निरूपण हुआ है ।

आधुनिक युग में मानवतावाद व बौदिकता का एक प्रतिफलन इस रूप में हुआ कि रावण, हिरण्यकश्यप, शूर्पणखा जैसे प्रतिपक्षी तथा खलपात्र को सहानुभूतिपूर्वक न केवल काव्य का नायक बनाया गया, बल्कि उन्हें प्रभा मंडित किया है । हरिदयालु सिंह के "रावण" तथा "दैत्यवंश" व रघुवीर

शरण के "भूमिजा" में प्रतिपक्षी चरित्रों की इसी नवीन बौद्िक तथा तार्किक दृष्टिकोण से अभिव्यंजना हुई है । डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त के शब्दों में, "जिन्हें हम दानव कहकर तिरस्कार और उपेक्षा की दृष्टि से देखते आये हैं, वे अनेक मानवीय गुणो और विभूतियों से उत्प्रेत हैं । पौराणिकता के पुष्कल प्रभाव, रूढ़िबद्ध मान्यताओं की अन्धस्वीकृति अवतारवाद की परिकल्पना के व्यामोह एवं तथाकथित धार्मिक प्रतिबद्धता के कारण हमारा दृष्टिकोण अवैज्ञानिक और अमानवीय रहा है । यदि हम निरपेक्ष वैज्ञानिक दृष्टि और आग्रहमुक्त तटस्थ भाव से देव-दानव के संघर्ष के इतिहास का अध्ययन करें तो पायेगें कि इसके दायित्व का कितना प्रतिशत देवों पर है और कितना अदेवों पर ।"-1 इस नवीन चेतना के प्रभावस्वरूप परम्परागत् खल पात्रों के कृत्यों के औचित्य व अनौचित्य की यथार्थपरक आलोचना हुई ।

आधुनिक युग में परम्परागत् रूप से उपेक्षित व निम्न वर्गीय चरित्रों की मौलिक रूप में बौद्िक तथा मानवतावादी दृष्टिकोण से चरित्रांकन हुआ । इन चरित्रों में शबरी व शम्बूक का विशिष्ट स्थान है । "शबरी" के चरित्र पर केन्द्रित रचनाओं में 'शबरी' शीर्षक से ही रत्नचन्द शर्मा, श्री नरेश मेहता, मायादेवी 'मधु', वचनेश व धनंञ्जय अवस्थी की प्रबन्ध-कृतियों का महत्वपूर्ण स्थान है । इन रचनाओं पर आधुनिक युगानुरूप नवीन चेतना, गांधीवादी अछूतोद्वार तथा मानवतावादी चेतना का स्पष्ट प्रभाव है । जगदीश गुप्त जी ने शम्बूक के चरित्र के उन्नयन हेतु "शम्बूक" प्रबन्ध कृति की रचना की ।

5· पौराणिक पात्रों के प्रति परिवर्तित दृष्टि : विकासात्मक परिचय

आधुनिक प्रबन्ध कृतियों में नवजागरण आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों से समुत्पन्न नवीन चेतना ने पौराणिक पात्रों के प्रति नवीन

1· हिन्दी महाकाव्य : सिद्वान्त और मूल्यांकन - देवी प्रसाद गुप्त, पृ0 459

परिवर्तित दृष्टि का विकास किया । परम्परागत् चरित्रों को आधुनिक काल में एक ओर जहां युगानुरूप अभिव्यंजना प्राप्त हुई वहीं उन चरित्रों की भी अवतारणा हुई जो पूर्ववर्ती साहित्य में या तो उल्लिखित मात्र थे अथवा अति संक्षिप्त रूप में वर्णित हुए थे । आधुनिक कवियों ने चरित्रों उन चरित्रों को भी नवीन मनोवैज्ञानिक तथा संवेदनात्मक व्यंञ्जना प्रदान की जिन्हें युगों-युगों से उपेक्षित ही माना गया । इस काल में सर्वाधिक क्रान्तिकारी कदम प्रतिपक्षी चरित्रों के नायकत्व प्रदान करने की है । रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा जैसे चरित्रों को आधुनिक काल में नायकत्व प्रदान करते हुए उनके परम्परागत् रूप का परिमार्जन किया गया ।

1· उपेक्षित पात्रों का उदार

आधुनिक काल के प्रबन्ध कृतियों की प्रमुख विशिष्टता रही है उसमें उपेक्षित पात्रों का स्थान मिलना । पूर्ववर्ती रचनाओं में जिन चरित्रों का केवल नामोल्लेख मात्र करके कवि संतुष्ट रहे उन्हीं चरित्रों को आधुनिक बौदिक मानवतावादी चेतना से प्रभावित कवियों ने बड़े ही सूक्ष्म व मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण संयुक्त कर काव्य में स्थान दिया । इन चरित्रों में कृष्ण कथा की विधृता, रामकथा की उर्मिला व माण्डवी तथा महाभारतीय कथा में कर्ण व एकलव्य का चरित्र सर्वाधिक सशक्त रूप में उभरा । इस सन्दर्भ में आधुनिक कवियों के प्रेरणा स्रोत रूप में महाकवि रवीन्द्र नाथ टैगोर के "काव्येर उपेक्षिता"-1 लेख का विशेष स्थान है, इसमें उन्होनें भारतीय साहित्य में 'उपेक्षिताओं' के प्रति सहानुभूति प्रकट की थी । इसी लेख से प्रभावित हो महावीर प्रसाद जी ने 'कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता' में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है--"क्रौंच पक्षी के जोड़े मे से एक पक्षी को निषाद दारा वध किया गया देख कवि शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया और उसके मुख से 'मा निषाद' इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी

1· सरस्वती - जुलाई 1908

वहीं पर दुःख कातर मुनि रामायण निर्माण करते समय एक नव परिणीता दुःखिनी वधु को बिल्कुल ही भूल गया । विपत्ति विधुरा होने पर उसके साथ अल्पादल्पतारा संवेदना तक उसने न प्रकट की उसकी खबर तक न ली ।----सीता की बात तो जाने दीजिए उनके और उनके जीवनाधार रामचन्द्र के चरित्र चित्रण के लिए रामायण की रचना हुई है । माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के विषय में कोई विशेषता नहीं है क्योंकि आग से भी अधिक सन्ताप पैदा करने वाला पति वियोग उनको हुआ ही नहीं । रही बालदेवी उर्मिला जो उसका चरित सर्वथा गेय और उल्लेख्य होने पर भी, कवि ने उसके साथ अन्याय किया । मुने! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यो ? इस सर्वसुख वंचिता के विषय में इतना पक्षपात कार्पण्य क्यों ?"1

इस लेख से प्रभावित हो अयोध्या सिंह उपाध्याय जी ने उर्मिला पर एक कविता लिखी इसमें उन्होंनें 'उर्मिला' विषयक कवियों की उदासीनता पर आक्षेप किया _

सभी की बड़ों ओर है आंख जाती ।
दुखी दीन की है किसे याद आती ।
नहीं दुन्द जो रो कलप कर मचाती
नहीं पीर उसकी किसी को जनाती ।
सदा ही यही ढंग जग का दिखाया ।
किसी नाद निधि में नदी-रव सुनाया ।-2

मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी "साकेत" में उर्मिला चरित्रांकन विशेष रूप से किया । प्रबन्धात्मक रचना के रूप में यह हिन्दी साहित्य की प्रथम कृति है । इस रचना में 'उर्मिला' का चरित्र सम्यक् रूप से व्यंजित किया गया है । "साकेत" के पश्चात नवीन ने 'उर्मिला' पर नायिका प्रधान प्रबन्ध रचना की । उनके बाद भी कई रचनाओं में उर्मिला का चरित्र व्यंजित हुआ ।

1· सरस्वती, जुलाई 1908

2· वही "उर्मिला" सन् 1914, भाग-15, संख्या-6, पृ0 320

कृष्ण कथाधृत काव्य रचनाओं में पूर्ववर्ती रचनाओं में विधृता का चरित्र नाम मात्र को उल्लेखित किया गया था । श्रीमद्भागवद् में 'विधृता' का चरित्र मात्र दो लाइनों में व्यक्त कर दिया गया था ।-1 इसी विधृता के उपेक्षित चरित्र को मैथिलीशरण गुप्त जी ने "द्वापर" में नवीन नारी जागरण की चेतना से प्रभावित बौद्धिक नारी के रूप में व्यंजित किया है । डॉ० एल सुनीता के शब्दों में- "नारी सुधार के युग में स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले अत्याचार के विरूद्ध झंडा फहराने का सुन्दर अवसर विधृता ने प्रदान किया ।-- वह पुरूषों के अत्याचार के विरूद्ध वाणी उठाती है ।"-2

बल्देव प्रसाद मिश्र जी ने अपनी प्रबन्ध रचना "साकेत-सन्त" में भारत व माण्डवी को काव्य का नायकत्व प्रदान किया । इसमें माण्डवी के जीवन को उर्मिला से भी अधिक करूणाप्रद व उदात्त व्यंजित किया गया है । कवि ने अपनी तार्किकता से इस तथ्य को सिद्ध किया है कि माण्डवी अपने प्रिय के सन्निकट रहते हुए भी एक तरफ विरहावस्था को झेलती है, तो दूसरी तरफ राज्य व परिवार के उत्तरदायित्व का भी निर्वहण करती है, अतः वह सर्वाधिक आदर्श व उदात्त चरित्र है । 'माण्डवी' को नायिका रूप में लेते हुए हरिशंकर सिन्हा व कैलाश नाथ बाजपेयी आदि कवियों ने "माण्डवी" शीर्षक से प्रबन्ध रचना की ।

उपेक्षित पात्रों के क्रम में कैकेयी का स्थान महत्त्वपूर्ण है । इन्हें तुलसी की भर्त्सना के पश्चात् किसी कवि की सहानुभूति न प्राप्त हो सकी थी । आधुनिक युग में कैकेयी के चरित्र को नवीन मानवतावादी तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उभारा गया, इनके चरित्र की नवीन व्याख्या प्रस्तुत की गई । आधुनिक युग में, "कवियों ने एक ओर तो वरदान की प्रेरणा को राष्ट्रव्यापी उच्चादर्श से

1· श्रीमद्भगवद्, स्कन्ध-10, अध्याय-23

2· मैथिलीशरण गुप्त का काव्य - एल· सुनीता, पृ0 289

जोड़कर उसके मूल स्वरूप को गौरवान्वित किया है, तो दूसरी ओर एक मनोवैज्ञानिक अन्तर्द्वन्द की सृष्टि करके उसके चरित्र को अधिक मानवोचित एवं संवेद्य बनाया है।"[1] "साकेत" में कैकेयी का चरित्र पश्चाताप् के आंसुओं से अपनी कालिमा धोकर उज्जवल स्वरूप प्राप्त करता है । "साकेत-सन्त" में भी कैकेयी का चरित्र मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से व्यंजित हुआ है । इसमें दशरथ द्वारा कैकेयी को दिया गया वरदान तथा विवाह पूर्व दिये गये कैकेयी के औरस पुत्र को उत्तराधिकार का वचन प्रमुख रूप से कैकेयी के अपकर्ष का मनोवैज्ञानिक कारण बनता है । इसमें कैकेयी की तुलना में उनके भाई युधाजित को ही ज्यादा दोषी माना गया है । "कैकेयी" (प्रभात) प्रबन्ध रचना कैकेयी पर आधारित रचना है । इसमें कैकेयी का चरित्र विशिष्ट उदात्तता से व्यंजित है । इसमें कैकेयी द्वारा राम को वनवास देने के मूल में उनका क्षुद्र स्वार्थ न होकर राक्षस-वध तथा राष्ट्र संरक्षण विषयक कैकेयी की दूरदर्शिता की भावना सन्निहित होती है । समष्टि कल्याण व देशभक्ति की भावना कैकेयी के उच्चादर्शों को प्रस्तुत करती है । "कल्याणी-कैकेयी", "कैकेयी" (शेषमणि शर्मा) व "कैकेयी" (चाँदमल अग्रवाल) में भी कैकेयी के चरित्र की उदात्तता का पुष्टि-पोषण हुआ है । इसमें मनोवैज्ञानिक रूप से उनके वात्सल्य प्रेरित उद्देश्यों तथा राष्ट्रीय उद्देश्यों दोनों को ही प्रस्तुत किया गया है ।

मानव मूल्यों के प्रति नवीन चेतना, गांधीवादी चेतना व मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप उपेक्षित व निम्न वर्गीय पात्रों के प्रति कवियों का नवीन दृष्टिकोण परिलक्षित होता है । महाभारतीय चरित्रों में कर्ण व एकलव्य के चरित्र को नायकत्व प्रदान करते हुए, उनका उत्थान व नवीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन व अभिव्यंजना इसी तथ्य के द्योतक है । रामकथाधृत चरित्रों में शबरी व शम्बूक जैसे चरित्रों को नायकत्व प्रदान किया गया । डॉ० रामसकल राय शर्मा

1· हिन्दी राम काव्य का स्वरूप विकास - डॉ० प्रेमचन्द महेश्वरी, पृ० 233

के शब्दों में_ "आधुनिक युग में अलौकिक या विरल के लिए अवकाश नहीं रहा काव्य आकाश कुसुम की कल्पना से उतरकर धरती के गीत गुनगुनाने लगा । साधारण मानव के प्रत्यक्ष दुख-सुख उसकी आशा, आकांक्षा, स्पृहा-स्वप्न, अभाव-रूदन, महत्व एवं गौरव की कथा उसकी सांसों में बस गई ।---दीनता, दरिद्रता और अभाव के प्रति मानवीय संवेदना एवं सहानुभूति का स्रोत स्वतः फूट पड़ा ।"-1 कर्ण के चरित्र का पुर्नमूल्यांकन करते हुए आधुनिक युग में महाभारतीय रचनाओं में कर्ण का चरित्र उदात्त रूप में प्रस्तुत हुआहै। साथ ही "कर्ण" को नायकत्व प्रदान करते हुए "अंगराज", "कर्ण", "सेनापति-कर्ण", "सूर्य-पुत्र" तथा "रश्मिरथी" में सूतपुत्र कहकर उपेक्षित किये गये कर्ण को चारित्रिक उदात्तता प्रदान करते हुए, उसे नवीन मानवतावादी, मनोवैज्ञानिक आलोक में देखा-परखा गया । उन्हें नवीन मानवीय संवेदनाओं के अनुरूप चरित्रांकित किया गया । मानवतावादी दृष्टि, समानता, बौद्विकता के कारण पौराणिक पात्रों के चरित्र का पुर्नव्याख्या की प्रवृत्ति के अन्तर्गत कर्ण का चरित्र प्रमुख है ।

"कर्ण" की ही भाँति "एकलव्य" के चरित्र को भी नव्य मानवतावादी बौद्धिक आलोक में चित्रित किया गया । "एकलव्य" द्वारा किन परिस्थितियों को सहते हुए अन्तर्दन्दों से जूझते हुए सवर्णो के आधिपत्य के वातावरण में शिक्षार्जन किया जाता है, तथा "गुरूदक्षिणा" के नाम पर किस प्रकार उसका शोषण करते हुए उसके जीवन के विशिष्ट लक्ष्य को ध्वस्त किया जाता है उसकी प्रतिक्रियास्वरूप एकलव्य किन पीड़ाओं व अन्तर्दन्दों से जूझता है, इसे आधुनिक कवियों ने विशिष्ट सन्दर्भ में मंजित किया है । अछूत समझे जाने वाले निषाद पुत्र को नायकत्व प्रदान करते हुए प्रबन्ध-काव्यों की रचना की गई । इन रचनाओं में रामकुमार वर्मा जी की रचना "एकलव्य", विनोद चन्द्र पाण्डेय की "गुरूदक्षिणा" राजेश्वर मिश्र की "एकलव्य" तथा शोभानाथ पाठक की "एकलव्य" प्रबन्ध

1· दिवेदी युग का हिन्दी काव्य-डॉ0 राम सकल राय शर्मा, पृ0 3

का विशिष्ट महत्व है । आधुनिक काल से पूर्व निम्न वर्ण के पात्रों को नायकत्व नहीं प्रदान किया गया था, केवल उच्च वर्ग के लिए ही यह अधिकार सुरक्षित रहा किन्तु आधुनिक काल में नायक की महानता का मानदंड बदल गया है । एकलव्य का आधुनिक प्रबन्ध कृतियों में नायकत्व प्राप्त करना इसी तथ्य का द्योतक है ।

रामकथाधृत प्रबन्ध-रचनाओं में शबरी व शम्बूक, चरित्र का पुनर्मूल्यांकन किया गया । शबरी को पूर्ववर्ती रचनाओं में मात्र भक्त के रूप में वर्णित किया गया है, किन्तु आधुनिक काल में मनोवैज्ञानिक व मानवतावादी चेतना के परिप्रेक्ष्य में शबरी की मानवीय संवेदनाओं को उभारा गया है । शबरी को नायिका रूप में लेते हुए कई रचनाकारों ने अपने प्रबन्ध-काव्य प्रस्तुत किये हैं । इन रचनाओं में "शबरी" शीर्षक से ही रत्नचन्द शर्मा, नरेश मेहता और धनञ्जय अवस्थी की प्रबन्ध-रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है । "शम्बूक" के चरित्र को लेकर जगदीश गुप्त की रचना का विशिष्ट स्थान है । इसमें शम्बूक के चरित्र को नवीन मानवीय संवेदनाओं के परिप्रेक्ष्य में उभारा गया है तथा उसके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों व अव्यक्त पीड़ाओं को शब्द प्रदान किया गया है ।

आधुनिक युग में उपेक्षित पात्रों के चारित्रिक उदार, परिष्कार व परिमार्जन के क्रम में ही प्रतिपक्षी पात्रों के प्रति कवियों का आकर्षण भी महत्वपूर्ण है । रावण, शूर्पणखा, कंस तथा दुर्योधन जैसे पात्रों के प्रति कवियों का मानवतावादी, बौद्धिक दृष्टिकोण इसी तथ्य की द्योतक है । हरदयालु के शब्दों में_ "साधारणतया लोग देवों में सद्गुणों और दैत्यों में असद्गुणों की भावना करते हैं, किन्तु पौराणिक आख्यानों को पढ़ने-सुनने वाले जानते हैं कि देवो में निरे दिव्य गुण ही नहीं है । छल-प्रपंच, स्वार्थपरता, विश्वासघात, माया, असत्य आदि मानवीय कमजोरियाँ उनमें भी विद्यमान हैं । और अपने प्रतिद्वन्द्वी दैत्यों से कुछ अधिक मात्रा में । फिर भी परम्परा से देवों को जितनी सहानुभूति प्राप्त

हुई है उसका शतांश भी दैत्यों को नही मिलता ।"-1 यही कारण है कि इन प्रतिपक्षी पात्रों को लेकर कई रचनायें प्रकाश में आयी ।

"रावण" को नायकत्व प्रदान करते हुए हरदयालु सिंह ने "रावण-महाकाव्य" में उसे निम्नतर रूप से उठाकर उदात्तता व चारित्रिक परिष्कार प्रदान किया । इसमें रावण के कृत्यों का तार्किक व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या हुई है, तथा उसके कृत्यों के औचित्य-अनौचित्य को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सिद्ध किया गया है । कैलाश नाथ तिवाड़ी का "दशानन" प्रबन्ध काव्य, रघुवीर शरण की "भूमिजा" इसी दृष्टिकोण से व्यंजित किया गया है । शूर्पणखा को नायिका रूप में लेते हुए प्रीतम सिंह बगरेचा के "शूर्पणखा" प्रबन्ध-काव्य में उसके चरित्र का पर्याप्त रूप से परिष्कार किया गया है, तथा उसे नवीन अर्थवत्ता प्रदान की गई है । इसी प्रकार कंस और दुर्योधन के चरित्र को भी आधुनिक मानवतावादी संवेदना प्राप्त हुई । रश्मिरथी, सेनापति कर्ण व अंगराज में दुर्योधन में निहित उदात्त व आदर्श तथ्यों को उभारा गया है । उसके कार्यो के औचित्य को नवीन दृष्टिकोण से परखा गया है । डॉ० बनवारी लाल शर्मा के शब्दों में, "दुर्योधन के चरित्र को चित्रित करने में प्रत्येक कवि का अपना पृथक-पृथक दृष्टिकोण रहा है यह दृष्टिकोण उनके आधुनिक विचारों पर आधारित है, किन्तु इससे उन्हें पुराने दुर्योधन को नये प्रकाश में लाने तथा दुर्योधन को पर्याप्त रूप से सुयोधन बनाने का अवसर मिला है ।"-2

2· दिव्यता का निषेध

आधुनिक काल नव्य बौद्दिक, तार्किक चेतना तथा वैज्ञानिकता के प्रभाव स्वरूप परम्परागत् रूप से वर्णित पौराणिक चरित्रों के दिव्य व अलौकिक कृत्यों की नवीन दृष्टिकोण से व्याख्या हुई । परम्परागत रूप से राम, कृष्ण तथा अन्य पौराणिक चरित्रों के दिव्य व अलौकिक चरित्र को ज्यों का त्यों स्वीकार किया

1· दैत्यवंश - हरदयालु सिंह, भूमिका में कवि, पृ0 2

2· स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य - बनवारी लाल शर्मा, पृ0 213

किया जाता रहा है । इन चरित्रों को ईश्वरीय लीला मानने के कारण उनके औचित्य-अनौचित्य के बारे में सोचना तो असम्भव ही था । किन्तु आधुनिक काल में नव्य चेतना के प्रभाव स्वरूप जहां सामाजिक व राजनैतिक क्रान्तिकारी परिवर्तन का उन्मेष हुआ वही साहित्य में भी विशेष परिवर्तन का समावेश हुआ । पौराणिक चरित्रों को आधुनिक नव्य चेतना का संवाहक बनाकर भारतीय जनमानस के समक्ष नवीन आदर्श स्थापना का कार्य प्रारम्भ हुआ । राम और कृष्ण के चरित्र को सहज व लोक जीवन के निकट लाने के लिए उनका मानवीय रूप में निरूपण हुआ । मानवीय रूप के आरोपण के कारण पौराणिक चरित्रों के दिव्य व अलौकिक कृत्यों को भी मानवीय कृत्यों के रूप में रूपान्तरित किया गया ।

बीसवीं शती के प्रारम्भ में अर्थात् दिवेदी कालीन प्रवृत्तियों से प्रभावित पौराणिक प्रबन्ध कृतियों में पौराणिक चरित्रों का अंकन दिव्य व अलौकिक न होकर मानवीय रूप में हुआ है । किन्तु परम्परागत् रूप के निकट होने के कारण उन्हें महामानवीय चरित्र के रूप में ही निरूपित किया गया है । दिवेदी युग आदर्शो का युग था, अतः परम्परागत् अलौकिक चरित्रों को "महामानव" के रूप में चित्रित किया गया । इसके पीछे एक मुख्य कारण यह भी था कि महामानव का उदाहरण इस युग की आवश्यकता थी ।

दिवेदी युगीन प्रथम काव्य कृति"प्रिय – प्रवास" में हरिऔध जी ने कृष्ण को महामानवत्व से मंडित करते हुए उन्हें लोक सेवक, समाजोदारक, देशप्रेमी व समष्टिवादी चरित्र के रूप मे निरूपित किया है । इस रचना में कृष्ण के परम्परागत् अलौकिक व दिव्य कृत्यों का निषेध करते हुए, उन कार्यो के पीछे कृष्ण के उदात्त कर्म व लगन की महत्ता स्थापित हुई । कृष्ण दारा गोवर्दन पर्वत उठाने का वर्णन प्रिय प्रवास में केवल अलंकारिक रूप मात्र है । कृष्ण ब्रजवासियों की रक्षा गोवर्दन पर्वत की गुफाओं में छिपाकर करते हैं । कृष्ण की भांति राधा भी लोक सेविका, जनप्रेमी तथा जनोदारक है । "प्रिय-प्रवास" में राधा के चरित्रांकन पर गांधीवाद का भी विशिष्ट प्रभाव है । मैथिलीशरण गुप्त रचित "दापर" में भी कृष्ण महामानव के रूप में निरूपित

हुए हैं । वे समाजिक रूढ़ियों को तोड़ने वाले समाजोद्दारक व अहिंसावादी है । "कृष्णायन" रचनाकाल की दृष्टि से छायावादोत्तर रचना है, किन्तु परम्परा की दृष्टि से द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों से ही प्रभावित है । इस रचना में कवि कृष्ण के अलौकिक व दिव्य चरित्र का मोह पूर्णतया नहीं छोड़ पाये हैं. किन्तु फिर भी इस रचना में गोपियों के चीरहरण प्रसंग में उनका समाजोद्दारक तथा परम्परागत् रूढ़ियों का विखंडनकर्ता रूप उभरता है बन्दी नारियों को समाज में महत्वपूर्ण स्थान दिलाने के लिए , विवश व असहाय नारियों से विवाह के समय उनका नारी उत्थानकर्ता का रूप, महाभारत प्रसंग में कृष्ण का यथार्थवादी व कूटनीतिज्ञ रूप प्रमुख रूप से उभरता है । इसके अतिरिक्त इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन देशभक्त, जननायक व स्वजाति प्रेमी स्वरूप भी मुखर हुआ है ।

कृष्ण के सदृश रामकथाधृत प्रबन्ध रचनाओं में राम महामानवीय गुणों से समन्वित आदर्श रूप में निरूपित हुए हैं । "रामचरित चिन्तामणि" में रामचरित उपाध्याय ने राम का चरित्राकन दिव्य व अलौकिक रूप से परे मानवीय रूप में ही किया है । "साकेत" में गुप्त जी ने राम का चरित्रांकन महामानवीय गुणों से सम्पन्न लोकनायक, मानवतावादी, समष्टिवादी, दीनोद्दारक, समन्वयवादी व विश्व प्रेमी महामानव के रूप में हुआ है । राम भक्त होने कारण गुप्त जी राम के अवतारी रूप का मोह नहीं छोड़ पाये हैं किन्तु शेष चरित्रांकन महामानवीय ही है । दीनोद्दारक राम कहते हैं -

मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,
जो विवश, विकल, बलहीन दीन शापित हैं ।
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया ।
सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।-1

1· साकेत - सर्ग-8, पृ0-111

साकेत में राम के साथ-साथ सीता भी अलौकिकता व दिव्यता से परे आदर्श नारी हैं । इसमें वे कर्मवादी, ग्रामोत्थान से प्रभावित, अहिंसावादी व स्वतन्त्रता प्रेमी नारी के रूप में चरित्रांकित हुई हैं ।

"कौशल-किशोर" में बल्देव प्रसाद मिश्र ने राम के अलौकिता व दिव्यत्व का निषेध करते हुए उन्हें मौलिक रूप में अहिंसावादी, आदर्शवादी, जनवादी तथा संवेदनशील व भावुक मानव के रूप में निरूपित किया गया है । निरीह पशुओं का शिकार करने वाले मानवों की तीव्र भर्त्सना करते समय वे मानव ही नहीं, समस्त जीवों के हित चाहने वाले महापुरुष के रूप में उभरते हैं । वे कहते हैं -

मित्रों । पशुओं को न गिराओ,
यदि इच्छा है तो पशुबल का वधकर
जीवन उच्च बनाओ ।-1

"वैदेही-वनवास" भी "कौशल-किशोर" के सदृश रचनाकाल की दृष्टि से द्विवेदी युग में नहीं आती, किन्तु द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों से प्रभावित होने के कारण इसे द्विवेदी काल से प्रभावित रचना ही कहा जायेगा। इस रचना में परम्परागत् रूप से परे राम का लोकाराधक रूप प्रमुख रूप से अंकित हुआ है । "वैदेही-वनवास" में राम समतावादी, अहिंसावादी, लोकाराधक, महान त्यागी के रूप में निरूपित हुए हैं । इस रचना में राम का महामानवत्व उनके लोकाराधक रूप में निहित हैं । राम के साथ-साथ सीता भी लोकराधिका हैं । केवल जन सामान्य् के आग्रह को महत्व देते हुए वे राम द्वारा स्थानान्तरण के प्रस्ताव को स्वीकार करती हैं । इस रचना में सीता का चरित्र कर्मवादी व जीवप्रेमी नायिका के रूप में भी मुखरित हुआ है ।

1· कौशल किशोर - बल्देव प्रसाद मिश्र - पृ0 45

बल्देव प्रसाद मिश्र कृत "साकेत-सन्त" व "रामराज्य" भी रचनाकाल नहीं अपितु प्रवृत्तियों की दृष्टि से द्विवेदी युगीन काव्यधारा की रचना कहीं जा सकती है । "साकेत-सन्त" में राम दलितोद्धारक, देशप्रेमी, पूंजीवाद व भौतिकता के विरोधी तथा मानवतावादी मानव के रूप में निरूपित हुए है । इस रचना में राम का पूंजीवाद के विरोधी रूप में विशिष्ट रूप में अंकन हुआ है । इस रचना में जनार्दन का अवतार समस्त जनता में माना गया है -

जनार्दन का जन है अवतार

बल्देव प्रसाद की ही दूसरी काव्य रचना "राम राज्य" पूर्णतया गांधीवाद से प्रभावित रचना है । इसमें राम का चरित्रांकन गांधीवाद से प्रभावित, राष्ट्रीय चेतना से युक्त, समष्टिवादी, समाज सुधारक व ग्रामोद्धारक महामानव के रूप मे हुआ है । राम शहर के साथ-साथ गांवों का भी सम्यक् विकास चाहते हैं । देश के आन्तरिक फूटों के प्रति मानव को सावधान करते हुए समस्त विश्व के साथ बन्धुत्व भाव का आग्रह प्रस्तुत करते हैं । उनका यह रूप अलौकिकता व दिव्यत्व से सर्वथा परे हैं ।

द्विवेदी युग के पश्चात् छायावादी काव्यधारा में द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता व स्थूल चित्रण के स्थान प्रतीकात्मकता, भावाभिव्यंजकता व सूक्ष्म चित्रण को प्रमुखता मिली । अतः छायावादी काव्यधारा में मुक्तक रचनाओं का ही बाहुल्य है तथा प्रबन्ध रचनायें बहुत कम रची गयी । छायावादी काव्यधारा में प्रबंध काव्यों की न्यूनता के संदर्भ में डॉ० प्रतिभा कृष्णबल ने लिखा है—"छायावाद के अधिकांश कवियों की प्रतिभा प्रमुख रूप से प्रगीत रचना तक ही सीमित रही है । अन्तर्मुख आत्मपरक दृष्टिकोण तथा स्थूल से विमुख होकर सूक्ष्म की उपासना के कारण इनकी दृष्टि वाह्य जीवन एवं जगत की उस अपार व्यापकता को उसकी समग्रता में आत्मसात नहीं कर सकी जो महाकाव्य की वृहदाकार विशद व्यापकता के लिए अपेक्षित हैं । यही कारण है कि जहां निराला जैसे मेधावी तथा महान

प्रतिभाशाली कवि को, जो जीवन के खण्ड चित्रों के कुशल अंकन में अद्भुत सफलता एवं सिद्धि प्राप्त हुई, वहां जीवन का समग्र चित्रण उनकी प्रतिभा भी न कर सकी।"1 यही कारण है कि इस काल में बहुत कम प्रबन्ध रचनायें रची गयी ।

छायावादी काव्य की भाव संकुलता एवं प्रतीकात्मकता ने पौराणिक पात्रों के चुनाव को भी प्रभावित किया । फलतः ऐसे मिथकीय पात्रों को चुना जाने लगा जिनके साथ विस्तृत कथा नहीं जुड़ी थी, जैसे मनु, श्रद्धा, इड़ा, शिव, पार्वती, कार्तिकेय आदि । राम और कृष्ण का चरित्र छायावादी कवियों द्वारा गृहीत न किये जाने का कारण था कि इनकी कथा इतना विस्तार पा चुकी थी कि उनमें प्रतीकात्मकता की गुंजाइश नहीं थी । छायावादी काव्य की दार्शनिकता, भावात्मकता तथा सूक्ष्मता का प्रतिफलन था प्रतीकात्मक चरित्र । इस काव्यधारा में चरित्रों के बहिर्मुखी के स्थान पर अन्तर्मुखी पौराणिक पात्रों की योजना हुई, अर्थात् चरित्रों के बाह्य कर्मों के स्थान पर पात्रों के अन्तर्भावों का चित्रण हुआ इसके अतिरिक्त युगीन सत्यों के स्थान पर चिरन्तन सत्यों को अभिव्यक्ति मिली । दार्शनिकता प्रतीकात्मकता व सनातन सत्यों को अभिव्यक्ति देने के उद्देश्य के कारण ही कदाचित इन रचनाकारों ने उन कथाओं व पात्रों को चुना जिसमें कथात्मकता कम है ।

बालकृष्ण शर्मा कृत "उर्मिला" पर छायावादी भावाभिव्यंजकता का प्रभाव है । इस रचना में प्रथम बार उर्मिला के सूक्ष्म मनोभावों का सहज अंकन हुआ है । छायावादी काव्यधारा के वैयक्तिक चेतना के प्रभाव स्वरूप उर्मिला के अन्तर्रानुभूतियों को अभिव्यक्ति मिली । इस प्रबन्ध कृति में नवीन जी ने उर्मिला में बौद्धिकता, तार्किकता तथा जाग्रत नारी का आरोपण भी किया है राम का चरित्रांकन संक्षिप्त है । वे भावुक व सामान्य मानव के रूप में ही निरूपित हुए हैं ।

1· छायावाद का काव्य शिल्प - डॉ0 प्रतिमा कृष्णबल, पृ0 138

"राम की शक्ति पूजा" में निराला जी ने सूक्ष्म कथावृन्त के सहारे के अन्तर्भावों का सहज चित्रण किया है । इस रचना में राम का चरित्र निरूपण आधुनिक युवा वर्ग के युगीन संदर्भो के प्रति अनास्था विद्रोहात्मकता व सत्रस्त मानसिकता के प्रतीक रूप में हुआ है । "राम की शक्ति पूजा" में शक्ति द्वारा रावण का पक्ष लेने पर राम के मन में अनास्था व पराजय बोध का जन्म होता है । शक्ति द्वारा अन्याय का पक्ष लेने पर वह हताश हो उठते हैं -

उतरी पा, महाशक्ति रावण से आमन्त्रण
अन्याय जिधर, है उधर शक्ति ।

अन्तत चिन्तन के पश्चात वे नैराश्यान्धकार से बाहर निकल आते हैं । वे शक्ति का सामना शक्ति से करना चाहते हैं, इसी कारण वे शक्ति का आहवान करते हैं और अपना नेत्र समर्पित करके भी उन्हें प्राप्त करना चाहते हैं । राम का यह चरित्र आधुनिक युग के लिए एक प्रेरणा भी है । "राम की शक्ति पूजा" के राम का चरित्राकन अलौकिक या दिव्य रूप के स्थान पर साधारण मानव के रूप में ही हुआ है ।

जयशकर प्रसाद कृत "कामायनी" छायावादी काव्यधारा की विशिष्ट काव्य रचना है । कामायनी के मूल में प्रसाद की विशिष्ट चितन दृष्टि थी । अत· इसके मुख्य पात्र मनु, श्रद्धा, इड़ा का चरित्र इकहरा न होकर अनेक आयामी है यथा-पौराणिक रूप, मनोवैज्ञानिक रूप, आध्यात्मिक व सामान्य मानवी रूप । कामायनी में युगीन सत्यों के स्थान पर चिरन्तन सत्यों को अभिव्यक्ति मिली है । जलप्लावनके सूक्ष्म कथाधार के सहारे वर्णित "कामायनी" में मनु मानव मन के प्रतीक हैं । श्रद्धा हृदय की प्रतीक है तथा इड़ा अति बौद्धिकता की । मानव जब हृदय पक्ष का परित्याग करके केवल बौद्धिकता का आश्रय लेता है, तभी वह पतनोन्मुख होता है, किन्तु हृदय पक्ष और बौद्धिकता का सम्यक् समन्वय करने पर वही विश्व के मंगलमयी विकास का प्रणेता बन जाता है । "कामायनी" में मनु के चरित्र द्वारा मानव के शाश्वत् प्रश्नों का समाधान कवि का उद्देश्य रहा है । मानवी रूप में मनु पर आधुनिक द्वन्द्वशील सामान्य मानव का अरोपण हुआ है ।

जलप्लावन के सूक्ष्म कथाधार पर आधारित अन्य रचना "ऋतम्बरा" में केदार नाथ मिश्र 'प्रभात' ने मौलिक रूप से प्राचीन मिथक के माध्यम् से आधुनिक युग की समस्याओं का संस्पर्श भी किया है । इस रचना में मनु पर आधुनिक जीवन की समस्याओं के प्रति मानव मन के प्रश्नाकुल मानसिकता का आरोपण हुआ है । "ऋतम्बरा" में मनु श्रम के प्रतीक है तथा शतरूपा कला की प्रतीक है । श्रम और कला का सम्यक् मेल ही मानव के विकास व कल्याण में सहायक होता है । "ऋतम्बरा" में कवि ने मनु के प्रतीकात्मक रूप के माध्यम से सनातन सत्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

रामानन्द तिवारी कृत "पार्वती" में शिव, पार्वती व कार्तिकेय के पौराणिक दिव्यता व अलौकिकता के साथ-साथ उन्हें सामान्य मानवी रूप में भी निरूपित किया है । छायावादी भावव्यंजकता तथा मनोविज्ञान के प्रभाव स्वरूप इन चरित्रों के आन्तरिक पक्ष का उद्घाटन हुआ है । द्विवेदी युगीन रचनाओं की अपेक्षा छायावादी काव्यधारा में पौराणिक चरित्रों के वाह्य कर्मो के स्थान पर अर्न्तभावों का चित्रण विशिष्ट रूप से हुआ । "पार्वती" के चरित्रों पर इस नवीन प्रवृत्ति का प्रभाव है । इसी कारण दिव्यता के साथ-साथ वे सामान्य मानव भी प्रतीत होते हैं । इस रचना में पौराणिक चरित्र पौराणिक दिव्यता, द्विवेदी युगीन नव्य चेतना तथा छायावादी भावसंकुलता व मनोविज्ञान तीनों से ही प्रभावित हैं कार्तिकेय का चरित्रांकन उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध व बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के नवजागरण आन्दोलनों व गाधीवाद से पूर्णतया प्रभावित है । कुमार द्वारा किया जाने वाला जनजागरण इसी तथ्य का द्योतक है ।

"तारक वध" के रचना में भी शिव पार्वती के पुत्र स्कन्द द्वारा तारक असुर के वध के मिथक को आधार बनाया गया है । इस रचना पर पौराणिक चरित्रों के दिव्यता व अलौकिकता को पूर्णतया निषेधित नहीं किया गया है । किन्तु छायावादी काव्यधारा की प्रतीकात्मकता, भावाभिव्यंजकता के कारण कथात्मकता के स्थान पर पात्रों के अन्तर्भावों का चित्रण प्रमुखतः हुआ

है । स्कन्द का जन्म व रूप पूर्णतया दिव्यता तथा अलौकिकता से मंडित है, किन्तु उनका कार्य द्विवेदी युगीन प्रवृत्तियों व गांधीवादी चेतना से प्रभावित हैं । कुमार द्वारा तारक के विरुद्ध जन जागरण उत्पन्न करना तथा अहिंसात्मक ढंग से तारक का हृदय परिवर्तन करना गांधीवाद का ही प्रभाव है । इस रूप में उनका सामान्य मानवीय रूप में ही प्रकटन हुआ है ।

प्रयोगवादी और नयी कविता में छायावादी काव्यधारा की अपेक्षा मौलिकता अधिक है । द्विवेदी युगीन कवियों में मानव जीवन के आदर्श व नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था का स्वर मुखर है, छायावादी काव्यधारा में यह स्वर मन्द पड़ने लगा था आधुनिक प्रयोगवादी और नयी कविता तक आते-आते यह स्वर क्षीण हो गया । वर्तमान के प्रति असन्तोष की प्रवृत्ति बढ़ने लगी । सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन ने जनमानस को बहुत प्रभावित किया दो-दो महायुद्धों ने मानवीय मूल्यों को विघटित किया । सामाजिक वैयक्तिक एवं नैतिक मर्यादायें विखंडित हुई । भौतिकता के प्रति बढ़ते हुए व्यामोह ने मानवीय संवेदनाओं को क्षीण किया । आधुनिक परिस्थितियों से उत्पन्न नवीन चेतना में मनोवैज्ञानिक संक्रमण, यथार्थवादी मान्यताओं की स्वीकृति, अहम्‌वाद का विकास आदि प्रवृत्तियों को उत्पन्न किया ।

नयी कविता की काव्य प्रवृत्ति को जानने से पूर्व युगीन परिस्थितियों का अवलोकन आवश्यक है । स्वतन्त्रता के पश्चात् सामाजिक क्षेत्र में बहुत परिवर्तन आया । समाज में व्यक्तियों के अन्तः सम्बन्ध की प्रगाढ़ता दूरियों में बदलने लगी । नयी परिस्थितियां तथा इनसे उत्पन्न नये सम्बन्ध, नयी समस्यायें, नये संघर्ष, नये ढंग का भावबोध आज के युग की यही यथार्थता है। परम्परा से माने गये आदर्श भौतिकतावादी मानव के लिए अनुकूल न रह सका, मानव भौतिकता के व्यामोह में मानवीय संवेदनाओं से कृत्रिमता की ओर अग्रसर होने लगा ।

राजनीतिक क्षेत्र में परिस्थितियां विषम होने लगी देश के महान सपूतो ने परतत्र देश को जिस स्वर्णिम स्वतन्त्रता को प्रदान किया वह गृहकलह, देश के बंटवारे तथा गांधी की हत्या के कारण कालिमा युक्त हो गया । दो-दो महायुद्रों ने मानवीय मूल्यों को विघटित किया । इन सबके कारण गांधी जी द्वारा देखे गये सुराज के स्वप्न को ध्वस्त कर दिया । इनके कारण मानव में संशयग्रस्तता तथा कुंठा की भावना बढ़ती गयी । परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी भारतीय जनमानस को स्वतन्त्रता अवश्य मिली किन्तु स्वतन्त्र भारत के जिस सुनहले छवि की उन्होनें कल्पना की थी वह यथार्थ रूप में परिणित न हो सकी । अतः मानव में अनास्था, असुरक्षा भाव सामाजिक विकृतियों के प्रति कटुता, घुटन व छटपटाहट की भावना मूर्त होने लगी ।

बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व भारतीय मनीषियों ने जिस समभाव, मानवतावाद तथा विश्व कल्याण व विश्व बन्धुत्व व आदर्श का स्वप्न देखा वह स्वातंत्र्योत्तर काल में आकर विखंडित हो गया । जिन तत्वों की आलोचना इन महामनीषियों ने किया वही तत्व स्वातन्त्र्योत्तर काल में प्रमुख होने लगा । शासन की बागडोर अपने हाथो में आने पर अपने ही देश के नेताओं ने अपनी ही देश की जनता के समुचित उत्थान पर ध्यान देना छोड़ दिया । गांधी की ग्रामोत्थान की भावना उनके साथ ही सो सी गई, कुटीर उद्योगों के स्थान पर औद्योगिक मशीनीकरण की प्रवृत्ति ने देश के बहुल निम्न व ग्रामीण वर्ग का कोई विशेष हित नहीं किया । शिक्षा के क्षेत्र में भी दोमुखी नीति ने समाज को विखंडित ही किया ।

"आलोचना" के सम्पादकीय में शिवनन्दन सिंह चौहान ने गांधी जी की हत्या के बाद भारतीय जनमानस की स्थिति के बारे में लिखा है "आजादी के उत्सव अभी मनाये ही जा रहे थे और सांस्कृतिक अहिंसात्मक क्रांति की विजय पर नेतागण एक दूसरे का जयकार कर रहे थे कि साम्प्रदायिक आधार पर भारत के विभाजन से उत्पन्न कटुता ऐसी पाशविक हिंसा और रक्तपात

में फूट पड़ी जिसकी मिसाल फासिस्टवाद-नस्लवाद में ही मिलती है । और इस निर्मम हत्याकाण्ड में भावना के स्तर पर के सारे आदर्श और सरल विश्वास जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को गरिमा और अर्थवत्ता प्रदान की थी स्वाहा हो गए । राष्ट्रपिता गांधी की हत्या जनमानस में उस मानवीय विवेक को नहीं जगा सकी, जो मनुष्य को क्षुद्र स्वार्थो से ऊपर उठाता है । बल्कि गाधी की हत्या आदर्शवादी भारत की अकाल मृत्यु और मूल्यों के विघटन का प्रतीक बन गई ।"-1

वैज्ञानिकता के विकास की चरमसीमा ने द्वितीय विश्वयुद्ध का घातक रूप धारण किया । प्रारम्भ में जो वैज्ञानिकता विकास की द्योतक थी वही विनाश का कारण बनने लगी । अपने ही हाथ से मानव ने अपने विनाश का मार्ग खोल दिया । जनमानस में भावी विनाश की शंका के कारण आतंक ने घर कर लिया । जिस विज्ञान के कारण उत्पन्न मानव की आशा एवं उल्लास की भावना को ग्रहण सा लग गया उसके स्थान पर निराशा, अनिश्चय, संशय भविष्य के प्रति अनिश्चितता व अनास्था की भावनाओं ने मूर्त रूप लेना आरम्भ किया ।

इन सभी विसंगतियों ने नयी कविता की काव्य चेतना को बहुत प्रभावित किया । पूर्ववर्ती रचनाओं में नवीन चेतनाओं के परिणाम स्वरूप जिन आदर्शो की स्थापना की गई, इन रचनाओं में उन्हीं का विखंडन हुआ। बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के नवीन चेतना के कारण दिव्य चरित्रों को आदर्श महामानव के रूप में तथा छायावादी काव्यधारा में प्रतीकात्मक पौराणिक चरित्रों की अवतारणा हुई । प्रयोगवाद व नयी कविता तक आते-आते युगीन चेतना के परिणाम स्वरूप पौराणिक चरित्रों का सामान्य मानवीय रूप वाह्य तथा अन्तर्संघर्ष झेलते लघु मानव के रूप में परिणित कर दिया गया । इस समय मानवीय संवेदना को नवीन धरातल पर पुनर्स्थापित करके निरूपित किया गया ।

1· आलोचना - शिवनन्दन सिंह चौहान (सम्पादकीय में) जून 1964, पृ0 4

नयी कविता के विद्रोहात्मक चेतना व मूल्यों के विघटन का प्रभाव राजेन्द्र किशोर के "मनवन्तर" में दृष्टिगत् होता है । "मनवन्तर" में जल प्रलय के मिथक पर आधारित सूक्ष्म कथावृत्त को भी अति सूक्ष्म करके प्रस्तुत किया गया है । इस रचना में मनु और श्रद्धा के प्रति विद्रोहात्मकता व्यक्त करते हुए इड़ा की महत्ता स्थापित हुई है । मनु के पुत्र मानव के माध्यम से इस विद्रोह चेतना का अकन हुआ है । जल प्रलय को भी महायुद्ध की प्रतीकात्मकता प्रदान की गयी है । उसके माध्यम् से मानव पर आधुनिक मानव का अपने अस्तित्व के प्रति संशयग्रस्त मानसिकता का आरोपण हुआ है ।

"कनुप्रिया" पर नई कविता की विद्रोह चेतना, मूल्यों का विघटन कुंठा, निराशा आदि प्रवृत्तियों का प्रभात है । धर्मवीर भारती ने पौराणिक दिव्य चरित्र कृष्ण का चरित्रांकन सामान्य मानवी रूप में किया है । इस रचना में कृष्ण अपने ही द्वारा स्थापित मूल्यों के विघटन से कुंठित तथा स्वयं लिये गये ऐतिहासिक निर्णय के प्रति संत्रस्त मानव के रूप में चरित्रांकित किये गये हैं । कृष्ण के साथ-साथ राधा का चरित्रांकन बौद्दिक तथा विद्रोह चेतना से युक्त नारी के रूप में हुआ है । "कनुप्रिया" में कृष्ण का चरित्र प्रत्यक्षतः वर्णित न होकर राधा के माध्यम् से ही वर्णित हुआ है । इस रचना में राधा पर युद्दजनित वातावरण से होने वाले सामाजिक नैतिक मूल्यों के ह्रास के प्रति चिन्तित आधुनिक बौदिक नारी का आरोपण हुआ है ।

"कनुप्रिया" के पश्चात महाभारत कथाधृत रचनाओं में कृष्ण के महाभारतीय रूप की यथार्थपरक, बौदिक व तार्किक व्याख्या हुई है कृष्ण द्वारा पांडवों का पक्ष लेने, भीष्म, द्रोण, कर्ण जैसे महापुरूषों के अनैतिकतापूर्ण वध के प्रेरक स्वरूप आदि की पुनर्व्याख्या व आलोचना हुई है । "अंगराज" में आनन्द कुमार ने कृष्ण के चरित्र के कूटनीतिक पक्ष को अवमूल्यित करके प्रस्तुत किया है । कृष्ण के कृत्य वही है, पर उसकी व्याख्या उनके प्रभामंडित चरित्र को खंडित करता है । इसमें कृष्ण युद्द में जय प्राप्ति हेतु धर्मनीति की अवहेलना भी अनुचित

नही मानते । केदारनाथ 'प्रभात' कृत "कर्ण" में कृष्ण युगीन परिदृश्य के अनुरूप युद्ध के विरोधी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं, किन्तु अनीति पर आधारित कूटनीति के पक्षधर भी है । "जयभारत" में मैथिलीशरण गुप्त कृष्ण के अलौकिक व दिव्य रूप का मोह पूर्णतया नही छोड़ पाये हैं । किन्तु फिर भी कृष्ण का चरित्रांकन आधुनिक नव्य मानवतावादी, कर्मवादी, बौद्धिक व आदर्शवादी चेतना से प्रभावित है । "जयभारत" में कृष्ण सहज मानवीय व युद्ध विरोधी चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं । दिनकर कृत "रश्मिरथी" में कृष्ण चरित्र के अलौकिक पक्ष की रक्षा करते हुए, उनके सहज मानवीय रूप की भी प्रस्तुति हुई है । "रश्मिरथी" में कृष्ण युद्ध के विध्वंशक ज्वाला को रोकने के लिए व्याकुल मानव दृष्टिगत् होते हैं । वे शान्तिवादी मानव के रूप में भी प्रस्तुत हुए हैं । रांगेय राघवकृत "पाचाली" में कृष्ण का चरित्राकन तत्कालीन दास प्रथा के विरोधी तथा मानवतावादी मानव के रूप में हुआ है । जनवादी नेता की भाँति वे एक वर्ग द्वारा मानव श्रम के शोषण की तीव्र भर्त्सना करते हैं । यही नहीं कृष्ण नारी अधिकारों उनके स्वत्व व स्वतन्त्रता के प्रति जागरूक मानव के रूप में भी प्रस्तुत हुए हैं । "सेनापति कर्ण" में कृष्ण का चरित्र निरूपण बौद्धिक व मानवतावादी चेतना से प्रभावित है । इस रचना में कृष्ण कूटनीति को ही विजय नीति मानते हैं । "सूर्य-पुत्र" में जगदीश चतुर्वेदी ने कृष्ण का चरित्र युगीन संवेदना के अनुरूप प्रस्तुत किया है । इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन गांधीवाद से प्रभावित है ।

रामकथाधृत रचनाओं में "संशय की एक रात" में नरेश मेहता ने सूक्ष्म कथाधार पर राम के अन्तर्द्वन्द्वों का सफल निरूपण किया है । इसमें प्रयोगवादी व नयी कविता की प्रवृत्तियों यथा मूल्यों का विघटन, विद्रोह चेतना, कुंठा, निराशा, सत्राश आदि का प्रभाव राम के चरित्रांकन पर है । नरेश मेहताने पौराणिक दिव्य व अलौकिक चरित्र राम को संशयग्रस्त व युद्ध जनित वातावरण के प्रति प्रश्नाकुल मानसिकता से आवृत्त सामान्य मानव के रूप

में निरूपित किया है । कवि के शब्दों में - "युद्ध आज की प्रमुख समस्या है । सम्भवतः सभी युगों की । इस विभीषिका का सामाजिक एवं वैयक्तिक धरातल पर सभी युगों में भोगा जाता रहा है । और इसीलिए राम को भी ऐसा प्रतीकत्व देकर प्रश्न उठाये गये है । जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते हैं, उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा पुरुष भी सनातन प्रतीक होते हैं । अपने प्रयोजन के लिए मैनें वह स्थल चुना जो घटनाहीन था, किन्तु मेरी रचना संभावना के लिए उर्वर। राम जिस द्विविधत्व को प्रस्तुत करते हैं, उसके लिए यही उपयुक्त स्थल था । यह अंतरीप मन का, स्थल का ।-1

"संशय की एक रात" में राम उस युद्ध का निषेध करते हैं, जो समाज व देश के लिए घातक हो, किन्तु जब देश के अस्तित्व व जन समाज के स्वतन्त्रता व कल्याण का प्रश्न उठ खड़ा हो; ऐसे समय में वे युद्ध की आवश्यकता को स्वीकार भी करते हैं ।

"प्रवाद-पर्व" में राम का चरित्रांकन नयी कविता की प्रवृत्तियों से पूर्णतया प्रभावित है, साथ ही मौलिक रूप में प्रजातांत्रिकता से भी प्रभावित है । प्रवाद-पर्व की रचना 1975 ई0 में हुई थी । इस समय देश में प्रजातन्त्र शासन होते हुए भी शासन प्रजा के मौलिक अधिकारों तक पर हावी हो रही थी । जन सामान्य के अभिव्यक्ति प्रकट करने का अधिकार तक प्रतिबन्धित हो रहा था । ऐसे वातावरण के प्रभाव स्वरूप ही इस रचना में जन सामान्य के अधिकारों के प्रति जागरूक युवा वर्ग का आरोपण राम के चरित्रांकन पर हुआ है । "प्रवाद-पर्व" के राम राज्य को सामूहिक आकांक्षा का प्रतीक मानते हैं । मानव के अभिव्यक्ति को महत्ता प्रदान करते हैं । वे देश की शीर्ष स्थान की अधिकारिणी नारी सीता व जंगल में लकड़ी बीनने वाली असहाय नारी में कोई अंतर नहीं मानते समग्रतः इस रचना में जन सामान्य के अधिकारों व स्वतन्त्रता के प्रश्नों को राम के चरित्र के माध्यम से सुलझाने का प्रयास हुआ है ।

इन सभी रचनाओं का विस्तृत विवेचन अगले अध्यायों में प्रस्तुत हुआ है ।

1· संशय की एक रात - भूमिका में कवि

राम

भारतीय वाङ्मय में राम का चरित्र सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आदर्श व पूज्य रहा है । पौराणिक रूप में राम का चरित्र विष्णु के अवतार के रूप में प्राप्त होता है, जो धरती से अधर्म का विनाश करने तथा धर्म की स्थापना करने के लिए अवतार लेते हैं । ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण, अग्नि पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, स्कन्द पुराण, शिव पुराण तथा श्रीमद्भागवद् पुराण में राम का वर्णन अवतारी चरित्र के रूप में ही हुआ है । "वाल्मीकि-रामायण" तथा "रामचरितमानस" में भी राम का वर्णन विष्णु के अवतार अवश्य हैं, किन्तु लौकिक धरातल से अधिक गहराई से जुड़े हैं, किन्तु "रामचरितमानस" में उनके दिव्य व अलौकिक रूप का अंकन विशेष रूप से हुआ है । अपने उदात्त व आदर्श चरित्र के कारण राम की महत्ता आज भी न्यून नहीं हुई है ।

आधुनिक युग में नवीन चेतना के उन्मेष के कारण तथा युगीन प्रासंगिकता के अनुरूप राम के दिव्य व अलौकिक चरित्र को मानवीय तथा लौकिक धरातल पर रखकर, उनके आदर्श स्वरूप का अंकन हुआ । आधुनिक युग में बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में द्विवेदी-कालीन परिवेश में रामकथाधृत रचनाओं का बाहुल्य प्राप्त होता है । युगों से भारतीय जन-मानस के आदर्श राम का चरित्र आधुनिक युग में भी भारतीय जन-मानस का आदर्श बना । इतना अवश्य हुआ कि उनका चरित्र युगीन-सन्दर्भों के अनुकूल लौकिक धरातल से जुड़ गया ।

नव्य-चेतना युक्त प्रबन्ध-कृतियों में "रामचरित-चिन्तामणि, "पचवटी", "साकेत", "कौशल-किशोर", "उर्म्मिला", "राम की शक्ति पूजा", "वैदेही-वनवास", "कैकेयी", "साकेत-सन्त", "रावण-महाकाव्य", "रामराज्य", "माण्डवी", "भूमिजा", "संशय की एक रात", उत्तरायण", "शबरी", "शम्बूक" व "प्रवाद-पर्व" आदि में राम का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है ।

"रामचरित-चिन्तामणि"-1 राम के चरित्र पर केन्द्रित आधुनिक युग की प्रथम प्रबन्ध कृति है, जिसमें राम का चरित्राकन लौकिक धरातल

1· "रामचरित-चिन्तामणि" रामचरित उपाध्याय, प्र·स·-1920 ई0

पर हुआ है । इस रचना में राम का चरित्र-निरूपण "वाल्मीकि-रामायण" के आधार पर हुआ है । "रामचरित-मानस" का भी प्रभाव यत्र-तत्र प्राप्त होता है । इस तथ्य के पीछे कवि की ईश्वरत्व के प्रति मोह-भावना ही है । "रामचरित-चिन्तामणि" में राम का चरित्र मौलिक रूप में गाँधीवादी, शान्ति-प्रेमी, आदर्शवादी व सामाजिक रूढ़ियों के विरोधी के रूप में निरूपित हुआ है । उदात्तता के साथ-साथ उनके मानवीय दुर्बलता का भी अकन हुआ है ।

इस रचना में "वाल्मीकि-रामायण" के प्रभाव-स्वरूप राम का चरित्र मानवीय रूप में अंकित हुआ है । वे सांसारिक-भौतिकता व आकर्षण से सर्वथा विरक्त नहीं है । वनवास प्राप्त होने पर राम को भी सामान्य मानव सदृश ही राज्य खोने की व्यथा होती है । इस पीड़ा से उठा अन्तर्द्वन्द, राम को शंकालु बना देता है । वे अपने ही पिता के चरित्र पर सन्देह करते हैं, उन्हें केकय-सुता के प्रेम में वशीभूत विलासी मानते हैं । वे कहते हैं -

सीते ! सुनो केकय-सुता के प्रेम में आबद्ध हो,
या सत्य रक्षा के लिए सद्धर्म में सन्नद्ध हो,
साम्राज्य सौंपा है भरत को भूप ने पर हा! मुझे
वनवास की आज्ञा उन्होंनें दी, बताऊँ क्या तुझे ।-1

यही नहीं वे भरत पर भी शक करते हैं । राज्य-प्राप्ति के पश्चात भरत राजमद् में अभिमानी हो सकते हैं, इस कारण वे सीता को पूर्व ही सचेत करते हैं । यहां उनमें संशयी व्यक्तित्त्व का ही आरोपण हुआ है । राम का भरत के प्रति यह सन्देह राजतन्त्र भी आक्षेप करता है । वे कहते हैं -

राजा नहीं होता किसी का सत्य इसको जानना ।
इस हेतु मुझसे भी अधिक सीते ! भरत को जानना ।
नृप है उसी को मानता, जो दास हो माने उसे ।-2

1· रामचरित चिन्तामणि - रामचरित उपाध्याय, पृ0 75

2· वही, पृ0 76

"रामचरित चिन्तामणि" में राम भाग्यवादी मानव के रूप में निरूपित हुए हैं । "ब्रह्म पुराण" में भी राम का भाग्यवादी रूप प्राप्त होता है ।-1 "रामचरित-चिन्तामणि" मे राम अपने वनवास को विधि का विधान मानकर स्वीकार करते हैं । उन्हें अपनी इस दशा पर गहरी आत्मव्यथा होती है -

केकय सुता को या नृपति को दोष देना भूल है,
सुख मूल है जो भाग्य भैया बस वही दुःख मूल है ।-2

इस रचना में राम का चरित्र निरूपण परम्परागत् रूप में ही सीता के प्रति संशयी मानव के रूप में हुआ है । "वाल्मीकि-रामायण" में रावण पर विजय प्राप्ति के बाद सीता के प्रति राम के कठोर व्यवहार का वर्णन हुआ है । सीता के चरित्र पर सन्देह करते हुए, वे कहते हैं_"तुम्हारे चरित्र में सन्देह का अवसर उपस्थित है, फिर भी तुम मेरे सामने खड़ी हो जैसे आंख के रोगी को दीपक की ज्योति नहीं सुहाती, उसी प्रकार आज तुम मुझे अत्यन्त अप्रिय जान पड़ती हो । अतः जनक कुमारी तुम्हारी जहां इच्छा हो चली जाओ । अब तुमसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है ।"-3 "वाल्मीकि-रामायण" की तुलना में "रामचरित चिन्तामणि" के राम अधिक उग्र हैं । वनवास की कठोर परिस्थितियों में प्रतिपग साथ देने वाली सीता पर, उन्हीं के कारण अपहरण की भीषण वेदना झेलने वाली पत्नी पर वे अरिअंक में रहने का घृणित आरोप लगाते हैं । राम की संवेदनहीनता व कठोरता इसी रूप में प्रकट होता है कि वे सीता को सान्त्वना देने के बदले उन्हें अपने कटु वचनों से मर्माहत् करते हैं -

अरि ने लगाया अंक में, तुमको स्वगृह रक्खे रहा ।
किस भांति फिर रक्खू तुम्हें, निर्लज्ज हो अपने यहां ।-4

1· भातर्य दिहितं कर्मनैव तच्चान्यथा भवेत् ॥144॥ ब्रह्मपुराण, अध्याय 123, पृ0 676
2· रामचरित-चिन्तामणि, पृ0 84
3· प्राप्त चरित्र संदेहा मम प्रतिमुखे स्थिता । दीपो नेत्रातुरस्वैव प्रतिकूलासे में दृढ़ा ॥17॥
तद् गच्छ त्वानुजानेय्ध यथेष्टं जनकात्मजे । एता दिशो भद्रे कार्यमस्ति नमे त्वया ॥18॥
4· रामचरित-चिन्तामणि, पृ0 322

राम की कठोरता व संवेदन हीनता वहां अधिक मुखर हो उठती है जब वे युद्ध का उद्देश्य लोकलज्जा बताते है । राम सीता के लिए नहीं अपितु स्वयं को भीरू कहे जाने के भयवश ही युद्धोन्मुख होते हैं । "रामचरित चिन्तामणि" के राम के चरित्र के इस पक्ष पर आक्षेप करते हुए डॉ0 श्यामनन्दन किशोर ने लिखा है–"सीता को प्यार से अपनाने, सन्तोष व्यक्त करने या धीरज बंधाने की जगह वे उसे अपयश के भय से, अरि-अंक में रहने का आरोप लगाकर अछूत समझते हैं ।----"रामचरित-चिन्तामणि" के राम ईश्वर तो क्या साधारण मानव कहे जाने के भी अधिकारी नहीं है ।"-1

यही नहीं सीता की अग्नि-परीक्षा लेने के बाद भी राम समाज में व्याप्त मिथ्या प्रचार के कारण सीता को निर्वासित कर देते हैं नारी के गर्भावस्था के असहाय व संवेदनशील परिस्थिति में, उसके प्रति कठोर से कठोर व्यक्ति भी दयार्द्र हो उठते हैं, किन्तु राम को सीता से अधिक लोक-लाज का भय भयभीत करता है । वे कहते हैं -

सीता बाराकी के लिये अपवाद फिर क्योंकर सहूँ ?
दर्शन तपोवन का उसे भी इष्ट है इस ब्याज से ।
उसको निकालो गेह से, मुझको बचाओ लाज से ।-2

"रामचरित-चिन्तामणि" में राम का चरित्रांकन जातिवादी रूढ़ियों में जकड़े मानव के रूप में हुआ है । वे शम्बूक का वध केवल इस कारण करते हैं, क्योंकि वह शूद्र होते हुए भी तपस्या कर रहा था । तत्कालीन सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था में निम्न वर्ण के व्यक्ति को तपस्या का अधिकार न था । राम शम्बूक से कहते हैं -

---

1· आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान - डॉ0 श्यामनन्दन किशोर, पृ0-22[illegible]

2· रामचरित चिन्तामणि - पृ0 322

भूमिदेव या देव शूद्र कैसे होवेगा ?
क्या तू अपने प्राण हमारे कर खोवेगा ?-1

"वाल्मीकि-रामायण" की भाँति इस रचना में भी शम्बूक वध के पीछे विप्रसुत को जीवित करने के परम्परागत् उद्देश्य का ही निरूपण हुआ है । किन्तु आधुनिक युग की बौद्धिकता एवं मानवतावादी दृष्टि के सन्दर्भ में यह तर्क मान्य नहीं हो सकता । उनके इस कृत्य के कारण रूप में अनार्य-वर्ग को दलित करने व उनके उत्थान को बाधित करने की भावना ही परिलक्षित होती है ।

"रामचरित-चिन्तामणि" के राम का चरित्रांकन एक ओर जहां मानवीय दुर्बलता से युक्त मानव के रूप में हुआ है, वहीं नव्य चेतनाशील, बौद्धिक, गांधीवादी तथा सामाजिक रूढ़ियों के विरोधी रूप में भी हुआ है ।

इस रचना में राम चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है, उनका शान्ति प्रेमी रूप । वे भौतिकता के व्यामोह में फंसकर किये जाने वाले युद्ध के अनौचित्य के बारे में लक्ष्मण को सचेत करते हैं । वनवास के समय लक्ष्मण के विद्रोही रूप को शान्त करते हुए, राम उनसे कहते हैं-

मत लड़ो धरती, धन के लिये,
अघ करो मत जीवन के लिये ।-2

इस रचना में राम का चरित्रांकन आदर्शवादी रूप में हुआ है । राम स्वजनों को त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से भी अधिक महत्ता प्रदान करते हैं । वे धर्म से विमुख होकर, अपने ही बन्धु-बान्धवों को विनष्ट करके प्राप्त किसी भी ऐश्वर्य को तुच्छ मानते हैं । राम का यह त्यागपूर्ण चरित्र व उदात्त आदर्श रूप इस रचना की मौलिकता है । वे कहते हैं-

---

1· वही, पृ0 344

2· रामचरित चिन्तामणि - पृ0 86

कभी भरत को मार राज्य लेने न कहूंगा ।
हो करके सकलंक जगत् में मैं न रहूंगा ।।
यदि स्वजनोंका मार त्रिलोकी मिले, न लूंगा ।
सदा रहूंगा यही धर्म से नहीं टलूंगा ।।-1

रामचरित उपाध्याय जी ने राम का चरित्र चित्रण मौलिक रूप में सामाजिक रूढ़ियों के विरोधी के रूप में किया है । सामाजिक रूढ़ियों पर आक्षेप करने वाले राम के इस चरित्र पर आधुनिक सुधारवादी व्यक्तित्व का ही आरोपण हुआ है । राम समाज में व्याप्त 'बहुपत्नी प्रथा' की तीव्र भर्त्सना करते हैं । इसी कारण वे अपने पिता तक की निन्दा करते हैं । आदर्शवादी दृष्टिकोण से उनका यह चरित्र नीति-संगत नहीं कहा जा सकता, किन्तु सामाजिक सुधारवादी दृष्टिकोण से उनका यह चरित्र उदात्त ही कहा जायेगा—

बहु-कलत्र वाले नर जग में होते हैं अविचारी,
इन्द्रिय-वश हो जीवन भर वे पाते हैं दुःख भारी ।
जैसे स्त्री को कहा गया है पतिव्रत का पालन ।
त्यों नर को भी कहा गया है, एक स्त्री का लालन ।-2

"रामचरित-चिन्तामणि" में राम की संवेदनशीलता का भी अंकन हुआ है । अन्त में वे सीता-परित्याग के अनौचित्य तथा निरर्थकता के प्रति सचेत होते हैं । वे अपने इस कृत्य के कारण गहन आत्मव्यथा व अन्तर्द्वन्द में घिर जाते हैं । अपनी भूल पर पश्चाताप् करते हुए वे सीता को पुनः स्वीकार करना चाहते हैं -

जो लोक के अपवाद-भय से हो गयी अति भूल है,
उसका भयंकर आज भी मेरे हृदय में शूल है ।
जब तक नहीं सीता मिलेगी, दूर होगा वह नहीं ।-3

1· रामचरित-चिन्तामणि, पृ0 119

2· वही, पृ0 138

3· वही, पृ0 374

समग्रतः "रामचरित-चिन्तामणि" में राम के परम्परागत् रूप के साथ-साथ मौलिक स्वरूप का भी चित्रण हुआ है । राम का चरित्र न तो नितान्त ईश्वरीय ही है और न ही समग्रतः मानवीय । वे परम्परागत् रूप के साथ-साथ मानवीय दुर्बलता संयुक्त, आदर्शवादी व रूढ़ियों के विरोधी तथा अन्ततः अपनी भूलों का पश्चाताप् करने वाले मानव भी है । कवि ने "राम को राजनेता के रूप में उपस्थित कर मौलिकता दिखलाने का प्रयास तो किया, पर सफल न हो सके । उनमें न प्राचीनता की श्रद्धा ही रही, न नवीनता का आकर्षण । राम के चरित्र का पतन दीखता है । अवतारी पुरूष राम के चरित्र में उनके पुत्र, पति, भ्रातृ आदि रूपों का सम्यक् निर्वाह नहीं हो सका है ।"-1 रामचरित-चिन्तामणि में राम का चरित्रांकन सम्यक् रूप में नहीं हो पाया है । वे परम्परा व नव्यता के मध्य की कड़ी बन कर रह गये हैं ।

"रामचरित-चिन्तामणि" के पश्चात् मैथिलीशरण गुप्त कृत "पंचवटी"-2 में राम का चरित्र-निरूपण हुआ है । इस रचना में राम का परम्परागत् रूप में ही अंकन हुआ है, किन्तु आधुनिक नव्य्-चेतना का भी प्रभाव दृष्टिगत् होता है । आधुनिक मनोवृत्तियों के परिणाम-स्वरूप उनमें मानवीय रूप अधिक मुखर हुआ है, उनके गुरूगाम्भीर्य चरित्र में मानवोचित स्निग्धता एवं कोमलता प्राप्त होती है ।

"पंचवटी" में राम के चरित्रांकन पर गाँधीवादी रामराज्य की परिकल्पना का प्रभाव है । जंगल के निवासियों व पशु-पक्षी सभी में समता व एकता की भावना जाग्रत करने में, राम की सहभागिता महत्वपूर्ण होती है ।

1· आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान-श्यामनन्दन किशोर, पृ0 222

2· पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त, रचना-1925 ई0

अहा ! आर्य्य के विपिन राज्य में सुखपूर्वक सब जीते है ।
सिंह और मृग एक घाट पर आकर पानी पीते हैं ।।
गुह, निषाद, शबरों तक का मन, रखते हैं प्रभु कानन में ।-1

इस रचना में राम मौलिक रूप में मानव सुलभ संवेदना से युक्त कोमल हृदयी चरित्र के रूप में निरूपित हुए हैं । पंचवटी में वे सामान्य मानव की ही भाँति सीता व लक्ष्मण से हास-परिहास करते दृष्टिगत् होते हैं । सीता और लक्ष्मण पर फूल बरसाते हुए राम में उनका ईश्वरीय व गम्भीर रूप विलुप्त हो जाता है । वे कहते हैं -

तनिक देर ठहरो, मैं देखूं तुम देवर भाभी की ओर ।
शीतल करूं हृदय यह अपना पाकर दुर्लभ हर्ष-हिलोर ।-2

"पंचवटी" के बाद मैथिलीशरण गुप्त जी की ही दूसरी रचना "साकेत" में राम के परम्परागत् चरित्र की मौलिक दृष्टिकोण से व्यंजना हुई है । गुप्त जी राम के चरित्र के परम्परागत् रूप की बहुत दूर तक रक्षा करते हैं, साथ ही आधुनिक परिस्थितियों के प्रभावस्वरूप नव्यता से भी प्रभामंडित करते हैं । "साकेत" में राम ईश्वर, महामानव व सामान्य् मानव हैं । इसमें ईश्वर के मानवता के स्थान पर मानव की ईश्वरता का निरूपण हुआ है । गुप्त जी राम के ईश्वरत्व में विश्वास करते थे तथा साकेत में उन्हें ईश्वरत्व की विषय भूमि भी मिल जाती है, लेकिन चित्रण के स्तर पर उन्हें महामानव, राष्ट्रनायक व लोक नायक के रूप में ही चित्रित किया गया है । "साकेत" में राम का चरित्रांकन गांधीवादी, बौद्धिक तथा मानवतावादी चेतना से प्रभावित है ।

1· पचवटी, पृ0 12

2· वही, पृ0 48

आधुनिक बौद्दिक व राष्ट्रवादी चेतना के प्रभाव स्वरूप "साकेत" के राम पर राष्ट्रप्रेमी मानव चरित्र का आरोपण हुआ है । इस रचना में राम पृथ्वी को ही स्वर्ग बनाना चाहते हैं । परम्परागत् रूप में अधर्म के विनाश तथा धर्म की स्थापना हेतु अवतार लेने वाले राम का चरित्र "साकेत" में सर्वथा मौलिक रूप में वर्णित है । वे समस्त पृथ्वी की कल्याण-कामना से कहते हैं -

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया
सन्देश यहां मैं नहीं स्वर्ग का लाया
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।-1

नव्य मानवतावादी चेतना का प्रभाव भी राम के चरित्रांकन पर दृष्टिगत् होता है । "साकेत" में राम के चरित्रांकन का मौलिक पक्ष है, उनका लोकनायक रूप । राम जन-जन के अधिकारों के प्रति जागरूक हैं । यही नहीं, वे समाज के दलित वर्ग का भी उत्थान चाहते हैं । राम का यह चरित्र "साकेत" में प्रथम बार निरूपित हुआ है । वे कहते हैं -

निज रक्षा का अधिकार रहे जन-जन को,
सबकी सुविधा का भार किन्तु शासन को ।
मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं ।
जो विवश, विकल, बलहीन, दीन शापित हैं ।-2

"साकेत" में राम के चरित्र का सर्वाधिक उदात्त रूप है, उनके द्वारा ऋक्ष व बानर सदृश रह रहे वनवासी मानवों को आर्यत्व प्रदान करने की संकल्पना । आधुनिक युग में गांधीवादी विचारधारा तथा नवजागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न चेतना के फलस्वरूप समाज के दलित व निम्न वर्ग के प्रति मानवीय संवेदना

1· साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 111

2· वही, पृ0 111

का उन्मेष हुआ । राम के चरित्रांकन पर भी इस नवीन चेतना का प्रभाव है । वे कहते है -

बहु जन वन में हैं बने ऋक्ष-बानर से,
मैं दूगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से ।-1

मैथिलीशरण गुप्त जी ने राम का चरित्र निरूपण समतावादी मानव के रूप में किया है । इस रचना में वे राजवंश तथा उच्च वर्ग से सम्बद्ध होते हुए भी निषादराज गुह से बन्धुत्व व्यवहार करते हैं । यही नही वे निषाद पत्नी को "भाभी" कहकर सम्बोधित करते हैं । उन्हें अपने समकक्ष महत्ता देते हैं । यहां प्राचीन रामकथा में नवीन उद्भावना जोड़ा गया है। इसके पीछे नवयुग के लिए उसकी विश्वसनीयता की स्थापना का उद्देश्य भी दृष्टिगत् होता है । निषाद पत्नी के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए राम कहते हैं -

वन का व्रत हम आज तोड़ सकते कहीं,
तो भाभी की भेंट छोड़ सकते नहीं ।-2

बल्देव प्रसाद मिश्र कृत "कौशल-किशोर" में राम का चरित्रांकन मौलिक रूप में अहिंसावादी, आदर्शवादी, जनवादी, संवेदनशील तथा भावुक मानव के रूप में हुआ है । इस रचना में राम के किशोरावस्था का निरूपण हुआ है । "कौशल-किशोर" की भूमिका में कवि ने लिखा है -"यह जमाना भौतिक विज्ञान का है इसलिए रामकथा को यदि विशेष रोचक बनाना है तो उसे एक विशेष दृष्टिकोण से ही देखना होगा ।"-3 इस रचना में राम के चरित्र को युगीन परिस्थितियों के अनुकूल सर्वथा नवीन रूप में वर्णित किया गया है ।

1· सकेत, पृ0 112

2· साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 67

3· कौशल किशोर - बल्देव प्रसाद मिश्र, भूमिका में कवि - पृ0-11, रचनाकाल-1934 ई0

"कौशल-किशोर" में आधुनिक नव्य चेतना के प्रभावस्वरूप राम का चरित्रांकन मौलिक रूप में अहिंसावादी मानव के रूप में हुआ है । किन्तु वे खलपात्रों के विनाश हेतु हिंसा का निषेध भी नहीं करते । मृगया हेतु गये राम निरीह पशुओं की हत्या की तीव्र भर्त्सना करते हैं । वे मानव में निहित पाशविकता को समाप्त करना चाहते हैं । वे कहते हैं -

मित्रों । पशुओ को न गिराओ,
यदि इच्छा है तो पशुबल का वधकर
जीवन उच्च बनाओ ।
× × ×
छिपे-छिपे पशुबध से तो है
खुले खेत में खल-बध अच्छा ।-1

"साकेत" के सदृश इस रचना में भी राम का चरित्रांकन लोकनायक के रूप में हुआ है । वे गांव-गांव जाकर दीन-दुखियों के क्लेश का निवारण करते हैं । राम का यह चरित्र आधुनिक प्रबन्ध कृतियों में "साकेत" के बाद "कौशल किशोर" में प्राप्त होता है । राजवंश के राजकुमार का जनसामान्य् से आत्मीयता उनकी उदात्तता का ही द्योतक है—

गांव-गांव जा जाकर मिलते,
दीनों से आत्मीय सदृश वे ।-2

"कौशल-किशोर" में राम का चरित्रांकन प्रथमतः भावुक प्रेमी के रूप में हुआ है । वे सामान्य मानव के सदृश ही कोमल भावों से परिपूरित भावुक व संवेदनशील किशोर हैं । वे सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति सीता को देखकर उनके प्रेम में निबद्ध हो जाते हैं । सीता के प्रति उनका प्रेम इतना प्रबल होता

1· कौशल-किशोर, पृ0 45

2· वही, पृ0 29

है कि वे अपने ऊपर अंकुश नहीं रख पाते, भावुकता उन पर प्रभावी हो जाती है-

भूलकर अपने मंजुल ढंग, हुए श्रीराम अनुज के संग,
हुआ पद-पद पर कष्ट महान, रहा बस कोमल छवि का ध्यान।-1

द्विवेदी कालीन आदर्शवादी चेतना के प्रभाव स्वरूप कवि ने राम की भावुकता पर मर्यादा व आर्य धर्म का अंकुश लगा दिया है । इस रचना में राम सीता के प्रति अपने प्रेम-भावना को प्रतिबन्धित करते हुए अपना प्रेम विधि के विधान पर छोड़ देते हैं । वे मर्यादा व आर्य धर्म को महत्वपूर्ण मानते हुए अपनी संवेदना व अल्प-कालिक प्रेम पर इनका अंकुश लगा देते हैं । वे कहते हैं -

वृथा कल्पना की लहरों में झूल उठाया दुःख के भार,
आर्यधर्म । रह सुदृढ़ हमारा मर्यादामय हो संसार ।।
विधि विधान होगा तो होगा हम दोनों का नाता ।
मूर्ख मनुज ही व्यर्थ हृदय कलपाने में फल पाता ।।-2

बालकृष्ण 'नवीन' कृत "उर्म्मिला" छायावादी काव्यधारा की विशिष्ट काव्यकृति है । इस रचना में राम का चरित्रांकन युगीन सन्दर्भो के अनुकूल नवीन रूप में हुआ है । उर्मिला पर केन्द्रित रचना होने के कारण इसमें राम का चरित्र संक्षिप्त रूप में ही वर्णित हुआ है । "नवीन" जी ने राम का चरित्रांकन आधुनिक बौदिक, मानवतावादी, अहिंसावादी, आर्यधर्म के प्रचारक, साम्राज्यवाद के विरोधी तथा समष्टिवादी मानव के रूप में हुआ है । "उर्म्मिला" की भूमिका में कवि ने लिखा है -"राम की वन यात्रा भारतीय संस्कृति के प्रसारार्थ एक महान यज्ञ के रूप में थी ।"-3

1· कौशल किशोर - बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 163

2· वही, पृ0 192

3· उर्म्मिला- बालकृष्ण शर्मा नवीन, प्र0सं0 1934 ई0, भूमिका में कवि

"उर्म्मिला" में राम का चरित्रांकन मौलिक रूप में मानवतावादी व कर्मवादी मानव के रूप में हुआ है । वे अपनी वनयात्रा को मानवता के चरणों में प्रथमाहुति मानते हैं । "साकेत" की अपेक्षा राम का चरित्र इस रचना में अधिक उदात्त है । वे जीवन के अभिशापों को भी वरदान समझकर स्वीकार करने की प्रेरणा प्रदान करते हुए कहते हैं -

जीवन में वरदान समझना, अभिशापों को ही जय है,
युद्धस्थल में तनिक हिचकना, ही मानवता का क्षय है ।-1
× × × ×
यह वनगमन प्रथम आहुति है, मानवता के चरणों में -2

"उर्म्मिला" में राम युद्ध के विरोधी तथा अहिंसावादी मानव के रूप में चरित्रांकित हुए हैं । आधुनिक प्रबन्ध कृतियों में राम का यह चरित्र सर्वप्रथम "उर्म्मिला" में निरूपित हुआ है । राम लंकापति रावण के साथ युद्ध के इच्छुक न थे, उन्हें जन सामान्य् के उत्थान व विकास हेतु कार्य करने की ही इच्छा थी । वे कहते हैं -

विश्व विजय की चाह नहीं थी, और न रक्त पिपासा थी ।
केवल कुछ सेवा करने की, उत्कण्ठित अभिलाषा थी ।-3

'नवीन' जी ने "उर्मिला" में राम को अहिंसावादी व साम्राज्यवाद के विरोधी मानव के रूप में निरूपित किया है । वे रावण को अपना व्यक्तिगत शत्रु नहीं मानते अपितु उसकी निरंकुशता व साम्राज्यवादी चरित्र के विरोधी है । राम समस्त जग को विविध समस्याओं व कष्टों से मुक्त कराना चाहते हैं, जबकि रावण साम्राज्यवादी भावना के कारण समस्त जग पर अधिकार का इच्छुक था । राम

1· उर्म्मिला, पृ० 298

2· वही, पृ० 301

3· उर्म्मिला - बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ० 539

रावण पर शस्त्र द्वारा प्राप्त विजय पर खेद व्यक्त करते हैं । इस रचना में राम के चरित्राकन पर आधुनिक गांधीवादी अहिंसावाद का प्रभाव है । राम रावण पर शस्त्र द्वारा विजय नहीं प्राप्त करना चाहते, अपितु उन पर निःशस्त्र विजय प्राप्ति के इच्छुक थे । राम के इस दृष्टिकोण में उनकी उदात्तता का ही उद्बोधन प्राप्त होता है । वे कहते हैं -

एक खेद है यह शस्त्रोपम्, होकर सत्य हुआ विजयी,
यदि अशस्त्र जय होती, तो वह होती पूर्ण विशुद्ध नयी ।-1

आधुनिक नव्य चेतना के प्रभाव स्वरूप "नवीन" जी ने "उर्म्मिला" में राम का चरित्र मौलिक रूप में साम्राज्यवाद व भौतिकतावाद के विरोधी मानव के रूप में निरूपित किया है । उनका यह चरित्र "उर्म्मिला" में प्रथम बार वर्णित हुआ है । राम कहते हैं -

है साम्राज्यवाद का नाशक, दशरथनन्दन राम सदा,
हैं भौतिकतावाद विनाशक जन., मन, रंजन राम सदा ।-2

इस रचना में "साकेत" की ही भाँति राम के समष्टिवादी तथा धरती को स्वर्गीय वैभव प्रदान करने के इच्छुक चरित्र का निरूपण हुआ है । राम जनवादी तथा सत्य के समर्थक मानव भी हैं । वे संसार में ज्ञान की विमल ज्योति प्रसारित करना चाहते है तथा इनके सम्मिलन से जग को स्वर्ग सदृश महत्ता शाली बनाना चाहते हैं—

आगे-आगे ध्वजा सत्य की, पीछे-पीछे जन-सेना,
त्रेता का यह धर्म सनातन, जग को विमल ज्ञान देना ।
देखो तो यह जग क्षण भर में, स्वर्गलोक बन जायेगा ।-3

---

1. उर्म्मिला,पृ0 541
2. वही, पृ0 555
3. वही, पृ0 565-566

'नवीन' जी ने राम पर आर्य संस्कृति के संवाहक व त्यागी व्यक्तित्व का आरोपण किया है । राम जीवन में संचय की अपेक्षा त्याग को विशिष्ट महत्ता प्रदान करते हैं । राम का यह चरित्रांकन "उर्मिला" में प्रथम बार हुआ है । राम कहते हैं -

संचय नहीं, अपितु जीवन में है नित त्याग सार राजन ।
अतः आर्य संस्कृति ने जग को, दिया मन्त्र स्वाहा। स्वाहा ।।-1

इस रचना में राम का चरित्रांकन "साकेत" की ही भांति समन्वयवादी तथा विश्व एकता के समर्थक मानव के रूप में भी हुआ है । राम स्व और पर की सीमा से परे विश्वमानवता व एकता के मार्गदर्शक तथा उत्तर दक्षिण के सम्मिलनकर्ता व समन्वयवादी है । राम का यह चरित्र "उर्म्मिला" में मौलिक रूप में वर्णित हुआ है ।

समग्रतः आर्य संस्कृति के प्रचारक प्रसारक राम का चरित्र उनकी उदात्तता का द्योतक है । डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त के शब्दों में– "राम का रूप आदर्श एवं मर्यादा से युक्त है । यहां वे आर्य संस्कृति के रक्षक और प्रसारकर्ता चित्रित किये गये हैं । राम की वन यात्रा का उद्देश्य आर्य संस्कृति का प्रसारही है और वे अपने उद्देश्य में सफल भी होते हैं ।"-2 आर्य संस्कृति के प्रचारक होने के साथ-साथ वे नव्य चेतना संयुक्त आधुनिक बौद्दिक व जागरूक युवा भी हैं ।

छायावादी काव्य रचना "राम की शक्ति पूजा" में निराला जी ने राम का चरित्रांकन सर्वथा मौलिक रूप में किया है । इस रचना में वे दिव्यत्व व महामानवत्व से परे सामान्य, संशयग्रस्त तथा भविष्य के प्रति चिन्तित युवा के रूप में निरूपित हुए हैं । डॉ0 प्रेमचन्द महेश्वरी के शब्दों में– "राम की

1· उर्मिला - बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ0 571

2· हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य - डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त, पृ0 188

शक्ति पूजा" के राम सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय से द्वन्द्वातीत प्रज्ञा पुरूष नहीं है, अपितु पराजय की आशंका से ग्रस्त, शंकाओं और प्रश्नों के भंवर में फंसे हुए हैं और आधुनिक अस्तित्ववादी स्थितियों से जूझते हुए मानव का प्रतिनिधित्व करते हैं ।"-1 इस रचना में राम का यह चरित्रांकन छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से प्रभावित है ।

"वाल्मीकि-रामायण" में राम सीता को किसी भी प्रकार राक्षसराज रावण से छीन लेने की प्रतिज्ञा करने वाले, दृढ़ निश्चियी चरित्र का वहन करते हैं ।-2 किन्तु "राम की शक्ति पूजा" में राम अपनी विजय के प्रति संशयग्रस्त, दुर्बल हृदय के मानव है । रावण के साथ हो रहे युद्द में, राम का हृदय अपनी विजय के प्रति सशंकित हो उठता । पूर्ववर्ती रचनाओं में जहां राम अरिदमन हेतु पहले से ही संकल्पबद्द दृष्टिगत होते हैं, वहीं इस रचना में वे अपनी विजय के प्रति भी आश्वस्त नहीं हो पाते -

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग जीवन में, रावण-जय-भय ।
× × × ×
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार ।
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार ।-3

"राम की शक्ति पूजा" में राम आधुनिक युग के युवावर्ग में निहित अनास्था व संशयग्रस्त मानसिकता के प्रतीक बनकर उभरे हैं । इस रचना में राम के परम्परागत् दिव्य, अलौकिक तथा ईश्वरीय चरित्र का निषेध तो हुआ ही है, साथ ही द्विवेदी युगीन महामानवीय स्वरूप का भी निषेध ही

1· हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप-विकास- प्रेमचन्द महेश्वरी, पृ० 184

2· अस्मिन मुहूर्ते विजये प्राप्ते मध्य दिवाकरे ।
सीता हृत्वा तु मे जातु क्वासी यास्यति यासयतः ।। श्रीमद् बाल्मीकि रामायण, पृ० 20

3· राम की शक्ति पूजा - पृ० 45

हुआ है । "राम की शक्ति पूजा" में राम का चरित्र निरूपण सुख-दुःख, हानि-लाभ के प्रश्नों से विलग द्वन्द्वरहित प्रज्ञा पुरूष के रूप में न होकर पराजय के भय से भयभीत, विभिन्न शंकाओं व समस्याओं से ग्रस्त, सामान्य द्वन्द्वशील मानव के रूप में हुआ है । रावण के आमन्त्रण पर महाशक्ति द्वारा उसका पक्ष लेने पर राम की हताशा प्रबल हो उठती है । शक्ति द्वारा अन्याय का पक्ष लेने पर राम विक्षोभ व मानसिक पीड़ा से घिर जाते हैं । वे अपनी विजय के प्रति आशंकित हो उठते हैं -

"-----------विजय होगी न समर,
यह नहीं रहा नर वानर का राक्षस से रण,
उतरी पा, महाशक्ति रावण से आमन्त्रण,
अन्याय जिधर, है उधर शक्ति ।।"-1

यहां पर कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन आधुनिक परिस्थितियों का ही चित्रण किया है । परतन्त्र भारत में अन्याय और शक्ति सम्मिलित रूप में भारतीय जन सामान्य् को पीड़ित व प्रताड़ित कर रही थी । न्याय के लिए भारतीय जनमानस में व्याप्त गहरे विक्षोभ, आत्म व्यथा व हताश मानसिकता का सशक्त निरूपण राम के माध्यम् से कवि ने अभिव्यक्त किया है ।

असफलता मानव में विरक्ति का जन्म देती है । "राम की शक्ति पूजा" में राम का चरित्र निरूपण अपनी असफलता के कारण विरक्त मानव के रूप में भी हुआ है । शक्ति द्वारा रावण का पक्ष लेने पर राम भी अपनी सफलता के प्रति पूर्णतः निराश हो जाते हैं । सामान्य् मानव सदृश अन्तर्द्वन्द्व व आत्म व्यथा से ग्रसित राम को जीवन के प्रति विरक्ति सी हो जाती है । सीता

1· राम की शक्ति पूजा - निराला, पृ0- 49

को रावण के बन्धन से मुक्त न करा पाने की अपनी अक्षमता के कारण, वे नैराश्यान्धकार में डूब जाते हैं । वे कहते हैं -

> धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
>
> धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध ।
>
> जानकी । हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका ।-1

अन्ततः अनिश्चितता व संशय के भँवर में फँसे राम जीवन के यथार्थ के प्रति उन्मुख होते हैं । अपने स्वत्व व क्षमता के प्रति उनमें नवीन जागरूकता का उन्मेष होता है । राम शक्ति की आराधना करके उन्हें अपने वश में करने के लिए संकल्पबद्ध हो तपस्या करते हैं, तथा शक्ति को प्राप्त करने में सफल होते हैं । यहाँ राम का चरित्र आदर्श व प्रेरणा बनकर अंकित हुआ है । शक्ति का सामना हताशा व निराशा से नहीं प्रत्युत शक्ति से ही किया जाता है ।

"वैदेही-वनवास"-2 का प्रणयन "राम की शक्ति-पूजा" के बाद हुआ, किन्तु यह रचना छायावादी काव्य-वृत्तियों की अपेक्षा द्विवेदी-युगीन काव्य-चेतना से प्रभावित है । इस रचना में राम का चरित्रांकन महामानव तथा जननायक के रूप में हुआ है । 'हरिऔध' जी ने भूमिका में लिखा है-"महाराज रामचन्द्र मर्यादा पुरूषोत्तम, लोकोत्तर-चरित्र और आदर्श नरेन्द्र अथ च महिपाल है सामयिकता पर दृष्टि रखकर इस ग्रन्थ की रचना हुई है अतएव इसे बोधगम्य और बुद्धिसंगत् बनाने की चेष्टा की गई है ।"-3 "वैदेही-वनवास" में राम के परम्परागत् चरित्र को मौलिक दृष्टिकोण से व्यंजित किया गया है । वे समानतावादी, अहिंसावादी, लोकाराधक, त्यागी तथा संवेदनशील मानव के रूप में निरूपित हुए है । लोकाराधन्

1· राम की शक्ति पूजा, पृ0 54

2· "वैदेही-वनवास"-अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", रचना-सन् 1939 ई0

3· वही, भूमिका में कवि, पृ0-6

अपनी पत्नी तक का परित्याग करने वाले राम, सामनीति के समर्थक हैं ।

आधुनिक नव-चेतना तथा गाँधीवादी चेतना के प्रभाव-स्वरूप इस रचना में राम पर शान्तिवादी व अहिंसावादी व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है । वे पृथ्वी को व्यर्थ के रक्तपात व हिंसा से बचाना चाहते हैं । यही नहीं वे समस्त पृथ्वी पर शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने के इच्छुक हैं । पूर्ववर्ती "साकेत" व "उर्मिला" ‹नवीनकृत› में भी राम के समष्टिवादी, व अहिंसावादी रूप का चित्रण हुआ है । "वैदेही-वनवास" राम का यह चरित्र अधिक उदात्त रूप में निरूपित हुआ है । वे कहते हैं -

हो यथा शक्ति न शोणित-पात् ।
सामने रहे दृष्टि के साम ।
रहे महि-वातावरण प्रशान्त ।।-1

"वैदेही-वनवास" में राम का चरित्रांकन मौलिक रूप में सवेदनशील व मानवतावादी मानव के रूप में हुआ है । युद्ध की विभीषिका में भस्मीभूत होने वाले तथा संत्रस्त होने वाले निरीह व निरपराधी जनों की पीड़ा, राम के हृदय को व्यथित कर देती है । लंका पर विजय के प्राप्ति के बाद अयोध्या में शासन करते हुए राम को, युद्ध की याद मानसिक पीड़ा पहुँचाती है—

आर्त लोगों का मार्मिक कष्ट, बहु निरपराधों का संहार ।।
बालवृद्धों का करुण-विलाप, विवश जनता का हाहाकार ।।
आहवों में जो है अनिवार्य, मुझे करते हैं व्यथित नितान्त ।।-2

इस रचना में आधुनिक गाँधीवादी चेतना के प्रभावस्वरूप राम का चरित्रांकन सामनीति के समर्थक, लोकाराधक मानव के रूप में भी हुआ है । उनके इस रूप के पीछे कवि द्वारा राम के परम्परागत् चरित्र को मौलिकता प्रदान करने का उद्देश्य है इन्हें परम्परागत् रूप में राम द्वारा सीता का निष्कासन, लोकापवाद

1· वैदेही-वनवास, पृ0 42

के कारण उत्पन्न शंका दृष्टि के कारण किया जाता है । "वाल्मीकि-रामायण" में राम के इसी चरित्र का वर्णन प्राप्त होता है ।-1 "वैदेही-वनवास" में राम का यह चरित्र लोकाराधक व सामनीतिवादी मौलिक चरित्र के रूप में निरूपित किया गया है । शासक में इतनी शक्ति होती है कि वह मिथ्या अपवादों के प्रचारकों का दमन कर सकता है । किन्तु राम जन-सामान्य को महत्ता देते हुए, अपनी पत्नी सीता के स्थानान्तरण का संकल्प लेते हैं । लोकाराधन को अंगीकृत करते हुए वे सीता को स्थानान्तरित करना चाहते हैं -

--------दमन वांछित नहीं, सामनीति अवलम्बनीय है अब मुझे।

× × ×

अंगीकृत है लोकाराधन जब मुझे, है विदेहजा मूल लोक-अपवाद की
तो कर दूँ क्यों न उन्हें स्थानान्तरित ।।-2

इस रचना में राम के चरित्रांकन पर आधुनिक मानवतावादी चेतना का भी प्रभाव है । परम्परागत् रूप में राम द्वारा सीता का निष्कासन बिना उन्हें अवगत कराये, गोपनीय व अमानवीय ढंग से होता है । किन्तु "वैदेही-वनवास" में राम सीता का स्थानान्तरण, उनसे विचार-विमर्श करके, उनकी सहमति प्राप्त करके ही करते हैं । वे सीता से कहते हैं -

इच्छा है कुछ काल के लिए तुमको स्थानान्तरित करूँ
इस प्रकार उपजा प्रतीति में प्रजा-पुँज की भ्रान्ति हरूँ ।।-3

इस रचना में राम के चरित्र का दुर्बल पक्ष है उनकी सवंदेन-शून्यता । कवि द्वारा राम के चरित्र को उदात्त रूप में अंकित करने व परम्परागत चरित्र का परिष्कार करने के उद्देश्य से, सीता-निष्कासन को सीता के स्थानान्तरण की नवीन कल्पना से जोड़ा गया किन्तु वे इसमें पूर्णतया सफल नहीं कहे जा सकते। सीता का स्थानान्तरण अन्ततः दीर्घकालीन निर्वासन में ही परिवर्तित हो जाती है यहाँ तक कि वे सीता से मिलना भी असंगत मानते हैं ।

1· वाल्मीकि-रामायण - उत्तरकाण्ड, श्लोक 45-48, पृ0 1570-75

2· वैदेही-वनवास, पृ0-48

3· वही, पृ0 58

"वैदेही-वनवास" के सप्तदश सर्ग में राम के चरित्र में सहज मानवीय दुर्बलता से युक्त, यथार्थ के धरातल पर खड़े पति-हृदय की अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है । आदर्श और लोकाराधन के नाम पर सीता को निर्दोष होते हुए भी दीर्घकालीन-निर्वासन की सजा प्राप्त होती है । सीता की इस व्यथा का उत्तरदायित्व लेते हुए राम गहरे मानसिक वेदना व आत्मव्यथा में डूब जाते हैं । शम्बूक-वध हेतु पंचवटी गये राम को सीता सम्बन्धित पूर्व स्मृतियाँ व्यथित कर देती हैं । यहीं वे सीता के दीर्घावधि के निर्वासन व सीता की व्यथा के बारे में, अपनी वेदना अभिव्यक्त करते हैं -

यदि वह मेरे द्वारा बहु-व्यथित बनी,
विरह उदधि-उत्ताल तरंगों में बही,
तो क्यों होगी नहीं मर्म्म-पीड़ा मुझे,
तो क्यों नहीं होगा मेरा उर शतधा नहीं ।
एक दो नहीं द्वादश-वत्सर हो गये,
किसने इतनी भक्तय की आँचे सहीं ।।-1

समग्रतः "वैदेही-वनवास" में राम का लोकाराधक स्वरूप ही सर्वाधिक मुखर हुआ है ।

"वैदेही-वनवास" के पश्चात् शेषमणि शर्मा कृत "कैकेयी"-2 कैकेयी पर केन्द्रित प्रबन्ध कृति है । इसमें रामवनवास से चित्रकूट प्रसंग तक की कथा ली गयी है । इस रचना में राम का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में ही प्राप्त होता है । इस रचना में वे परम्परागत रूप में मातृभक्त, भ्रातृ-प्रेमी तथा धार्मिक चरित्र के रूप में अंकित हुए हैं । "कैकेयी" में राम का चरित्र निरूपण मौलिक रूप में राजा को परमेश्वर मानने वाले, संवेदनशील, त्यागी व देश-प्रेमी मानव के रूप में हुआ है ।

1· वैदेही-वनवास, पृ0 234

2· कैकेयी-शेषमणि शर्मा-रचना-1942 ई0

शेषमणि शर्मा ने राम का चरित्रांकन राजतंत्र के समर्थक मानव के रूप में निरूपित किया है । "कैकेयी" के राम राजा को परमेश्वर मानते हैं, अतः वनवास की आज्ञा का पालन ईश्वराज्ञा मानकर ही करते हैं । "रामचरित-चिन्तामणि" में वे पिता द्वारा दिये गये वनवास की आज्ञा को, केकय-सुता के प्रेम में आबद्ध दशरथ की निम्न कामना मानते हैं । किन्तु इस रचना में वे राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि व भूतल का परमेश्वर मानते हैं । इसी कारण वे उनकी आज्ञा को सहर्ष स्वीकृति प्रदान करते हैं । वे कहते हैं -

ईश्वर का प्रतिनिधि भूतल में राजा ही परमेश्वर है ।
यह परिवर्तन कार्य सभी उसकी इच्छा पर निर्भर है ।।
आज्ञा, आज्ञा ही है चाहे किसी समय में कहे कहीं ।
है मेरा यह धर्म न उनकी मर्यादा जाने पाये ।-1

आधुनिक युग में देश-प्रेम की चेतना का प्रभाव लगभग सभी काव्य-कृतियों में प्राप्त होता है । "कैकेयी" के राम पर देश-प्रेमी मानव के व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है । "रामचरित-चिन्तामणि" की भाँति उन्हें राज्य खोने का दुःख नहीं है, किन्तु कौशल की सेवा न कर पाने की पीड़ा व आत्म-व्यथा उन्हें अवश्य है । उनके इस चरित्र का अंकन "कैकेयी" में मौलिक रूप में हुआ है –

कहा-यही तो क्लेश रहा,
सेवा कर न सका कोशल की,
यह सौभाग्य न शेष रहा ।-2

"कैकेयी" में राम के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उनकी उर्मिला के प्रति संवेदना । इस रचना में राम उर्मिला के प्रति संवेदना के कारण ही लक्ष्मण को अपने साथ नहीं ले जाना चाहते । यहाँ उनकी मानवीय संवेदनशीलता उदात्त तथा मानवतावादी दृष्टिकोण का ही अंकन हुआ है । वे लक्ष्मण से कहते हैं -

---

1· कैकेयी-शेषमणि शर्मा, पृ0 - 86

2· वही, पृ0 - 88

अरे उर्मिला के विषाद का, पारावार कहाँ होगा ?
उसके सुख-स्वप्नों का विस्तृत पारावार कहाँ होगा ?-1

समग्रतः "कैकेयी" में राम का चरित्रांकन संक्षिप्त होते हुए भी उदात्त व आदर्श है ।

बल्देव प्रसाद मिश्र कृत "साकेत-सन्त"-2 भरत के चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध-कृति है । इसका वर्ण्य-विषय विस्तार चित्रकूट सभा तक है । मिश्र जी ने राम का चरित्रांकन "वाल्मीकि-रामायण के राम की भाँति आदर्श मानवीय रूप में किया है । "साकेत-सन्त" में राम का चरित्रांकन, आधुनिक नव्य-चेतना के प्रभाव स्वरूप दलित वर्ग के उद्धारक, और देश-प्रेमी मानव के रूप में हुआ है । इसके साथ ही वे पूँजीवाद तथा भौतिकता के विरोधी भी हैं ।

"साकेतसन्त" में सर्वप्रथम मानव को सर्वशक्तिमान रूप में स्थापित किया गया है । "साकेत-सन्त" में राम के चरित्र-निरूपण पर आधुनिक मानवतावादी चेतना का प्रभाव है । राम मानव को ही सर्वशक्तिमान मानते हैं वे मानवतावादी सिद्धान्तों को मानव के जीवन का सार, अमरत्व का साधन तथा उत्थान का मार्ग मानते हैं । वे कहते हैं -

मनुज के जीवन का है मर्म, मनुजता ही का हो उत्थान,
मनुजता में समृद्ध अमरत्व, मनुजता में अग जग की तान ।-3

"साकेत-सन्त" में प्रथम बार पूँजीवादी व्यवस्था तथा भौतिकतावाद की भर्त्सना हुई है । आधुनिक युग में पूँजीवाद व भौतिकतावाद के विरोध की चेतना जाग्रत हुई । दलित वर्ग व जन-सामान्य के अधिकारों के प्रति नवीन चेतना का उन्मेष हुआ । "साकेत-सन्त" में राम के चरित्र निरूपण पर इसी चेतना का प्रभाव है । वे जन-सामान्य के अधिकारों को लूटकर विकास करने वाले पूँजीपतियों की तीव्र भर्त्सना करते हैं । वे कहते हैं -

---

1· कैकेयी, पृ0 - 75
2· साकेत सन्त - बल्देव प्रसाद मिश्र, प्र0सं0 1946 ई0
3· साकेत सन्त बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 - 142

कई निर्धन की कुटिया कर चूर, धनी का उठा एक प्रासाद ।
अनेकों को दे दृढ़ दासत्व, एक ने पाया प्रभुता-स्वाद ।-1

आधुनिक युग में भौतिकता के चकाचौंध में मानवीय अर्थवत्ता समाप्त होने लगी है । मानवतावादी भावनाओं व मानव-मूल्यों का ह्रास हो रहा है । "साकेत-सन्त" में प्रथम बार राम का चरित्रांकन भौतिकता के विरोधी के रूप में हुआ है । वे अर्थ के समक्ष घट रहे मानव मूल्यों के प्रति अपनी मानसिक व्यथा को व्यक्त करते हुए कहते हैं -

द्रव्य-संघात् ! द्रव्य-संघात !! छा गया सिक्कों का वह जाल
कौड़ियों पर ही लुटने लगे, करोड़ों मनुजों के कंकाल ।।-2

इस रचना में राम के चरित्र पर जनवादी व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है । वे समाज में व्याप्त वर्ग भेद तथा उनके मध्य व्याप्त कटुताओं व वैषम्य की वे तीव्र भर्त्सना करते हैं । दास प्रथा की भर्त्सना करने वाले राम जन समाज के उद्धारक व जननेता के रूप में दृष्टिगत् होते हैं । वे मानव की शक्ति में आस्था रखते हैं, जनता को ही जनार्दन मानते हैं । उनका यह चरित्र "साकेत सन्त" में प्रथम बार वर्णित हुआ है—

जनार्दन का जन है अवतार
वही जन यदि ले मन में ठान,
ध्वस्त हो जाये अत्याचार ।।-3

पूर्ववर्ती "साकेत" व "उर्म्मिला" की भाँति "साकेत सन्त" में भी राम का चरित्रांकन विश्व-बन्धुत्व के समर्थक, समन्वयवादी तथा शान्ति के समर्थक व्यक्ति के रूप में हुआ है । इस रचना में वे जन-जन के कल्याण के शुभेच्छु आर्य-संस्कृति के प्रसारक के रूप में भी निरूपित हुए हे । समस्त विश्व में

---

1. साकेत-सन्त, पृ० 143

2. वही, पृ० 143

3. वही, पृ० 146

शान्ति की स्थापना की इच्छा व्यक्त करते हुए, वे कहते हैं -

विश्व में फैल जाय सुख शान्ति,
यही हो जीवन का आदर्श ।-1

समग्रत· "साकेत-सन्त" में राम का चरित्रांकन सर्वथा मौलिक तथा युगीन सन्दर्भों से जुड़े मानव के रूप में हुआ है ।

हरदयालु सिंह की प्रबन्ध कृति "रावण-महाकाव्य"-2 रावण के चरित्र पर केन्द्रित रचना है । आधुनिक युग में मानवतावादी व बौद्धिक चेतना के प्रभाव स्वरूप प्रतिपक्षी चरित्रों के उत्थान व परिमार्जन हेतु कवियों का झुकाव हुआ । इस सन्दर्भ में "रावण-महाकाव्य" का महत्वपूर्ण स्थान है । इस रचना में राम का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में हुआ है । इसमें राम को प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया है, जो कि एक नवीन प्रयोग है । इस रचना में राम कूटनीतिज्ञ स्वार्थी व छली के रूप में निरूपित हुए हैं ।

"रावण-महाकाव्य" में राम द्वारा बालि वध करने के पीछे उनके स्वार्थमयी चरित्र को ही उभारा गया है । "रामचरित-मानस" में राम बालि का वध उसके कुकृत्यों के कारण करते हैं ।-3 किन्तु "रावण-महाकाव्य" में राम सुग्रीव की सहायता से अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते हैं, इसी कारण वे बालि-वध करते हैं —

कियो छल सो बालि-वध, सुग्रीव के हित राम ।
तेहि बनायो बानराधिप तिनहु किन्हयो काम ।।-4

यही नहीं वे जनस्थान में मुनियों को रावण के विरूद्ध भड़काते हैं, उनमें रावण के प्रति विद्वेष-भावना जाग्रत करते हैं ।

1· साकेत-सन्त - बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 153

2· रावण महाकाव्य - हरदयालु सिंह, 1952 ई0

3· अनुज-वधू भगिनी सुत नारी । सुनु सठ कन्या सम ये चारी ।
इन्हहि कुदृष्टि विलोकइ जोई । ताहि वधे कछु पाप न होई ।।
— "रामचरित मानस", किष्किंधा काण्ड, पृ0 689

4· रावण महाकाव्य - पृ0 158

समग्रतः इस रचना में रावण के चारित्रिक उत्थान हेतु राम के परम्परागत् चरित्र को आदर्श के धरातल से निम्न करने का प्रयास हुआ है ।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत "कैकेयी"-1 में राम का चरित्राकन संक्षिप्त किन्तु आधुनिक नवीन चेतना से प्रभावित है । इस रचना में राम भौतिकता से विरक्त, मानवतावादी, विश्वकल्याण के समर्थक, युग के पुकार पर समर्पित होने वाले मानव है । इस रचना में राम पूर्ववर्ती रचनाओं से भिन्न कैकेयी के आह्वान पर युग की पुकार सुनकर सहर्ष ही वन की ओर प्रस्थान करते हैं । उनका यह चरित्र उदात्त व आदर्शमय है ।

"कैकेयी" में राम का चरित्रांकन भौतिक चकाचौंध से विरक्त, सत्य के समर्थक व मानवतावादी के रूप में हुआ है । वे कहते हैं-

स्वर्ण सिंहासन न उसकी कामना थी,
स्वर्ण से कलुषित न मेरी साधना थी,
अखिल भावों, भावनाओं से सजाकर,
सत्य की ही आज तक आराधना की ।-2

इस रचना में राम कैकेयी के आह्वान पर युग की पुकार सुनकर सहर्ष ही वन की ओर प्रस्थान करते हैं । उनमें कैकेयी के प्रति कोई आक्रोश नही होता प्रत्युत् वे कैकेयी के उदात्त चरित्र को, ज्ञानदात्री स्वरूप की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहते हैं -

माता कैकेयी के स्वर में, सेवा ने मुझे जगाया है
होता न ज्ञान तो, कौन तेज देता, कर्त्तव्य अनल देता,
संघर्ष शिथिल श्लथ-तन-जग को, बल देता, नवसंबल देता ।-3

1· कैकेयी - केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', प्र0सं0 - 1952 ई0

2· कैकेयी - केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', सर्ग-9, पृ0 139

3· वही, पृ0 145-146

"कैकेयी" में राम युग पुकार व देश के प्रति कर्त्तव्य भावना के कारण साकेतपुरी के राजसिंहासन को छोड़कर वनवास को स्वीकार करते हैं। उनका यह चरित्र इस रचना में प्रथम बार वर्णित हुआ है। वे कहते हैं-

आशीष मुझे मिल जाय, चला मैं युग पुकार स्वीकार मुझे।
× × × ×
कर्त्तव्य बुलाता मुझे जिधर, मैं आज उधर ही जाता हूं
साकेतपुरी के सिंहासन, मैं तुमको शीश नवाता हूं।-1

बल्देव प्रसाद मिश्र कृत रामराज्य --2 राम के चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध कृति है। इस रचना में राम चरित्र को आधुनिक बौद्दिक दृष्टिकोण से युगीन परिस्थितियों तथा संवेदनाओं के परिप्रेक्ष्य में चित्रित किया गया है। स्वातन्त्र्योत्तर रचना "रामराज्य" में राम का चरित्रांकन गांधीवादी चेतना से प्रभावित है। वे राष्ट्रीय चेतनायुक्त, समष्टिवादी, समाज-सुधारक व ग्रामोद्दारक मानव हैं। "रामराज्य" की भूमिका मे कवि ने लिखा है -"कथा का उद्देश्य केवल कथा नहीं किन्तु राष्ट्रीय एकीकरण और सुराज स्थापना से सम्बन्धित राम के प्रयत्नों पर अपनी मति के अनुसार प्रकाश डालना है।---- इतिहास में यदि वर्तमान का प्रतिबिम्ब न हो और भविष्य के लिए प्रेरणा न हो तो उसे प्रायः काव्य का विषय नहीं बनाया जाता।"-3 "रामराज्य" में राम का चरित्र निरूपण सर्वथा मौलिक रूप में हुआ है।

इस रचना में राम का चरित्रांकन परम्परागत् रूप में उस समय वर्णित हुआ है जब वे लंका विजय के पश्चात सीता को अपमानित करते हुए उन्हें कहीं भी चले जाने की आज्ञा देते हैं। राम का यह चरित्र "वाल्मीकि-रामायण" से प्रभावित है। वे सीता से कहते हैं -

---

1· कैकेयी, पृ0 148

2· रामराज्य - बल्देव प्रसाद मिश्र, रचनाकाल-1956 ई0

3· वही, भूमिका में कवि, पृ0 9

अब इनकी रूचि जहां, वहा ये सुख से जाये ।
देता हू मैं उन्हें मनोवांछित सुविधायें ।।-1

पूर्ववर्ती प्रबन्ध कृतियों "साकेत", "उर्म्मिला", "कैकेयी" §शेषमणि§ "साकेत-सन्त" की भाँति आधुनिक मानवतावादी चेतना का प्रभाव "राम राज्य" के राम के चरित्राकन पर भी प्राप्त होता है, किन्तु इस रचना में वे अधिक उदात्त व युगीन सन्दर्भो के अनुरूप निरूपित हुए हैं । मानवतावाद के प्रबल समर्थक राम, समस्त राष्ट्र को मानवता के सूत्र में आबद्ध करके उसे सर्वथा नव्य कल्याणकारी परिप्रेक्ष्य प्रदान करना चाहते हैं -

एक प्रमाण हो भारत जननी, एक राष्ट्र भारतवासी ।
राष्ट्र सूत हो मानवता में जो कि दिव्यता की सुखरासी ।।-2

इस प्रबन्ध-कृति में राम पर जनवादी चेतना का आरोपण हुआ है । राम जन-जागरण को समाज व देश के उत्थान हेतु आवश्यक मानते हैं । वे ऐसे शासन सुधार को व्यर्थ मानते हैं, जो जन साधारण को जागरूक करने में अक्षम हो । इसी सन्दर्भ में वे कहते हैं -

जन आत्मा यदि जाग न पाई तो शासन के व्यर्थ सुधार ।-3

"रामराज्य" में राम का चरित्रांकन गांधीवादी ग्रामोत्थान की चेतना से प्रभावित हैं । राम का यह चरित्र "रामराज्य में प्रथमतः चित्रित हुआ है । वे नगरों के साथ ही साथ गाँवों का भी सम्यक् विकास चाहते हैं । बिना ग्रामोत्थान के कोई भी देश पूर्ण विकास नहीं कर सकता है । इसी कारण वे नगरों के साथ-साथ ग्राम-विकास को अनिवार्य मानते हैं ।

1· रामराज्य, पृ0-108

2· वही, पृ0-23

3· वही, पृ0 - 25

नगर बढ़े, पर साथ-साथ ही चलें बढ़ायें गाँवों को ।
× × ×
नगर बढ़ गये गाँव सुखाकर तो उस बढ़ती को धिक्कार ।।-1

यही नहीं वे अपने शासन काल में गाँवों का सर्वोन्मुखी विकास करते हैं । गाँवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, उद्योग तथा सुरक्षा का पूर्ण व्यवस्था करते हैं । राम का यह चरित्र "रामराज्य" में मौलिक रूप में निरूपित हुआ है ।

इस रचना में राम के चरित्र पर गाँधीवादी अछूतोद्धार आन्दोलन का भी प्रभाव है । राम समाज में व्याप्त वर्ग-वैषम्य व जाति-भेद के विरोधी हैं । राम द्वारा भीलनी व अछूत शबरी का सम्मान इसी तथ्य का द्योतक है ।

"रामराज्य" में राम शान्ति के समर्थक, बौद्धिक व दूरदृष्टा मानव के रूप में निरूपित हुए हैं । भारत की आन्तरिक कलह के परिणाम-स्वरूप ही यहाँ विदेशी तत्वों ने अपना आधिपत्य बना लिया था । अप्रत्यक्ष रूप से इसी तरफ संकेत करते हुए,राम भारत में व्याप्त आन्तरिक कलह के कुपरिणामों से अवगत कराते हुए कहते हैं -

लाभ विदेशी उठा रहे हैं भारत की इन फूटों का,
दाँव उन्हें कब तक देंगे हम विश्व-शान्ति की लूटों का ।।-2

"साकेत" की भाँति "रामराज्य" में भी राम के चरित्रांकन पर विश्व-बन्धुत्व की भावना का आरोपण हुआ है । राम केवल अपने ही देश व समाज के उत्थान के प्रति जागरूक नहीं हैं, अपितु-समस्त विश्व के कल्याण के शुभेच्छु हैं । वे समस्त विश्व के साथ बन्धुत्व स्थापित करना चाहते हैं -

---

1· रामराज्य, पृ0 - 24

2· वही, पृ0 - 23

क्या मेरा बन्धुत्व अवध की सीमा में आबद्ध रहे ।
क्यों न विश्व का मानव, खग-मृग तक मुझको निज-बन्धु कहे ।।-1

"रामराज्य" में राम पूर्ववर्ती रचनाओं सदृश समन्वयवादी मानव के रूप में निरूपित हुए हैं, किन्तु इस रचना में अधिक आदर्श व उदात्त हैं । उनकी समाष्टिवादी चेतना तथा समन्वयवादी दृष्टिकोण की व्यंजना उस समय प्राप्त होती है, जब वे उत्तर और दक्षिण के मध्य ऐक्य स्थापना की कल्पना करते हैं । उत्तर व दक्षिण को एक दूसरे का अनुपूरक और सहयोगी मानते हुए, प्रत्येक क्षेत्र में उनके आपसी सहयोग व बन्धुत्व की कामना करते हैं -

इसका जन-जन स्वजन सृजन, उत्तर दक्षिण एक समान ।
दक्षिण यदि विकलांग रहा तो, उत्तर की समृद्धि निष्प्राण ।
किसी समय सम्भव है दक्षिण में भी हो ऐसे आचार्य,
उत्तर के दीक्षा गुरू हों जो और बनें आर्यो के आर्य ।।-2

इस रचना में राम का चरित्रांकन गाँधीवादी तथा बौद्धिक चेतना से भी प्रभावित हैं । वे आततायियों का दमन करने के लिए शक्ति का उपयोग करना अनुचित नहीं मानते । उनके अनुसार समस्त मानव जाति को अपने आत्मरक्षा का अधिकार है, इसके लिए शक्ति का सहारा लेना अनुचित नहीं है । इसी सन्दर्भ में वे कहते हैं -

मूर्ख क्षाम्य है किन्तु आततायी के दो विषदन्त उखाड़ ।
लोक-व्यवस्था चली सदा है इसी नीति की लेकर आड़ ।।
× × ×
प्रति मानव को प्रकृति दत्त है पूर्ण आत्मरक्षा अधिकार ।-3

इस रचना में मौलिक रूप में राम साम्राज्यवाद के विरोधी मानव के रूप में निरूपित हुए हैं । वे दूसरों के देश पर अधिकार कर साम्राज्य

1· रामराज्य - पृ0 21

2· वही, पृ0 22

3· वही, पृ0 69-70

विस्तार करने की अपेक्षा अपने ही देश में शिवद् संस्कृति का प्रचार व प्रसार कर उसे उत्थान के चरम तक पहुँचाना चाहते हैं -

नहीं चाहते हम कि बढ़े साम्राज्य हमारा,
काम्य यही है बढ़े शिवद् संस्कृति की धारा ।-1

आधुनिक युग में गाँधीवादी विचारधारा के प्रभाव-स्वरुप लोगों में पापी से नहीं पाप से घृणा करने के चेतना का उन्मेष हुआ । "रामराज्य" प्रबन्धकृति में राम का चरित्र-चित्रण गाँधीवाद से प्रभावित है । इस रचना में राम राक्षस जाति के लोगों से नहीं अपितु उनके राक्षसी वृत्तियों से घृणा करने का सन्देश देते हैं । वे इसी सन्दर्भ में कहते हैं कि तामस वृत्तियों के नष्ट होने पर, सात्विकता के समावेश होने पर निशाचरता स्वय विनष्ट हो जाती है और राक्षस भी मानवता के गुणों से अलंकृत हो जाता है ।"रामराज्य" के राम कहते हैं -

असली अर्थ मनुजता ही है सात्विकता उसके अनुरूप ।
राजस तामस चित्र वृत्तियाँ, कर न सके उनको अपरूप ।।
उन्हें उदात्त बना दो जिससे निन्द्य निशाचरता मिट जाय ।।-2

"माण्डवी"-3 में राम का चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में हुआ है । माण्डवी पर अभिकेन्द्रित रचना होने के कारण इस रचना में राम का चरित्र संक्षिप्त रूप में ही निरूपित हुआ है । "माण्डवी" में राम का चरित्रांकन आधुनिक कर्मवादी, स्वदेश-प्रेम, बौद्धिक व मानवतावादी चेतना से प्रभावित है । सम-सामयिक संवेदनाओं तथा आधुनिक नव्य-चेतना के प्रभाव-स्वरूप वे सर्वथा मौलिक रूप में व्यंजित हुए है ।

1· रामराज्य- पृ0-106

2· वही, पृ0-107

3· माण्डवी-हरिशंकर सिन्हा, प्रथमावृत्ति-सं0 2015वि0 (1958 ई0)

"माण्डवी" के द्वितीय सर्ग में राम का चरित्र परम्परागत् रूढ़ियों के विरोधी तथा कर्मवादी मानव के रूप में निरूपित हुआ हैं । आधुनिक युग में व्यक्ति के वर्ग व श्रेणी की अपेक्षा उसके कर्मो के अनुसार महत्ता की स्थापना हुई है ।"माण्डवी" के राम का चरित्रांकन इस नवचेतना से प्रभावित है । इस रचना में राम कुलीनता तथा ज्येष्ठ वयस के आधार पर दिये जाने वाले राजसत्ता को योग्यतानुसार देने की नीति को महत्व देते हैं । भरत को शासन प्राप्त होने पर, वे कहते हैं—

बदल गयी है, थल अनेकों बार बहु ।
है योग्य ही, राजा भले लघु वयस का ।।-1

"उर्मिला" व "कैकेयी" ॥'प्रभात'॥ की भाँति "माण्डवी" में भी राम भरत से आसुरी शक्तियों का विनाश करने के लिए अपने "वनवास" की आज्ञा को वरदान स्वरूप स्वीकार करते हैं । वे रावण द्वारा भारत की सीमा का अतिक्रमण करके कर रहे दुष्प्रचार के अभियान का दमन करके, उसके विरूद्ध जन-सामान्य् को ही, सैन्यशक्ति के रूप में संगठित करना चाहते हैं -

कितना विषम वह असुर है, कितना बली,
विज्ञान-घर, पाखण्ड-घर, कितना छली,
× × ×
रण का निमन्त्रण मैं उसे दूंगा प्रबल,
मैं संगठित कर पास का जन सैन्य ही ।-2

इस रचना में राम देश-प्रेमी ही नही जननायक व समाजोद्धारक भी हैं । वे ऋषि-मुनियों के साथ-साथ अनार्यो के सदृश जीवन यापन करती हुई, आर्य नारियों का भी उद्धार चाहते हैं । यहां उनकी मानवतावादी भावना भी मुखर हुई हैं ।

---

1. माण्डवी, सर्ग-2, पृ0 49

2. वही, पृ0 51

राम गर्व करता है उन पर

जो मनुष्यता जाग्रत रखते ।-1

"माण्डवी" में राम के अन्तर्दन्द व मानवीय दुर्बलता का भी अंकन हुआ है । परम्परागत् रूप में राम दारा ली गयी सीता की अग्नि परीक्षा की इस रचना में मौलिक व्यजना हुई है । राम "वाल्मीकि-रामायण" की भाँति कटुवचन कहकर सीता को प्रताड़ित नहीं करते । वे सीता पर शक न होते हुए भी केवल लोकमत की विवशता के कारण सीता की अग्नि परीक्षा लेते हैं । वे सीता से कहते हैं -

नहीं सोचना मैं किंचित भी तव चरित्र पर शंका करता ।
पर लोक जगत मे बहुरंगी है, उन्हें देखना भी है पड़ता ।।
× × × ×
इसीलिये मैं अग्नि-परीक्षा, लूंगा दारूण सिया तरल की ।।-2

रघुवीरशरण कृत "भूमिजा" में राम का चरित्र संक्षिप्त रूप में निरूपित हुआ है । सीता पर केन्द्रित इस रचना में सीमा से सम्बन्धित उन मौलिक प्रश्नों को उठाया गया है, जिसके प्रत्यक्ष जिम्मेदार राम ही थे । अतः राम का चरित्रांकन नवीन रूप में हुआ है । राम को सत्ताप्रिय राजा के रूप में चरित्रांकित किया गया है, जो आदर्श तथा पिता के वचन पालन हेतु वनवास अवश्य स्वीकार करते है, किन्तु उसी राज्य के लिए जन विद्रोह के अप्रत्यक्ष भय से अपनी ही गर्भवती पत्नी को एकाकी निर्वासित कर देते हैं । भूमिका में कवि ने लिखा है - "राम आदर्श राजा और ईश्वर के अवतार थे पर परिस्थितियों ने उन्हें कितना तपाया यह वे ही जानते हैं । एक ओर तो उनके चरण स्पर्श से पाषाण बनी हुई अहल्या का उदार हो गया और दूसरी ओर वे सीता को झूठे दोषों से मुक्त न

1· माण्डवी,पृ0 206

2· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा, पृ0 227-228

करा सकें ।-------यदि लव-कुश के धनुष से टकराकर राम के घनुष न झुके होते तो क्या श्री राम का रोष परित्यक्ता के पुत्रों को प्यार देता ।"-1 इस रचना में राम को सत्तालोभी, राजतंत्र के प्रतीक, निरंकुश शासक के साथ-साथ सवेदनशील तथा मानवीय दुर्बलतायुक्त चरित्र के रूप में चित्रित किया गया है ।

"भूमिजा" में राम द्वारा सीता-परित्याग के पीछे मौलिक उद्भावनाओं का अंकन हुआ है । "वैदेही-वनवास" में वे लोकाराधन हेतु सीता का निरावधि स्थानान्तरण करते हैं । किन्तु "भूमिजा" में इसके पीछे राज्यलोभ जुड़ गया है । "भूमिजा" में राम स्वय स्वीकार करते हैं कि उन्होंने सिंहासन व प्रजा के लिए सीता का परित्याग किया । अपने कृत्यों को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं -

यह सिंहासन जिसने मुझको, छुड़ा दिया सीता से ।
यह जनता है जिसने मुझको अलग किया सीता से ।।-2

इस रचना में राम को राजतंत्र के प्रतीक चरित्र के रूप में भी वर्णित किया गया है । राम के चरित्रांकन का यह नवीन पक्ष है । वे अपने अधिकारों के दम्भ में डूबे, प्रजा पर राजतंत्र का अधिकार प्राप्त करने तथा विश्व-विजय के इच्छुक दृष्टिगत् होते हैं । वे कहते हैं -

यहाँ गड़ेगा मेरा झण्डा, सारा विश्व हमारा है ।-3

इस प्रबन्ध-कृति में राम का चरित्रांकन नवीन रूप में निरकुश राजतंत्र के संवाहक के रूप में हुआ है । वे प्रजा पर अपनी सत्ता का, अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने से नहीं चूकते । ये लव-कुश से अपनी निरंकुशता को प्रकट करते हुए, कहते हैं -

---

1· भूमिजा-रघुवीर शरण मित्र (1961 ई0) भूमिका में कवि-पृ0 5-6
2· वही, पृ0 69
3· वही, पृ0-75

मेरे अधिकारों के नीचे, तुमको रहना होगा ।
मैं राजा हूँ मेरा शासन, तुमको सहना होगा ।।
शासन में रह दास बनो तो, जीवित रह सकते हो ।।-1

यहाँ उनके लोकाराधक रूप का निषेध प्राप्त होता है । उनकी साम्राज्य-वादिता, सत्तालोभ व निरंकुश शासक का चरित्र ही प्रकट हुआ है ।

"भूमिजा" में राम का व्यक्तित्व संवेदनशील मानव के रूप में भी मुखर हुआ है । वे सीता का परित्याग करने के बाद नारी की दयनीय सामाजिक अवस्था के प्रति अन्तर्व्यथित हो उठते हैं । यह उनके चरित्र का कमजोर पक्ष भी कहा जा सकता है क्योंकि विवेक-सम्मत होते हुए भी वे विवेक का पालन नहीं कर पाते । वे समाज के उन लोगों पर भी आक्षेप करते हैं, जो केवल नारी को ही दोषी मानते रहे हैं । यहाँ उनके मनोव्यथा का ही अंकन हुआ है -

यह कैसा विश्वास मनुज का,
नारी मैली होती ।।-2

इस खण्ड-काव्य में राम के मानवीय दुर्बलताओं व उनके अन्तर्व्यथाओं की सहज अभिव्यक्ति प्रस्तुत हुई है । राम राज्य के लिए तथा सामाजिक-आक्षेपों के कारण सीता का परित्याग करके, समाज के आदर्श बन जाते हैं परन्तु स्वयं अपने ही हृदय के उच्चधरातल से नीचे गिर जाते हैं । उनका हृदय उनके इस कृत्य को महत्ता नहीं दे पाता । वे अपने इस कृत्य के कारण पश्चाताप् के गहरे दलदल में धँसने लगते हैं । वे कहते हैं -

मेरी सीता जहाँ गई है, वहीं मुझे जाने दो ।
वन-वन पवन बना डोलूँ मैं, जोगी बन जाने दो ।।
हाय पराये घर की बेटी, फिरती वन-वन मारी ।
मैने पूजा को ठुकराया, दीप जला जय हारी ।।-3

1· भूमिजा - रघुवीर शरण मित्र पृ0 89
2· भूमिजा - पृ0 74
3· वही पृ0 - 75

समग्रतः "भूमिजा" में राम का चरित्रांकन आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों की तुलना में सर्वाधिक मौलिक रूप में किया गया है ।

"संशय की एक रात" प्रबन्ध कृति का स्वातन्त्र्योत्रर प्रबन्ध-रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान है । इस रचना में राम आधुनिक युवा वर्ग के प्रतिनिधि व नायक बनकर निरूपित हुए हैं । वे परम्परागत् रूप से विलग लघु मानव के रूप में दुश्चिन्ताओं व संशय से घिरे, साधारण व सामान्य मानव हैं । कवि ने भूमिका में अपना विचार व्यक्त किया है— "जिस प्रकार कुछ प्रश्न सनातन होते हैं, उसी प्रकार कुछ प्रज्ञा -पुरूष भी सनातन प्रतीक होते हैं । राम ऐसे ही प्रज्ञा-प्रतीक हैं जिनके माध्यम से प्रत्येक युग अपनी समस्याओं को सुलझाता रहा है ।"-1 नरेश जी ने राम के माध्यम से आधुनिक युग में युद्ध के भीषण रूप के प्रति सशंकित मानव-वर्ग के मानसिक अन्तर्दन्दों को ही अभिव्यक्त किया है । दो-दो महायुद्धों के विनाशक व विध्वंसक तांडव-नर्तन को सहने के बाद, भावी महायुद्ध के प्रति मानव का भय व अन्तर्दन्द स्वाभाविक ही है । "संशय की एक रात" में राम का चरित्रांकन संवेदनशील, अन्तर्दन्द में फसे, अनिर्णय की दुविधा से ग्रस्त मानव के रूप में हुआ है । एक तरफ सीता की मुक्ति का प्रश्न, दूसरी तरफ युद्ध की विभीषिका से समाष्टि को बचाने का प्रश्न, उन्हें संशय की विषम परिस्थिति में फंसा देता है । इस रचना में कवि "राम के मानसिक दन्द के माध्यम् से मानो मानव मात्र की युद्ध की समस्या का समाधान खोजते हैं । संशयग्रस्त राम पूर्ण परात्पर ब्रह्म नहीं, शंकित सामान्य मानव-मात्र हैं ।"-2 राम का यह चरित्र प्रथम बार नरेश मेहता दारा अंकित किया गया है ।

आधुनिक युग में समस्त विश्व में भावी महायुद्ध से संसार को बचाने के लिये विभिन्न शान्ति प्रयास हो रहे हैं, निशस्त्रीकरण की योजना लागू हो रही है । छोटे-छोटे देशों के आपसी दन्द को भी विश्वसंगठन दारा सुलझाया जाने लगा है । इसके पीछे विश्व में शान्ति स्थापना का उद्देश्य ही प्रमुख है । इनका प्रभाव भी राम के चरित्र-निरूपण पर पड़ा है । "संशय की एक रात" में राम शान्ति के समर्थक व युद्ध विरोधी के रूप में अंकित हुए हैं।

1· संशय की एक रात-नरेश मेहता {प्र·सं· 1962 ई0 }, भूमिका में कवि-पृ0 3
2· रामकाव्य परम्परा विकास और प्रभाव-डाॅ0 आशा भारती, पृ082

इस रचना में राम युद्ध विरोधी मानव हैं । युद्ध की विभीषिका रोकने के लिए ही वे शान्ति-स्थापना हेतु दूतों को लका भेजते हैं । किन्तु दूतों के निष्फल लौटने पर उन्हें गहरी व्यथा होती है । वे अपने भौतिकता-प्रेम को इसका कारण मानते हुए परिताप करते हैं कि, वे स्वर्ण मृग के पीछे क्यों भागे ? वे स्वयं को ही युद्ध के लिए दोषी मानने लगते हैं यहाँ उनकी मानसिक दुर्बलता का ही प्रकटन हुआ है ।

"संशय की एक रात" में राम नरसंहार द्वारा प्राप्त होने वाले विजय को हेय मानते हैं । वे मानव में निहित श्रेष्ठ भावनाओं को जाग्रत करना चाहते हैं, वे युद्ध के विध्वंसक तांडव-नर्तन में विश्व को नष्ट करने के इच्छुक नहीं है । युद्ध के प्रति अपनी वितृष्णा को व्यक्त करते हुए, वे कहते हैं -

ऐसा युद्ध, ऐसी विजय
× ×
सब मिथ्यात्व है
नरसंहार के व्यामोह के प्रति
वितृष्णा से भर उठा हूँ ।-1

नरेश मेहता ने राम के चरित्र पर आधुनिक युग के मानव के उस अन्तर्द्वन्द्व व भय का आरोपण किया है, जो भावी युद्ध की आशंका से उपजी है । युद्ध अपने इति के साथ-साथ नये समस्याओं के अथ का कारण भी बनता है । यह जन-समाज को ऐसे गम्भीर व विस्फोटक परिस्थिति में पहुँचा देती है, जो उसे जर्जरित कर डालती है । राम ऐसे युद्ध के द्वारा अपना व्यक्तिगत् कल्याण नहीं करना चाहते । युद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापित हो, यह निश्चित नही होता । एक युद्ध दूसरे युद्ध को जन्मदात्री भी बन जाती

1· सशय की एक रात - पृ0 - 24

है । इसी कारण राम युद्ध के प्रति विरक्त होते हैं । वे कहते हैं -

इस युद्ध के उपरान्त, होगी शान्ति
इसका तो नहीं विश्वास

× ×

यह युद्ध, सम्भव है अनागत् युद्ध का कारण बने ।-1

किन्तु जहाँ निरंकुशता व अत्याचार अपने जाल में निरीह जन-सामान्य् को जकड़ रही हो, जहाँ स्वाधीनता का प्रश्न हो वहाँ युद्ध के औचित्य से इन्कार नहीं किया जा सकता । "संशय की एक रात में" राम अन्ततः जन-सामान्य को रावण के निरंकुशता व अत्याचार से मुक्त कराने के लिए, युद्ध की प्रासंगिता व अर्थवत्ता को स्वीकार करते हुए, युद्ध की अनिवार्यता का अनुभव करते हैं । सीता की मुक्ति का प्रश्न समस्त दक्षिण-पथ के जन सामान्य् के मुक्ति के प्रश्न से जुड़ जाती है । इसी कारण अन्ततः परिषद द्वारा दिये युद्ध के निर्णय को स्वीकृति प्रदान करते हैं । व्यक्तिगत् रूप से युद्ध के विरोधी राम, समष्टि-कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित कर देते हैं :-

अब मैं निर्णय हूँ
सबका
अपना नहीं ।-2

रामकुमार वर्मा कृत "उत्तरायण" आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में सर्वाधिक मौलिक रूप में विरचित काव्य-रचना है । इस रचना में वर्मा जी ने राम के उदात्त चरित्र पर लगे दो महत्त्वपूर्ण लांछनों को धोने का महत प्रयास किया है । राम के गौरवान्वित चरित्र में सीता-निर्वासन् तथा शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध, कलंक बिन्दु की भाँति उभरते हैं । "उत्तरायण" में

1· सशय की एक रात - पृ0 66

2· वही, पृ0 86

इन दोनों ही घटनाओं को प्रक्षिप्त सिद्ध करते हुए, राम के चरित्र का प्रक्षालन किया गया है । वर्मा जी के शब्दों में - "लोकापवाद और सीता-निर्वासन की कथा सम्पूर्णतः असत्य और कपोल-कल्पित है । मूल "वाल्मीकि-रामायण में इसका कही उल्लेख नही है । सम्कालीन् धार्मिक मत-मतान्तरों ने ही इस महान वैदिक चरित्र राम को लांछित करने का षड्यन्त्र किया था ।"-1 इस रचना में वर्मा जी ने विभिन्न ग्रन्थों को गम्भीर अध्ययन करके उनका तत्वालोकन व मनन करने के पश्चात् उनपर लगे आक्षेपों को प्रक्षिप्त मानने की निर्भ्रान्त अन्तर्दृष्टि प्राप्त की । वे सीता परित्याग के क्षेपक को बौद्ध व जैन मतावलाम्बियों की कूटनीतिक चाल मानते हैं ।

"उत्तरायण" में राम द्वारा सीता-परित्याग करने की घटना को क्षेपक मानते हुए, राम के चरित्र को नवीन मानवतावादी आलोक में निरूपित किया गया है । गर्भावस्था के निरीह तथा करुणा अवस्था को देखकर कठोर से कठोर मानव भी पिघल जाते हैं, ऐसी अवस्था में लोकापवाद का सहारा लेकर, राम सीता को निर्वासित करने का कुकृत्य कैसे कर सकते थे

जब पूर्ण गर्भ की गरिमासे, थे शिथिल हो रहे अंग-अंग
जब लघु मानव भी हो जाते हैं,करुण देखकर यह प्रसंग
तब रामचन्द्र के उर में क्या,निर्वासन की होगी उमंग ।
लोकापवाद का भय लेकर क्या,राम करेंगे यह कुकृत्य ।-2

"उत्तरायण" में राम द्वारा शूद्र तपस्वी शम्बूक वध के कार्य को भी कवि ने प्रक्षिप्त सिद्ध किया है । इस कृत्य के पीछे प्रक्षेपकों का मूल उद्देश्य रावण के व्यक्तित्व को उभारना भी था । बौद्ध और जैन कवियों द्वारा राम का चरित्र गर्हित करने की दुष्चेष्टा हुई । "राम की प्रतिस्पर्धा में रावण के व्यक्तित्व को उभारा गया है ------निषाद को गले लगाने वाले राम द्वारा तपस्वी शूद्र शम्बूक के वध की बात कही गयी है ।"-3

1· उत्तरायण - राम कुमार वर्मा {प्र0सं0-1972 ई0}, भूमिका में कवि,पृ0-17

2· वही, पृ0-119

3· वही, भूमिका में कवि - पृ0 13

समग्रतः "उत्तरायण" राम के परम्परागत् दुर्बल पक्षों का निषेध करते हुए राम के चरित्रोत्कर्ष का नया आयाम प्रस्तुत करती है।

नरेश मेहता कृत "प्रवाद-पर्व"-1 में राम द्वारा सीता-निर्वासन की कथा को वर्ण्य-विषय बनाकर प्रथम बार मौलिक रूप में उनके इस कृत्य को प्रभामंडित किया गया है । इस रचना में राम राजशक्ति की अपेक्षा जनशक्ति को महत्त्व देते हैं । वे जन-समाज के स्वत्त्व के प्रति सचेत जननायक हैं । "वैदेही-वनवास" में हरिऔध जी ने भी राम का चरित्रांकन लोकाराधक मानव के रूप में किया है । "प्रवाद-पर्व" में राम प्रजातन्त्र के समर्थक, जनसमाज के स्वत्त्व के प्रति जागरूक, तथा मानवतावादी हैं ।

"प्रवाद-पर्व" में राम समदर्शी के साथ-साथ तत्त्वदर्शी भी हैं । प्रजा को भय व निरंकुशता के बल पर कभी भी अपने प्रति आस्थावान नहीं बनाया जा सकता । "प्रवाद-पर्व" में राम का चरित्रांकन इसी विचारधारा से प्रभावित है । वे प्रजा के इच्छाओं व उनके स्वत्व को महत्ता देते हुए, राज्य को प्रजा के सामूहिक आकांक्षा का प्रतीक मानते हैं -

राज्य को सामूहिक आकांक्षा का
प्रतीक बनने दो भरत
प्रजा के भी अधिकार होते हैं ।-2

आधुनिक युग की नवीन-चेतना के प्रभाव-स्वरूप वर्ग तथा जाति-वैषम्य का विखंडन हुआ । प्रजातन्त्र की स्थापना हुई जिसमें राजा व प्रजा समान अधिकार के भागी है । "प्रवाद-पर्व" में राम भी इसी प्रजातन्त्र के समर्थक हैं । वे राज्य के शीर्ष स्थान की अधिकारिणी सीता व जंगल में लकड़ी बीनने वाली असहाय महिला में कोई विभेद नहीं मानते । वे

---

1. प्रवाद-पर्व - नरेश मेहता, रचनाकाल - 1975 ई0

2. वही, पृ0 42

समाज में प्रत्येक व्यक्ति को समान भाव से स्वतन्त्रता व अधिकार प्रदान कराना चाहते हैं । यही नहीं वे शासन के समक्ष, प्रत्येक व्यक्ति के अभिव्यक्ति को महत्त्वपूर्ण मानते हैं -

> गूँगेपन से कही श्रेयस है, वाचालता
> जिस दिन मनुष्य अभिव्यक्ति-हीन हो जायेगा
> वह सबसे अधिक
> दुर्भाग्यपूर्ण दिन होगा ।-1

शासन के समक्ष व्यक्ति के अभिव्यक्ति के अधिकार को महत्ता देने वाले राम का यह चरित्रांकन बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के राजनीतिक परिस्थितियों से भी प्रभावित है । "प्रवाद-पर्व" के समय आपात्कालीन स्थिति की घोषणा हुई थी, फलतः जन-सामान्य् के अभिव्यक्ति के अधिकार को प्रतिबन्धित किया गया था ।

"प्रवाद-पर्व" में राम उस निरंकुश शासन-व्यवस्था का विरोध करते हैं, जो प्रजा के अस्तित्व पर शक्ति का अंकुश लगाकर, उसके अधिकारों व स्वतन्त्रता का हनन करता है । रावण के निरंकुश शासन का पतन इसी कारण हुआ था । राम मानवीय स्वतन्त्रता, मानवीय भाषा तथा मानवीय अभिव्यक्ति को सर्वोत्कृष्ट मानते हैं । वे कहते हैं-

> मानवीय स्वांतन्त्र्य
> मानवीय भाषा और
> मानवीय अभिव्यक्ति के
> प्रति इतिहास का सामना
> वैसी ही
> मानवीय प्रतिगरिमा के साथ
> करना होगा ------------ -2

1· प्रवाद पर्व - नरेश मेहता, रचनाकाल -1975 ई0, पृ0- 43

2· वही, पृ0 50

"वैदेही-वनवास" के समान "प्रवाद-पर्व" में भी राम सीता को उनकी सहमति प्राप्त करके ही निर्वासित करते हैं "वैदेही-वनवास" में सीता-निर्वासन को दीर्घकालीन, स्थानान्तरण की सज्ञा मिली थी । साथ ही उनके सुख-सुविधा पर भी राम पूरा ध्यान देते हैं । किन्तु "प्रवाद-पर्व" में राम साधारण जन के आग्रह का उत्तर सीता के त्यागमयी उदात्त चरित्र व निस्पृहता द्वारा देना चाहते हैं । इसी कारण वे वनवास काल में सीता पर कठोर प्रतिबन्ध भी लागू कर देते हैं -

वनवास काल में, वह किसी भी राजकीय पद
मर्यादा सुविधा और सुरक्षा की अधिकारी नहीं होगी ।
और सीमान्त तक
लक्ष्मण उनके रथ का सारथ्य ग्रहण करेंगे ।-1

"प्रवाद-पर्व" में राम की संवेदनाओं तथा भावनाओं का भी सहज चित्रण हुआ है । सीता को निर्वासित करने का कृत्य उन्हें भीषण मानसिक व्यथा प्रदान करता है । वे अपने इस कार्य को वधिक के कार्यो से भी हेय मानते हैं । वे गहरे मानसिक अन्तर्द्वन्द से घिर जाते हैं—

आसन्न मातृत्व की दुर्वह स्थिति में
प्रिया को
किस प्राप्ति के लिए निर्वासित किया राम ?
ऐसा अमानुषी आचरण तो
कोई वधिक भी
आसन्न प्रसवा गौ के साथ नहीं करता ।-2

इस रचना में राम के चरित्र पर इतिहास को समर्पित व्यक्ति की अन्तर्व्यथा का भी आरोपण हुआ है । देश व समाज के प्रति कर्त्तव्य व आदर्श के नाम पर कभी-कभी व्यक्तिगत् जीवन का जिस भाँति

1· प्रवाद-पर्व - नरेश मेहता पृ0 104

2· वही, पृ0 109

विखंडन होता है, वह भयकर त्रासद होता है । राम को जन-सामान्य् के लिए ही अपनी पत्नी तक का त्याग करना पड़ा । अपनी अन्तर्व्यथा को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं -

व्यक्ति का केवल इतिहास पुरूष बन जाना तथा
प्रिया का मात्र प्रतिमा बन जाना
व्यक्तिगत् जीवन की
सबसे बड़ी दुर्घटनायें होती हैं राम ।-1

नरेश मेहता कृत "शबरी"-2 में राम का चरित्राकन मौलिक रूप में वर्णित हुआ । "वाल्मीकि-रामायण" में राम शबरी की भक्ति-भाव से प्रभावित होकर उनका आतिथ्य स्वीकार करते हैं ।-3 किन्तु "शबरी" में राम शबरी की तप-गाथा को मानवता के उन्नयन में महत्वपूर्ण मानते हैं । वे शबरी को शिव-शक्ति के रूप में प्रभामडित करते हैं । वे कहते हैं -

मैं सुन आया हूँ शबरी की सारी तप-गाथा को,
होगी कृतार्थ मानवता सुनकर सुगन्ध-गाथा को।

शबरी अन्त्यज है तो क्या वह शक्ति रूप है शुद्रा,
है तेज रूप वह केवल, शिव-शक्ति रूप है शूद्रा ।-4

जगदीश गुप्त की रचना "शम्बूक" में राम का चरित्रांकन यथार्थ परक तथा मौलिक रूप में हुआ है । पुरूष मर्यादा पुरूषोत्तम राम के परम्परागत् चरित्र में कालिमापूर्ण पक्ष है – सीता का निर्वासन व तपस्वी शम्बूक का अकारण वध । शम्बूक वध के पीछे तत्कालीन् वर्ण-भेद व जातीय-वैषम्य की तीव्र भावना का विशेष प्रभाव था । आधुनिक युग की बौद्धिक

1· प्रवाद पर्व - नरेश मेहता, पृ0 110

2· शबरी - नरेश मेहता, रचनाकाल - 1975 ई0

3· वाल्मीकि-रामायण-अरण्यकाण्ड, पृ0 664

4· शबरी-नरेश मेहता, पृ0 82

तथा मानवतावादी युग में जाति व वर्ग वैषम्य का विखडन हुआ तथा मानव की महत्ता उसके कर्म के आधार पर स्थापित हुई । नव्य-चेतना के उन्मेष के कारण उपेक्षित व दलित वर्ग के प्रति नवीन मानवीय संवेदना का झुकाव हुआ "शम्बूक" की रचना इसी दृष्टिकोण का परिणाम है । इस कृति में राम द्वारा शम्बूक वध की तीव्र आलोचना हुई है । "शम्बूक" की भूमिका में कवि ने लिखा है - "वर्ण -व्यवस्था का मानवता-विरोधी जड़ के रूप अब किसी भी जागरूक तथा प्रगतिशील समाज द्वारा स्वीकृत नहीं कराया जा सकता । कृषि सभ्यता की पृष्ठभूमि में उपजी हुई वस्तु को यन्त्र-युग एवं अणु-युग पर किसी प्रकार आरोपित नहीं किया जा सकता । रामराज्य की परम आदर्श कल्पनात्मक धारणा को शम्बूक-वध की क्रूर घटना, सीता-निर्वासन के कारुणिक प्रसंग की तरह ही नितान्त विडंबनापूर्ण बना देती है ।"-1 इस रचना में राम का चरित्रांकन परम्परागत् रूप से जातिवादी तथा विप्रसुत हेतु शम्बूक का वध करने वाले मानव के रूप में वर्णित हुआ है मौलिक रूप में उनके अन्तर्दन्दों व मानसिक परिताप का भी अंकन हुआ है ।

"शम्बूक" में राम का चरित्रांकन जातिवादी के रूप में हुआ है । राम तपस्या को केवल ब्राह्मणों व उच्चवर्गीय लोगों का ही कृत्य मानते हैं । वे शूद्रों के लिए नियत सेवा कर्म को ही उनका जीवन उद्देश्य मानते हैं । शम्बूक द्वारा उच्चवर्गीय लोगों के लिए नियत तपस्या करने पर, राम उससे कहते हैं -

तप नहीं है शूद्र का कर्तव्य, फिर से सोच लो शम्बूक ।
उसे सेवा-कर्म ही भव्य, क्यों उसमें करे वह चूक ।-2

इस रचना में राम का चरित्रांकन परम्परागत् रूप से वर्णित हुआ है । वे एक ब्राह्मण के मरे हुए पुत्र को जीवित करने के

1· शम्बूक-जगदीश गुप्त, (प्र·सं·-1977 ई0), भूमिका में कवि - पृ0 14

2· वही, पृ0 50

लिए ही शूद्र तपस्वी शम्बूक का वध करते हैं । "वाल्मीकि-रामायण" में इसी घटना का वर्णन है ।-1 वे शूद्र तपस्वी शम्बूक को बिना किसी उत्तर-प्रत्युत्तर का मौका दिये, एक झटके से उसका सिर काट लेते हैं ।-2 "शम्बूक" में राम मौलिक रूप से शम्बूक से वाद-विवाद करके, अन्ततः उसकी हत्या कर देते हैं—

नृप राम ने
× × ×
कर दिया खड्ग प्रहार
कट गया शम्बूक का सिर ।-3

यहाँ राम का चरित्र सत्तामद में लिप्त उच्चवर्ग का ही प्रतीक है, जो निम्न-वर्ग को अपने समकक्ष नहीं देखना चाहता। वे निम्न वर्ग के अधिकारों को छीनकर, उन्हें केवल अपनी विलासिता का हेतु ही बनाना चाहते हैं । युग-युग से अधिकारों से वंचित निम्न वर्ग ने जब भी अधिकारों की माँग की, स्वायत्ता को प्राप्त करना चाहा, उन्हें कुचल दिया गया। एकलव्य ने जब उच्च वर्ग के समकक्ष शक्ति अर्जित करना चाहा, द्रोणाचार्य के छल का शिकार हो गया । शम्बूक ने जब उच्च वर्ग के लिए नियत तपस्या को करना चाहा, उसे राम द्वारा सीधे-सीधे मौत के घाट ही उतार दिया गया ।

"शम्बूक" में आधुनिक नव्य-चेतना के प्रभाव स्वरूप राम का चरित्रांकन मानवीय संवेदना से भी समन्वित है । सीता-निर्वासन के औचित्य-अनौचित्य के प्रति वे अन्तर्द्वन्द ग्रस्त व आत्मव्यथित हैं । एक तरफ वे पाषाण बनी अहिल्या का उद्धार करते हैं, वहीं दूसरी तरफ गर्भावस्था के असहाय दिनों में सीता को एकाकी निर्वासित कर देते हैं । इसी सन्दर्भ में अपनी आत्मव्यथा को प्रकट करते हुए वे कहते हैं -

---

1· वाल्मीकि - रामायण - उत्तरकाण्ड, पृ0 1620 से 1625

2· न मिथ्याहं वदे राम देवलोकजिगीषया । शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः।।3।
भाषतस्य शूद्रस्य खण्ड सुरुचिरप्रभम् । निष्कृष्य कोशाद् विमल शिरश्चिच्छेद राघवः।।4।।
—वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, पृ0 - 1625

3· शम्बूक - जगदीश गुप्त, पृ0 68

एक नारी को सुगति दी, एक को परिताप ।
छोड़ जाऊँगा जगत पर कौन सी मैं छाप ।।-1

यही नहीं शम्बूक का वध करने के पश्चात् वे अपने इस कृत्य पर मनन व चिन्तन करते हैं । उन्हें अपने इस कृत्य की कोई अर्थवत्ता नजर नहीं आती । शम्बूक-वध के औचित्य के प्रति उन्हें कोई स्थायी विचार नहीं मिल पाता -

रक्त की गीली धरा पग से कुरेद-कुरेद
सोचते थे राम नत शिर कर्म फल का भेद ।
कभी इस अपने किये पर हो रहा था खेद,
शक्ति देता कभी दृढ़ कर्तव्य की निर्वेद ।-2

समग्रतः इस रचना में आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों की तुलना में राम का चरित्र-निरूपण मौलिक रूप में हुआ है । सीता-परित्याग व शम्बूक-वध के कृत्यों को रामकुमार वर्मा ने अपनी काव्य रचना "उत्तरायण" में प्रक्षिप्त अंश माना है । किन्तु "शम्बूक" में राम के इन दोनों कृत्यों की मौलिक रूप से आलोचना हुई है ।

धनञ्जय अवस्थी कृत "शबरी" -3 में राम का संक्षिप्त व मौलिक चरित्रांकन हुआ है । "वाल्मीकि-रामायण" में राम शबरी के भक्ति-भाव से प्रभावित होकर उनका आतिथ्य स्वीकार करते हैं ।-4 "रामचरित-मानस" में राम शबरी को भामिनी की संज्ञा देते हुए समभाव को प्रकट करते हुए केवल भक्ति को प्रधान्य देते हैं ।-5 किन्तु "शबरी" में राम

1· शम्बूक-जगदीश गुप्त, पृ0- 22

2 वही, पृ0-46

3· शबरी-धनञ्जय अवस्थी, प्र·सं·-1981 ई0

4· "वाल्मीकि-रामायण" - अरण्यकाण्डम्, पृ0 664

5· कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानऊँ एक भगति कर नाता ।।
"रामचरित-मानस" - अरण्यकाण्ड, पृ0 665

के चरित्र पर आधुनिक नवीन-चेतना के प्रभाव स्वरूप मानवतावादी व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है । भूमिका में कवि ने लिखा है - "राम कितने उदार हैं, वे सभी के हैं, जहाँ ऊँच-नीच की विभाजन रेखा नहीं है । वे सभी को अपनाते हैं । शरणागत् को भी, समाज के बहिष्कृत, तिरस्कृत जनों को भी ।"'-1 इस रचना में राम के समभाव, कर्मवाद व मानवतावाद का प्रकटन हुआ है ।

"शबरी" में राम शबरी को उनके उदात्त कर्मो के कारण ही महत्ता प्रदान करते हैं । वे समाज में व्याप्त वर्ग-विभेद तथा जातिवैषम्यता की भर्त्सना करते हुए व्यक्ति के कर्म को ही सर्वोच्चता प्रदान करते हैं । वे कहते हैं -

> न कोई जन्मना ऊँचा, न नीचा है,
> विभाजन कर्म की रेखा है ।
> उठाती है, गिराती है विभाजित आचरण लेखा । -2

1· शबरी-धनञ्जय अवस्थी, भूमिका में - पृ० 3

2· वही- पृ०-69

सीता

भारतीय वाङ्मय में सीता का चरित्र आदर्श नारियों में सर्वोपरि है । रामकथा की केन्द्र बिन्दु सीता का अंकन दिव्य व अलौकिक रूप के साथ ही लौकिक धरातल पर भी वर्णित हुआ है । सीता का चरित्रांकन "वाल्मीकि - रामायण", "महाभारत" तथा "रामचरित - मानस" में विशेष रूप से हुआ है ।

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में सीता का चरित्रांकन परम्परागत् रूप के साथ ही सम-सामयिक नवीन दृष्टिकोण व युगीन प्रवृत्तियों के अनुरूप व्यंजित हुआ है । इन रचनाओं में उनके मानवीय व सहज रूप को प्रमुख रूप से वर्ण्य विषय बनाया गया है । सीता के परम्परागत् पातिव्रत्य और धर्मभीरु स्वरूप के साथ-साथ लोकनायिका, समष्टिवादी, जीवों से प्रेम करने वाली व सहिष्णु, स्वावलम्बी तथा स्वाभिमानी चरित्र को महत्ता प्राप्त हुई है । "आधुनिक युग की आदर्शवादी नारी से जिस स्वतन्त्र-चिंतन, आत्माभिमान, आत्मत्याग, सात्विक-आक्रोश, निर्णय-क्षमता की आशा की जाती है, उसका प्रतिफलन तो सीता के चरित्र में हुआ ही है, नारी की अभिशप्त विडम्बनापूर्ण क्रूर नियति की भी उसके चरित्र के माध्यम् से यथार्थ अभिव्यञ्जना हुई है ।"-1

आधुनिक युग की प्रबंध रचनाओं में सर्वप्रथम "रामचरित में सीता का विस्तृत चरित्रांकन मिलता है । यद्यपि "रामचरित-चिन्तामणि" में सीता के परम्परागत् पातिव्रत्य स्वरूप का चित्रण हुआ है लेकिन आधुनिक युग की नवीन-चेतना का प्रभाव सीता के चरित्र-निरूपण पर पड़ा है । नारी जागरण आन्दोलनों के प्रभाव स्वरूप सीता को स्वाभिमानी, दृढ़ निश्चयी तथा अन्याय के विरोधी के रूप में चित्रित किया गया है । तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव स्वरूप इस आरम्भिक रचना में भी सीता को देश-प्रेमी के रूप में भी देखा गया है ।

1· हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप-विकास - प्रेमचन्द महेश्वरी, पृ0 230

राम वनवास के समय राम के साथ वन जाने के लिए उद्यत सीता, परम्परागत् रूप से वर्णित सीता की अपेक्षा अधिक दृढ़ निश्चयी हैं । "रामचरित-मानस" में सीता राम से अपने साथ ले चलने की विनती ही कर पाती हैं, -1 किन्तु "रामचरित-चिन्तामणि" में वे कहती हैं -

यदि वायु की गति जाय रूक, रूक जाय गंगाधार भी,
पल में मरूस्थल सूखकर हो जाय पारावार भी,
पर मैं किसी भी विध नहीं रोके रूकूँगी अब यहाँ,
मैं भी चलूँगी साथ ही में आप जावेंगे जहाँ ।-2

"रामचरित-चिन्तामणि" में सीता सामान्य् मानवीय रूप में वर्णित हुई है । सीता के दुर्बल मनोवृत्ति का परिचय उस समय प्राप्त होता है, जब वे हलाहल खाकर आत्महत्या करने की चेतावनी देती है।-3 उनका यह रूप "वाल्मीकि-रामायण" से प्रभावित है ।-4

"रामचरित-चिन्तामणि" में सीता का चरित्रांकन मौलिक रूप में स्वाभिमानी नारी के रूप में हुआ है । मानवीय दुर्बलता के कारण ही वे शाप भय व धर्मभीरूता के कारण रावण को यतीवेश में देखकर उसका स्वागत् सत्कार करती हैं, किन्तु रावण के अनुचित प्रस्ताव पर उनका स्वाभिमान जाग्रत हो उठता है । एकाकी होते हुए भी सीता, रावण के प्रस्ताव का एक वीर-नारी के रूप में विरोध करती है । वे रावण की भर्त्सना करते हुए कहती हैं -

व्याली के मुख को शिशु नहीं चूम सकता है,
अग्नि राशि में तृण का पुतला नहीं घूम सकता है ।
× × ×
क्या सिंही को शशक छेड़कर कुशली कभी रहेगा,
भस्म करूँगी अभी तुझे मैं, यदि कुछ और कहेगा । -5

1· रामचरित मानस - अयोध्या काण्ड, पृ0 389
जिय बिनु देह नदी बिनु वारी । तैसिअ नाथ पुरूष बिनु नारी
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद बिमल विधु वदन निहारे ।

2· रामचरित-चिन्तामणि - रामचरित उपाध्याय, पृ0 66

3· वही, पृ0 79

4· वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड - 31/1-78

5· रामचरित चिन्तामणि, पृ0 154

आधुनिक राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव स्वरूप इस रचना में सीता का चरित्रांकन नवीन व मौलिक रूप में देशप्रेमी के रूप में हुआ है । सीता में अपने देश भारत के प्रति देशाभिमान है । वे रावण से कहती हैं -

भारत की मैं पतिव्रता हूँ सुन दशकन्धर
नश्वर है जब देह मृत्यु का फिर क्या है डर?
धन्य धर्म के लिए निछावर जो होती है,
कीर्ति-बीज को विपुल विश्व में वे बोती है ।-1

"रामचरित-चिन्तामणि" में सीता का चरित्रांकन वीर व साहसी नारी के रूप में हुआ है । वे हनुमान द्वारा राम के पास सन्देश भेजते हुए, उन्हें रावण के कृत्यों का प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करती है । ईंट का जवाब पत्थर से देने की प्रेरणा देती हैं ।-2 गिद्धराज जटायु की वीरता का स्मरण करती हुई वे हनुमान से कहती हैं कि गिद्धराज रावण के अन्याय का सामना करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ, किन्तु राम को कोई चिन्ता नहीं है वे कहती है -

सीधा होके अहह, अपना मान खोना बुरा है ।-3

"अग्नि-परीक्षा" के समय सीता के स्वाभिमानी व अपने स्वत्व के प्रति सचेत नारी का रूप व्यंजित हुआ है । "वाल्मीकि-रामायण" में सीता राम के द्वारा कहीं भी चले जाने की आज्ञा की भर्त्सना करती है ।-4 इसी के प्रभाव स्वरूप "रामचरित-चिन्तामणि" की सीता का चरित्रांकन हुआ है वे कहती हैं -

---

1· रामचरित चिन्तामणि, पृ0 217

2· वही, पृ0 245

3· वही, पृ0 246

4· त्वया तु नृप शार्दूल रोष मेवानुवर्तता। लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ।।
श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण, युद्धकाण्ड श्लोक-14 पृ0 1416

हे राम ! मैं स्त्री हूँ इसी से पापिनी क्या हो गई ?
छू साँप की माला गले की, साँपिनी क्या हो गई ?-1

इस रचना में सीता का चरित्रांकन अन्याय का विरोध करने वाली नारी के रूप में हुआ है । यद्यपि "वाल्मीकि-रामायण" में सीता द्वारा राम द्वारा दिये गये अपने निर्वासन् की निन्दा हुई है ।-2 किन्तु इस रचना में वे "वाल्मीकि-रामायण" की अपेक्षाकृत अधिक उग्र है -

यदि नहीं था रखना मुझे, प्रसव बाद यहाँ पर भेजते ।
सच कहो उदार स्थित बाल का, सुभग ! क्या कुछ भी अपराध है ।-3

"रामचरित-चिन्तामणि" के पश्चात् मैथिलीशरण गुप्त की काव्य-कृति "पंचवटी" में सीता का चरित्रांकन हुआ है । इस रचना में सीता का चरित्रांकन आधुनिक नव्य-चेतना व गाँधीवादी आदर्शों से प्रभावित हैं । इसमें वे आदर्श व मानवतावादी नारी है । जो अलौकिकता से दूर सर्वथा लौकिक जगत् की नारी है ।

शूर्पणखा प्रसंग में सीता भावुक व मानवतावादी रूप में वर्णित हुई है । शूर्पणखा का लक्ष्मण के प्रति प्रेम देखकर वे निश्छल भाव से उसे स्वीकार करती है । वे कहती है -

वन में तुम-सी, एक बहन यदि पाऊँगी,
तो बातें करके ही तुमसे, मैं कृतार्थ हो जाऊँगी ।-4

1· राम चरित-चिन्तामणि - पृ0 323

2· वाल्मीकि रामायण, उत्तरकाण्ड, पृ0 1575

3· रामचरित-चिन्तामणि-पृ0 353

4· पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 30

"पंचवटी" की सीता समतावादी व जीवप्रेमी है । वे शूर्पणखा से कहती हैं कि यदि उनके द्वारा पालित पशु-पक्षी उसे तंग करें तो वह उन्हें क्षमा कर दें ।-1 यहाँ उनका जीव-प्रेम ही उद्घटित हुआ है । यही नहीं वे भौतिकता के माया-मोह के प्रति निर्विकार, प्रकृति-प्रेमी भी हैं । सीता शान्तिवादी नारी भी हैं । वे कहती हैं -

नहीं चाहिए हमें विभव-बल, अब न किसी की डाह रहे,
बस, अपनी जीवन-धारा का, यों ही निभृत प्रवाह बहे ।-2

मैथिलीशरण गुप्त की दूसरी प्रबन्ध रचना "साकेत" में सीता के सहज मानवीय रूप का ही चित्रण हुआ है । व्यावहारिक रूप में सीता आदर्श गुणों से युक्त नारी है । "रामचरित-चिन्तामणि" व "पंचवटी" की ही भाँति इस रचना में भी सीता अलौकिक न होकर लौकिक जगत् की आदर्श व स्वत्व सम्पन्न नारी है, उनका अपना अस्तित्व है । कहीं-कहीं अलौकिकता का समावेश अवश्य हुआ है किन्तु यह रामभक्त कवि द्वारा परम्परा का निर्वाह मात्र है । यथार्थरूप में वे कर्मनिष्ठ, मानवतावादी, समतावादी तथा स्वाभिमानी नारी के रूप में चरित्रांकित हुई हैं । श्यामसुन्दरव्यास के शब्दों में—"साकेत की चरित्र भूमि में सीता की चरित्र-सृष्टि एक नवीन कलेवर के साथ उपस्थित होती है । मनोभावों के अन्तर्गत् उनका जो स्वरूप लक्षित होता है, उसके अन्तर्गत् भी सीता एक आदर्श रमणी के अतिरिक्त हाड़-माँस की नारी भी हैं ।"-3 इस रचना में सीता केवल राम की पत्नी होने के कारण महत्वपूर्ण नहीं है अपितु अपने स्वतन्त्र चिन्तन व निजी उदात्त गुणों के कारण भी महत्ताशाली हैं

"साकेत" की सीता का चरित्र परम्परागत् पातिव्रत्य व नवीन चेतना से युक्त है । रामवनवास के समय सीता अपने पातिव्रत्य का परिचय देते हुए, राम के साथ जीवन के सुखों और दुःखों को सम् भाव से सहन करने की

---

1. पंचवटी - मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 30
2. वही, पृ0 46
3. हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण - डॉ0 श्याम सुन्दर व्यास, पृ0-140

इच्छा से ही स्वयं भी वन-जीवन स्वीकार करती हैं ।-1 उनका आत्मिक बल, उन्हें सम्बल प्रदान करता है । सीता के चरित्र में नारी का स्वत्व-सम्पन्न दृष्टिकोण प्राप्त होता है । वह जंगल के दुरूह जीवन से भयभीत न होकर, जंगल में भी मंगल करने में सक्षम नारी हैं -

वन में क्या भय ही भय है, मुझको तो जय ही जय है ।
यदि अपना आत्मिक बल है, जंगल में भी मंगल है ।।-2

आधुनिक युग की नवीन कर्मवादी चेतना का प्रभाव "साकेत" की सीता के चरित्र-निरूपण पर पड़ा है । "पंचवटी" में सीता का कर्मरत् रूप इसी का द्योतक है । राजघराने की कुलवधू सीता, वन के कार्यों को भी सहजता पूर्वक स्वीकार कर लेती है -

अंचल पट कटि में खोंस, कछोटा मारे
सीता माता थी आज नई धज धारे ।-3

"साकेत" की सीता के चरित्र-चित्रण पर आधुनिक नवीन-चेतना व नारी-जागरण का प्रभाव है । इस रचना में वे आत्म-निर्भरता व स्वावलम्बन को महत्ता प्रदान करती है । अपनी आत्म-निर्भरता पर गर्व करती हुई वे कहती हैं :-

औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ।
अपने पैरों पर खड़ी आप चलती हूँ ।
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ ।
अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ ।।-4

मानवतावादी चेतना तथा गाँधीवादी अछूतोद्धार की चेतना का प्रभाव "साकेत" की सीता के चरित्रांकन पर दृष्टिगत् होता है । सीता

1· साकेत-मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 53
2· वही, पृ0 54
3· वही, पृ0 - 102
4· वही, पृ0 - 104

समतावादी नारी है । निम्न जाति के तथा अज्ञानान्धकार में भटकते वन-वासियों को, वे जीवन की नवीन शैली प्रदान करती है । निम्न जातीय् वनवासी बालाओं को, वे काटना-बुनना सिखाती है, साथ ही उनके जीवनोपयोगी गुणों को भी ग्रहण करती है -

> मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,
> दो अहो नव्यता और भव्यता पाओ ।
> × × ×
> तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में,
> आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में ।-1

इस रचना में सीता का चरित्रांकन नारी-जागरण से भी प्रभावित है । वे जागरूक व साहसी नारी के रूप में व्यंजित हुई हैं । पंचवटी में स्वर्णमृग के पीछे गये राम के आर्त-पुकार को सुनकर वे लक्ष्मण को उनकी सहायता हेतु भेजना चाहती हैं, किन्तु लक्ष्मण सीता की रक्षा को ही महत्वपूर्ण मानते हुए उन्हें एकाकी नहीं छोड़ना चाहते । इस समय सीता में निहित वीरता व साहस का भाव जाग्रत हो उठता है । वे कहती हैं -

> घर बैठो तुम, मैं जाऊँ,
> जो यों पुकार रहा है, किसी काम उसके आऊँ ।-2

"साकेत" की सीता के चरित्र का विशिष्ट पक्ष उनके राम के साथ दाम्पत्य में प्राप्त होता है । परम्परागत् रूप से राम के पग-चिन्हों पर सिर झुकाये चलने वाली सीता का चरित्र, "साकेत" में वास्तविक सहचरी व स्वत्व-सम्पन्न पत्नी के रूप में समभाव की भागी नारी के रूप में चरित्रांकित हुआ है । आधुनिक शिक्षित तथा चिन्तनशील नारी की तरह वे सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में, राम के समकक्ष ही योग्य विदुषी महिला हैं ।-3 "साकेत" में सीता का यह स्वरूप परम्परागत् आधार ग्रहण करते हुए भी आधुनिक है ।

1· साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0- 106

2· वही , पृ0-208

3· वही, पृ0-110-111

"साकेत" की सीता के चरित्र में मानवीय दुर्बलता भी प्राप्त होती है । इसमें वे एक सामान्य् नारी के रूप में चरित्रांकित हुई है, जो अलौकिकता से सर्वथा परे हैं । परम्परागत् रूप में तथा "रामचरित-चिन्तामणि" में वे अपहरण के समय रावण का विरोध करती हुई उसकी कटु निन्दा करती हैं, किन्तु "साकेत" में वे चिल्ला तक नहीं पाती अपितु घबराकर अचेत हो जाती हैं -

चिल्ला तक न सकीं घबराकर वे अचेत हो जाने से ।-1

इस रचना में सीता के स्वत्व व आत्मसम्मान की रक्षा करते हुए, उन्हें नवीन रूप में चरित्रांकित किया गया है । परम्परागत् रूप मे राम के कटु वाक्यों के कारण अग्नि परीक्षा देने वाली सीता का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है । "साकेत" की सीता रावण से वार्तालाप करने के पाप से बचने के लिए स्वयं ही,अग्नि-ताप में अपने तन को तापने का संकल्प लेती हैं -

भाषण करने में भी तुझसे लग न जाय हा । मुझको पाप,
शुद्ध करूँगी मैं इस तनु को अग्नि-ताप में अपने आप ।-2

डॉ० बल्देव प्रसाद मिश्र की रचना "कौशल-किशोर" में सीता का चरित्र पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक है । छायावादी भाव संकुलता व संवेदनात्मकता की प्रवृत्ति का प्रभाव सीता के चरित्र-निरूपण पर प्राप्त होता है । सीता के जन्म के परम्परागत् कथा को भी नवीन रूप में निरूपित किया गया है ।-3

"कौशल-किशोर" में सीता का चरित्रांकन सर्वप्रथम भावुक तथा प्रेमिका बाला के रूप में हुआ है । सीता का राम के प्रति आकर्षण "राम चरित मानस" में भी वर्णित है ।-4 किन्तु इसमें तुलसी ने अपनी आराध्या देवी होने

1· साकेत - पृ0 208
2· वही, पृ0 - 212
3· कौशल-किशोर - बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 98-100
4· रामचरित मानस - अयोध्या काण्ड, पृ0 216-218

के कारण सीता के इस आकर्षण को उल्लिखित मात्र किया है । "कौशल-किशोर" में राम व सीता के प्रेम को पूर्व-जन्म का प्रेम बताया गया है ।-1 इस रचना में सीता के मनोभावों को निरूपित करते हुए, उन्हें अल्हड़ बाला के रूप में चरित्रांकित किया गया है; जो राम के प्रेम में अपना सुध-बुध तक खो बैठती हैं -

कभी फेंके सुन्दर श्रृंगार, किसी को दिया कभी फटकार ।
कभी निश्चेष्ट जँचा संसार, पड़ी ही रहीं कभी मन मार ।
नये पल-पल में पलटे भाव, हरे कर करके मन के घाव ।-2

इस रचना में सीता का चरित्रांकन छायावादी काव्य चेतना से प्रभावित हैं । इसमें सीता मौलिक रूप में संवेदनशील, संशयग्रस्त, सामान्य् नारी के रूप में वर्णित हुई हैं । वे राम के प्रेम में विह्वल हो, इस संशय में डूब जाती हैं कि राम के मन में उनके प्रति प्रेम है या नहीं -

रूप दिखाकर भूप किशोर, बन गये सहसा मानस चोर ।
सखी क्या हुआ नहीं उस ओर, इसी ही भाँति प्रेम का जोर ।-3

"कौशल-किशोर" के समान ही बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की "उर्म्मिला" प्रबन्ध कृति में सीता का चरित्र-निरूपण छायावादी प्रवृत्तियों से प्रभावित है साथ ही मानवतावादी चेतना तथा गाँधीवाद से भी प्रभावित है । आधुनिक नारी-जागरण व बौद्धिक चेतना का प्रभाव भी सीता के चरित्र-निरूपण पर प्राप्त होता है ।

"उर्म्मिला" की सीता के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उनका उर्मिला के प्रति संवेदनशील रूप । पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा उनके इस रूप का अंकन प्रथम बार हुआ है । सीता भावुक-हृदया, संवेदनशील नारी हैं । लक्ष्मण को अपने साथ चलने हेतु उद्दत देख उनके मन में उर्मिला के प्रति गहरी व्यथा

1· कौशल-किशोर- बल्देव प्रसाद मिश्र , पृ0- 158

2· वही , पृ0- 168

3· वही, पृ0- 170

जन्म लेती है । वे कहती हैं -

> मैं जाऊँगी अपने प्रिय के संग, इसमें कुछ तो कल है,
> पर तुम ?
>
> × × ×
>
> लाख स्ववश हों हम नारी पर, फिर भी हैं पुरुषों के वश ।-1

"साकेत" की ही भाँति "नवीन" जी की "उर्म्मिला" की सीता का चरित्र-चित्रण गाँधीवादी ग्रामोत्थान व अछूतोद्वार की चेतना व मानवतावादी चेतना से प्रभावित है । इस रचना में वे अछूत व अशिक्षित वन-वासियों को कृषि व भाषा आदि की शिक्षा देने के कार्य को अपना उद्देश्य मानती हैं । "सीता वन में नव-संस्कृति की वैजयन्ती फहराने वाली है । वे वनवासियों को कृषि, भाषा, योग सबकी शिक्षा देने में सक्षम हैं ।"-2 सीता का यह रूप उदात्त व आदर्श है_

> भाषा,योग, ज्ञान, कृषि यह सब, वन में छिटकाती जाओ
> वनवासियों की हियकलिका, तुम नित चिटकाती जाओ ।-3

आधुनिक नारी जागरण के प्रभावस्वरूप सीता का चरित्र-निरूपण मौलिक रूप में अपने स्वत्व के प्रति जागरूक व बौद्धिक नारी के रूप में हुआ है । राम के सांस्कृतिक-प्रसार के अभियान में वे उनकी सहायिका बनकर हमारे समक्ष आती हैं । सीता अपने स्वत्व के भी प्रति जागरूक हैं, वे नारी को नर के समकक्ष ही संसार में मंगल-प्रसार हेतु महत्वपूर्ण मानती हैं । वे कहती हैं

> नर यदि है खर दोपहरी, तो नारी है शीतल छाया,
> नर-नारी दो रूप बनाकर प्रकटी है विभु की माया ।-4

1· उर्म्मिला - बालकृष्ण शर्मा "नवीन", पृ0 278

2· रामकथा के नारी पात्र - डॉ0 आशा भारती, पृ0 - 167

3· उर्म्मिला - पृ0-576

4· वही, पृ0 - 612

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में "वैदेही-वनवास" में अयोध्या सिंह उपाध्याय ने सीता को नायिका रूप में लेकर उन्हें चरित्रांकित किया है । "वैदेही-वनवास" सीता पर केन्द्रित नायिका प्रधान प्रबन्ध रचना है । इस काव्य-रचना में सीता का चरित्रांकन संवेदनशील, अहिंसावादी, समष्टिवादी, कर्मवादी, लोकसेविका व जीव प्रेमी, भौतिकता से विरक्त तथा प्रकृति प्रेमी नारी के रूप में हुआ है । वे परम्परागत पातिव्रत्य से भी समन्वित हैं ।

"वैदेही वनवास" में सीता के चरित्र-निरूपण पर गाँधीवादी अहिंसा व मानवतावादी चेतना का प्रभाव है । लंका-विजय के पश्चात् अयोध्या में रहते हुए भी सीता के दयार्द्र-हृदय को, लंका दहन के समय निरपराध लंकावासी बालक, वृद्ध व महिलाओं के दयनीय स्थिति की स्मृति, व्यथित करती रहती हैं -

स्वर्ण पुरी का दहन आज भी भूल न पाया,
बड़ा भयंकर दृश्य उस समय था दिखलाया ।
निरपराध बालक-विलाप अबला का क्रन्दन,
विवश वृद्ध-वृद्धाओं का व्याकुल बन रोदन ।-1

यही नहीं सीता युद्ध के समय के जन-संहारक दृश्य और मेघनाद की पत्नी का चितारोहण के घटना की स्मृति भी उन्हें अन्तर्व्यथित कर देता है ।

"वैदेही-वनवास" में सीता का चरित्र-चित्रण समष्टिवादी चेतना से प्रभावित है । सीता समस्त संसार में कल्याणकारी वृत्तियों का प्रचार-प्रसार चाहती हैं । वे सभी को फलते-फूलते और हंसते देखना चाहती है -

---

1. वैदेही-वनवास - अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ0 7-8

अच्छा होता भली-वृत्ति ही जो भव पाता ।
मंगल होता सदा अमंगल मुख न दिखाता ।
सबका होता भला फले-फूले सब होते ।
हँसते-मिलते लोग दिखाते कहीं न रोते ।-1

इस रचना में सीता लोकमत का आदर करने वाली तथा लोक हितरक्षक नारी के रूप में चित्रित हुई है । सीता अपनी त्याग शीलता का परिचय देती हुए जन-कल्याण के लिए "निर्वासन" को स्वयं स्वीकार करती हैं। उनका यह रूप सर्वथा नवीन है । परम्परागत् रूप में उनका निर्वासन् गुप्त रूप से हुआ । "वैदेही-वनवास" में इस निर्वासन को "स्थानान्तरण" की संज्ञा प्राप्त हुई यहाँ एक प्रकारसे सीता के स्वाभिमान व स्वत्व रक्षा का प्रयत्न भी हुआ है । सीता कहती हैं -

वही करूँगी जो कुछ करने की मुझको आज्ञा होगी,
त्याग करूँगी इष्ट सिद्धि के लिए बना मन को योगी ।
सुख वासना स्वार्थ की चिन्ता दोनों से मुँह मोड़ूँगी,
लोकाराधन या प्रभु-आराधन निमित सब छोड़ूँगी ।-2

आधुनिक कर्मवादी चेतना का प्रभाव "वैदेही वनवास" के सीता के चरित्रांकन पर है । इस रचना में सीता कर्मशील नारी है । दास-दासियों के रहते हुए भी वे स्वयं भोजन पकाती हैं ।-3 "साकेत" में सीता के इस कर्मशील रूप का अंकन "पंचवटी" में प्राप्त होता है ।

"वैदेही-वनवास" की सीता भी "साकेत" व "पंचवटी" की ही भाँति लोक सेविका के रूप में चरित्रांकित हुई है । किन्तु इस रचना में उनका यह रूप पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा अधिक उदात्त है । लोकापवाद तथा पति द्वारा अप्रत्यक्ष परित्याग से व्यथित व खिन्ना होते हुए भी, समस्त जीवों

1· वैदेही-वनवास - अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ0 9

2· वही, पृ0 59

3· वही, पृ0 67

के प्रति अपना प्रेम व मातृत्व उड़ेल देती हैं । "वाल्मीकि-आश्रम" में निवास करती सीता आत्मकेन्द्रित नहीं है । वे दुखियों के सहायतार्थ प्रस्तुत तो होती ही हैं, साथ ही आश्रम के पशु-पक्षी व चींटी तक पर ध्यान देती है । मातृहीन गजशावक का सीता के हाथों पलना, उनके व्यापक ममत्व का ही उदाहरण है । गर्भावस्था के पूर्ण दिनों में भी परहित रत् रहती हैं । दोनों पुत्रों के जन्म के पश्चात् भी वे लोकहित से पीछे नहीं हटतीं _

दोनों पुत्रों के प्रतिपालन का भार भीं
उन्हें बनाता था न लोक-हित से विमुख । -1

इस रचना में सीता का चरित्रांकन भौतिकता के विरोधी व आध्यात्मिकता के समर्थिका रूप में हुआ है । उनका यह रूप सर्वथा मौलिक व उदात्त है । सीता भौतिकता को स्वार्थ, विलासिता, दानवीयता, कृत्रिमता व पशुबल से संयुक्त जड़वादी मानती है । इसी कारण वे आध्यात्मिकता को महत्ता प्रदान करती है ।-2

आधुनिक आदर्शवादी चेतना का प्रभाव "वैदेही-वनवास" के सीता के चरित्र-निरूपण पर परिलक्षित होता है । सीता अपने पुत्रों को समस्त भुवन का भय हरने तथा सत्य व भले-भावों को स्वयं में समाहित करने की शिक्षा देती है । वे भौतिकता की अपेक्षा प्रकृति को जीवन का शिक्षक मानती हैं । सीता का यह रूप आदर्श माता का बौद्धिक स्वरूप व्यक्त करता है । वे कहती हैं :-

प्रकृति-पाठ को पठन करो शुचि चित्त से ।
पत्ते-पत्ते में है प्रिय शिक्षा भरी ।।
सोचो समझो मनन करो खोलो नयन ।
जीवन जल में ठीक चलेगी कृति-तरी ।।-3

1· वैदेही-वनवास - अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध", पृ0 162

2· वही पृ0 202-203

3· वही, पृ0 216

शेषमणि शर्मा के "कैकेयी" प्रबन्ध-रचना में सीता का संक्षिप्त चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में हुआ है । इस रचना में उनके स्वाभिमानी, स्वत्व के प्रति जागरूक तथा शान्ति-प्रेमी रूप की उद्भावना नवीन रूप में व्यंजित हुयी है । इस नवीन उद्भावना के पीछे "नयी-कविता" की विद्रोहात्मकता की प्रवृत्ति भी निहित है ।

सीता के जागरूक तथा स्वत्व के प्रति सचेत नारी का रूप राम वनवास के समय प्रकट होता है । पूर्ववर्ती रचनाओं की भाँति वे राम से साथ ले चलने की विनती नहीं करतीं, अपितु अपनी अधिकार-भावना के कारण उनके साथ स्वयं जाती हैं । "रामचरित-चिन्तामणि" व "उर्मिला" प्रबन्ध कृति में भी वे अपना अधिकार-भाव प्रकट करती हैं, किन्तु सन्दर्भित रचना में वे अधिक विद्रोही हैं -

> हूँ किंकरी तथापि मुझे भी, नारी का अधिकार मिला,
> मेरा भी व्यक्तित्व शेष रखने को ही संसार मिला,
> अस्तु उचित समझूँगी जो मैं, वह तो नाथ करूँगी ही ।-1

"कैकेयी" में सीता द्वारा प्रथम बार मौलिक रूप में भरत व कैकेयी की भर्त्सना हुई है ।-2 इस चरित्रांकन पर "नयी कविता" की विद्रोहात्मक चेतना का भी प्रभाव है ।

विद्रोही होने के साथ ही सीता शान्ति-प्रेमी भी हैं । उनका यह रूप उनकी दूरदर्शिता का द्योतक भी है । गृहकलह को बचाने के लिए ही वे लक्ष्मण को अपने साथ ले जाती हैं । सीता राम से कहती हैं :-

> जिस गृह-कलह बचाने के हित, तुमने इतना त्याग किया ।
> वह तो फिर हो ही जायेगा, यदि न इन्हें निज साथ लिया ।-3

1· कैकेयी - शेषमणि शर्मा, पृ0 79

2· वही, पृ0 - 76-77

3· वही, पृ0 - 77

बल्देव प्रसाद मिश्र की दूसरी प्रबन्ध-रचना "साकेत-सन्त" में सीता का चरित्र अति संक्षिप्त रूप में निरूपित हुआ है । आदर्श होते हुए भी सीता का यह चरित्रांकन सर्वथा मौलिक रूप में चित्रित है । इसमें वे आदर्श गृहिणी के रूप में चित्रित हुई है । पंचवटी में आये हुए भरत तथा अन्य बन्धु-बान्धवों के जलपान की व्यवस्था करने वाली सीता गृहस्वामिनी के उदात्त रूप में दृष्टिगत् होती है -

----विपिन-भोगों में जो स्वाद, मिला कब भोज-योगों में।

आओ स्वादिल जलपान करो रसखाना लाला । फिर वार्तालाप ठने मनमाना।-1

"साकेत -सन्त" के पश्चात् गोकुलचन्द शर्मा की काव्य-कृति "अशोकवन" में सीता का चरित्र निरूपण मौलिक रूप में हुआ है । यह रचना सीता पर केन्द्रित प्रबन्ध रचना है । "अशोक-वन" की सीता पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में निरूपित हुई है । इसमें राम की तुलना में सीता को अधिक महत्ता प्राप्त हुई है । गोकुल चन्द्र शर्मा ने "अशोक-वन" की भूमिका में लिखा है - "राम का चरित्र तो अतुलनीय है ही, किन्तु राम नाम में सर्वोत्तम भाव से तन-मन को लीन करने वाली राघवेन्द्र प्रिया सीता के चरित्र की उपमा-कहीं नहीं मिलती ------- जानकी के वन-जीवन में उनके पुनीत चरित्र का अलौकिक आभास मुझे मिला, भारतीय संस्कृति के सुन्दरतम् स्वरूप के दर्शन हुए ।"-2 "अशोक वन" में सीता का चरित्रांकन संवेदनशील, भावुक, अहिंसावादी, कर्मवादी, शान्तिप्रेमी व युद्ध की विरोधी, वीर व साहसी तथा अग्नि परीक्षा का स्वयं आग्रह करने वाली नारी के रूप में हुआ ।

"अशोक-वन" की सीता-चरित्र का उदात्त पक्ष है-उनका जीवों से प्रेम करने वाली, संवेदनशील, दयालु नारी का रूप । शत्रुओं से

1· साकेत-सन्त -बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0-131

2· अशोक वन - गोकुल चन्द्र शर्मा, आत्मनिवेदन में, पृ0-6

घिरी सीता अशोक-वन में बानर बालक को राक्षसियों द्वारा सताया जाता देख उनकी तीव्र भर्त्सना करती हैं । वे क्रूरता को खुशी का साधन बनाना, अति हेय मानती हैं । वे कहती हैं -

कहो क्रूरता हिंसा, हत्या, नाम भेद है केवल,
इनके पीछे छिपा हुआ है मन का मल ।
पर पीड़ा में मोद मनाना, कैसी हीन दशा है,
पीड़क पर प्रभुता का फिर भी चढ़ता एक नशा है ।-1

आधुनिक नव्य-चेतना सम-सामयिकता व गाँधीवादी अहिंसा का प्रभाव "अशोक वन" में सीता के चरित्रांकन पर निहित है । सीता अहिंसा का समर्थन करती हुई, संसार में व्याप्त हिंसा तथा हिंसा के सहयोग से प्रगति पथ खोलने वाले प्राणियों की कटु निन्दा करती हैं—

है जगती की जागरूकता में उल्टी गति आई,
अमल अहिंसा त्याग मलिनतम हिंसा में रति आई ।
वध से पृथ्वी पाट प्रगति पथ खोज रहे हैं प्राणी,
अधर-अधर में गूँज रही है त्राहि-त्राहि की वाणी ।।-2

इस रचना में सीता का चरित्र-निरूपण सम-सामयिक चेतना व गाँधीवादी शान्तिवाद दोनों से प्रभावित है । सीता युद्ध की अपेक्षा शत्रु पर प्रेम द्वारा विजय प्राप्त करने के कृत्य को महत्वपूर्ण मानती है । द्वेष दमन से नहीं, शत्रु के मन पर विजय प्राप्ति करना चाहिए । युद्ध की ज्वाला में संसार कालिमा युक्त इतिहास ही पाता रहा है । शक्ति की उपासना करने वाले कभी भी जग को शान्ति नहीं प्रदान कर सकते । वे कहती हैं -

द्वेष दमन का मार्ग एक ही है क्या आग लगाना ?
विधि नहीं क्या संभव होता रिपु में प्रेम जगाना ।
युद्धों की ज्वाला ने जग में कब न कालिमा छोड़ी ?
शक्ति उपासक दल ने है कब त्राण भावना छोड़ी ।।-3

1· अशोक वन - गोकुल चन्द्र शर्मा, आत्मनिवेदन में, पृ0 52
2· वही, पृ0 52
3· वही, पृ0 88

"अशोक-वन" में सीता कर्म को महत्ता देने वाली श्रमशील नारी हैं । "साकेत" व "वैदेही-वनवास" में भी उनके इसी रूप का चरित्रांकन हुआ है । "अशोक-वन" में सीता पंचवटी में पेड़-पौधों को अपने हाथ से सींचती हैं । पंचवटी के इस प्रसंग का वे स्मरण करती हुई कहती हैं -

उस एकान्त प्रान्त में मैं थी, देवर मेरे साथ सदा,
सींचा करते थे पौधों को दोनों अपने हाथ सदा । -1

"अशोक-वन" की सीता का चरित्र वीरता से समन्वित उदात्त रूप में भी वर्णित हुआ है । पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा उनका यह रूप त्यागपर्ण व निःस्वार्थ भाव से युक्त है । 'माया-मृग' के पीछे राम के चले जाने के बाद, किसी व्यक्ति की आर्त-पुकार सुनकर वे लक्ष्मण को भेजना चाहती हैं, किन्तु लक्ष्मण सीता को एकाकी नहीं छोड़ना चाहते । इसी समय सीता का वीरतापूर्ण रूप प्रकट हुआ है । वे कहती हैं -

देख रहा रे भीरु !" भर्त्सना देकर मैंने देवर को,
कहा "उतार मुझे दे अपने तरकस को, धन्वा शर को,
देखूँगी मैं स्वयं, कौन दुखिया है मुझे पुकार रहा
क्षत्र कलंक ! न मर्यादा का कुछ भी तुझे विचार रहा ।-2

इस रचना में सीता के चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है उनका त्यागशील व बौद्धिक रूप । वे गुण-दोषों को संसर्गजन्य मानती हैं । इसी कारण वह "अशोक-वन" में अपने प्रताड़ित करने वाली राक्षसनियों को वे उनके पश्चाताप् करने पर क्षमा कर देती हैं । वे पश्चाताप् को दुष्कृत्यों का दण्ड मानती हैं । -3

---

1. "अशोक-वन" -पृ0 112

2. वही, पृ0 115

3. वही, पृ0 138

"अशोक-वन" में पूर्ववर्ती तथा परम्परागत् रूप से भिन्न सर्वथा मौलिक व नवीन रूप की अभिव्यंजना अग्नि-परीक्षा के समय प्राप्त होती है । यद्यपि "साकेत" में सीता द्वारा रावण के स्पर्श मात्र के कारण स्वयं को अग्नि में तपाने की बात कही गयी है, किन्तु इस रचना में वे अग्नि-परीक्षा को राम की कीर्ति अक्षक्षुण्ण रखने के लिए आवश्यक मानती हैं । यहाँ उनके पातिव्रत्य व स्वाभिमान तथा स्वत्व दोनों की रक्षा हुई है —

अग्नि-परीक्षा बिना नाथ! यह दासी भी न तोष पाती,
उठे बिना जन की आँखों में क्या प्रभु कीर्ति कोष पाती ।-1-

आधुनिक युग की मानवतावादी, बौद्धिक चेतना तथा वैज्ञानिकता के प्रभावस्वरूप पौराणिक चरित्रों को दिव्यता व अलौकिकता से परे मानवीय रूप में व्यंजित करने की प्रवृत्ति के साथ ही साथ प्रतिपक्षी चरित्रों के प्रति भी कवियों की संवेदना उन्मुख हुई । रावण व शूर्पणखा जैसे चरित्रों का पुनर्मूल्याकंन हुआ । "रावण-महाकाव्य" इसी दृष्टिकोण से रचित प्रबन्ध रचना है ।

"रावण-महाकाव्य" में सीता का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में किन्तु मौलिकता व नवीनता से समन्वित्, नारी-जागरण से प्रभावित्, बौद्धिक चेतना से युक्त, तार्किक दृष्टिकोण से समन्वित नारी के रूप में हुआ है । "रावण-महाकाव्य" में सीता पंचवटी में लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा पर किये जाने वाले आक्रमण की भर्त्सना करती हैं । सीता का यह रूप "रावण-महाकाव्य" की अपनी मौलिकता है । वे लक्ष्मण से कहती है -

बोली सरूष सिया-"तुम देवर लियौ लाज कौ जीते ।
रूपवती अबला पै ठाढ़े ऐसी करत अनीति ।
नारिन पै इमि हाथ डारिबौ लिख्यौ कहूँ है नाहीं ।
आपु समान महाबल योद्धा भयो कौन जग माँही ।। -2

1· "अशोक वन" - पृ0 146

2· रावण महाकाव्य - हरदयालु सिंह, पृ0 153

"रावण – महाकाव्य" की सीता दूरदर्शी नारी भी है । वे लंका के राजा रावण की बहिन के अपमान के दूरगामी परिणामों से लक्ष्मण को अवगत् कराते हुए, उन्हें राजकुमारी शूर्पणखा का वध करने से रोकती हैं । यहाँ उनकी राजनीतिक दूरदर्शिता का भी प्रकटन हुआ है । सीता का यह चरित्रांकन रावण-महाकाव्य" में प्रथम बार हुआ है । सीता लक्ष्मण से कहती हैं :-

बैठे ठाले वनवासिन पै जनि आपत्ति बुलावौ ।
रावन की वह भगिनी आपु जनि सोवत् सिंह जगावौ
जौ पै याहि वधै हेदेवर ! अयस रावरौ ह्वैहैं ।
अबला-वध कलंक कौ टीकौ भला कौन धो ध्वैहै ।।-1

इस प्रबन्ध-काव्य में सीता-चरित्र का मौलिक पक्ष है, उनका राजबंदी रूप । वे रावण द्वारा राजबन्दी बनाये जाने के कारण दुःखी है, साथ ही राम से मिलने की इच्छा भी उन्हें संत्रस्त करती हैं । हनुमान से सन्देश भेजती हुई, वे कहती हैं :-

जियत सीता करत निज मन प्रभु मिलन की आस ।
राजबन्दी भई याते रहत सदा संत्रास ।।-2

समग्रतः इस रचना में वे नारी उत्थान की समर्थिका, नारी के अस्तित्व के प्रति जागरूक, दूरदर्शी नारी के रूप में चरित्रांकित हुई हैं । "रावण-महाकाव्य" में सीता का चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिकता से समन्वित, सर्वथा नवीन रूप में हुआ है ।

बल्देव प्रसाद मिश्र की रचना "रामराज्य" में सीता का चरित्राकन अति संक्षिप्त रूप में हुआ है । आधुनिक नव्य चेतना के प्रभाव तथा यथार्थवादी प्रवृत्ति के प्रभावस्वरूप उनका चरित्र-निरूपण विद्रोही नारी के रूप में हुआ है । उनके चरित्र का यह पक्ष नवीन है ।

---

1. रावण महाकाव्य - हरदयालु सिंह पृ0 153

2. वही, पृ0 159

'अग्नि-परीक्षा' के समय सीता का विद्रोही रूप प्रकट हुआ है । वे राम के शंकालु चरित्र तथा उन परिस्थितियों की जो कि ऐसे विभ्रमपूर्ण लोकमत को जन्म देते हैं, की भर्त्सना करती हैं । वे राम के शंका निवारण हेतु स्वयं अग्नि-परीक्षा देती है । यहाँ उनके स्वाभिमानी व विद्रोही रूप का ही उद्बोधन हुआ है । सीता कहती हैं -

तपस्विनी का रोष परिस्थिति पर तब जागा ।
जिसने ऐसा विषम लोकमत् रचा अभागा ।
कहा उन्होंने अग्नि-परीक्षा मेरी हो ले ।
मेरा पातिव्रत्य, अनल अपने मुँह बोले । -1

हरिशंकर सिन्हा कृत "माण्डवी" में भी सीता का चरित्रांकन सक्षिप्त रूप में ही हुआ है । माण्डवी व भरत पर केन्द्रित रचना होने के कारण इसमें सीता के चरित्रांकन हेतु कवि को पर्याप्त अवसर नहीं मिल सका है, किन्तु संक्षिप्त रूप में भी सीता के चरित्र-निरूपण पर नव्य-चेतना का प्रभाव है । इस रचना में वे अहिंसावादी, मानवतावादी, परम्परागत् रूढ़ियों की विरोधी तथा समन्वयवादी नारी के रूप में व्यंजित हुई है । उनका यह चरित्र निरूपण मानवतावाद, गाँधीवाद, बौद्धिक-चेतना, समन्वयवाद तथा नारी-जागरण की चेतना से प्रभावित है।

इस रचना में सीता में राजनीतिक दूरदर्शिता तथा मानवतावादी का आरोपण 'शूर्पणखा-प्रसंग' में दृष्टिगत् होता है । वे शूर्पणखा के अंग-विच्छेदन को राक्षसवृन्द के प्रतिशोधानल को जाग्रत करने वाला मानती हैं । वे दानव में भी मानवीयता को जाग्रत करने की इच्छुक है । लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के अंग-विच्छेदन को अदूरदर्शितापूर्ण मानते हुए, वे कहती हैं -

जब तक यह कुरूप जीवित है, राक्षस उर प्रतिशोध उठेगा ।
उन्हें मनुज बनने का अवसर, हे देवर ! तुमने हत डाला ।।-2

1· रामराज्य -बल्देव प्रसाद मिश्र - पृ0 109

2· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा - पृ0 /83

"माण्डवी" में सीता के चरित्र का नव्यतम् पक्ष है, उनका परम्परागत् रूढ़ियों के प्रति विद्रोही दृष्टिकोण । उनका यह चरित्र पंचवटी में व्यंजित हुआ है । पंचवटी में माया मृग के पीछे गये राम के सहायतार्थ सीता लक्ष्मण को भेजना चाहती हैं, किन्तु लक्ष्मण सीता को निर्जन स्थल पर एकाकी नहीं छोड़ना चाहते । इस समय सीता में लक्ष्मण के प्रति संशयात्मक दृष्टि जाग्रत होती है। साथ ही परम्परागत् रूप से चली आ रही यह परिपाटी की पति के बाद पत्नी पर देवर का अधिकार हो जाता था, भी सीता को भयग्रस्त कर देती है । वे इस परम्परा के प्रति अपनी विद्रोहात्मक भावना प्रकट करती हुई, कहती हैं :-

> क्रुद्ध सिंहिनी सा तब उसने कहा गरज, "क्या समझ रहे हो ?
> नहीं तुम्हारी मैं हो सकती, भूल रहे, तुम भूल रहे हो ।"-1

"माण्डवी" में सीता के समन्वयवादी व उदात्त स्वरूप का चित्रण हुआ है । आधुनिक बौद्धिक व मानवतावादी चेतना तथा प्रतिपक्षी चरित्रों के प्रति मानवीय संवेदना के प्रभाव स्वरूप सीता का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है । उनका यह रूप उस समय प्रकट होता है जब वे रावण जैसे शत्रु की भी प्रशंसा करती हैं । उनका यह रूप पूर्ववर्ती प्रबन्ध-रचनाओं में नहीं मिलता । रावण के मर्यादा-पूर्ण आचरण व शिष्टता के गुणों की प्रशंसा करती हुई, सीता कहती हैं :-

> बहुत हीन फिर भी न कहूँगी, शिष्ट दुष्टता की मर्यादा,
> कभी उल्लघंन किया न उसने, मिलती मेरी राख अन्यथा ।-2

आधुनिक प्रबन्ध रचनाओं में आदर्श से यथार्थ की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति मिलती है । उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं

1· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा, पृ0 186

2· वही, पृ0 221

शती के पूर्वार्द्ध के आरम्भ में जिन आदर्शों की स्थापना हुई, उन्हीं आदर्शों का विखडन बीसवी शती के उत्तरार्द्ध में व्यजित होने लगा । परम्परागत् रूप से आदर्शों को महत्व देने वाली मानवीय दुर्बलता से समन्वित नारी का रूप बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तक उग्र, विद्रोही व स्वत्व सम्पन्न जागरूक नारी के रूप में परिवर्तित होने लगा । यद्यपि कुछ पूर्ववर्ती रचनाओं मे उनका विद्रोही रूप किंचित मात्रा में व्यक्त हुआ है, किन्तु वे पूर्णतया मुखर न हो सकीं । "भूमिजा" में नारी की विद्रोहात्मकता व रूढ़ परम्परा का विरोध अधिक मुखर हुआ है ।

"भूमिजा" में सीता का चरित्र पूववर्ती रचनाओं की अपेक्षा सर्वथा नवीन रूप में अंकित हुआ है । "भूमिजा" सीता चरित्र पर केन्द्रित नायिका-प्रधान रचना है । इसमें सीता के निर्वासन के बाद की घटना को कथावस्तु बनायी गयी हैं । इस रचना में सीता का राम के प्रति विद्रोहात्मकता का प्रकटन सर्वप्रथम हुआ है । वे जनसामान्य् के प्रतिनिधि के रूप में कर्मवादी तथा गाँधीवादी ग्रामोत्थान के प्रभाव स्वरूप कृषि व गाँवों का उत्थान करने वाली तथा निरंकुश राजतन्त्र के विरुद्ध प्रजा के स्वर के रूप में चरित्रांकित हुई हैं । रघुवीर शरण मित्र के शब्दों में—"वास्तव में मैं सीता के माध्यम् से समाज एवं राष्ट्र से कुछ कहना चाहता हूँ, न्याय और निर्माण की आवाज बुलन्द करना चाहता हूँ । सीता जनक दुलारी होने के साथ-साथ वर्तमान चेतना की प्रतीक भी है ।"-1

"भूमिजा" में सीता दृढ़ इच्छा व स्वाभिमान से युक्त यथार्थवादी नारी के रूप में निरूपित हुई हैं । राम द्वारा निर्वासित किये जाने के बाद वह हताश नहीं होतीं, अपितु स्वयं पर लगे झूठे कलंक की वास्तविकता समाज के समक्ष लाने हेतु तत्पर हो उठती हैं । वे अपने दृढ़ इच्छा शक्ति व आत्मिक बल के कारण मृत्यु की अपेक्षा स्वर्णिम् जीवन को महत्वपूर्ण मानती हैं । न्याय की प्राप्ति हेतु वे जीवन को अंगीकार करती हैं । वे कहती हैं -

---

1· भूमिजा - रघुवीर शरण मित्र, भूमिका में कवि, पृ0-5

मुझे जीना पड़ेगा रात की चादर हटाने को ।
मुझे गाना पड़ेगा न्याय का सूरज जगाने को । -1

"भूमिजा" में सीता का चरित्र-निरूपण गाँधीवादी चेतना से प्रभावित है । इसमें भी सीता "साकेत" व "उर्मिला" §नवीन§ की सीता की भाँति ही निम्न वर्गीय मानव के उत्थान और विकास हेतु प्रयासरत् है । किन्तु इस रचना में वे निम्न वर्ग की प्रतिनिधि बनकर उभरी हैं । वे कृषि को महत्व देती हुई, ग्रामोत्थान हेतु कुटीर उद्योगों का विकास करती हैं । निम्न वर्गीय लोगों को अज्ञानान्धकार से बाहर निकालने के लिए, शिक्षा प्रकाश फैलाती हैं ।

सीता ने गृह उद्योगों की, फैलाई उजियाली ।
× × ×
कभी लगाती मन पौधों से, दीपक कभी दिखाती ।
कभी पढ़ाती थी बच्चों को, बुनना कभी सिखाती ।-2

आधुनिक नव्य-चेतना व यथार्थवादी दृष्टिकोण के प्रभाव स्वरूप सीता का चरित्र पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा "भूमिजा" में प्रथमतः प्रजा की प्रतिनिधि के रूप में निरूपित हुआ है । वे निरकुश राजतंत्र की निरंकुशता का सामना करने तथा राजतंत्र के शक्ति का शक्ति से विरोध करने के लिए ही, प्रजा को शक्ति व सामर्थ्य प्रदान करने की इच्छुक है । वे शिक्षा के साथ-साथ ग्राम बालकों को अपनी सुरक्षा हेतु युद्ध की शिक्षा भी प्रदान करती हैं ।-3

"भूमिजा" में सीता कर्मवादी तथा जागरूक नारी के रूप में अंकित हुई हैं । पूर्ववर्ती रचनाओं में उनका कर्मवादी रूप सीमित व व्यक्तिगत् है, किन्तु इस रचना में वे समष्टि को कर्म की शिक्षा प्रदान करती हैं, गाँव-गाँव में, घर-घर में कर्म के महत्ता की स्थापना करती हैं -

---

1· भूमिजा - रघुवीर शरण मित्र, पृ0 -40
2· वही, पृ0-60
3· वही, पृ0-61

नारी के उत्थान सूर्य से, मान मिला अम्बर को ।
कर्म ज्योति बाँटी सीता ने, गाँव-गाँव के घर को ।-1

सीता अपने परिश्रम और बौद्धिक क्षमता से गाँवों को नवीन, मंगलमयी रूप प्रदान करने में सक्षम होती है । वे उनमें स्वाभिमान आत्म-निर्भरता, शिक्षा का प्रसार व समानता की भावना जाग्रत करती है । कृषि व प्रकृति के विकास के साथ ही उन्हें आत्मरक्षा में भी सक्षमता प्रदान करती है । वे राजसत्ता के निरंकुशता के विरूद्ध भूमि पुत्रों के निर्बल करों को शक्ति सम्पन्न बनाती हैं । ताकि भूमि पुत्रों का शोषण न हो, दमन न हो । "भूमिजा" में आधुनिक काल की विद्रोहात्मक दृष्टि व सामान्य मानव के महत्ता की प्रवृत्ति का प्रभाव विशेष रूप से व्यजित हुआ है । यही इस रचना में महत्वपूर्ण है ।

"भूमिजा" में सीता स्वाभिमानी नारी के रूप में व्यंजित हुई हैं । 'निर्वासन' की पीड़ा उनके स्वाभिमान को इतना आहत् कर देता है कि वे कभी भी राम को क्षमा नहीं कर पातीं । परम्परागत् रूप में भी सीता के धरती में समाने की घटना निरूपित हुई हैं, किन्तु उनमें वे अयोध्या में, राज दरबार में राम द्वारा दुबारा अग्नि-परीक्षा के आदेश पर विक्षुब्ध होकर पृथ्वी में समा जाती हैं । किन्तु "भूमिजा" की सीता इसका अवसर ही नहीं देती । लव-कुश के बड़े होने पर, उनके शक्ति व शौर्य से अभिभूत हो राम पश्चाताप् करते हैं तथा सीता को वापस ले जाना चाहते हैं । किन्तु सीता उनको बिना कोई उत्तर दिये, बिना एक शब्द बोले, धरती में समा जाती हैं :-

टपक पड़ा सीता का आँसू, धरा फट गई तत्क्षण,
सीता समा गई धरती में, प्राण बन गये कण-कण ।-2

1· भूमिजा - रघुवीर शरण मित्र, पृ0 65

2· भूमिजा - पृ0 98

इसी सन्दर्भ में रघुवीर शरण मित्र ने "भूमिजा" की भूमिका में लिखा है- "सीता स्वाभिमान की वनाग्नि थीं । माँ धरती में समा गई पर उस राज्य की शरण स्वीकार नहीं की, जिसने उसे लज्जित कर घर से निकाला था ।-1 "भूमिजा" में सीता का चरित्र उदात्त रूप में निरूपित हुआ है । कृषि चेतना की प्रतीक, भूमि पुत्रों का नेतृत्व करने वाली, उन्हें जीवन का उद्देश्य व अर्थवत्ता समझाने वाली सीता का चरित्रांकन "भूमिजा" की अपनी विशिष्ट मौलिकता है ।

1· भूमिजा - भूमिका में कवि, पृ0 6

भरत

भारतीय वाङ्मय में भरत का चरित्र उदात्त भ्रातृ-प्रेम का अनुपम उदाहरण है । जिस साम्राज्य के लिए पुत्र अपने पिता का, भाई अपने भाई का रक्त बहाने से भी नहीं हिचकते, उसी साम्राज्य को भरत द्वारा ढेले के समान ठुकरा दिया जाता है । भरत के निःस्पृह त्याग व निःस्वार्थ भ्रातृप्रेम का परिचय "वाल्मीकि-रामायण" में विशिष्ट रूप से प्राप्त होता है ।-1 "राम-चरित मानस" में भी भरत चरित्र के गरिमामय स्वरूप में त्याग व भ्रातृ-प्रेम की अभिव्यंजना उदात्त ढंग से हुई है ।-2

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में भरत के परम्परागत् त्यागमयी चरित्र व भ्रातृ-प्रेम के साथ-साथ उनके चरित्रगत् अन्य उदात्त तत्त्वों का भी निरूपण हुआ है । इस नवीनता के मूल में आधुनिक नव-जागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न नवीन-चेतना की प्रमुख भूमिका रही है ।

आधुनिक रामकथाधृत प्रबन्ध-कृतियों के अनुक्रम में रामचरित उपाध्याय कृत "रामचरित-चिन्तामणि" का स्थान सर्वप्रथम आता है । इसमें भरत-चरित्र का निरूपण परम्परागत् रूप में ही अभिव्यंजित हुआ है, किन्तु उनके चरित्र का नवीन बौद्धिक व्यंजना भी हुई है । भरत चरित्र का मौलिक पक्ष है - उनका नीतिज्ञ रूप । वे राम के राज्य को ग्रहण करना नीति-सम्मत नहीं मानते, उनके अनुसार दूसरों का धन लेना, सबसे बड़ा अधर्म है । भरत का चरित्र यहाँ पर आधुनिक आदर्शवादी चेतना से प्रभावित है । भरत कहते हैं -

---

1. वाल्मीकि रामायण - अयोध्याकाण्ड, पृ0 385, 387

2. रामचरित मानस - अयोध्याकांड

क्या परस्व भी कभी किसी को पच सकता है ?
करके विष का पान कौन जन बच सकता है ?
गो,ब्राह्मण गुरुघात किये चाहे सुख होवे,
हरकर किन्तु परस्व नरक में कौन न सोवे ?-1

आधुनिक युग की राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव भरत के चरित्र-निरूपण में भी है । "रामचरित-चिन्तामणि" में भरत का चरित्र देश-प्रेमी के रूप में व्यंजित हुआ है । राम के महत् उद्देश्यों से सहमत हों, वे उन्हें देश के कल्याण हेतु दुःख भी सहन करने की राय देते हैं -

जैसा है यह समय कार्य वैसा ही करिये,
जन्म भूमि के दुःख, दुःख सह करके हरिये ।-2

आधुनिक बौद्धिक व समतावादी प्रवृत्ति का प्रभाव भरत-चरित्र पर भी है । वे अपकारी के साथ उपकार तथा घमण्डियों के सत्कार का पूर्णतया निषेध करते हैं । भरत चरित्र का यह मौलिक पक्ष है । वे राम से कहते हैं :-

अपकारी के साथ कभी उपकार न करना,
घमण्डियों का राम कभी सत्कार न करना ।-3

"रामचरित-चिन्तामणि" के पश्चात् "साकेत" में भरत के चरित्र को विस्तार मिला है । "साकेत" में भरत के चरित्र में परम्परागत् भ्रातृप्रेम के साथ-साथ मानवतावाद व विश्वबन्धुत्व की भावना का समावेश किया गया है ।

---

1. रामचरित-चिन्तामणि - रामचरित उपाध्याय, पृ0 111

2. वही, पृ0 131

3. वही, पृ0 131

भरत के संत जैसे चरित्र का उग्र पक्ष है - माता कैकेयी के प्रति क्रोध । "वाल्मीकि-रामायण" में भी भरत के इस उग्र रूप का अकन हुआ है । वे कैकेयी की भर्त्सना करते हुए कहते हैं कि मनुष्यघातिनी कैकेयी तुम राज्य से भ्रष्ट होवो, तुम दुष्टाचारिणी हो, तुम्हें धर्म ने छोड़ दिया है । तुम मृत पति के लिए मत रोवो । मनुष्य-घातिनी राज्यलोभिनी । तुम माता के रूप में मेरी दुश्मन हो । तुम्हें मेरे से न बोलना चाहिये । तुम दुष्टाचारिणी हो और पतिघातिनी हो:—

तां तथा गर्हयित्वा तु मातरं भरतस्तदा ।
रोषेण महताविष्ट पुनरेवब्रवीद्वचः ।।1।
राज्याद् भ्रशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्ट चारिणी ।
परित्यक्तासि धर्मेण मा मृतं रुदती भव ।।2।।
× × ×
मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्य कामुके ।
न तेऽहमामि भाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनी ।।6।।-1

"रामचरित-मानस" में भरत चरित्र की यह उग्रता कुछ कम हुई है । साकेतकार ने "वाल्मीकि-रामायण" से प्रभावित हो भरत के चरित्रगत् उग्रता का निरूपण किया है । भरत अपनी माँ कैकेयी के कृत्यों की भर्त्सना करते हैं। किन्तु यहाँ वे वाल्मीकि रामायण के भरत की अपेक्षा अधिक उग्र और कठोर हैं । वे कैकेयी से कहते हैं :-

धन्य तेरा क्षुधित पुत्र-स्नेह, खा गया जो भून कर पति देह,
ग्रास करके अब मुझे हो तृप्त, और नीचे निज दुराशय दृप्त।-2

1· वाल्मीकि रामायण-अयोध्या काण्ड, सर्ग 50, श्लोक 1, 2, 6

2· साकेत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 94

अपनी माता को पति का देह भूनकर खाने वाली नारी की सज्ञा देना भरत के आदर्श व मर्यादापूर्ण चरित्र के विपरीत है । भ्रातृ-प्रेम की दृष्टि से भले ही भरत की इस उग्रता को स्वीकृति प्रदान की जाय, किन्तु नैतिकता की दृष्टि से उनका यह रूप अनुचित ही कहा जायेगा ।

आधुनिक आदर्शवादी चेतना के प्रभाव स्वरूप भरत-चरित्र के त्यागमयी स्वरूप की अभिव्यंजना प्राप्त हुई है । उनके भ्रातृ-प्रेम के उदात्तता का परिचय उनके राजकीय वैभव के त्याग तथा राम सदृश वनवासी जीवन बिताने के कार्यों से प्राप्त होता है ।

आधुनिक मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रभाव-स्वरूप समाज में मानव को समरूपता प्राप्त हुई । समाज में वर्णभेद, जाति-भेद के विखडन की प्रवृत्ति जाग्रत हुई । "साकेत" के भरत में भी इसी मानवतावादी चेतना का प्रभाव परिलक्षित होता है । शूर्पणखा-प्रसंग के समय उनके इसी सम्भाव का परिचय मिलता है । वे आर्य-अनार्य संस्कृति का समान रूप से आदर करते हुए कहते हैं -

"उसमें भी सुलोचनाएँ है और प्रिय, हममें भी अन्ध ।"-1

भरत चरित्रगत् मौलिक पक्ष है- उनका वीर रूप तथा देशाभिमान की भावना । आधुनिक राष्ट्रीय आन्दोलनों से समुत्पन्न चेतना का प्रभाव भरत-चरित्र पर दृष्टिगत् होता है । वे सीता को भारत-लक्ष्मी के रूप में देखते हैं । भारत लक्ष्मी को विदेशी {रावण} बन्धन से मुक्त कराने के लिए स्वयं तत्पर हो उठते हैं -

---

1· साकेत एकादश सर्ग, पृ0 205

भारत लक्ष्मी पड़ी राक्षसों के बन्धन में,
सिन्धु पार वह बिलखरही है व्याकुल मन में ।
बैठा हूँ मैं भण्ड साधुता धारण करके
अपने मिथ्या भरत नाम को नाम न धरके ।
× ×
उठो, इसी क्षण शूर, करो सेना की सज्जा ।-1

"साकेत" के भरत का चरित्र आदर्श व यथार्थ का अद्भुत समन्वय है ।

अयोध्या सिंह 'उपाध्याय' की "वैदेही-वनवास" कृति "साकेत" के पश्चात् भरत चरित्र को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली अगली कड़ी है । "वैदेही-वनवास" के भरत "साकेत" की अपेक्षा अधिक आधुनिक, तार्किक है आधुनिक नवीन-चेतना के प्रभाव स्वरूप इस कृति में भरत के नीतिज्ञ, कर्मवादी व यथार्थवादी चरित्र का निरूपण हुआ है ।

"वैदेही-वनवास" के भरत का चरित्र "साकेत" की तुलना में अधिक तार्किक व बौद्धिक है । सीता-परित्याग की घटना के अनौचित्य की ओर संकेत करते हैं । सीता पर लगे आक्षेप को वे अनैतिक मानते हैं । इसी सन्दर्भ में समाज के सत्-असत् पक्ष की यथार्थवादी दृष्टिकोण से व्यंजना करते हुए, वे कहते हैं -

किसी को है विवेक से प्रेम ।
किसी को प्यारा है अविवेक ।
जहाँ हैं हंस-वंश-अवतंस ।
वहीं पर है बक-वृत्ति अनेक । -2

1·साकेत एकादश सर्ग, पृ0 221

2· वैदेही -वनवास - अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ0 28

भरत-चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका यथार्थवादी रूप । भरत लोकाराधन को उसी सीमा तक राजा का कर्तव्य मानते हैं, जिस सीमा तक वह जन-कल्याण के लिए उचित हो । समाज में विप्लव लाने वाले लोकाराधन को वे महत्व नहीं देते । सीता का परित्याग, लोकाराधन के नाम पर ही, राम द्वारा किया जाता है । भरत इसी लोकाराधन की भर्त्सना करते हुए कहते हैं -

लोकाराधन है नृप-धर्म । किन्तु इसका यह आशय है न ।।
सुनी जाये उनकी भी बात । जो बला ला पाते हैं चैन ।।-1

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विकसित नव-जागरण आन्दोलनों से उत्पन्न प्रवृत्ति मार्गी दृष्टि की अभिव्यक्ति भरत के चरित्र के माध्यम् से हुई है । "वैदेही-वनवास" के भरत पर आधुनिक कर्मवादी चेतना का प्रभाव है । वे कर्म को पूजनीय मानते हैं । भरत व्यक्ति की अपेक्षा उसके कर्म को महत्ता प्रदान करते हैं -

नहीं पूजित है कोई व्यक्ति । आज है पूजनीय गुण कर्म ।-2

"रामचरित-चिन्तामणि" के प्रभाव स्वरूप "वैदेही-वनवास" के भरत का चरित्र बौद्धिक चेतना से प्रभावित है । वे कुत्सा, हिंसा व दुर्वाद को दयनीय मानते हैं । इस रचना में भरत-चरित्र का मौलिक पक्ष है कि वे अपने ही देश के लोगों की दुष्प्रवृत्तियों के दमन को महत्व देते हैं । भरत के शब्दों में -

भरा है जिसमें है कुत्सित भाव । द्वेष हिंसामय जो है उक्ति ।।
मलिन करने को महती-कीर्ति । गढ़ी जाती है जो बहु युक्ति ।।
वह अवांछित है, है दलनीय । दण्ड्य है दुर्जन का दुर्वाद ।।-3

1· वैदेही-वनवास - अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', पृ0- 28

2· वही, पृ0 32

3· वही,पृ0 34-35

इस रचना में भरत का चरित्र सर्वथा मौलिक व नवीन रूप में वर्णित हुआ है । आधुनिक युगीन प्रवृत्ति बौद्धिकता व तार्किक दृष्टिकोण व यथार्थवादी चेतना की है । आदर्श के नाम पर गढ़े गये रूढ़ियों का विखंडन इस युग का विद्रोही कदम है । राम द्वारा प्रजावत्सलता व लोकाराधन के नाम पर किये गये 'सीता-परित्याग'' का जो कार्य परम्परा से आदर्श रूप में स्वीकृत होता रहा, वही आधुनिक बौद्धिक, यथार्थवादी चेतना के फलस्वरूप अमानवीय और निंदनीय माना गया ।

"वैदेही-वनवास" के पश्चात् भरत-चरित्र का निरूपण शेषमणि शर्मा की काव्य-कृति "कैकेयी" में प्राप्त होता है । इसमें भरत का चरित्र"वाल्मीकि -रामायण" व "साकेत" के भरत की अपेक्षा अधिक उग्र है । माता कैकेयी को वे पिशाचिनी व कुलकलंकिनी जैसे अशिष्ट शब्दों से सम्बोधित करते हुए-1 उनकी भर्त्सना करते हैं -

तू जननी है नहीं, विष भरी है काली भीषण व्याली,
प्राणान्तक करने वाली, तू अरी जहर की है प्याली ।-2

परम्परागत् रूप से आदर्शवादी व मर्यादाशील भरत का "कैकेयी" में चित्रित यह उग्र रूप उनके चरित्र को निम्न करने वाला भी है । भ्रातृ-प्रेम की उदात्तता की अभिव्यंजना हेतु वर्णित भरत का यह रूप नैतिक दृष्टि से उचित नहीं कहा जायेगा । यह रूप उनके परम्परागत् रूप के परिप्रेक्ष्य में भिन्न होते हुए भी श्लाघनीय नही है । भरत अपनी माँ कैकेयी की भर्त्सना करते हुए उन्हें मारने तक की धमकी देते हैं -

---

1· कैकेयी - शेषमणि शर्मा, पृ0 107

2· वही, पृ0 109

हाय विवश कर रहा मुझे है, आज पुत्र का ही नाता ।
नही तुम्हारी इस करणी का, मैं अवश्य प्रतिफल देता ।
तेरा शोणित ले अंजलि में, नृप को तर्पण जल देता ।-1

आधुनिक पौराणिक प्रबन्ध-रचनाओं में अनेक अपेक्षाकृत गौण पात्रों को महत्त्व प्रदान करने की प्रवृत्ति प्राप्त होती है । रामचरित-काव्यों में राम के पश्चात् भरत ही यद्यपि सर्वथा महत्त्वपूर्ण पात्र हैं, फिर भी भरत को चरित-नायक बनाकर पृथक प्रबन्ध रचना की प्रवृत्ति आधुनिक युग में ही प्राप्त होती है । देवी प्रसाद गुप्त के शब्दों में - "भरत के चरित्र का पर्याप्त विस्तार और विश्लेषण रामकाव्यों में विशेष रूप से तुलसी के मानस में हुआ है । किन्तु भरत के चरित्र की प्रतिष्ठा महाकाव्य के नायक के यप में अद्यावधि किसी ने नहीं की थी।"-2 "साकेत-सन्त" में बल्देव प्रसाद मिश्र ने भरत को सर्वप्रथम नायक के रूप मेंचरित्रांकित किया है । इस रचना में आधुनिक नव-जागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न नवीन चेतना के फलस्वरूप भरत दूरदर्शी, भावुक, गाँधीवादी, ग्रामोत्थान के समर्थक, सेवाव्रती तथा भौतिकता से परे विरागी रूप में व्यंजित हुए हैं ।

"साकेत-सन्त" में भरत के तपस्वी रूप की रक्षा करते हुए भी सामान्य मानवीय रूप में चित्रण हुआ है । छायावादी काव्यधारा की संवेदनशीलता भावाभिव्यंजकता की प्रवृत्ति के प्रभाव स्वरूप इस रचना में भरत के प्रेमी-पति के रूप का चरित्राकन प्रथम बार हुआ है । भरत के मन के श्रृंगारिक भावों का चित्रण पूर्ववर्ती रचनाओं में नहीं प्राप्त होता है । माण्डवी के साथ हास-परिहास करते भरत के श्रृंगारिक रूप की व्यंजना "साकेत-सन्त" की अपनी मौलिकता है -

---

1· कैकेयी - शेषमणि शर्मा, पृ0 112

2· हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य - देवी प्रसाद गुप्त, पृ0 164

भरत खिल उठे, बढ़ उठे हाथ,
कहा, "लो ! जीवित - वीणा साथ ।
मिले फिर से रति और अनंग,
सजे फिर घन-विद्युत का संग । -1

नारी जागरण आन्दोलन तथा मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप नारी के प्रति परम्परागत् प्रवृत्ति में पर्याप्त अन्तर आया । नारी को पुरूषों के समकक्ष महत्ता प्रदान की जाने लगी । "साकेत-सन्त" के भरत पर इस चेतना का पर्याप्त प्रभाव है । वे नारी के प्रति सद्भाव अभिव्यक्त करते हुए उसे नर के प्रगति पथ का सम्पूर्ण सहयोगी मानते हैं -

बढ़ा यदि आगे आधा अग, चलेगा क्या न दूसरा संग ।
रण स्थल तक में देकर साथ, बटाया रमणीगण ने हाथ ।-2

इस रचना में भरत के व्यक्तित्व पर गाँधी का कर्मवादी दृष्टि तथा अहिंसा के सिद्धान्त का प्रभाव है । भरत कर्म की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए व भाग्यवादिता की भर्त्सना करते हुए, कर्म पथ की ओर अग्रसित होने का सन्देश देते हैं -

पुरूष है भाग्य-विधाता आप ।
अलस ही पाता है अभिशाप ।
विज्ञ है कर्म-पन्थ आरूढ़,
दैव के बल पर रहते मूढ़ ।।-3

भरत के चरित्र पर गाँधीवादी अहिंसा के सिद्धान्त का प्रभाव दृष्टिगत् होता है । भरत निर्दोष जीवों के शिकार को निन्दनीय मानते

1· साकेत-सन्त - बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 21

2· वही, पृ0 23

3· वही, चतुर्थ सर्ग, पृ0 63

हैं । वे पशुओं के वध की तुलना में अपने अन्दर निहित पशुता के भावों का हनन करने का सन्देश देते हैं । वे कहते हैं -

निष्ठुर ही यदि होना है, मृगया की यदि अभिलाषा ।
मारे नर अपनी पशुता, बाँधे नर अपनी आशा ।
शोषण यदि पापों का हो, पोषण अपना तब होगा ।
शोषण यदि जीवों का हो, उत्कर्ष कहाँ कब होगा ?-1

आधुनिक मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप समाज में व्याप्त वर्ग-वैषम्य की भावना ध्वस्त होने लगी । निम्न वर्गों के अधिकारों के रक्षा हेतु समानतावादी प्रवृत्ति का भी उन्नयन हुआ । "साकेत-सन्त" में भरत के चरित्र पर इसी प्रवृत्ति का प्रभाव है । इस रचना में वे प्रथम बार निम्नवर्गीय लोगों के हितों की रक्षा करने वाले जनवादी नायक के रूप में व्यंजित हुए हैं । भरत के शब्दों में —

निर्धन की कुटिया ढाकर, जो अपना महल बनाते ।
आहों की फूँकों से ही, वे एक दिवस ढह जाते ।
जिसने कुचला औरों को, उसने ही चक्कर खाया ।-2

यही नहीं वे दास या स्वामी में कोई विभेद नहीं मानते । यहाँ पर भरत पर आधुनिक समतावादी प्रवृत्ति का प्रभाव है । वे कहते हैं कि दास और स्वामी कोई नहीं है, यह केवल प्रभुता का भ्रम मात्र है-

है कौन दास या स्वामी, प्रभुता का यह सब भ्रम है ।
वह जन्मसिद्ध ही कैसे, जिसमें कर्मों का क्रम है ।।-3

नव-जागरण आन्दोलनों के फलस्वरूप धर्म के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण समुत्पन्न हुई । "साकेत-सन्त" के भरत पर इस चेतना

1· साकेत सन्त, चतुर्थ सर्ग, पृ0 38

2· वही, पृ0 38

3· वही, पृ0 37

का प्रभाव दृष्टिगत् होता है । वे निरंकुश धर्म को दण्डनीय मानते हैं । भरत के चरित्र में निहित यह विद्रोही रूप है । भरत के शब्दों में -

यदि धर्म दण्ड तक सीमित
तो वह दण्डित निश्चय है ।-1

आधुनिक नवीन चेतना के प्रभाव स्वरूप "साकेत-सन्त" के भरत धर्म के साथ-साथ वे राजनीति की भी युगीन दृष्टिकोण से व्यंजना करते हैं । भरत निरकुश शासन-तत्र की भर्त्सना करते हुए उसे जन-सामान्य् हेतु उपयोगी रूप में महत्ता प्रदान करते हैं । शासक को तपस्वी के समान होना चाहिए, जो व्यक्ति की अपेक्षा समष्टि-कल्याण हेतु सन्नद्ध हो । वे कहते हैं -

शासक है सच्चा तापस, जगरक्षा तप का फल है ।
वह शक्ति शक्ति ही कैसी, दुर्बल-बलि जिसका बल है ।-2

भरत का चरित्र आधुनिक गाँधीवादी ग्रामोत्थान की चेतना से प्रभावित है । वे मजदूर व किसानों के समग्र उत्थान हेतु प्रतिबद्ध रहते हैं । नर में नारायण का दर्शन करने वाले भरत घर-घर में खुशहाली व सम्पन्नता के इच्छुक है । गाँधीवादी सुराज्य की कल्पना भरत के आँखों में दिखाई देती है —

पाँचों सुख अन्नादि जन्य हों घरों घरों में,
नारायण को लखा उन्होंने नरो-नरों में ।
हो मजदूर किसान बन्धु-बान्धव से अपने,
अपने होकर रहें उन सबों के सुख सपने ।-3

"साकेत-सन्त" के भरत-चरित्र का दुर्बल पक्ष है, राम-वनवास के कारण उत्पन्न माता कैकेयी के प्रति उनका उग्र रूप । भरत के

1· साकेत-सन्त, पृ0 37

2· वही, पृ0 37

3· वही, पृ0 184

इस उग्र रूप का चरित्रांकन "वाल्मीकि-रामायण" के बाद आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में "साकेत" व शेषमणि शर्मा कृत "कैकेयी" में मुखर हुआ है । "साकेत-सन्त" में भी भरत माता कैकेयी के प्रति अत्यधिक कठोर है । वे उन्हें कठोर दुर्वचन कहने से भी नही चूकते -

मॉ?कहूं मानवी कि दानवी नारी, डाकिनी ने दुर्धर मूठ अवध पर मारी,
किस मुख से कह दूँ इसे कि मेरी मॉं है,यह घोर राक्षसी निशा कठोरअमा है। -1

आदर्शवादी, मर्यादाशील भरत का यह उग्र रूप उनके परम्परागत् रूप से भिन्न होते हुए भी श्लाघनीय नहीं कहा जा सकता ।

इस रचना में भरत-चरित्र में परम्परानुकूल भाग्यवादी स्वरूप का भी चित्रण हुआ है । वे भाग्य के समक्ष मानव को परतन्त्र मानते हैं, उनके अनुसार मानव-जन्म से पूर्व ही उसके भाग्य-लिपि का निर्माण हो जाता है -

भाग्य लिपि का पहले निर्माण, देह को तब मिलते हैं प्राण।
नियति-परतन्त्र मनुज व्यापार, नियति ही सार, नियति ही सार। - 2

भरत का यह चरित्र उनके आधुनिक कर्मवादी चरित्र का विरोधाभास सा प्रतीत होता है । एक तरफ वे कर्म की महत्ता को स्वीकार करते हैं, तो दूसरी तरफ 'नियति ही सार' को भी मानते हैं । इसी कारण वे जनमानस को नवीन मन्त्र प्रदान करते हुए,कर्म से भाग्य तथा भाग्य से कर्म का सन्देश देते हैं -

कर्म से भाग्य,भाग्य से कर्म, उभय में बीज-वृक्ष का धर्म । - 3

समग्रतः "साकेत-सन्त" में भरत चरित्र की नवीन अभिव्यंजना हुई है । इस रचना में वे छायावादी भावाभिव्यंजना की प्रवृत्ति के प्रभाव स्वरूप एक तरफ भावुक व प्रेमी पति है, वहीं दूसरी तरफ वे द्विवेदी युगीन

---

1. साकेत-सन्त, पृ0 61

2. वही, पृ0 61-62

3. वही, पृ0 - 63

तथा आधुनिक नव-चेतना, गाँधीवादी अहिंसा व ग्रामोत्थान के सिद्धान्त से भी प्रभावित हैं । "साकेत-सन्त" में भरत के चरित्र में प्रथम बार नारी की महत्ता का समर्थन व दास व निम्न वर्गों के प्रति जागरूकता प्रस्फुटित हुई है । डॉ राम किशन सैनी के शब्दों में - "साकेत-सन्त के भरत सहृदय, उदार, करूणा के सागर और शोषितों के परम हिताभिलाषी है ।-1 इसी सन्दर्भ में डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त जी ने अपना मत व्यक्त करते हुए "साकेत-सन्त" के भरत चरित्र की उदात्ता का निरूपण किया है । उनके अनुसार - "भरत के चरित्र में त्याग के अनुपम आदर्श की महान अभिव्यंजना हुई है । चौदह वर्षों की दीर्घावधि में राम और लक्ष्मण वन में रहते हुए भी उस महान् त्यागमय आदर्श के प्रतीक नहीं बन पाते हैं, जिसके भरत अयोध्या के भोगों में रहकर भी योगी का सा जीवन बिताते हुए बन जाते हैं ।"-2

डॉ0 बल्देव प्रसाद मिश्र की दूसरी रचना "रामराज्य" में भरत के चरित्र का संक्षिप्त किन्तु उदात्त रूप का निरूपण हुआ है । "रामराज्य" राम के चरित्र पर आधारित रचना है, इसी कारण इसमें भरत-चरित्र को विस्तार न प्राप्त हो सका । किन्तु इस रचना में भरत "साकेत-सन्त" के भरत-चरित्र से अधिक प्रभावित हैं । "साकेत-सन्त" की ही भाँति "रामराज्य" के भरत के चरित्र-निरूपण पर भी गाँधीवादी दृष्टि तथा गाँधी जी के व्यक्तित्व का प्रभाव बहुत दूर तक है, लेकिन "रामराज्य" में भरत को सुशासक के रूप में प्रस्तुत किया गया है । स्वतन्त्रता-आन्दोलन के दौरान तथा उसके पश्चात् भी ऐसे सुशासकों का आदर्श युग की आवश्यकता थी। गाँधी जी ने स्वराज्य स्वप्न रामराज्य के रूप में ही देखा था । इस रचना का "रामराज्य" नाम इसी ओर संकेत करता है । इस "रामराज्य" के सुशासक के रूप में भरत को प्रतिस्थापित किया गया है ।

1· आधुनिकहिन्दी महाकाव्यों में पाश्चात्य चिन्तन - रामकिशन सैनी, पृ0 91

2· हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य - देवी प्रसाद गुप्त, 167

"साकेत-सन्त" में भरत सुशासक के गुणों में आदर्शवादी तत्त्वों का निरूपण करते हैं, किन्तु इस रचना में वे कुशल सुशासक व कूटनीतिज्ञ के रूप में परिलक्षित होते हैं । भ्रातृ-प्रेम के कारण त्यागमयी जीवन व्यतीत करते हुए भरत द्वारा शासन का संचालन जिस निपुणता से सम्पन्न होता है, वह आदर्श है –

कभी मन्त्रणा कभी निदेशों में रहते रत,
वृद्धों से थे कभी, तत्व गहते सेवा व्रत ।
महलों के क्या हाल, नगर की स्थिति है कैसी
कौन गाँव का ऋद्धि बढ़ चली नगरों जैसी ?
क्या शासन के सभी कर्मचारी जाग्रत हैं ?
स्वार्थी उनमें कौन, कौन शुचि सेवारत है ?-1

भरत में सुशासक के गुणों के साथ-साथ उनका त्यागी रूप गाँधीवादी आदर्शों से प्रभावित् है । गाँधी जी के समान ही इस रचना में भी भरत रूखा भोजन करने वाले, वस्त्र के नाम पर लंगोटी धारण करने वाले महान त्यागी हैं –

रूखा भोजन, वसन, लंगोटी भूमि शयन था,
दीन प्रजा का मूर्त रूप उनका जीवन था ।-2

समग्रतः "साकेत-सन्त" में भरत के समग्र जीवन का उदात्त चित्रण हुआ है जबकि "रामराज्य" में वे सुशासक के गुणों से समन्वित आदर्श व त्यागी व्यक्तित्व से परिपूर्ण है ।

हरिशंकर सिन्हा कृत "माण्डवी" कृति में परम्परागत् रूप से उपेक्षित "माण्डवी" को नायिकत्व प्रदान किया गया है । माण्डवी भरत की पत्नी हैं अतः भरत का चरित्र निरूपण भी विस्तृत रूप से हुआ है । उन्नीसवीं शती

1· रामराज्य - पृ0- 113

2· वही, पृ0- 114

उत्तरार्द्ध तथा बीसवी शती के पूर्वार्द्ध में चलने वाले नव-जागरण आन्दोलनों तथा गाँधीवादी सिद्धान्तों से उत्पन्न चेतना इस रचना पर पूर्णरूपेण प्रभावी हैं । आधुनिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त मिथ्याडम्बरों की भर्त्सना के साथ-साथ पूर्व व पश्चिम के मध्य समन्वयशील दृष्टिकोण भी इस रचना की विशिष्टता है ।

"माण्डवी" के प्रथम सर्ग में भरत का चरित्र गाँधी जी के अहिंसावादी सिद्धान्त से प्रभावित है । वे विपक्षी के बाहुबल पर नहीं अपितु उसके हृदय पर विजय-प्राप्ति के आकांक्षी है । गाँधी जी भी विपक्षी पर नहीं उसके हृदय को जीतने के समर्थक थे । भरत हिंसा के द्वारा पृथ्वी की शक्ति भग करने का विरोध करते हुए कहते हैं -

> नही परीक्षण किया उन्होंने, तेजधार का धर्म सत्य के
> हम ऐसी रण शिक्षा देगें, भुज क्या उर भी झुके चरण में ।
> नही किया कुछ जा सकता है, उन्मूलन बस रौंद कुचलकर,
> होता है विनष्ट केवल वह, शान्त मही से प्लावित होकर।-1

आधुनिक बौद्धिक दृष्टिकोण तथा वैज्ञानिकता के प्रभाव ने शिक्षा के क्षेत्र में नवीन चेतना जाग्रत की । आधुनिक युग में शिक्षा के अर्थवत्ता, समाजोपयोगिता व देश हेतु उपयोगिता पर ध्यान दिया जाने लगा। केवल नैतिकता की शिक्षा ही नहीं, जन-जन को जागरूक करने वाली शिक्षा की महत्ता स्थापित हुई । "माण्डवी" के भरत भी ऐसी शिक्षा का प्रचार-प्रसार चाहते हैं, जो पाश्चात्य-सभ्यता का दास न बनाकर, समाज को बौद्धिकता व जागरूकता प्रदान करें। भरत-चरित्र का यह सर्वथा मौलिक पक्ष है । वे कहते हैं :-

> इसलिए सब सभ्य राष्ट्र को, निजस्वतन्त्रता स्थिर रखने ।
> सदा ध्यान रखना है पावे, तम न बुद्धि आच्छादित करने
> ऐसी शिक्षा का प्रसार हो, जन-जन जाग्रत सावधान
> निज जन भी शोषण करता यदि, चुप न रहे जन वही महान।-2

1· माण्डवी - हरिशकर सिन्हा, पृ0 25
2· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा, पृ0 73

परम्परागत् रूप से माता कैकेयी के प्रति, रामवनवास के कारण, उग्र भरत का चरित्र इस रचना में नैतिकतापूर्ण है । भरत-चरित्र में निहित यह मौलिक पक्ष है । वे कैकेयी को सहज भाव से समझाते हुए उनके कृत्य के प्रतिफल से उन्हें अवगत् कराते हैं :-

यदि आज भाई पर पड़ा तो कल जननि,
तुम भी उसी के चक्र में सकती पिसा ।
शान्ति क्या होगी कभी उस नीति से,
जो दम्भ, शोषण, छल कपट पर आश्रिता ।-1

इस रचना में भरत मानवतावादी व बौद्धिक चेतना से समन्वित है । आधुनिक युगीन प्रवृत्ति के फलस्वरूप समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार व न्याय-अन्याय, धर्म व पाप की नवीन तार्किक व्याख्या हुई है। भरत इन्हीं सामाजिक विडम्बनाओं की भर्त्सना करते हुए कहते हैं -

जगत में प्रभुता की ही खोज, न्याय,अन्याय,धर्म और पाप ।
बहुत धूमिल रखते हैं भेद, स्वार्थ ने करके तर्क विराट ।
बताया इन्हें दृष्टि का फेर, मानवों का करके परिहास ।-2
बिछाते हैं इतना वैषम्य, कहाँ सत्भाव ? कहाँ सत्कर्म ।

भरत-चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका जननेता का चरित्र । वे सामाजिक विद्वेषी, वर्ग-वैषम्य तथा तथा अनाचारों की ओर बढ़ती प्रवृत्ति को रोककर समाज के नव-निर्माण के इच्छुक हैं । वे समाज को सत्य पथ का अनुगामी बनाना चाहते हैं । भरत कहते हैं -

हमें तो करना नव-निर्माण, जगत में हम आये कुछ हेतु ।
× ×
बढ़े ही जायें हम अविरोध, लक्ष्य की ओर ज्योति की ओर,
सत्य की ओर, अमरता ओर ।"-3

1· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा, पृ0 107

2· वही, पृ0 145

3· वही, पृ0 147

माण्डवी

'उर्मिला की भाँति माण्डवी का चरित्र भी आधुनिक युग की देन है । परम्परागत् रूप में "वाल्मीकि-रामायण" तथा "रामचरित मानस" में माण्डवी का नाममात्र के लिए उल्लेख प्राप्त होता है । आधुनिक प्रबन्ध कृतियों में नव्य-चेतना के प्रभाव स्वरूप परम्परागत् रूप से उपेक्षित नारी पात्र माण्डवी को भी कवियों ने व्यक्तित्व प्रदान किया । माण्डवी के चरित्र पर केन्द्रित रचनाओं में हरिशंकर सिन्हा की रचना "माण्डवी" §1958 ई0 §, राजेन्द्र तिवारी कृत "माण्डवी6 §प्र स· 1880 ई§ हरि प्रसाद शास्त्री कृत "माण्डवी" राजेश्वर मिश्र की प्रबन्ध-कृति §प्र·स· 1990 ई0§ आदि रचनायें प्राप्त होती हैं "साकेत" §मैथिली शरण गुप्त§ "साकेत-सन्त" §बल्देव प्रसाद मिश्र§ में भी माण्डवी का चरित्राकन हुआ है ।

"साकेत" में गुप्त जी ने माण्डवी का त्यागी, पतिव्रता, बौद्धिक, अहिंसावादी दूरदर्शी व आदर्शवादी नारी के रूप में चरित्रांकन किया है । "साकेत" में माण्डवी का चरित्र-चित्रण आधुनिक, गाँधीवादी, बौद्धिक व आदर्शवादी चेतना से प्रभावित है । डॉ0 गोविन्द राम शर्मा के शब्दों में - साकेत में गुप्त जी ने माण्डवी को एक अनोखी परिस्थिति में अंकित किया है । वह एक प्रभुभक्ति में लीन पुजारी व पुजारिन है । उसके हाथ में फलाहार से सजा सोने का थाल पकड़ा कर कवि ने उसकी दयनीय दशा की ओर संकेत किया है । माण्डवी संयोगिनी होकर भी वियोगिनी है । साकेत के राजभवन में रहती हुई भी तपस्विनी बनी है ।"-1 किन्तु इसके साथ-साथ उदात्त नव्य आदर्शों से समन्वित बौद्धिक नारी भी है ।

राम-वनवास के बाद भरत राजमहल से दूर कुटी बनाकर रहते हैं । ऐसी परिस्थिति में घर, समाज, शासन के साथ-साथ वह पति के प्रति भी अपने कर्तव्यों का निर्वाह सहज रूप से करती हैं । वे परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों

1· हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य - डॉ0 गोविन्द शर्मा, पृ0 206

को पूरा करके, प्रतिदिन पति की सेवा हेतु उनके पास जाती है । यहाँ उनके पातिव्रत्य का ही प्रकटन हुआ है -

> यही नित्य का क्रम था उसका, राजभवन से आती थी,
> स्वश्रू-सुश्रुषिणी अन्त में पतिदर्शन कर जाती थी ।-1

"साकेत" में माण्डवी का चरित्र-निरूपण सुख-दुख के द्वन्द से परे प्रज्ञावान नारी के रूप में हुआ है । वह जीवन में आने वाले सुखों व दुखों को समभाव से स्वीकार करती हैं । यही नहीं वह पर के लिए स्व के उत्सर्ग की भी समर्थक हैं । उनके अनुसार दूसरों के कल्याण हेतु शिव की भाँति विषपान करना ही, मानव की महानता है । यहाँ उनके उदात्त चरित्र का ही अंकन हुआ है । वे कहती हैं :-

> जीवन में सुख-दुःख निरन्तर आते-जाते रहते हैं ।
> सुख तो सभी भोग लेते हैं दुःख धीर ही सहते हैं ।
> मनुज दुग्ध से, दनुज रुधिर से, अमर सुधा से जीते हैं ।
> किन्तु हलाहल भव-सागर का शिव-शंकर ही पीते हैं ।-2

गुप्त जी ने माण्डवी के चरित्र पर आधुनिक गाँधीवादी अहिंसा-प्रेमी व्यक्तित्व का आरोपण किया है । शत्रुघ्न द्वारा शस्त्रार्जन के बारे में तथा युद्ध कौशल के विविध तकनीकों के बारे में जानकारी दिये जाने पर वे शस्त्रास्त्र के संचय के प्रति विरक्ति प्रकट करते हुए, शान्ति की समर्थिका ही परिलक्षित होती है । वे कहती हैं कि युद्ध की विभीषिका को सहने के बाद भी मानव भावी युद्ध की कल्पना क्यों करता है -

> ------क्या यों ही सच्चे कलह कहीं कम है ?
> हा । तब भी सन्तुष्ट न होकर लगे कल्पना में हम ।-3

1· साकेत-मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 198

2· वही, पृ0 200

3· वही, पृ0 203

"साकेत" में माण्डवी सहृदयी व जनसेवी नारी भी हैं । राजवश की नारी होते हुए भी वे भरत के वाण से घायल हनुमान की अपने हाथों से मरहम पट्टी करती है -

अपना आँचल फाड़ माण्डवी उसे बाँधती थी पट्टी ।-1

इस रचना में माण्डवी कर्मवादी व कला प्रेमी नारी के रूप में भी वर्णित हुई हैं । वे कहती है कि ताप में तपकर ही वर्षा में धरती को उर्वराशक्ति प्राप्त होती है । "साकेत" में प्रथम बार वर्णित माण्डवी का चरित्र उदात्त व आदर्श सम्पूरित है ।

"उर्मिला" में नवीन जी ने माण्डवी का नामोल्लेख मात्र किया है ।

बल्देव प्रसाद मिश्र कृत "साकेत-सन्त" में माण्डवी का चरित्रांकन साकेत की अपेक्षा विस्तृत रूप में हुआ । भरत के चरित्र पर केन्द्रित इस रचना में माण्डवी के दाम्पत्य प्रेम, कला-प्रेम, त्याग व आदर्श गुणों का अंकन हुआ है ।

"साकेत" में मांडवी के पातिव्रत्य का ही चित्रण हुआ है । "साकेत-सन्त" में मौलिक रूप में माण्डवी के दाम्पत्य प्रेम का अंकन हुआ है । भरत के प्रति समर्पित अपने प्रेम का प्रकटन करती हुई, वे कहती हैं -

और मैं ? तुम्हें हृदय में थाप, बनूँगी अर्घ्य आरती आप ।
विश्व की सारी कांति समेट, करूँगी एक तुम्हारी भेंट ।-2

इस रचना में माण्डवी के चरित्र का विशिष्ट पक्ष है, उनका तपस्विनी नारी का रूप । नन्दीग्राम में निवास करते भरत की

1· साकेत - पृ0 207

2· साकेत-सन्त - बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 26

सेवा के साथ-साथ, वे जन-जन के लिए भी समर्पित नारी है । भरत के साथ-साथ माण्डवी की तपस्या कम महत्त्वपूर्ण नहीं है -

आई उतर तपस्या भू पर नारी बन सुकुमारी
पर सुकुमारी अग्नि-शिखा थी जग-जग पावनकारी ।-1

माण्डवी ने पति के सान्निध्य में भी जिस अनुपम त्याग का परिचय दिया, वह उसके चरित्र की महत उदात्तता है । सीता अपने पति के साथ वनवासी होते हुए भी संयोगी जीवन व्यतीत करती है । उर्मिला अपने प्रिय के दूर होने के कारण वियोगी है, किन्तु माण्डवी संयोगी होते हुए भी वियोगी का जीवन व्यतीत करती है -

सम्मुख है राकेश, चकोरी पर न उधर निज नयन उठाये ।
विकसी प्रभा प्रभाकर की है, पर न कमलिनी मोद मनाये ।-2

आधुनिक युग में गाँधीवाद के प्रभाव स्वरूप खादी-वस्त्रों को स्वदेशी-भावना से जोड़ दिया गया । खादी वस्त्रों को महत्ता कुटीर उद्योगों के उन्नयन हेतु भी किया गया । "साकेत-सन्त" की माण्डवी के चरित्रांकन पर इसी गाँधीवादी चेतना का प्रभाव है । राजवंश की बहू तथा समृद्धि से परिपूर्ण होते हुए भी, वे खादी के वस्त्रों को ही धारण करती है :-

तन पर दो खादी के टुकड़े, चार चूड़ियाँ प्यारी ।
एक छत्र शासक की यह थी आधी देह दुलारी ।।-3

यही नहीं वे पारिवारिक उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक नारी भी हैं । वे माताओं की सेवा सुश्रुषा के साथ-साथ उर्मिला की देखभाल भी स्वयं करती हैं । अपने दुःख को भूलकर, वे परिवार के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण निर्वाह करती है । "साकेत" में भी उनके इस रूप का अंकन हुआ है ।

1· साकेत सन्त, पृ0 190

2· वही, पृ0 191

3· वही, पृ0 190

उदात्त चरित्र से युक्त मांडवी का चरित्र भरत की तुलना में कम महत्त्वपूर्ण नहीं है । डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त के शब्दों में - "भरत के चरित्रोत्थान में मांड वी का योग महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि भरत के त्याग और योगमय जीवन की सफलता मांडवी के प्रयत्नों में ही निहित है ।"-1 मांडवी का चरित्र "साकेत" की तुलना में उदात्त है ।

आधुनिक युग में उपेक्षित पात्रों के चरित्रोन्नय की प्रवृत्ति के कारण सर्वथा उपेक्षित चरित्रों पर आधारित प्रबन्ध-कृतियों का प्रणयन हुआ । हरिशकर सिन्हा कृत "माण्डवी"-2 इसी क्षेत्र की एक महत कड़ी है । इसमें माण्डवी नायिका रूप में निरूपित हुई है । कवि ने माण्डवी का चरित्रांकन आदर्श व वीर नारी, गाँधीवादी, नारी के अधिकारों के प्रति जागरूक, परम्परागत रूढ़ियों की विरोधी, जनसेवी, ग्रामोत्थान में सन्नद्व व दीनोद्वारक नारी के रूप में किया है । "साकेत" व "साकेत-सन्त" की अपेक्षा "माण्डवी" में माण्डवी का चरित्र विस्तृत-धरातल पर अंकित हुआ है ।

"माण्डवी में कवि ने माण्डवी का चरित्रांकन शौर्य सम्पन्न वीरनारी के रूप में किया है । पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा उनका यह रूप सर्वथा मौलिक है । आधुनिक युग में नारी-उत्थान के प्रयास के कारण, नारियों में पुरूषों के समान ही स्वतन्त्रता व अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी । साहित्य में भी नारी उदात्त गुणों से समन्वित की गई । माण्डवी के चरित्रांकन पर नारी-जागरण का स्पष्ट प्रभाव है । वे शत्रुओं के गर्व को तोड़ने के लिए रण-चण्डी भी बन सकती हैं । वे भरत से कहती हैं :-

खटक पड़ा यदि कहीं शस्त्र तो, भार नहीं पाओगे मुझको ।
बनकर वर्ग तुम्हारा रण में, चड़चड़ तोड़ूँगी अरि असि को।-3

1· हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य-देवी प्रसाद गुप्त, पृ0 167

2· माण्डवी-हरिशंकर सिन्हा, प्र·सं· 1958 ई0

3· वही, पृ0 26

इस रचना में माण्डवी पापी से नहीं पाप से घृणा करने का सन्देश देती हुई, ऐसे मानवों को सुधारने का आह्वान करती हैं, जो पापी हैं। यहाँ माण्डवी के चरित्र निरूपण पर गाँधीवाद का प्रभाव है । इस रचना में वे शासन तन्त्र द्वारा एक चोर को प्राण दण्ड देते देखकर, उन्हें रोकती हुई, उसे सुधरने का मौका देने का आदेश देती है -

चोर को प्राण दण्ड क्या न्याय ?
प्रेम से इसे सुधारों आप ।-1

माण्डवी में उदात्त पातिव्रत्य के साथ पारिवारिक तथा देश के प्रति भी कर्त्तव्य-चेतना है । "साकेत" व "साकेत-सन्त" की भाँति माण्डवी इस रचना में भी अपने पति की सेवा हेतु उनके लिए भोजन लेकर स्वयं ही "पर्णकुटी" जाती हैं । किन्तु वे केवल घर-परिवार तक सीमित नहीं है । वे शासन के कार्यों में भी सहभागी होती हैं ।

आधुनिक युग में नारी-जागरण के कारण नारी अपनी स्वायत्तता,अधिकार व स्वतन्त्रता के प्रति विशेष रूप से जागरूक हुई । इस रचना में माण्डवी भी नारी-स्वातंत्र्य के प्रति जागरूक नारी के रूप में निरूपित हुई हैं । माण्डवी विदेशों में नारियों के उच्च दशा का, उन्हें प्राप्त अधिकारों का दृष्टान्त रखते हुए, भारत की नारियों में व्याप्त संकीर्ण दृष्टिकोण की भी भर्त्सना करती हैं । वे कहती हैं :-

हमारे यहाँ नारि-स्वातन्त्र्य, बहुत छोटा रखता आगार,
कहाँ वह बेबीलोन, असीर ? कहाँ उत्तर काशी का देश ?
जहाँ पर पुरूषों की ही भाँति, नारी करती बाहर का काम
तोड़कर श्रेणी की दिवार, मसक कर कंचन कारागार ।-2

यही नही वे परम्परागत् रूढ़ियों की विरोधी भी हैं । यहाँ उनके बौद्धिक दृष्टिकोण का ही अंकन हुआ है । वे मानव को खुले मस्तिष्क से विचार करने का सन्देश देती हुई, रूढ़ियों के अन्धभक्त होने का

---

1. माण्डवी, पृ0 147

2. वही, पृ0 149

निषेध करती है । वे उनमें बौद्धिकता का उन्मेष करना चाहती है, साथ ही उन्हें सुन्दर, स्वस्थ व सुजन भी बनाना चाहती है -

सदा वह रखती थी यह ध्यान, बने जन सुन्दर स्वस्थ सुजान।
खुले मस्तिष्क करे सुविचार, न रूढ़ों के हो अन्धे दास ।।-1

कवि ने माण्डवी का चरित्रांकन दीनोद्धारक व कर्मवादी नारी के रूप में भी किया है । आधुनिक गाँधीवाद का प्रभाव भी माण्डवी के चरित्र-निरूपण पर पड़ा है । माण्डवी राजवंश की नारी होते हुए भी सदैव गरीबों व दीनों के सहायतार्थ उनके निवास तक जाती हैं । उन्हें दूसरों के सहायता पर जीने व दान ग्रहण करने की अपेक्षा आत्म-निर्भर होना सिखलाती हैं । श्रम का सन्देश देती हुई, सम्मान पूर्वक जीना सिखाती हैं :-

गरीबों की कुटिया में प्रात , दिखाई देती थी वह मातु ।
उन्हें सिखलाती मत लो दान, करो कुछ काम धरो सम्मान ।-2

गाँधीवाद में ग्रामोत्थान पर विशेष बल दिया गया है । माण्डवी के चरित्रांकन पर भी इसी चेतना का प्रभाव है । वे गाँवों के सम्यक व बहुमुखी विकास हेतु सन्नद्ध रहती है इसके लिए वे गाँव के कृषकों व ग्रामीणों के साथ विचार-विमर्श करती हैं :-

कभी कृषक ग्रामीणों संग,
सिखाती वे ही गौरव सेतु ।-3

आधुनिक नव्य मानवतावादी चेतना का प्रभाव भी माण्डवी के चरित्र चित्रण पर पड़ा है । माण्डवी जातीय वैषम्य की विरोधी हैं । स्वदेश के अपाहिजों, रोगग्रस्त व्यक्तियों, दुःख क्लान्त मानव की सेवा करती माण्डवी का चरित्र, उच्चउदात्त्ता का द्योतक है । वे बिना किसी जाति व वर्ग भेद के, निःस्वार्थ व मानवतावादी दृष्टिकोण से असहाय मानवों के प्रति अपनी सेवा समर्पित करती हैं -

अपाहिज रोगग्रस्त दुःख क्लान्त टहल कर उनकी पाती शान्ति,
नहीं देखती वे क्या जाति, हंसा देती कहकर कुछ बात ।-4

1· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा पृ0 150
2· वही, पृ0 151
3· वही, पृ0 151
4· वही, पृ0 151

लक्ष्मण

भारतीय वांङ्मय में लक्ष्मण का भ्रातृप्रेम महत्त्वपूर्ण रहा है । वे राम के अनुज, अनुगामी और भक्त के रूप में भारतीय-जनमानस में अपनी विशेष छवि बनाये हुए हैं । भ्रातृ-प्रेम के साथ-साथ उनके उग्र स्वभाव व वीरता का भी वर्णन प्राप्त होता है । "वाल्मीकि-रामायण" तथा "रामचरित-मानस" में लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम, उग्रता व वीरता का ही विशेष रूप से अंकन हुआ है । इनमें उनके भावपक्ष की अपेक्षा कर्म-पक्ष को ही अधिक उभारा गया है लक्ष्मण के भ्रातृ-प्रेम की विशिष्टता उनके राम-भक्त रूप में ही अधिक दृष्टिगत् होती है ।

आधुनिक युग में नव्य-चेतना के उन्मेष के फलस्वरूप लक्ष्मण के परम्परागत् चरित्र में बहुत परिवर्तन आया । आधुनिक-प्रबन्धकृतियों में लक्ष्मण के कर्मपक्ष के साथ-साथ उनके भाव पक्ष का भी अंकन हुआ । उनका भ्रातृ-प्रेम तथा राम-भक्त अनुज का परम्परागत् स्वरूप बौद्धिक, मानवतावादी तथा युगीन चेतना से जुड़कर और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है । "रामचरित-चिन्तामणि" तथा "साकेत" को छोड़कर लगभग सभी रामकथाधृत प्रबन्ध-कृतियों में लक्ष्मण का चरित्रांकन उनके परम्परागत् रूप से परे, सहज व स्वाभाविक रूप में हुआ है । "कौशल-किशोर" में उनका स्वदेश-प्रेमी चरित्र तथा "उर्म्मिला" (नवीनकृत) में संवेदनशील व भावुक पति का का व्यक्तित्व विशेष रूप से उभरा है । "वैदेही-वनवास" में लक्ष्मण के नीतिज्ञ रूप तथा "कैकेयी" (शेषमणि शर्मा) में स्वतन्त्रता प्रेमी रूप के अंकन पर बल दिया गया है । "साकेत-सन्त" में उनकी उग्रता, नम्रता में परिवर्तित हो गयी है । "रावण-महाकाव्य" में लक्ष्मण प्रतिपक्षी चरित्र तथा "भूमिजा" में साम्राज्यवादी के रूप में वर्णित हुए हैं "संशय की एक रात" के आत्मविश्वासी युवा लक्ष्मण "प्रवाद-पर्व" में नव्य-चेतना युक्त बौद्धिक व्यक्तितव के रूप में निरूपित हुए हैं । ये सभी रचनायें रामकथा के अलग-अलग चरित्रों पर केन्द्रित हैं अतः इनमें लक्ष्मण का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में ही हुआ है ।

"रामचरित-चिन्तामणि" -1 में रामचरित उपाध्याय जी ने लक्ष्मण का चरित्रांकन उनके परम्परागत् रूप के साथ-साथ मौलिक रूप में भी किया है । इस रचना में लक्ष्मण का चरित्र-निरूपण स्वतन्त्र्य प्रेमी, रामभक्त तथा मानवीय दुर्बलता से युक्त मानव के रूप में हुआ है ।

इस रचना में लक्ष्मण स्वातंत्र्य-प्रेमी मानव के रूप में निरूपित हुए है । चित्रकूट में भरत के आगमन का समाचार पाकर लक्ष्मण का विद्रोही स्वरूप मुखर हो उठता है । लक्ष्मण के इस चरित्र का अंकन परम्परागत् ही है, किन्तु "रामचरित-चिन्तामणि" में लक्ष्मण की उग्रता स्वतन्त्र्य-चेतना से जुड़ गयी है । लक्ष्मण पराधीनता को सबसे बड़ा अभिशाप मानते हैं, वे कहते हैं :-

पर से मानी कभी पराभव नहीं सहेगा,
जीते जी वह पराधीन न कभी रहेगा ?
लोहे को भी भस्म अनल करता है पल में,
वही स्वकीया शक्ति प्रकट करता है जल में ।
हो करके नि·स्वत्व व्यर्थ ठोकर खाने से,
या रोगी हो भिनक-भिनक कर मर जाने से ।
अच्छा होगा राम ! शत्रु को मार गिराऊँ,
या मर करके स्वयं स्वर्ग को सीधे जाऊँ ।-2

"उपाध्याय" जी ने लक्ष्मण के मानवीय दुर्बलता का भी अंकन किया है । उनमें राम-भक्ति की उदात्तता का निरूपण करने के प्रयास में कवि ने लक्ष्मण को माता-पिता व भाई के प्रति अमर्यादित ही किया है । रामवनवास के समय उनका यह रूप अधिक मुखर हुआ है । "रामचरित-चिन्तामणि" के सातवें सर्ग में लक्ष्मण अपने पिता को कामी व कृपण के समतुल्य रखते हुए उनकी तीव्र भर्त्सना करते हैं, वे कहते हैं :-

---

1· रामचरित-चिन्तामणि - रामचरित उपाध्याय, प्र०सं० 1920 ई०

2· वही, पृ० 118-119

कृपण कामियों का इस जग में कहना करना ठीक नहीं,
बुद्धि बिगड़ती है वृद्धों की यह भी बात अलीक नहीं ।-1

यही नहीं वे भरत सहित माता-पिता दोनों को मारने के लिए उद्दत होते हैं । लक्ष्मण का यह चरित्रांकन मानवीय आदर्श तथा नैतिकता की दृष्टिकोण से परे हैं । लक्ष्मण राम के प्रति अगाध-प्रेम के कारण ही इतने उग्र हैं, किन्तु आदर्श की दृष्टि से इसका कोई औचित्य नहीं है । "रामचरित मानस" में लक्ष्मण की उग्रता मर्यादित है । -2 किन्तु "रामचरित-चिन्तामणि" में लक्ष्मण मर्यादा का अतिक्रमण कर जाते हैं, वे राम से कहते हैं :-

रघुनायक ! मैं सहित सहायक अहित भरत को मारूँगा,
क्या होगा परिणाम,इसे मैं कुछ भी नहीं विचारूँगा।

× × ×

माता और पिता दोनों को इसे मारूँगा तत्काल ।
आज्ञा मिले, देखिये सज्जित है मेरे कर में करवाल ।-3

"रामचरित-चिन्तामणि" के सर्ग-24 में लक्ष्मण की संवेदना व भावुकता का अंकन हुआ है । राम द्वारा सीता के निर्वासन की आज्ञा पाकर वे व्यथित हो उठते हैं । वे सीता-निर्वासन को लोक-निन्दित कर्म की संज्ञा देते हैं । किन्तु राम-भक्ति के कारण वे राम की आज्ञा के औचित्य-अनौचित्य की चिन्ता किये बिना, उसे कार्य-रूप देने वाले मानव भी हैं —

नृपति का अनुशासन मान्य, इसलिए इस निर्जन ठौर में,
तुम विसर्जित मुझसे हुई, विवश हूँ बस ही चलता नहीं ।-4

"रामचरित-चिन्तामणि" के बाद लक्ष्मण का चरित्रांकन "साकेत" में हुआ है । मैथिलीशरण गुप्त जी ने "साकेत" में लक्ष्मण

1· रामचरित-चिन्तामणि, सर्ग 6 पृ0 80

2· "नाथ दासु मैं स्वामि तुम्ह तजहुत काह बसाइ।""रामचरित मानस"-पृ0 394

3· रामचरित-चिन्तामणि पृ0 80-81

4· वही, पृ0 352

के परम्परागत् चरित्र के साथ-साथ उनमें मौलिक व्यक्तित्व का आरोपण भी किया है । आधुनिक युग की मानवतावादी व बौद्धिक चेतना के प्रभावस्वरूप "साकेत" में लक्ष्मण का चरित्र-निरूपण प्रजातन्त्र के समर्थक तथा यथार्थवादी मानव के रूप में भी हुआ है । इस रचना में लक्ष्मण संवेदनशील, भावुक व प्रेमी-पति के रूप में, सर्वथा प्रथम बार अंकित हुए हैं ।

"साकेत" में लक्ष्मण के चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है, उनका प्रजातन्त्र के समर्थक मानव का रूप । आधुनिक जागरूक युवा की भाँति "साकेत" के लक्ष्मण भी प्रजा व राज्य के वास्तविक अधिकारी के प्रति जागरूक परिलक्षित होते हैं । इसके लिए वे राजाज्ञा तक को ठुकराने में सक्षम हैं । "राम-वनवास" की सूचना पाकर लक्ष्मण प्रजातन्त्र का समर्थन करते हुए कहते हैं कि राज्य का वास्तविक अधिकारी ज्येष्ठ पुत्र होता है, फिर राजा इस नियम का हनन कैसे कर सकता है :-

> भला वे कौन हैं जो राज्य लेवें, पिता भी कौन हैं जो राज्य देवें?
> प्रजा के अर्थ है साम्राज्य सारा, मुकुट है ज्येष्ठ ही पाता हमारा।-1

"साकेत" में लक्ष्मण के चरित्र का सर्वाधिक मौलिक पक्ष है उनका भावुक व प्रेमी-पति का रूप । वे भ्रातृ-प्रेम व कर्त्तव्यवश उर्मिला को छोड़कर राम के साथ वन जाते हैं, किन्तु उनका हृदय अयोध्या में ही रह जाता है । चित्रकूट में उर्मिला को देखकर लक्ष्मण अत्यधिक भावुक व संवेदनशील हो उठते हैं -

> गिर पड़े सौमित्र प्रिया-पद तल में,
> वह भीग उठी प्रिय चरण धरे दृग जल में ।
> वन में तनिक तपस्या करके,
> बनने दो मुझको निज योग्य ।
> भाभी की भगिनी तुम मेरे अर्थ,
> नहीं केवल उपभोग्य ।।-2

1· साकेत - पृ0 39

2· वही, पृ0 132

आधुनिक युग में बौद्धिकता के उन्मेष के कारण यथार्थवादी चेतना जाग्रत हुई । विगत् की अपेक्षा वर्तमान की अर्थवत्ता अधिक स्वीकृति हुई । "साकेत" में लक्ष्मण का चरित्रांकन यथार्थवादी चेतना से भी प्रभावित है । लक्ष्मण अलक्ष की उपेक्षा समक्ष को महत्ता देते हुए, कहते हैं -

अलक्ष की बात अलक्ष जाने, समक्ष को ही हम क्यों न मानें।
रहें वही प्लावित प्रीति-धारा, आदर्श ही ईश्वर है हमारा।।-1

"साकेत" में लक्ष्मण के उदात्त चरित्र के साथ ही उनके मानवीय दुर्बलता का भी अंकन हुआ है । रामवनवास के समय लक्ष्मण की उग्रता का निरूपण "रामचरित-चिन्तामणि" में हुआ है, लेकिन "साकेत" में लक्ष्मण की उग्रता अधिक अमर्यादापूर्ण व नैतिक दृष्टिकोण से अमानवीय है । वे कैकेयी को नागिन, अनार्या व दस्युजा जैसे अपशब्दों की संज्ञा देते हैं -

खड़ी है माँ बनी जो नागिनी यह, अनार्या की जनी हत भागिनी यह,
अभी विषदन्त इसके तोड़ दूँगा, न रोको तुम, तभी मैं शान्त हूँगा ।-2

यही नहीं लक्ष्मण अपने पिता को भी दस्युजा का दास कहकर अपमानित करते हैं । अमर्यादापूर्ण यह व्यवहार लक्ष्मण के चरित्र को पतनोन्मुख ही करता है । लक्ष्मण की उग्रता की सहज मानवीयता प्रदान करने की लालसा में कवि ने उनका चरित्र निम्न कर दिया है ।

समग्रतः साकेत में लक्ष्मण का चरित्र-निरूपण उदात्त गुणों से समन्वित नवीन चेतना युक्त मानव के साथ-साथ मानवीय दुर्बलता युक्त मानव के रूप में भी हुआ है ।

1· साकेत - पृ0 253

2· वही, पृ0 40

"साकेत" के पश्चात् "कौशल-किशोर"-1 में लक्ष्मण का अति संक्षिप्त व मौलिक चरित्रांकन हुआ है । सीता-स्वयंवर में शिव धनुष टूटने के कारण उग्र परशुराम की भर्त्सना करते हुए लक्ष्मण का व्यक्तित्व स्वाभिमानी व स्वदेश प्रेमी युवा के रूप में मुखरित हुआ है । लक्ष्मण दैत्यवंश के लोगों द्वारा भारत पर आक्रमण व सीमा प्रवेश को भारतीय राजाओं की कायरता का परिणाम मानते हैं । अप्रत्यक्ष रूप से यहाँ भारतीयों पर अंग्रेजों के आधिपत्य व यहाँ के शासकों की निष्क्रियता की ही भर्त्सना हुई है । "कौशल-किशोर" के लक्ष्मण का यह चरित्र परतन्त्र भारत के युवा-मानस की विद्रोहात्मक भावना का द्योतक भी है । परशुराम पर आक्षेप करते हुए लक्ष्मण कहते हैं -

यदि पौरूष था तो दैत्यलोग, क्यों भारत में सुख रहे भोग ?
बन आर्य,आर्य पर कर प्रहार, यों आप दिखाते विषय भार।-2

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कृत "उर्मिला"-3 में लक्ष्मण का चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में हुआ है । इसमें वे बौद्धिक, मानवतावादी, समन्वयवादी, आर्यसंस्कृति के प्रचारक महामानव के साथ-साथ संवेदनशिल, भावुक व प्रेमी पति के रूप में निरूपित किये गये हैं । डॉ0 गोविन्द राम शर्मा के शब्दों में - "मानस तथा साकेत में लक्ष्मण के चरित्र में भ्रातृ-प्रेम और वीरता को ही प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है किन्तु "उर्म्मिला" में लक्ष्मण की भायप-भक्ति के साथ-साथ अपनी सहचरी उर्मिला के प्रति उनके प्रेम और कर्तव्य की अभिव्यक्ति अधिक सुन्दर बन पड़ी है ।"-4

"उर्म्मिला" में लक्ष्मण के चरित्र का महत्वपूर्ण व मौलिक पक्ष है, उनका विवेकी व बौद्धिक रूप । "रामचरित-चिन्तामणि"

1· कौशल-किशोर-बल्देव प्रसाद मिश्र, प्र·सं· 1934 ई0

2· वही, पृ0 219

3· उर्मिला - बालकृष्ण शर्मा "नवीन", रचना - 1934 ई0

4· हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ0 205

व साकेत में कैकेयी की भर्त्सना करने वाले लक्ष्मण "उर्म्मिला" में कैकेयी से मर्यादापूर्ण व संयमित व्यवहार करते हैं । वे कैकेयी को अनुभवशील व युद्ध-संधि में निपुण मानते हुए, उनके द्वारा दी गई रामवनवास की आज्ञा को 'आर्य-संस्कृति के विस्तार की योजना' मानकर स्वीकार करते हैं।

इस रचना में लक्ष्मण का चरित्रांकन संवेदनशील व भावुक, विवेकी तथा प्रेमी-पति के रूप में हुआ है । बड़े भाई के लिए सहायक बनने वाले लक्ष्मण, उर्मिला के सहमति से ही वन जाते हैं "साकेत" में भी उनकी भावुकता का अंकन हुआ है, किन्तु इस रचना में उनका यह रूप अधिक उदात्त है । वे उर्मिला से कहते हैं :-

> तुम मेरा साहस, बल, वैभव, तुम मम् ह्रास-विलास प्रिये ।
> तुम मम् नेह्-सरणि तुम मेरा-नवसन्देशोल्लास प्रिये ।।
> × × ×
> यह है अग्नि परीक्षा रानी बलि दीक्षा दो तुम्ही मुझे ।।-1

कवि ने लक्ष्मण को मौलिक रूप में विश्व-बन्धुत्व के पुजारी, समन्वयवादी मानव के रूप में निरूपित किया है । लक्ष्मण वनगमन का समग्र ध्येय आर्यसंस्कृति का प्रसार मानते हैं । विश्वबन्धुत्व व एकता की भावना से युक्त लक्ष्मण, उत्तर-दक्षिण के गठबन्धन को अपनी वन-यात्रा का उद्देश्य मानते हैं । वे कहते हैं :-

> उत्तर-दक्षिण का गठबन्धन, करे हमारी पद रेखा,
> जग वह देखे जिसको उसने, अब तक कभी नहीं देखा ।-2

इस रचना में लक्ष्मण का चरित्रांकन आधुनिक मानवतावादी चेतना से प्रभावित है । वे ज्ञान के प्रचारक बनकर जंगल

---

1. उर्म्मिला, पृ0 225-226

2. वही, पृ0 191

के बर्बर अज्ञान व जड़ता को नष्ट करने के शुभेच्छु हैं । वे भौतिकता के विरोधी हैं । भौतिकता को विजित कर जंगल-वासियों में नव-कल्याणमयी आर्य-संस्कृति का प्रचार व प्रसार करते हैं ।

आधुनिक युग में नारी-जागरण व मानवतावाद चेतना के उन्मेष के कारण युगों से उपेक्षित नारी प्रति उदात्त दृष्टिकोण जाग्रत हुई । "उर्मिला"के लक्ष्मण पर भी इस चेतना का प्रभाव है । वे नारी के स्वत्व तथा अस्तित्व की महत्ता को अभिव्यक्त करते हुए, कहते हैं :-

देवि ! तुम्हारे नर-नारायण, नारी से ही ललित हैं,
नारी नेह अश्रु से उनके, अंग-अंग प्रक्षालित हैं,
नारी के ही हाड़-मांस से, उनका यह अस्तित्व बना,
रग-रग में हो रहा प्रवाहित, नारी का ही रुधिर धना ।-1

यही नहीं वे नर-नारी के वैषम्य की निन्दा करते हुए नारी को नर के समान महत्त्वपूर्ण मानते हैं । वे नर-नारी दोनों की समता को जीवन के समुन्नति में विशिष्टता प्रदान करते हैं । लक्ष्मण का यह चरित्र आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों की तुलना में सर्वाधिक मौलिक उदात्त व आदर्श है ।

समग्रतः लक्ष्मण का चरित्र "उर्म्मिला" में जागरूक तथा बौद्धिक युवा के रूप में हुआ है ।

"वैदेही-वनवास"-2 में भी लक्ष्मण का संक्षिप्त चरित्र-निरूपण हुआ है । इस रचना में वे सामाजिक-अन्धव्यवहार का विरोध करने वाले यथार्थवादी तथा बौद्धिक मानव के रूप में निरूपित हुए हैं ।

---

1. उर्मिला-बालकृष्ण शर्मा "नवीन", पृ0 610

2. वैदेही-वनवास-अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रचना -1939 ई0

इस रचना में परम्परागत् रूप से परे, लक्ष्मण द्वारा सीता के चरित्र के बारे में मिथ्या अपवाद फैलाने वाले रजक की तीव्र भर्त्सना की गई है । वे कहते हैं -

संभलकर वे मुँह खोलें । राज्य में है जिनको बसना ।
चाहता है यह मेरा जी । रजक की खिंचवा लूँ रसना ।।-1

'हरिऔध' जी ने लक्ष्मण का चरित्रांकन सीता से सम्बन्धित अपवाद को अस्वीकृत करने वाले बौद्धिक व यथार्थवादी युवा के रूप में किया है । नव्य-चेतना के प्रभाव स्वरूप परम्परागत् मिथ्या व अतार्किक घटनाओं का पुनर्मूल्यांकन हुआ । सीता से सम्बन्धित अपवाद के बारे में लक्ष्मण की विद्रोह-भावना आधुनिक नव-चेतना की ही द्योतक है । वे कहते हैं :-

अंध अंधापन से दिवकी, न दिवता कम होगी जौ भर ।।
धूल जिसने रवि पर फेंकी, गिरी व उसके ही मुँह पर ।।-2

शेषमणि शर्मा कृत "कैकेयी"-3 में लक्ष्मण का चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा नवीन रूप में हुआ है । "रामचरित-चिन्तामणि" व "साकेत" की भाँति वे न तो उग्र है, न ही "उर्म्मिला" की भाँति कैकेयी के प्रशंसक ही हैं । इस रचना में वे अन्याय व पराधीनता के विरोधी, संयमशील व मर्यादित युवा हैं । लक्ष्मण अन्यायपूर्ण कौशल में रहने तथा भरत की पराधीनता सहने की अपेक्षा, राम के साथ वन जाना ही उचित मानते हैं :-

इस अन्याय-पूर्ण कौशल में, लक्ष्मण कभी न रह सकता ।
मिट जाये पर नहीं भरत को स्वामी अपना कह सकता ।-4

---

1. वैदेही-वनवास, पृ० 37

2. वही, पृ० 37

3. कैकेयी-शेषमणि शर्मा, रचना-1942 ई०

4. वही, पृ० - 72

शेषमणि शर्मा ने लक्ष्मण का चरित्रांकन मर्यादाशील व संयमी मानव के रूप में किया । चित्रकूट में भरत के आगमन का समाचार पाकर वे पूर्ववर्ती रचनाओं की भाँति अपना संयम् नहीं खोते प्रत्युत बौद्धिक व संयमशील युवा की भाँति, राम से केवल इतना कहते हैं -

कहने लगे - नाथ बतलाओ, कब तक हम चुपचाप रहें ।
पाशवीय-बल का बोलो तो कब तक चिर संताप सहें ।-1

"साकेत -सन्त"-2 में भी लक्ष्मण का चरित्र अति संक्षिप्त किन्तु मौलिक रूप में वर्णित हुआ है । इस रचना में लक्ष्मण का चरित्रांकन आधुनिक बौद्धिक व आदर्शवादी चेतना से प्रभावित है । परम्परागत् रूप में केवल राम के प्रति समर्पित उनका भ्रातृ-प्रेम भरत के प्रति भी उन्मुख हुआ है । इस रचना में उनकी परम्परागत् उद्वतता और दर्पशक्ति के स्थान पर नम्र व उदात्त चरित्र का अंकन हुआ है । चित्रकूट में सेनारहित भरत के आगमन की सूचना पाकर वे उग्र नहीं होते, अपितु नम्रतापूर्वक उनका स्वागत् करते हैं -

लक्ष्मण बोले, "क्या भेद आपमें मुझमें,
प्रभु देखा करते सदा आपको मुझ में ।-3

"अशोक-वन"-4 में लक्ष्मण का उल्लेख नाममात्र के लिए कर्मवादी मानव के रूप में हुआ है । इस रचना में लक्ष्मण के चरित्रांकन का पर्याप्त अवसर कवि को नहीं मिल सका है ।

आधुनिक काल की मानवतावादी व बौद्धिक चेतना के उन्मेष के कारण प्रतिपक्षी पात्रों के प्रति नवीन मानवीय-संवेदना जाग्रत हुई । प्रतिपक्षी चरित्रों के परिष्कार व उन्नयन के लिए नायक पक्ष के

1· कैकेयी, शेषमणि शर्मा, पृ0 133

2· साकेत-सन्त - बल्देव प्रसाद मिश्र, प्र·सं· 1946 ई0

3· वही, पृ0 131

4· अशोक-वन - पृ0 45

चरित्रों का पुनर्मूल्याकंन हुआ, उनके कृत्यों के औचित्य-अनौचित्य की पुनर्व्याख्या हुई । "रावण-महाकाव्य" इसी दृष्टिकोण से वर्णित प्रबन्ध-कृति है ।

"रावण-महाकाव्य" में लक्ष्मण द्वारा शूर्पनखा के अंग-विच्छेदन के कृत्य की तीव्र भर्त्सना हुई है । नारी-जागरण, मानवतावादी तथा बौद्धिक-चेतना के उन्मेष के कारण लक्ष्मण के इस कृत्य का, जिसे परम्परागत् रूप में महत्ता मिलती रही है उसे अनुचित सिद्ध किया गया। पंचवटी प्रान्त की शासिका राजकुमारी शूर्पणखा का अपमान लक्ष्मण द्वारा केवल शत्रुतावश किया जाता है । लक्ष्मण अनार्य शूर्पणखा को अपमानित करते हुए, कहते हैं :-

अधमा सँभरु बुलाउ सहायक काल आयगौ तेरौ ।
भूलिहि गयौ तौहि कुलटा री ! कियौ भयौ पन मेरौ ।
यौ कहि मृगपति लौ सहसा दीन्हयौ ताहि पछारी ।-1

लक्ष्मण का यह कृत्य उनके चारित्रिक उदात्तता को निम्न ही करता है । यही नहीं लक्ष्मण निःशस्त्र घननाद के आतिथ्य को अस्वीकृत करते हुए, कठोर व निर्दयी ढंग से उसका वध कर देते हैं ।

समग्रतः "रावण-महाकाव्य" में राम पक्ष का आदर्श परिवर्तित हो गया है, वह रावण-पक्ष की ओर चला गया है । लक्ष्मण का चरित्रांकन इसी तथ्य का द्योतक है ।

"रामराज्य" में बल्देव प्रसाद मिश्र जी ने लक्ष्मण का चरित्र-निरूपण संक्षिप्त व परम्परागत् रूप में ही हुआ है । राम के चरित्र पर केन्द्रित होने के कारण इस रचना में कवि को लक्ष्मण के चरित्र-चित्रण हेतु पर्याप्त अवसर नहीं मिल सका है ।

"माण्डवी" प्रबन्धकृति में हरिशंकर सिन्हा ने लक्ष्मण का चरित्रांकन नव्य-चेतना से युक्त जागरूक मानव के रूप में किया

1· रावण-महाकाव्य-हरिदयालु सिंह, (प्र·प्र·1952 ई0),पृ0-153

है । पश्चिम की वीर-नारियों का दृष्टान्त देने वाले लक्ष्मण आधुनिक जागरूक युवा के द्योतक है । रामवनवास के समय लक्ष्मण का उग्रता अवश्य व्यंजित हुई है किन्तु वे "रामचरित-चिन्तामणि" व "साकेत" की भाँति अमर्यादित न होकर संयमित व मर्यादित है । कैकेयी की भर्त्सना करते हुए, वे कहते हैं-

> दो ही वरदान से बनेगा क्या सिंहिनी है ।
> और कुछ माँगों पुत्र रक्षा के हेतु में ।
> माँगो, माँगो, तीसरा वर लक्ष्मण रथी से ।
> अन्यथा साकेत यह भरत को मिट जायेगी ।-1

रघुवीरशरण मित्र कृत "भूमिजा" में लक्ष्मण का चरित्रांकन संक्षिप्त होते हुए भी नवीन रूप में हुआ है । इस रचना में वे साम्राज्यवादी शासक वर्ग के प्रतीक के रूप में निरूपित हुए हैं । साम्राज्यवादी रूप के साथ-साथ उनमें स्वातंत्र्यप्रेमी, कर्मवादी व्यक्तित्व का आरोपण भी हुआ है । स्वदेश के स्वतंत्रता के प्रति उनकी जागरूकता व युगीन चेतना उस समय परिलक्षित होती है जब वे राम को धरती पर रहने वाले रावण वर्ग से सचेत करते हुए, कहते हैं :-

> सीता हरने को धरती पर रावण ही रावण हैं,
> आज नहीं, तो कल कण कण में, होने वाले रण हैं ।
> × ×
> जिस दिन टूटा धनुष हाथ से, पराधीनता होगी ।-2

"भूमिजा" में लक्ष्मण का चरित्रांकन साम्राज्यवादी मानव के रूप में हुआ है । वे साम्राज्यवादी होने के साथ ही विश्व-संगठन के समर्थक भी हैं । वे समस्त छोटे-छोटे राज्यों पर आधिपत्य स्थापित करके संगठित राज्य की स्थापना करना चाहते हैं । यहाँ एक तरफ उनमें सत्ता-लोलुपता व साम्राज्यवादी भावना है तथा दूसरी तरफ विश्व-संगठन

1· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा, पृ0- 56

2· भूमिजा-रघुवीर शरण मित्र, पृ0-77-78 (1961 ई0)

व एकता की भावना भी परिलक्षित होती है । छोटे-छोटे राज्यों के आपसी युद्धों के प्रतिफल-स्वरूप होने वाले जन-समाज के विनाश को रोकने के लिए उनके द्वारा विश्व-संगठन की कल्पना उदात्तता का द्योतक है । लक्ष्मण कहते हैं :-

सीमाओं पर शत्रु छिपे हैं, लिये आग के गोले,
छोटे-छोटे राज्य बहुत है धधक रहे हैं शोले ।
× × ×
महाध्वंश से धरा बचा लो, ऊँची ध्वजा उठाओ,
अखिल भुवन में एक राज्य की, विश्व ध्वजा फहराओ ।-1

कवि ने लक्ष्मण का चरित्रांकन स्वतन्त्रता-प्रेमी व देश-प्रेमी मानव के रूप में किया है । लक्ष्मण देश की स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए राम को प्रेरित करते हैं । विश्व में फैलते हुए विनाशकारी तत्त्वों से चिन्तित लक्ष्मण का यह चरित्र आधुनिक जागरूक युवा का ही द्योतक है । लक्ष्मण कहते हैं :-

स्वतंत्रता की चहल-पहल पर आँच न आने पाये ।-2

"भूमिजा" में लक्ष्मण के चरित्र पर आधुनिक श्रमशील व कर्मवादी मानव के व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है । लक्ष्मण ऐसे मानव का जीवन व्यर्थ मानते हैं, जो कर्म से मुख मोड़कर जीवन-संघर्ष से दूर भागना चाहते हैं । यहाँ उनके कर्मवादी व बौद्धिक-स्वरूप का ही निरूपण हुआ है । वे कहते हैं -

कर्मवीर के लिए पलायन, मुझसे सहन न होता,
जीने का अधिकार न उसको, जो दुःखो में रोता ।-3

1· भूमिजा पृ0 77-78

2· वही, पृ0 79

3· वही, पृ0 80

"भूमिजा" में लक्ष्मण सीता के निर्वासन को राष्ट्र के प्रति उनका बलिदान मानते हैं । यहाँ लक्ष्मण के बौद्धिक व नारी की महत्ता के प्रति जागरूक भावना का ही अंकन हुआ है । समग्रतः "भूमिजा" में लक्ष्मण का चरित्र उदात्त रूप में ही निरूपित हुआ है, जो सम-सामयिक सन्दर्भ में भी अपनी अर्थवत्ता रखता है ।

"संशय की एक रात" में नरेश मेहता ने लक्ष्मण का चरित्र-निरूपण परम्परागत् रूप से विलग सम-सामयिक दृष्टिकोण से किया है । इस रचना में लक्ष्मण राम का अन्धानुकरण करने वाले भ्रातृभक्त न होकर, विचारशील व स्वतंत्रचेत्ता मानव के रूप में निरूपित हुए हैं । वे राम के संशय-संयुक्त व अन्तर्व्यथित मन को विश्वास व दृढ़ता प्रदान करते हैं यही नहीं लक्ष्मण कर्मशक्ति व अदम्य साहस युक्त बौद्धिक मानव के रूप में भी निरूपित हुए हैं । डॉ0 लक्ष्मीकान्त वर्मा ने "संशय की एक रात" की भूमिका में लिखा है - "लक्ष्मण का लघुमानवत्व मनुष्य की संदिग्ध स्थिति को स्वीकार नहीं करता । वह उसकी जागरूकता को स्वीकार को स्वीकार करता है । उसके जीवन-कलाप को स्वीकार करता है । वह रागात्मक ऐश्वर्य के माया-जाल में नहीं पड़ता वरन् जिस क्षण जो यथार्थ उसे जीवन की प्रेरणा देता है, उसे स्वीकार करता है । लक्ष्मण की जिजीविषा दार्शनिक की दुविधा की भाँति नहीं है बल्कि वह नितांत पौरूषेय आत्म विश्वास से उपजती है ।"-1 इस रचना में लक्ष्मण मौलिक रूप में कर्मवादी, आशावादी तथा जागरूक युवा के रूप में निरूपित हुए हैं ।

"संशय की एक रात" के लक्ष्मण की उदात्तता, उनके कर्मनिष्ठ व्यक्तित्त्व में निहित है । वे अपनी सार्थकता व स्वत्व हेतु कर्मशीलता को महत्ता देते हैं । वे विखंडित व असंगत् युग सन्दर्भ को विवशतः झेलने से इन्कार कर देते हैं -

---

1· संशय की एक रात-नरेश मेहता, भूमिका में लक्ष्मीकान्त वर्मा

सन्धि या कि युद्ध, टूटे सन्दर्भ की
मात्र विवशता ही नहीं है । नहीं है हम
कितने ही लघु हों, इससे क्या ?
सार्थक है । स्वत्व है हमारा कर्म ।-1

इस प्रबन्ध-कृति में लक्ष्मण का चरित्रांकन आशावादी दृढ़ इच्छा शक्ति व महत्वाकांक्षा से परिपूर्ण युवा-मानव के रूप में हुआ है । राम की भाँति लक्ष्मण अपनी शक्ति व क्षमता के प्रति संशयी नहीं है। उन्हें अपने पौरूष व शौर्य पर पूर्ण विश्वास है, वे राम से कहते हैं :-

लंका यदि ध्रुव पर होती,
भाग नहीं पातीं बन्धु
लक्ष्मण के पौरूष से ।-2

समग्रतः "संशय की एक रात" में लक्ष्मण कर्मवादी, आत्मविश्वासी असीम पौरूषयुक्त, तथा उदात्त भ्रातृ-प्रेमी मानव के रूप में व्यंजित हुए हैं । उनके लिए समय और नियति की अनिवार्यता नहीं केवल पौरूष की अर्थवत्ता ही महत्त्वपूर्ण है ।

"प्रवाद-पर्व" में लक्ष्मण बौद्धिक, मानवतावाद तथा जागरूक मानव के रूप में निरूपित हुए हैं । पूर्ववर्ती प्रबन्ध-कृतियों की अपेक्षा इस रचना में उनका चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है । नारी-जागरण व बौद्धिक-चेतना के प्रभाव स्वरूप नारी के अस्तित्व व स्वत्व की अर्थवत्ता स्थापित हुई । परम्परागत् पौराणिक पात्रों के कृत्यों की आलोचना हुई जो नारी के स्वाभिमान व स्वत्व को आहत् करती रही हैं, किन्तु पौराणिक होने के कारण स्वीकृत हुई । लक्ष्मण का चरित्रांकन मौलिक रूप से नारी के अस्तित्व व स्वत्व के समर्थक मानव के रूप में हुआ है ।

1· संशय की एक रात-नरेश मेहता, पृ0-19

2· वही, पृ0 17

"प्रवाद-पर्व" में लक्ष्मण "सीता की अग्नि परीक्षा" के अनौचित्य का सिद्ध करते हुए इस कृत्य को सीता के नारीत्व का अपमान मानते हैं । लक्ष्मण द्वारा प्रथमबार सीता के अपमान को समाज के समक्ष न्याय की कसौटी पर कसने का आह्वान हुआ है, तथा समाज की असमर्थ स्थिति पर कटु आक्षेप हुआ है । वे कहते हैं -

उनके स्वत्व के तिरस्कार को, न्यायोचित ठहराने के लिए
हमारे पास, न तो कोई विधि-सम्मत तर्क है और
न ही कोई बचाव की भाषा ।-1

यही नहीं, वे इस कृत्य को अमानुषिक मानते हुए केवल सीता का ही नहीं, समस्त नारी जाति के चरित्र और स्वत्व पर कभी न मिटने वाला प्रश्न-चिह्न मानते हैं । लक्ष्मण सामाजिक दबावों की विवशता के जंजीर में जकड़े मानव की दुर्बलता के बारे में कहते हैं-

हम सबको, अनेक अनसोचे कारणों
सामाजिक दबावों, यथार्थ के दुराग्रहों तथा
कल्पना प्रसूत ऐतिहासिक इच्छाओं के सम्मुख
सम्पूर्ण अनिच्छा के बावजूद, न केवल
नतमस्तक ही होना पड़ता है, बल्कि अनेक अप्रिय
अमानुषी कार्य भी सम्पन्न करने होते हैं ।-2

"प्रवाद-पर्व" में लक्ष्मण द्वारा प्रथम बार सीता-निर्वासन के औचित्य पर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए उसके प्रति न्यायात्मक दृष्टिकोण की माँग की गई है —

एक सामान्य् जन की
अनुत्तरदायित्व तथा विद्वेषपूर्ण शंका तथा
राष्ट्र की शीर्षतम् नारी की चरित्र-गरिमा को
प्रतिसम्मुख रखकर, अपना निर्णय दें ।-3

1· प्रवाद पर्व - नरेश मेहता, पृ0 87-88

2· वही, पृ0 89

3· वही, पृ0 94

उर्मिला

उपेक्षित पात्रों के उदार या उन्हें सहानुभूति के कण प्रदान करने के क्रम में आधुनिक युग के पौराणिक प्रबन्ध काव्यों में उर्मिला के चरित्र को सबसे अधिक विस्तार मिला है । पूर्ववर्ती रामकथाधृत रचनाओं में लक्ष्मण पत्नी एवं सीता के बहन के रूप में उर्मिला का नामोल्लेख मात्र मिलता है । "श्रीमद् वाल्मीकि-रामायण" में जनक दारा कन्यादान के समय उर्मिला का उल्लेख नाममात्र का हुआ है ।-1 "रामचरित-मानस" में भी तुलसीदास जी ने विवाह-प्रसंग में ही उर्मिला का उल्लेख मात्र किया है ।-2

आधुनिक युग में मानवतावादी दृष्टि व बौद्धिक चेतना के फलस्वरूप रामकथा की चिर उपेक्षिता उर्मिला को आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में प्रथम बार चरित्रांकित किया गया । इस चेतना के पीछे उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तथा बीसवीं शती के प्रारम्भ के नव-जागरण आन्दोलनों का विशेष योगदान रहा है । मानवतावादी दृष्टि ने चिर उपेक्षित साहित्यिक चरित्रों को मानवीय संवेदना प्रदान करते हुए, उत्कर्ष प्रदान किया । रवीन्द्रनाथ टैगोर का ध्यान भारतीय साहित्य की उपेक्षिताओं की ओर उन्मुख हुआ, उन्होंने इनके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए "काव्येर उपेक्षिता" नामक लेख लिखा ।-3 इस लेख से प्रभावित होकर महावीर प्रसाद दिवेदी जी ने साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए "कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता" लेख "सरस्वती" में प्रकाशित किया । अपना विचार प्रकट करते हुए आचार्य दिवेदी जी ने अत्यन्त भावुकता पूर्वक लिखा है - "क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक पक्षी को निषाद दारा वध किया देख कवि शिरोमणि का हृदय दुःख से विदीर्ण हो गया और उसके मुख से "मा निषाद" इत्यादि सरस्वती सहसा निकल पड़ी । वही परदुःखकातर मुनि रामायण निर्माण करते समय एक नव-परिणीता दुःखिनी वधू को बिल्कुल ही भूल गया । विपत्ति विधुरा होने पर उसके साथ अल्पादल्पतारा सम्वेदना

1· श्रीमद् वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड - श्लोक 21-22, पृ0 168

2· श्री रामचरित मानस बालकाण्ड, पृ0 298

3· रवीन्द्र नाथ के निबन्ध- भाग-2, पृ0 380

तक उसने न प्रकट की उसकी खबर तक न ली ।-----सीता की बात तो जाने दीजिए उनके और उनके जीवनाधार रामचन्द्र के चरित्र-चित्रण के लिए "रामायण" की रचना हुई है । माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के विषय में कोई विशेषता नहीं है । क्योंकि आग से भी अधिक सन्ताप पैदा करने वाला पति-वियोग उनको हुआ ही नहीं । रही बालदेवी उर्मिला, जो उसका चरित सर्वथा गेय और आलेख्य होने पर भी कवि ने उसके साथ अन्याय किया । मुने ! इस देवी की इतनी उपेक्षा क्यों ? इस सर्वसुखवंचिता के विषय में इतना पक्षपात कार्पण्य क्यों ?"-1 युग-प्रवर्तक साहित्यकार का युग-प्रवतक स्वर उपेक्षित न रहा । अयोध्या सिंह 'उपाध्याय' जी ने 'उर्मिला' पर एक लघुकाव्य "उर्मिला" का प्रणयन किया उर्मिला के मार्मिक दशा का चित्रण करते हुए, उन्होंने लिखा है :-

किसी को दरद औ न दुःखड़ा सुनाया ।
तड़पता कलेजा न जिसने दिखाया
न कोसा किसी को न मुखड़ा बनाया
विरह-वेल जिसने हृदय-बीच बोई ।
जली रात दिन फूट कर जो न रोई ।-2

श्री मैथिलीशरण गुप्त जी ने उर्मिला के चरित्र को प्रमुख रूप से उत्कर्ष प्रदान करते हुए "साकेत" प्रबन्ध-रचना-3 का प्रणयन किया । गुप्त जी की रामभक्ति ने उन्हें उर्मिला के चरित्रोत्कर्ष के साथ-साथ रामकथा के प्रमुख सूत्रों को भी पकड़ाये रखा । अतः वे स्वतन्त्र रूप से उर्मिला को नायिकत्व न प्रदान कर सके । बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने उर्मिला के चरित्र का स्वतन्त्र रूप से चित्रण करते हुए,उन्हें नायिका रूप में लेकर "उर्म्मिला" प्रबन्ध-कृति की रचना की ।-4 इसमें उर्मिला का चरित्र विशिष्ट रूप से चरित्रांकित हुआ है ।

1· सरस्वती "कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता"-भुजंग भूषण भट्टाचार्य {पं0 महावीर प्रसाद द्विवेदी का छद्मनाम}
2· सरस्वती-उर्मिला-अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'-1914 भाग-15 पृ0320
3· साकेत-मैथिलीशरण गुप्त, रचना-1932 ई0
4· उर्म्मिला-बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रचना-सन् 1934 ई0

"साकेत" में उर्मिला के चरित्र-निरूपण में गुप्त जी ने एक ओर रघुकुल की पुत्रवधू, लक्ष्मण की पत्नी, जनक-पुत्री होने की मर्यादा की रक्षा की है, दूसरी ओर उसके अन्तर्जगत की विरह-पीड़ा की अभिव्यक्ति के समय उसे सामान्य मानवी रूप में प्रस्तुत किया है । तीसरी ओर उसके चरित्र में आधुनिक युग के अनुरूप नवीन गुणों का समावेश भी किया है ।

"साकेत" के प्रथम सर्ग में उर्मिला का चरित्र आधुनिक भावुक एवं सामान्य् व मानवी के रूप में चित्रित हुआ है । यहाँ चिर उपेक्षिता उर्मिला के संयोगी रूप की अद्भुत व्यंजना हुई है । लक्ष्मण के साथ हास-परिहास करती उर्मिला स्वतंत्र व्यक्तित्त्वयुक्त मानगर्विता नारी भी हैं । लक्ष्मण के परिहास का उत्तर देते हुए, वे कहती हैं :-

दास बनने का बहाना किसलिए ?
क्या मुझे दासी कहाना, इसलिए ?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो,
और देवी ही मुझे रक्खो, अहो ।"-1

उर्मिला प्रेमिका-पत्नी, सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति व प्रेम की देवी हैं । साथ ही वे निपुण कलाकार भी हैं । चित्रकारी करती उर्मिला का चरित्र, उनके सामान्य् व भावुक नारी स्वरूप को प्रस्तुत करता है उर्मिला का यह रूप आधुनिक छायावादी भावभिंव्यंजक प्रवृत्ति से प्रभावित है ।

चतुर्थ-सर्ग में उर्मिला का चरित्र आधुनिक आदर्शवादी चेतना से प्रभावित है । उर्मिला अपने व्यक्तिगत सुखों से कर्तव्य मर्यादा व आदर्श को महत्वपूर्ण मानती हैं । इसी कारण राम के साथ वन जाते हुए लक्ष्मण से वे कोई प्रश्न नहीं करती, अपितु अपने मन ही मन संकल्प लेती हैं -

---

1· साकेत, प्रथम सर्ग - पृ0 20

कहा उर्मिला ने - "हे मन। तू प्रिय-पथ का विघ्न न बन,
आज स्वार्थ है त्याग भरा ? हो अनुराग विराग-भरा ।
तू विकार से पूर्ण न हो, शोक-भार से चूर्ण न हो ।
भ्रातृ-स्नेह-सुधा बरसे, भू पर स्वर्ग-भाव सरसे ।"-1

"साकेत" के नवम् सर्ग में उर्मिला के विरहिणी रूप के मार्मिक व भावसंकुल वर्णन पर छायावादी भावभिव्यंजकता का प्रभाव है । उर्मिला का विरही चरित्र अति मार्मिक है । सीता राम के साथ वन चली जाती हैं । माण्डवी व श्रुतिकीर्ति अपने प्रिय के पास होती हैं, वास्तविक वनवास उर्मिला का ही होता है । विरहिणी उर्मिला मानस-मन्दिर में अपने पति लक्ष्मण की प्रतिमा स्थापित करके, स्वयं उनके विरह में जलती हुई आरती बन जाती हैं । यह उनके प्रेम की चरम सीमा है -

मानस-मन्दिर में सती, पति की प्रतिमा थाप,
जलती-सी उस विरह में, बनी आरती आप -2

विरहिणी उर्मिला भावुकता के साथ मानवतावादी, प्रकृति प्रेमी तथा जीव प्रेमी है । उनका चरित्र आधुनिक नवीन मानवतावादी चेतना से प्रभावित है । प्रायः सभी रचनाओं में विरहावस्था में नायिका द्वारा प्रकृति के भस्मीभूत होने की इच्छा की व्यंजना प्राप्त होती है, किन्तु उर्मिला प्रकृति को सदैव हरी-भरी देखना चाहती हैं—

रह चिर दिन तू हरी-भरी, बढ़ सुख से बढ़ सृष्टि सुन्दरी,
सुध प्रियतम् की मिले मुझे, फल जन-जीवन-दान का तुझे ।-3

उर्मिला के चरित्र में आधुनिक जाग्रत, बुद्धिवादी तथा समाज व राष्ट्र के लिए अर्पित नारी रूप का आरोपण भी है ।

1· साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ0 51
2· वही, नवम् सर्ग, पृ0 134
3· वही, नवम् सर्ग, पृ0 152

गाँधी जी के ग्रामोत्थान के प्रभावस्वरूप उर्मिला में कृषकों के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण प्राप्त होती है । "साकेत" के नवम् सर्ग में उर्मिला जनवादी नायिका है । वे किसानों को सच्चा राज्य करने वाला तथा भव में नव-वैभव भरने वाला मानती है । वे किसानों के अस्तित्व को देश के लिए महत्त्वपूर्ण मानती हैं । उर्मिला कहती हैं :-

हम राज्य के लिए मरते हैं ।
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं ।
जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न ?
पत्नी-सहित विचरते हैं वे, भव-वैभव भरते हैं ।-1

उर्मिला के चरित्र में गुप्त जी ने राष्ट्र-प्रेमी के चरित्र का संधान किया है । गाँधी के विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के चेतना के फलस्वरूप "साकेत" के द्वादश सर्ग में उर्मिला विदेशी सोने को समुद्र में डुबो देने का आदेश देती है -

गरज उठी वह - "नहीं,नहीं, पापी का सोना,
यहाँ न लाना, भले सिन्धु में वहीं डुबोना ।
धीरों, धन को आज ध्यान में भी मत लाओ,
जाते हो तो मान-हेतु ही तुम सब जाओ ।-2

आधुनिक नारी-जागरण के प्रभावस्वरूप "साकेत" में उर्मिला वीर-नारी के रूप में चरित्रांकित हुई हैं । विरह उनके तेज और शौर्य का हनन नहीं कर पाता । रावण के साथ चल रहे युद्ध में राम की सहायता हेतु उर्मिला स्वयं जाना चाहती हैं -

---

1· साकेत - नवम् सर्ग - पृ0 157

2· साकेत - द्वादश सर्ग, पृ0 235

ठहरो, यह मैं चलूँ कीर्ति-सी आगे आगे,
भोगें अपने विषम कर्म-फल अधम् अभागे ।-1

यही नही वे रण में आहत सैनिकों की भी सेवा-शुश्रुषा करने के लिए भी सन्नद्ध होती है । यहाँ उर्मिला के मानवतावादी स्वरूप का चित्रण हुआ है । उर्मिला के शब्दों में -

वीरों, पर यह योग भला क्यों खोऊँगी मैं,
अपने हाथों घाव तुम्हारे धोऊँगी मैं ।-2

राष्ट्र-सेविका, समाज-सेविका तथा मानव मात्र की सेविका के रूप में उर्मिला के चरित्र का यह रूप आधुनिक युग की देन है । "साकेत" में उर्मिला के नारीत्व व स्वत्व की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त होती है, वह स्वयं में विशिष्ट है । उर्मिला में भाव-प्रवणता, सहृदयता, दृढ़ता, वोरता, जागरूकता आदि सभी उदात्त गुणों का समावेश हुआ है । परम्परानुकूल पति के आदर्शो, मर्यादा व कर्तव्य पर दीर्घकालीन विरह का सहर्ष वरण करने वाली उर्मिला आधुनिक बौद्धिक नारी की भाँति स्वदेश रक्षार्थ रणक्षेत्र में उतरने का साहस भी रखती हैं । डॉ0 श्याम सुन्दर व्यास के शब्दों में- "काव्य की चिर उपेक्षिता साकेत में ------प्रथम बार जिस वेश में प्रकट होती है, वह वेश अश्रु विगलित होकर भी ओजमय, आदर्श-प्रधान होकर भी स्वाभाविकता के निकट एवं देवी गुणों से मण्डित होकर भी नारी सुलभ है ।"-3

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की प्रबन्ध-रचना "उर्म्मिला" के साकेत की अगली विकसित कड़ी है । "साकेत" की प्रेरणा के मूल में उर्मिला के चरित्र का उदार कवि का अभिप्रेत था, लेकिन राम के प्रति आस्थावादी गुप्त जी "साकेत" में अन्य पात्रों की उपेक्षा न कर सके और

1· साकेत-द्वादश सर्ग, पृ0 236

2· वही, वही, पृ0 237

3· हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण - डॉ0 श्याम सुन्दर व्यास, पृ0 106

और न उर्मिला को नायिकत्व प्रदान कर सके । लेकिन "नवीन" जी की प्रबन्ध रचना "उर्म्मिला" की केन्द्रीय चरित्र उर्मिला है । वह इस प्रबन्ध-काव्य को नायिका है । वस्तुतः इसके मूल में दोनों कवियों की व्यक्तिगत् सर्जनात्मकता का अन्तर तो है ही लेकिन दो युगों का अन्तर भी है । गुप्त जी का काल आदर्शवाद व समष्टिवादी दृष्टि का था, लेकिन छायावादी काव्यधारा की वैयक्तिक चेतना के प्रभाव स्वरूप व्यक्ति के चरित्र और उसके अन्तरानुभूतियों की अभिव्यक्ति मिलने लगी थी । दूसरे शब्दों में यह व्यक्ति चरित्रों का युग था । "उर्म्मिला" उसी का सुपरिणाम है ।

"नवीन" जी की उर्मिला आदर्श व यथार्थ से समन्वित, समतावादी, विश्व कल्याण की समर्थिका, बौद्धिक नारी है । डॉ0 प्रेमचन्द महेश्वरी के शब्दों में वे - "दार्शनिक, राजनैतिक एवं सामाजिक समस्याओं पर अपना तार्किक निर्णय एवं अभिमत व्यक्त करती हैं ।"-1 साकेत के समान इस प्रबन्ध-कृति में भी उर्मिला के विरहपूर्ण जीवन की भावुक अभिव्यंजना हुई है, किन्तु इस कृति में वे "साकेत" की अपेक्षा अधिक बौद्धिक यथार्थवादी व तार्किक दृष्टिकोण संयुक्त जाग्रत नारी हैं ।

'नवीन' जी की "उर्मिला" में उर्मिला यथार्थवादी दृष्टिकोण से समन्वित तर्कशील नारी हैं । गुप्त जी ने उर्मिला को भावुक व्यक्तित्व प्रदान किया तो 'नवीन' जी ने उसे बौद्धिकता, तार्किकता तथा जाग्रत नारी का रूप दिया । उर्मिला कैकेयी को दिये जाने वाले वरदानके औचित्य पर प्रश्न-चिह्न लगा देती है । उर्मिला कहती हैं -

> यदि तुम मेरे प्रेम नेम वश, होकर मुझे एक वर दो
> और माँग लूँ मैं तुमसे यह, कि तुम ब्रह्म हत्या कर दो
> तब क्या यह वरदान तुम्हारा, बोलो धर्म विहित होगा ?-2

1· हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास - प्रेमचन्द महेश्वरी, पृ0 247

2· उर्म्मिला - बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ0 239

उर्मिला द्वारा कैकेयी के वरदान को कुपरिपाटी मानते हुए प्रथम बार उसके औचित्य पर प्रश्न-चिह्न लगाया गया है । वह "साकेत" की उर्मिला की तरह "जीती हैं अब भी अम्ब उर्मिला बेटी, इस चरणों की चिरकालरहूँ में चेटी"-1 नहीं कहती बल्कि कैकेयी के इस वरदान को तर्क के आधार पर चुनौती देती है । यहाँ वे नारी-जागरण से प्रभावित, अन्याय के प्रति विद्रोहिणी के रूप में दृष्टव्य है । उसमें कैकेयी के कुकृत्य की भर्त्सना करने का साहस तो है ही, वह कैकेयी के साथ ही दशरथ की भी निन्दा करती है -

मॉ कैकेयी धर्म-कर्म का, लोमचर्म है खींच रहीं,
अपने स्वार्थ बीज को वे हैं, इसी बहाने सींच रही ।
यह अज्ञान भयंकर है प्रिय, तात-चरण श्री दशरथ का,
खो बैठे हैं सद्विचार सब, वे निज-कृति के इति-अथ का ।-2

इस रचना में उर्मिला के चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका प्रजातन्त्र समर्थिका का रूप । "साकेत" में उर्मिला का चरित्र गाँधीवादी ग्रामोत्थान की चेतना के फलस्वरूप किसानों की महत्ता एवं उत्थान के प्रति उन्मुख दृष्टिगत् होता है । 'नवीन' जी की उर्मिला प्रजातन्त्र का समर्थन करती हुई राज्य को प्रजा का धरोहर मानती हैं । उर्मिला जनता का पक्ष लेते हुए राजा के निरंकुश आधिपत्य की भर्त्सना करती है —

राज नहीं कैकेयी का यह, दशरथ का न स्वराज्य यहाँ ।
जन-गण-मन रंजनकर्ता ही, होता है अधिराज यहाँ । -3

उन्नसवीं शती के उत्तरार्द्ध व बीसवीं शती के प्रारम्भ में चल रहे विभिन्न सांस्कृतिक व राष्ट्रीय आन्दोलनों ने भारतीय जनमानस को परम्परागत् रूढ़ियों व मिथ्याडम्बरों के व्यामोह तथा अन्धकार से

1· साकेत - पृ0 245

2· उर्म्मिला - बालकृष्ण शर्मा "नवीन", पृ0 240

3· वही, पृ0 - 265

निकाल कर बौद्धिकता के आलोक में जीना सिखाया, देश के प्रति उनमें नवीन चेतना जगाई । 'नवीन' जी की उर्मिला पर इनका पर्याप्त प्रभाव है । वे समाज की गलित, अनुपयोगी रूढ़ियों के विखंडन की प्रेरणा देती है । वह अधर्म का विरोध करते हुए अधर्म पथ पर चलने वाले प्रत्येक व्यक्ति की भर्त्सना करती हैं, भले ही वह गुरूजन, माता-पिता अथवा बन्धु-बान्धव ही क्यों न हो । उर्मिला का यह क्रान्तिकारी रूप "उर्म्मिला" कृति की मौलिकता है । वह कहती हैं -

गुरूजन, माता-पिता, सुहृदजन, जो भी हो अधर्मकारी,
उनसे लोहा लेने में मत, झिझको हे स्वकर्मकारी ।
विद्रोही ही जग में करते हैं सुधर्म-निर्माण नया ।-1

उर्मिला के चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका त्यागमयी चरित्र । उनके द्वारा लक्ष्मण कर्तव्य पालन हेतु दीर्घकालीन विरह को भी सहर्ष स्वीकृत किया जाता है । "साकेत" में उर्मिला लक्ष्मण के पथ का विघ्न नहीं बनना चाहती, वह उन्हें मौन स्वीकृति प्रदान करती है, किन्तु 'नवीन' जी की उर्मिला लक्ष्मण को भ्रातृत्व के निर्वाह के साथ ही, जन-जीवन के अज्ञानान्धकार को दूर करने का सन्देश देती हुई, उन्हें मानवता के विकास हेतु सहर्ष ही भेज देती हैं -

दीप सँजोए तुम वन जाओ, तिमिर हरो, अज्ञान हरो
यह भूभार उतारो, जन-गण-मन को तुम सज्ञान करो ।
मानवता की पाठ-पीठ पर, तुमको न्यौछावर करके,
रो लेगी उर्म्मिला तुम्हारी, चुपके-चुपके जी भरके ।-2

"ऊर्म्मिला" की उर्मिला साकेत की उर्मिला की तरह विरह में उतनी निरीह नहीं है । उर्मिला के चरित्र में निहित यह मौलिक पक्ष

1· उर्म्मिला - बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ0. 248

2· वही, तृतीय सर्ग, पृ0 267-268

है । "ऊर्म्मिला" के चतुर्थ सर्ग में उर्मिला के अन्तर्दन्दों का सफल व सहज चित्रण हुआ है -

आशंकाओं की आँधी, भय अविश्वास के बादल,
कम्पित करते रहते हैं, स्मृति दीप शिखा को प्रतिपल ।-1

इस काव्य-कृति में उर्मिला का वियोगी रूप आध्यात्मिक रंग में रंगा हुआ है । वे विरह व्यथा में हाहाकार नहीं करती अपितु उसे मौन रहकर पान करती हैं । विभिन्न ऋतु में उर्मिला की व्यथा विविध रूप से उसे त्रस्त करती हैं किन्तु वह अपने लक्ष्य से च्युत नहीं होती अन्ततः वह स्वयं अपने प्रियतममय हो जाती है । अपने प्रियतम् का सर्वत्र साक्षात्कार करती उर्मिला, द्वैत से अद्वैत रूप धारण कर लेती है । वह लक्ष्मण रूप हो जाती है । उनका यह रूप अध्यात्म से प्रभावित सर्वथा दार्शनिक है-

मेरे कर में धनुष है, मेरे कर करवाल,
भई जनक जा उर्मिला, लक्ष्मण, दशरथ लाल ।-2

चतुर्थ व पञ्चम् सर्ग में उर्मिला के विरह में कवि ने नानाविध भावनाओं का समावेश किया है । वह माया, ममता, काम, क्रोध व मोह सभी पर विजयिनी होकर लक्ष्मण की प्रतीक्षा करती हैं । कभी-कभी आशंकाओं की आँधी व अविश्वास उसे उसके पथ से विचलित करना चाहते हैं किन्तु फिर भी वह अपने साहस, साधना व लगन से च्युत नहीं होती उसका वियोग अभिशाप न होकर वरदान रूप धारण करता है, जिसमें मानवता मूल-प्रेरणा रूप में दृष्टिगत् होती है ।

1· उर्मिला चतुर्थ सर्ग, पृ0 389

2· वही, पंचम सर्ग, पृ0 415

समग्रतः 'नवीन' जी की उर्मिला "साकेत" की तुलना में अधिक सहज व स्वाभाविक रूप में में चरित्रांकित हुई है । डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त के शब्दों में - "रामकाव्यों की परम्परा में श्री नवीन की उर्मिला सर्वथा नूतन चरित्र सृष्टि है । इस काव्य में प्रथम बार उर्मिला का स्वाभाविक गति से स्वतन्त्र और पूर्ण चरित्र-विकास हुआ है ।"-1

"ऊर्म्मिला" प्रबन्ध-रचना के पश्चात् उर्मिला पर स्वतन्त्र काव्य-कृति का अभाव सा हो गया है । छिटपुट रूप से रामकथाधृत रचनाओं में उनका उल्लेख मात्र हुआ है । "साकेत-सन्त" में उर्मिला के विरहिणी स्वरूप का अल्पमात्र में चित्रण हुआ है । उर्मिला के विरहिणी चरित्र की मार्मिक व्यंजना के बाद उसका कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता । किन्तु उर्मिला के विरहावस्था का चित्रण मार्मिक है :-

देह महल में रुद्ध हुई थी, पर न निरुद्ध विरह निर्झर था ।
भरी दृगों में जल-धाराएं, शब्द शब्द करुणा कातर था ।-2

1· हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य-देवी प्रसाद गुप्त - पृ0 183

2· साकेत-सन्त - डॉ0 बल्देव प्रसाद मिश्र --पृ0 191

कैकेयी

कैकेयी का चरित्र, राम को वनवास देने के कारण , भारतीय वाङ्मय तथा जनमानस में निन्दित रहा । उनका यह रूप "वाल्मीकि-रामायण" से लेकर "रामचरित-मानस" की चरित-भूमि में विचरण करता हुआ आगे बढ़ता है । कैकेयी कैकेय नरेश की सुपुत्री व अयोध्या के राजा दशरथ की पटरानी थी । "अयोध्या के महाराजा दशरथ की पत्नी कैकेयी के चरित्र की कल्पना आदि कवि वाल्मीकि की कथागत शिल्प-योजना की कुशलता का प्रमाण है ।"-1 "वाल्मीकि-रामायण" में कुब्जा रामराज्य को भरत के लिए भय जनक बताकर कैकेयी को भड़काती है । फलतः कैकेयी दशरथ से रामवनवास का वरदान माँगती है ।-2 "अग्नि-पुराण" में भी उनके इसी रूप का वर्णन हुआ है ।-3 यद्यपि मानस में कैकेयी को दुष्प्रवृत्तियों से प्रेरित चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, फिर भी सरस्वती की प्रेरणा से मन्थरा द्वारा कैकेयी को बहकाने की कल्पना द्वारा कैकेयी के दोष को कारण मिल जाता है ।-4

आधुनिक युग में चिर-लाँछित कैकेयी के चरित्र के उद्धार का जो प्रयत्न किया गया वह सराहनीय है । आधुनिक नव्य मानवतावादी दृष्टि तथा चरित्र निरूपण के प्रति मनोवैज्ञानिक दृष्टि के प्रभावस्वरूप कैकेयी के चरित्रांकन मनोवैज्ञानिक रूप से किया गया । उनकी अन्तरानुभूतियों तथा अन्तर्द्वन्द्वों का मौलिक चित्रण करके उन्हें नवीनता प्रदान की गयी है । कैकेयी के परम्परागत विध्वंशकारी हठ को नयी अर्थवत्ता प्रदान करके उनके चरित्र को महत्ता प्रदान की गयी ।

रामकथाधृत रचनाओं में सर्वप्रथम रामचरित उपाध्याय कृत "रामचरित-चिन्तामणि" का स्थान आता है । इस रचना में कैकेयी

1· हिन्दी साहित्य कोश - भाग-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 111
2· वाल्मीकि-रामायण - सर्ग 8 व 9 पृ0 201 से 208 तक
3· प्रोत्साहित कुब्जया सा अनर्थे चार्थदर्शिनी ।
उवाच सटुपायो में कथितः स करिष्यति ।।16।।-अग्निपुराण{पूर्वभाग:}
अध्याय-6, पृ0 22
4· रामचरित मानस, पृ0 343

का चरित्रांकन परम्परागत् रूप में ही वर्णित हुआ है । कैकेयी मन्थरा के बहकावें में आकर दशरथ से राम के लिए वनवास तथा भरत के लिए राज्य का वरदान माँगती है ।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "साकेत". में आधुनिक नव्य मानवतावादी तथा बौद्धिक चेतना के प्रभाव-स्वरूप प्रथमतः कैकेयी के चरित्रोन्नय व प्रच्छालन का कार्य हुआ है । गुप्त जी ने कैकेयी के परम्परागत् कलंकित चरित्र को न केवल प्रक्षालित किया है बल्कि उनके चरित्र में अनेक गुणों का समावेश करके उदात्तता प्रदान की है । "साकेत" में कैकेयी के पश्चाताप् जन्य स्वरूप, मानसिक अन्तर्द्वन्द के साथ-साथ उनके उदात्त वीरत्व भाव का भी अकन हुआ है ।

"साकेत" में चित्रकूट सभा में कैकेयी का चरित्रांकन आधुनिक नव्य मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित है । कैकेयी अपने कृत्यों के प्रति पश्चाताप् करती हुई तथा स्वयं के प्रति ग्लानि प्रकट करती हुई, राम से वापस अयोध्या लौट चलने का आग्रह करती हैं । वे राम से स्वयं अपना अपराध स्वीकृत करती हुई, कहती हैं :-

यह सच है तो अब लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मैं हूँ तात, तुम्हारी मैया ।-1

इस रचना में कैकेयी मौलिक रूप में अपनी मानसिक व्यथा को, अपने आत्म संताप को व्यक्त करती हुई, अपनी मानवीय दुर्बलता की तीव्र भर्त्सना करती हैं । वे कहती हैं कि मानव स्वप्न में और मद में अपनी वास्तविकता भूल कर कुछ भी कर सकता है । वे अपनी स्वार्थमयी कृत्य और पुत्र-मोह में पड़े चरित्र की, स्वयं ही निन्दा करती हैं। वे कहती हैं :-

---

1· साकेत-मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 120

पटके मैंने पदपाणि मोह के नद में,
जन क्या क्या करते नहीं स्वप्न में, मद में ?
× × ×
छल किया भाग्य ने मुझे अयश देने का
बल दिया उसी ने भूल मान लेने का ।-1

"साकेत" में कैकेयी का पश्चातापजन्य यह स्वरूप उन्हें मौलिक उदात्तता प्रदान करने के साथ-साथ उनका चारित्रिक उन्नयन करता है ।

गुप्त जी ने कैकेयी का चरित्र-चित्रण स्वदेश के प्रति जागरूक वीर-नारी के रूप में किया है । परम्परागत् रूप में भी कैकेयी के वीरता का अंकन हुआ है । कैकेयी स्वर्ग में दैत्यों से युद्धरत दशरथ के रथ की धुरी टूट जाने पर धुरी की जगह अपना हाथ लगा देती हैं ।-2 "साकेत" में कैकेयी का वीरत्व मौलिक रूप में निरूपित हुआ है । "साकेत" के उत्तरार्द्ध में हनुमान द्वारा राम की संकटावस्था की सूचना पाकर उनके अन्दर का वीरत्व जाग्रत हो उठता है और वे राम की रक्षा के लिए प्रस्थान करने को प्रस्तुत होती हैं -

भरत जायेगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी,
ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी ?
मूर्तिमती आपत्ति यहाँ से मुँह मोड़ेगी
शत्रु-देश सा ठौर मिला, वह क्यों छोड़ेगी ?-3

स्पष्टतः कैकेयी का यह रूप आधुनिक युग की जाग्रत एवं सचेत नारी का चित्र प्रस्तुत करता है ।

1· साकेत- मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 122

2· न ज्ञापितं तया राज्ञे स्वयमालोक्य सुव्रता ।
भग्नमक्षं सभालक्ष्य चक्रे हस्तं तदा स्वकम ।।26।।-
ब्रह्म पुराण, अध्याय-123, पृ0 665

3· साकेत-मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 224

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कृत "ऊर्म्मिला" में कैकेयी का चरित्र प्रत्यक्ष रूप से उल्लिखित मात्र है । कैकेयी के चरित्र की अप्रत्यक्ष व मौलिक निरूपण लक्ष्मण के माध्यम से हुआ है । इस रचना में कैकेयी द्वारा 'रामवनवास का वर' माँगना राजनीतिक उद्देश्य से परिपूर्ण है । कैकेयी दक्षिण-पथ पर विजय की अभिलाषा व आर्य-संस्कृति के विस्तार हेतु राम को वन भेजना चाहती है । परम्परागत् पुत्र मोह व निजी स्वार्थवश नहीं । कैकेयी के इस उदात्त चरित्र के बारे में लक्ष्मण उर्मिला से कहते हैं -

आय्र्यों के उत्तरपथ आगत, वैभव से वे परिचित हैं ।
किन्तु आय्र्य विस्तार विन्ध्य की ओर बहुत ही परिमित है ।
रह रहकर कैकेयी को यह, दक्षिण पथ ललचाता है ।
× × ×
कैकेयी ने सोच समझकर रचा खेल यह सारा है ।-1

कैकेयी का यह चरित्र "ऊर्म्मिला" में प्रथमतः मौलिक रूप में निरूपित हुआ है ।

शेषमणि शर्मा द्वारा कैकेयी के चरित्र को आधार बनाकर लिखी गई स्वतन्त्र रचना "कैकेयी" में कैकेयी का चरित्रांकन रूप मौलिक रूप में हुआ है । इस रचना में कवि ने पहले उनकी उग्रता को और भी उभारा है लेकिन अंत में "साकेत" का अनुकरण करते हुए पश्चाताप भी कराया है । कृष्णचन्द वर्मा ने "कैकेयी" की भूमिका में लिखा है - "कैकेयी के चरित्र में उग्रता और प्रचण्डता का अंश और भी उभरा हुआ मिलता है । वह राज्यस्वामिनी होकर बोलती है । उसमें क्रूर शासक के गुणों का आविर्भाव दिखलाया गया है ।"-2 "कैकेयी" में "वाल्मीकि-रामायण" की भाँति ही दुर्बुद्धि मन्थरा द्वारा बहकाये जाने पर कैकेयी रामवनवास की मांग करती है ।

1· ऊर्म्मिला-बालकृष्ण शर्मा "नवीन" पृ0 261-262

2· कैकेयी-शेषमणि शर्मा, भूमिका में कृष्ण चन्द वर्मा, पृ0 4

इस रचना में रामवनवास के समय कैकेयी कठोर व उग्र रूप में निरूपित हुई है । कैकेयी की उग्रता का अंकन परम्परागत व पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में हुआ है । वनवास के समय राम के मंत्री से वार्तालाप करते देख कर कैकेयी के मन में शंका उत्पन्न होती है कि कहीं राम उनकी आज्ञा को अस्वीकृत न कर दें । वह राम के प्रति अपनी शंकाकुलता प्रकट करती हैं । उनकी ओर वनवासियों के लिए नियत वल्कल वस्त्र फेंकती हुई, वह कहती हैं -

राम जानती हूँ मैं सब कुछ, मुझसे लो कहकर आये ।
असमंजस में पड़े सोचते किन्तु न अब तक जा पाये ।
नृप की निर्बलता से शायद लाभ उठाना चाह रहे हैं ।-1

कैकेयी के चरित्रोन्नयन हेतु "साकेत" के प्रभाव-स्वरूप शेषमणि शर्मा जी ने कैकेयी के आत्मग्लानि व पश्चाताप का भी चित्रण किया है । अंततः कैकेयी अपने कृत्यों के अनौचित्य के प्रति सचेत होती है । वह अपने कृत्यों की भर्त्सना करती हुई, पश्चाताप करती हैं -

आह देव । मैंने सचमुच ही, अपना ही बलिदान किया,
घृणा किया अमृत से मैंने, कालकूट का पान किया ।-2

यही नहीं वे पश्चाताप करती हुई, कौशल्या से भी अपने कृत्यों के लिए क्षमा-याचना करती हैं ।

चित्रकूट सभा में "साकेत" की कैकेयी मुखर रूप में अपनी आत्मवेदना व अन्तर्दन्दों को प्रकट करती है, किन्तु शर्मा जी ने कैकेयी को मौन रूप में ही निरूपित किया है । वे राम के समक्ष मौन खड़ी, आँसुओं के मोती पिरोती हुई केवल इतना कह सकी हैं -

---

1· कैकेयी - वही, पृ0 89

2· वही, पृ0 119

कालचक्र की विषम परिधि का कर मन में अनुमान सकें ।
अनियन्त्रित गति नियति नटी की पूर्णतया पहचान सके
तो बस इतना ही कहना है एक बार तुम क्षमा करो ।
सूने से इस हृदय देश में है राघव तुम रमा करो ।।-1

समग्रतः कैकेयी का चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक व सहज है, किन्तु चरित्रोन्नयन की दृष्टि से "कैकेयी" की कोई विशिष्ट सफलता नहीं मिल पायी है । परम्परागत प्रसंगों को ही आधुनिक विचारधारा के अनुरूप निरूपित करने का प्रयास हुआ है ।

"साकेत-सन्त" में बल्देव प्रसाद मिश्र जी ने कैकेयी के चरित्र-सृजन में नवीनता का परिचय दिया है । गुप्त जी के "साकेत" का प्रभाव भी कैकेयी के चरित्र-निरूपण पर दृष्टिगत होता है । "साकेत-सन्त" में कैकेयी परम्परागत् रूप में ही मन्थरा द्वारा बहकाये जाने पर पुत्र-मोह वश रामवनवास का वर माँगती हैं । भरत का समर्थन न प्राप्त होने पर कैकेयी आत्म ग्लानि में डूब जाती हैं । वे अपने कृत्यों के प्रति पश्चाताप करती हैं । कैकेयी का पश्चाताप जन्य स्वरूप "साकेत" से प्रभावित है ।

"साकेत-सन्त" में कैकेयी का चरित्र-निरूपण मौलिक रूप में पातिव्रत्यशील आदर्श-नारी के रूप में वहाँ दृष्टिगत होता है, जब वे दशरथ के मृत देह को जिलाने के लिए वशिष्ठ की शरण में जाती है । कैकेयी गुरू वशिष्ठ से कहती हैं -

नृपति फिर देह में यदि जाग जावें,अवध के दुःख सारे भाग जावें ।
असम्भव है न कुछ भी नाथ । तुमको,सदा है सिद्धियों का साथ तुमको ।
मिटा दो ताप इस उर का मिटा दो, प्रभो । क्षण के लिये नृप को जिला दो।

1· कैकेयी- शेषमणि शर्मा, पृ0 141

2· साकेत-सन्त बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 76

मिश्र जी ने कैकेयी के चरित्र में आधुनिक युग की विचारधारा से प्रभावित देश-प्रेम की भावना का आरोपण भी किया है कैकेयी का यह चरित्र "साकेत-सन्त" की मौलिकता है । कैकेयी वीर नारी की भाँति युद्ध की परिस्थिति में देश के पश्चिमी नाके को सम्भालने हेतु तत्पर होती है -

कैकेयी ने कहला भेजा
"मैं साधूँगी पश्चिम नाका ।-1

समग्रतः "साकेत-सन्त" में कैकेयी का चरित्र पातिव्रत्य व देश प्रेम की विशिष्टता युक्त उदात्त नारी के रूप में निरूपित हुआ है ।

कैकेयी के चरित्र पर केन्द्रित अन्य रचना केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत "कैकेयी" का स्थान महत्त्वपूर्ण है । कैकेयी के चरित्र में तत्कालीन चेतना के परिप्रेक्ष्य में कवि ने कैकेयी के चरित्र में नवीन आशय का संधान किया है । प्रस्तुत रचना में कैकेयी अनार्यों के आक्रमण से आर्य संस्कृति को बचाने के लिये ही राम को वन में भेजती हैं । यहाँ उनके परम्परागत् पुत्रमोह में अन्ध, स्वार्थमयी नारी के रूप का निषेध हुआ है । 'नवीन' कृत "ऊर्मिला" में कैकेयी को संक्षिप्त रूप में आर्य संस्कृति का प्रचारक रूप निरूपित हुआ है किन्तु "कैकेयी" में वह देश पर आने वाले संकट के प्रति चिन्तित नारी के रूप में वर्णित हुई है । "कैकेयी" में 'प्रभात' जी ने कैकेयी का चरित्र दूरदर्शी, बौद्धिक, देशप्रेमी व कर्मवादी नारी के रूप में निरूपित किया है ।

'प्रभात' जी ने कैकेयी का चरित्रांकन सर्वथा मौलिक रूप में दूरदर्शी बौद्धिक व देश के प्रति जागरूक नारी के रूप में किया है । अनार्यों के आक्रमण से आर्य-संस्कृति को बचाने के लिये ही वे दशरथ से राम की माँग करती हैं, क्योंकि उन्हें राम की सक्षमता पर ही पूर्ण विश्वास था । वे दशरथ से कहती हैं -

---

1. साकेत-सन्त पृ0 182

मैं न राम को माँग रही हूँ, माँग रही हूँ जिसकी वाणी,
वह है युग की सजग चेतना, महाशक्ति युग की कल्याणी ।
वह है युग की प्रबल प्रेरणा, युग के अरुणोदय की लाली,
वह युग की क्रान्ति-तपस्या, आग न जिसकी मिटने वाली ।-1

यहाँ कैकेयी के चरित्र में नवीन युग चेतना का ही आरोपण हुआ है । राष्ट्र प्रेम की उत्कट भावना उन्हें उदात्त बनाती है । वे अपने देश की स्वतन्त्रता के साथ-साथ देश के धर्म, संस्कृति व आदर्शों के सुरक्षा के प्रति भी जागरूक हैं ।

आधुनिक युग में नव्य कर्मवादी चेतना का उन्मेष हुआ । इस कर्मवादी चेतना का प्रभाव 'प्रभात' कृत "कैकेयी" पर भी है । इस रचना में कैकेयी का चरित्रांकन कर्म को महत्ता देने वाली नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है । कैकेयी मानव जीवन में विश्राम की अपेक्षा ओजस्वी कर्म को महत्व देती है । समाज के मंगलमयी विकास के लिए कर्म ही आवश्यक है । वे कहती हैं -

ऐसा जीवन जिसमें हो विश्राम नहीं पल भर का ।
जो हो पूँजीभूत ओज नवयुग के मंगल स्तर का ।-2

"कैकेयी" में पूर्ववर्ती रचनाओं की भाँति रामवनवास के कारण कैकेयी ग्लानि व पश्चाताप नहीं करतीं, अपितु युगधर्म के पुकार पर राम को समर्पित करने के कारण स्वयं को गर्वान्वित ही महसूस करती हैं। वे कहती हैं -

साक्षी रहना हे ज्योतिर्मय ! मैं न तनिक पछताती ।
राजनीति के साथ क्रान्ति को श्रद्धा से अपनाती ।।-3

1· कैकेयी - केदारनाथ मिश्र "प्रभात", पृ0 27

2· वही, पृ0 28

3· वही, पृ0 32

कैकेयी के चिरलांछित चरित्र को इस प्रबन्ध रचना में नवीन कल्पना के सहारे मौलिकता व उदात्तता प्रदान की गयी है । इसके लिए कवि ने पराम्परागत् कथावस्तु में किंचित परिवर्तन करके उसे नयी अर्थवत्ता प्रदान की गयी है । प्रभात जी ने कैकेयी को एक सर्वथा नवीन दृष्टि से देखा है । राष्ट्रप्रेम सभ्यता-संस्कृति के अभिरक्षण, धर्म प्रतिष्ठा, युगधर्म की पुकार, लोकसेवा के आदर्श राष्ट्र के लिये वात्सल्य के संवरण एवं युग-कल्याण के लिए सर्वोत्सर्ग की उत्कट चेतना का परिप्रेक्ष्य देकर कैकेयी के व्यक्तित्व को एक क्रान्तिकारिणी युगदर्शिका का स्वरूप प्रदान किया गया है ।-1 इस प्रबन्ध कृति में कैकेयी का चरित्रांकन युगपथ प्रदर्शिका रूप में हुआ है । उनका यह रूप सर्वोत्कृष्ट उदात्तता व महत्ता का अधिकारी है।

हरिशंकर सिन्हा कृत "माण्डवी" में "कैकेयी" का चरित्र-चित्रण बहुल रूप में "साकेत" की ही भाँति हुआ है, किन्तु इस रचना में कैकेयी के निष्ठुर रूप के पीछे मौलिक कारण भी जोड़ा गया है । परम्परागत् रूप में कैकेयी मन्थरा दारा भड़काने पर रामवनवास की माँग रखती है । इस रचना में कैकेयी इस भय से भयभीत है कि राज्य प्राप्ति के बाद राम, भरत को कारागार में डाल देंगे । उनका मातृहृदय इसे सहने में अक्षम होता है, फलतः वे रामवनवास का वर माँग लेती हैं । कैकेयी कहती हैं -

> जो पुत्र इव पला था, मम् गोद में खिला था,
> ललकारता वही है, आँखें बदल गई हैं ।
>
> × × ×
>
> कारा में डालने की इच्छा प्रबल लिये जो
> मेरे भरत को, अब वे वनवास तो भुगत लें ।-2

"माण्डवी" में कैकेयी के चरित्र में संवेदनशील मातृ हृदय का आरोपण उन्हें उदात्तता से प्रभामण्डित करता है । भरत दारा रामवनवास

1· हिन्दी साहित्य कोश-भाग-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ0 112

2· माण्डवी-हरिशंकर सिन्हा, पृ0 53

सन्दर्भ में समर्थन न प्राप्त होने पर कैकेयी अपने कृत्य पर पश्चाताप करती हैं । वे भरत के साथ राम को वापस लाने स्वयं भी चित्रकूट जाती हैं । चित्रकूट जाते समय मार्ग की कठिनाइयों को देखकर उनका मातृहृदय द्रवित हो उठता है । वे राम के प्रति संवेदनशील हो उठती हैं । अपने कृत्य का पश्चाताप करती हुई वे स्वयं अपनी भर्त्सना करती है कैकेयी का यह चरित्र "माण्डवी में मौलिक रूप से चित्रित हुआ है । वे कहती हैं -

> हा ! हा ! अधम क्या देखती ! क्या कर दिया,
> मैंने सुलाकर फूल को कुश डास पर,
> फट है हिया, अब शक्ति होती क्षीण है ।-1

कैकेयी चित्रकूट पहुँच कर राम के समक्ष स्पष्ट रूप से अपनी इच्छा व्यक्त करती हुई, उनसे दो वर माँगती है। प्रथम सीता सहित राम को वापस अयोध्या लौटने का तथा दूसरा स्वयं को दण्डित करने का। कैकेयी का यह चरित्र माण्डवी में मौलिक रूप में निरूपित हुआ है । साकेत की कोमल याचना यहाँ दृढ़ इच्छा में परिवर्तित दृष्टिगत होता है । वे कहती हैं -

> प्रथम यह दम्पत्ति चले साकेत को,
> वर दूसरा दे दण्ड में हर ले यन्त्रणा ।-2

संक्षेप में "माण्डवी" में कैकेयी के परम्परागत् चरित्र के उन्नयन हेतु उनका चरित्र मनोवैज्ञानिक रूप से चित्रित किया गया है ।

1· माण्डवी - हरिशंकर सिन्हा, पृ0 53

2· वही, पृ0 133

अहल्या

पौराणिक कथाओं में जो कुछ भी वर्णित है, वह सर्वत्र नैतिक, न्यायपूर्ण तथा तार्किक नहीं है । इन कथाओं में अनेक ऐसे पात्र हैं, जिनके साथ न्याय नहीं हुआ । यह कहना गलत न होगा कि उनके साथ अन्याय हुआ । ऐसे पात्रों में अहल्या का चरित्र उल्लेखनीय है । गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या इन्द्र द्वारा पथभ्रष्ट होने के सन्देहस्वरूप स्वयं अपने ही पति के श्राप से प्रस्तर बन जाती हैं । राम के कारण-स्पर्श से वह पुनः अपना पूर्वरूप प्राप्त करती हैं । "वाल्मीकि-रामायण" में यह कथा एक अर्न्तकथा के रूप में समाविष्ट है । पुराणों में ब्रह्मपुराण, शिव पुराण, वायु पुराण, विष्णु पुराण, श्रीमद् भागवद् पुराण में भी यही कथा-प्रसंग वर्णित हुआ है । रामचरित मानस में तुलसी ने भी इसी कथा प्रसंग को वर्णित किया है ।

आधुनिक युग की बौद्धिक चेतना, तार्किकता तथा परिवर्तित नैतिक मान्यताओं के परिणामस्वरूप अहल्या का चरित्र नयी दृष्टि से देखा गया । परम्परागत् रूप में अहल्या देवराज इन्द्र द्वारा छली जाती है, लेकिन दंडित वही होती है । आधुनिक कवियों ने अहल्या को विपुल सहानुभूति देते हुए उनके चरित्र को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है ।

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में "राम-चिन्तामणि" में अहिल्या का चरित्र मौलिक है । वे राम द्वारा उद्धार किये जाने के बाद उनसे समस्त राष्ट्र के कल्याण-कामना से वरदान माँगती है । अहिल्या राम से वर माँगती हुई कहती हैं -

प्रभु भारतीयों में सदा सद्बुद्धि का संचार हो,
उनके अलस-अविवेक का भय भेद का संहार हो ।
ऐसी कृपा कर दीजिए, वर दीजिए दुःख दूर हो,
हो शूर सब भरपूर सुख से, क्रूर का मुख दूर हो ।-1

1· रामचरित-चिन्तामणि पृ0 85

अहिल्या का यह स्वरूप नितान्त नवीन है । इससे पूर्व के रचनाओं में वह राम के चरणों की भक्ति भाव से वन्दना करती हुई उद्घार की ही माँग करती हैं । रामचरित चिन्तामणि में वे देश और राष्ट्र के बारे में सोचने वाली राष्ट्रीय भावना से प्रेरित हैं ।

'कौशल-किशोर" में बल्देव प्रसाद मिश्र ने अहल्या का चरित्र नवीन दृष्टिकोण से निरूपित किया है । स्वयं कवि के शब्दों में 'अहल्या ने "बिल्कुल सामान्य स्वाभाविक और मर्यादापूर्ण असंयम के लिए भी इतना कठोर दण्ड शान्तिपूर्वक सहन कर लिया ।" -1

आधुनिक बौद्धिक तथा तार्किक चेतना के प्रभाव-स्वरूप कवि द्वारा इस रचना में इन्द्र द्वारा अहल्या पर आशक्त होने की घटना को सर्वथा नवीन धरातल पर वर्णित किया गया है । आहल्या इन्द्र द्वारा प्रकटित आकाशीय बिजली की छवि पर मोहित हो जाती हैं । प्रकृति के इस सुन्दर रूप को देखकर उनके मन में स्वाभाविक रूप में पति-साहचर्य की इच्छा जाग्रत होती है -

> झलकी बिजली वहाँ यहाँ बिजली सी नारी,
> बिजली सी दौड़ गयी नस-नस में सारी,
> × × ×
> बोली घनतम देख वचन स्नेहासव पागे
> निष्ठुर से बन कान्त । कहाँ यों छिपकर भागे । -2

अपने पति गौतम ऋषि की पवित्र भाव से सेवा करने वाली सुन्दरी बाला अहल्या, मात्र इस नगण्य अपराध के लिए अपने ही पति द्वारा तिरस्कृत हो जाती हैं । "कौशल-किशोर" में अहल्या परम्परागत रूप की भाँति पत्थर न होकर, पति द्वारा तिरस्कार के कारण प्रस्तरवत् हो जाती है ।

"कौशल-किशोर" में अहल्या का चरित्रांकन दृढ़ व संयमशील नारी के रूप में हुआ है । साथ ही अहल्या के प्रस्तर होने की

1· कोशल किशोर, भूमिका में कवि
2· वही, पृ0- 106

कथा को नवीन धरातल प्रदान करते हुए सहज व स्वाभाविक बनाने का प्रयास भी हुआ है । अहल्या निरपराधी होते हुए भी हृदय शुद्धि हेतु विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए, मुनि आज्ञा का अनुपालन करती है -

> हृदय शुद्धि के लिए अहल्या रही अकेली,
> इस वन में क्या-क्या न आपदा इसने झेली ।-1

अन्ततः पाषाणवत जी रही अहल्या राम की अनुकम्पा से पुनः अपने सहज व स्वाभाविक रूप को प्राप्त करती है ।

रामकुमार वर्मा कृत "ओ अहल्या" में रामकुमार वर्मा जी ने अहल्या का चरित्र नवीन-दृष्टिकोण से निरूपित किया है । वर्मा जी अहल्या के बारे में लिखते हैं - "आप पूर्णतः निर्दोष है, क्योंकि महाभारत में भी महर्षि गौतम ने शान्तिपर्व {266-67} में आपको निर्दोष माना है । स्वयं इन्द्र ने भी अपने रूप और यौवन से आपको 'अपराजिता' नाम ठीक ही दिया है ।"-2 "ओ अहल्या" में अहल्या का चरित्रांकन सर्वथा मौलिक रूप में किया गया है । इस रचना में अहल्या बौद्धिक, नीतिवान, भौतिकता के आकर्षण से परे, दूरदर्शी नारी के रूप में निरूपित हुई है ।

"ओ अहल्या" में अहल्या का प्रजापति की सृष्टि के रूप में चित्रित किया गया है । प्रजापति उसे पुत्रीवत् पालते हैं । "ब्रह्म-पुराण" में भी इसी सन्दर्भ का वर्णन हुआ है । -3 "ओ अहल्या" में अहल्या के चरित्र के उदात्त पक्ष का प्रकटन उस समय होता है, जब वे स्वर्ग की राजमहिषी बनने की तुलना में, गौतम ऋषि के पास रहने

1· कौशल-किशोर-बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 107

2· ओ अहल्या-डॉ0 रामकुमार वर्मा, प्र·सं0 1985 ई0,

3· ब्रह्म पुराण - अध्याय 87, पृ0 482

को प्रमुखता प्रदान करती है । वे प्रजापति से कहती हैं -

"प्रभु । प्रणत हूँ - पुण्य के प्रति प्रथम मेरा प्यार है,
आपका निर्णय मुझे सर्वत्र ही स्वीकार है ।"-1

इस रचना में अहल्या के चरित्राकन पर आधुनिक बौद्धिक चेतना का प्रभाव है । अहल्या भौतिक चकाचौंध की तुलना में आदर्श तत्वों को महत्ता देती हैं । इन्द्र के निम्न रूप पर, वे अपना आक्रोश प्रकट करती हुई, उसके रूप के प्रति आकर्षण और इसके लिए भिक्षावृत्ति पर आक्षेप करती हैं । यह उनकी जागरूकता व चेतना का ही द्योतक है । इन्द्र की भर्त्सना करती हुई, वे कहती हैं -

यह सुना मैंने कि सुरपति भीख मेरी चाहते ।
× × ×
आपके राजत्व में क्यों भीख का संस्कार है ?
भीख की ही भाँति पाया स्वर्ग पर अधिकार है ?
शक्तिशाली के लिए भिक्षा भयानक पाप है ।
भिक्षुओं के हाथ में वर, वर नहीं अभिशाप है ।
आप अब जायें, बचायें जो प्रतिष्ठा है बची ।-2

अहल्या के चरित्र का यह सर्वथा नवीन पक्ष है । कुमारी अहल्या के मन में ऐश्वर्य व सौन्दर्य के प्रति कोई आकर्षण नहीं होता । यहाँ अहल्या के परम्परागत चरित्र का परिष्कार भी दृष्टिगत होता है । परम्परागत रूप में विवाहिता अहल्या के ऊपर इन्द्र के प्रति जिस आकर्षण का आरोप लगा है, यहाँ उसका निषेध ही हुआ है । यदि कौमार्यावस्था में अहल्या के मन के इन्द्र के प्रति कोई आकर्षण नहीं था तो बाद में कैसे सम्भव हो सकता था ।

"ओ अहल्या" में अहल्या का चरित्राकन कर्मशील व बौद्धिक नारी के रूप में हुआ है । पितृज्ञा से गौतम ऋषि

---

1. ओ अहल्या - पृ0 35

2. वही, पृ0- 36

के आश्रम में रहती हुई अहल्या स्वयं ही यज्ञ के लिए समिधा का प्रबन्ध करती है । यही नही वह एक बौद्धिक बाला भी हैं । वेदाध्ययन व चिन्तन में निरत अहल्या का चरित्र उनकी बौद्धिकता का ही द्योतक है -

यज्ञ होती समिधा लाती है, पूरा करती यज्ञ-विज्ञान,
करती वेदाध्ययन और, देती है वह चिन्तन में योग ।-1

वर्मा जी ने अहल्या पर लगे परम्परागत आक्षेप का निषेध करते हुए उसे सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत किया है । इस रचना में अहल्या दूरदर्शी तथा चारित्रिक-दृढ़ता से युक्त नारी हैं । गौतम ऋषि के वेश में आये कामी इन्द्र का छद्म वेश अहल्या के दूर-दृष्टि से नहीं बच पाता । वे इन्द्र की भर्त्सना करती हुई उसे आश्रम से निकल जाने की चेतावनी देती है । यहाँ उनका उत्कट पातिव्रत्य तथा निष्कलक चरित्र ही व्यंजित हुआ है । इन्द्र की भर्त्सना करती हुई, वे कहती हैं :-

धिक् ओ सुरेन्द्र । तुझे लज्जा नहीं आयी जो,
चोरी से पतिव्रता के सत्य से है खेलता ?
× × ×
शीघ्र लौट जा तू । यह पाप-पथ छोड़ दे,
मेरा शाप स्वर्ग को भी नरक न कर दे ।-2

इस रचना में अहल्या के चरित्र को नवीन उदात्ता प्रदान की गई है, साथ ही परम्परागत रूप से गौतम के शाप से अहल्या के पाषाण बनने के प्रसंग का निषेध भी । "ओ अहल्या" में अहल्या गौतम द्वारा शापित नहीं होती, अपितु स्वयं ही इन्द्र द्वारा स्पर्श किये जाने के कारण स्वयं को अपवित्र मानकर, अपना शरीर अग्नि में भस्म कर देने का निर्णय लेती हैं । किन्तु वे गौतम ऋषि द्वारा रोक ली जाती हैं । गौतम ऋषि के समझाने पर अहल्या तपस्या में निरत हो राम के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं । अन्ततः राम का आगमन होने पर उनका चरण-स्पर्श कर स्वय को पावन करती हैं और पुनः अपने पति गौतम ऋषि के साथ उनके आश्रम पर चली जाती हैं । यहाँ अहल्या के चरित्र के साथ-साथ उसके स्वत्व स सम्मान की भी रक्षा हुई है । राजेन्द्र मिश्र के शब्दों में - "पुराणों मिथकों की ऐन्द्रजालिकी प्रकृति में उलझे तथा नारी-गौरव के धूमकेतु भूत इस करूण-प्रसंग का अपनी काव्य-गंगा से 'अभिनव रूद्राभिषेक' सम्पन्न कर डॉ0 वर्मा ने न केवल अहल्या की, न केवल नारी-जाति के सम्मान की प्रत्युत राष्ट्रीय गौरव की रक्षा की है ।"3 वर्मा जी ने अहल्या के परम्परागत चरित्र के उन्नयन का महत प्रयत्न किया है।

1· "ओ अहल्या"-पृ0 45, 2· वही, पृ0-92
3. ओ अहल्या- सम्मतियाँ में-राजेन्द्र मिश्र

शबरी

भारतीय वाङ्मय में शबरी के अशपृश्य होते हुए भी उसके निश्छल भक्ति-भावना के कारण, राम द्वारा सम्मानित किये जाने व उनकी जूठा बेर खाने का वर्णन प्राप्त होता है । "वाल्मीकि-रामायण" शबरी की भक्ति-भावना का वर्णन प्राप्त होता है, शबरी के भक्ति-भाव से प्रभावित राम शबरी के आश्रम पर जाते हैं, उनका सत्कार ग्रहण करते हैं । शबरी राम और लक्ष्मण को मतगंवन दिखलाती है । अन्ततः शबरी अपने शरीर की दिव्य आहुति दे दिव्यधाम को प्रस्थान करती हैं ।-1 रामचरित मानस में भी शबरी का चरित्र इसी रूप में वर्णित हुआ है ।

आधुनिक काल में अछूतोद्दार तथा वर्णव्यवस्था को तोड़ने के लिए शबरी का चरित्र आधुनिक प्रबुद्ध तथा संवेदनशील कवियों के लिए एक 'प्रतीक' बन गया । इसीलिये शबरी जैसे अकिंचन पात्र को लेकर आधुनिक काल में कई प्रबन्ध-कृतियां रची गयीं । "शबरी" शीर्षक से रचित इन प्रबन्ध-काव्यों के रचनाकारों में वचनेश मिश्र , माया देवी शर्मा रत्नचन्द शर्मा, नरेश मेहता, माया देवी मधु व धनञ्जय अवस्थी आदि का नाम उल्लेखनीय है ।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "साकेत" में शबरी परम्परागत रूप में ही वर्णित हुई है । उनके चरित्रांकन में कोई विशिष्ट मौलिकता नहीं दृष्टिगत् होती ।

वचनेश मिश्र की शबरी पर केन्द्रित प्रबन्ध-कृति "शबरी"-2 ब्रजभाषा में लिखी तथा दस सर्गो में निबद्ध काव्य-कृति है । इसमें शबरी के जीवन के विभिन्न पहलुओं और मनोदशाओं का मार्मिक विवेचन किया गया है । इस रचना में शबरी के चरित्र पर मानव-प्रेम तथा

1· वाल्मीकि-रामायण - अरण्य काण्ड-सर्ग 74 पृ0 664

2· शबरी - वचनेश मिश्र, रचना- सन् 1936 ई0

श्रमशील व्यक्तित्व का आरोपण किया गया है । वचनेश मिश्र के शब्दों में- "शबरी" के चरित्र की मूल विशेषता, जो आधुनिक दृष्टि को आन्दोलित करती है वह है उसका मानव प्रेम । यह मानव प्रेम उसके श्रमशील व्यक्तित्व के अन्दर ही प्रतिबिम्बित हुआ है ।"-1

वचनेश ने शबरी का चरित्रांकन कर्मवादी नारी के रूप में किया है । वह श्रम को ही अपना लक्ष्य मानती है -

"अह, कौन तैं ? "हौं सबरी स्रमना"
स्रम काहे करैं"? ममकाज यही "-2

इस रचना में परम्परागत रूप में ही शबरी के उद्दाम रामभक्ति का अंकन हुआ है । "रामचरित-मानस" की ही भाँति 'वचनेश' जी ने भी शबरी को रामभक्ति में लीन विरहातुर नारी के रूप में प्रस्तुत किया है -

प्रिय आवहु, रावरी हौं सबरी
कहि, दाकेदरी प्रमोद हिये उमह्यौ ।
चहुँधा चख खोलि जबै चितई
चकि भूमि परी, कहि राम भयौ ।-3

शबरी के चरित्र पर आधारित अगली कड़ी माया देवी शर्मा कृत "शबरी" है । आधुनिक युग में नव-जागरण आन्दोलनों अछूतोद्दार आन्दोलनों का व्यापक प्रभाव जनमानस पर पड़ा । अन्त्यज व अछूत माने जाने वाले मानवों के प्रति नवीन चेतना का उन्मेष हुआ । इस नव्य चेतना का प्रभाव साहित्य पर भी विशेष रूप से पड़ा । शबरी के चरित्राकन में रचनाकारों ने मौलिक दृष्टिकोण का परिचय दिया । मायादेवी की "शबरी" में शबरी मौलिक रूप में निरूपित की गई हैं ।

1· शबरी-वचनेश मिश्र, पूर्वानुराग - पृ0 11
2· वही, पृ0 11
3· वही, पृ0 46

इस रचना में शबरी द्वारा राम को बेर खिलाने के प्रसंग को नवीन अर्थवत्ता प्रदान करते हुए, मौलिक रूप में चित्रित किया गया है । आधुनिक नवीन विचारों का प्रभाव यह पड़ा कि शबरी प्रसग में जहाँ शबरी का जूठा बेर ग्रहण करने वाले राम प्रभामंडित होते हैं, वहीं अब शबरी राम के प्रति अनन्य भक्ति-भाव के कारण गौरवान्वित की जाती हैं शबरी के जंगली-बेर राजकीय माया पर वैभव पर, विजय प्राप्त करते हैं -

ये बेर हमारे खाकर
प्रभु ने हमको अपनाया,
इस वन्य बेर न जीती,
राजन्य नगर की माया ।-1

रत्नचन्द शर्मा ने शबरी पर केन्द्रित प्रबन्ध-कृति "शबरी"-2 की रचना मौलिक रूप में की है । आधुनिक नव्य-चेतना से प्रभावित इस रचना में शबरी का चरित्राकन वचनेश मिश्र की शबरी की ही भाँति कर्मवादी नारी के रूप में हुआ है ।

रत्नचन्द ने शबरी पर जातिवाद के विरोधी तथा बौद्धिक व्यक्तित्व का आरोपण किया है । वह समस्त मानवजाति को जन्म से समान मानती हैं । वर्ग-निर्धारण जाति से नहीं कर्म से होना चाहिए, कर्म से ही मानव उच्च व निम्न होता है । वे कहती हैं :-

सभी समान जन्म से होते
द्विज बनते निज कर्म महत से
धर्म शास्त्र के इन वचनों को
कैसे भूल गये तुम हठ से ।-3

1· शबरी - माया देवी शर्मा, पृ0 95

2· शबरी - रत्न चन्द शर्मा, रचना 1966 ई0

3· वही, वही, पृ0-25

शबरी के चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध-कृतियों में नरेश मेहता की काव्य-रचना "शबरी" का विशेष महत्व है । इस रचना में आधुनिक नव्य-चेतना के प्रभाव स्वरूप शबरी का चरित्रांकन सर्वथा नवीन रूप में हुआ है । कवि के शब्दों में - "शबरी की कथा निम्नवर्ग की एक साधारण स्त्री के आत्मिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष की ऐसी कथा है जो रामायण के शीर्षस्थ पात्रों, चरित्रों में भी अपनी पहचान बनाये रखती है ।"-1 इस रचना में शबरी के मौलिक रूप में अहिंसावाद से प्रभावित, जातीय वैषम्य की विरोधी व कर्मवादी नारी के रूप में निरूपित हुई है ।

मेहता जी ने शबरी का चरित्रांकन अहिंसावादी नारी के रूप में किया है । उसका यह चरित्र आधुनिक गाँधीवादी चेतना से प्रभावित है । शबरी भीलनी नारी होते हुए भी पशुओं के नृशंस शिकार तथा वध के कृत्य से घृणा करती है । यह उसके सात्विक-विचारधारा व जीव-प्रेमी चरित्र का ही द्योतक है—

श्रमणा नामक शबरी वह
ऐसा ही जीवन जीती
उसे घृणा थी पशु-हिंसा से
पर क्या कर सकती थी ।-2

इस रचना में शबरी के उदात्त आध्यात्मिक रूप के पीछे मौलिक कारण जोड़ा गया है । शबरी अपने जाति व परिवार में हिंसापूर्ण वातावरण के कारण गहन वितृष्णा में डूब जाती है । यही वितृष्णा उसे आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर ले जाती है -

सब बन्धन से कहीं श्रेष्ठ है
उस प्रभू का ही बन्धन
× × ×
घोर वितृष्णा घिर आयी
श्रमणा शबरी के मन में ।-3

1· शबरी -नरेश मेहता, रचनाकाल-सन् 1975 ई0 भूमिका-पृ0 7
2· वही, पृ0 18
3· वही, पृ0 20-21

आधुनिक नव्य मानवतावादी तथा बौद्धिक चेतना का प्रभाव शबरी के चरित्रांकन पर है । शबरी के चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है उसका जातीय-वैषम्य का विरोधी रूप । अछूत होने के कारण मतंग ऋषि द्वारा उसे अपने आश्रम में रखना अस्वीकृत कर दिया जाता है । वह जातिवाद पर आक्षेप करती हुई कहती है -

क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित ?
प्रभु तो हैं सबके पिता, भला
उनका आराधन क्यों सीमित ?-1

"शबरी" में मेहता जी ने शबरी का चरित्रांकन नव्य कर्मवादी चेतना के प्रभाव-स्वरूप श्रमशील नारी के रूप में किया है । शबरी आश्रम में रहते हुए दिन भर गोशाला में पशुओं की सेवा करती है । निःस्वार्थ भाव से आश्रम वासी मुनियों के आश्रम को स्वच्छ करती हैं, उनके लिए लकड़ी आदि की व्यवस्था करती हैं । कर्म के पथ पर चलते हुए वह अध्यात्म की पराकाष्ठा प्राप्त करती हैं -

थी सुलग उठी शबरी में
योगाग्नि पुण्य ज्वालायें,
था दिव्य तेज उस मुख पर
सूरज की स्वर्ण- प्रभायें ।।-2

इस रचना में शबरी उदात्त रूप में वर्णित हुई हैं । "नरेश मेहता ने शबरी की जन्मगत् निम्नवर्गीयता को कर्म दृष्टि के द्वारा वैचारिक उर्ध्वता में परिणत् किया ।"-3

1· शबरी पृ0 31

2· वही, पृ0 92

3· हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास-डॉ0 प्रेमचन्द महेश्वरी, पृ0-287

माया देवी मधु कृत "शबरी" में शबरी का चरित्र पूर्ववर्ती रचनाओं की ही भाँति अध्यात्म की ओर उन्मुख श्रमशील नारी के रूप में हुआ है । शबरी दारा ज्ञान प्राप्ति की लालसा उसके चरित्र का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जहाँ नारियाँ श्रृंगार की सीमा तक सीमित रहकर, घर परिवार तक सीमित रह जाती हैं, वहीं शबरी दारा निम्नवर्ग की होते हुए भी उच्चवर्ग हेतु नियत आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवेश श्लाघनीय है ।

इस रचना में शबरी पुत्र विहीन वृद्धा है । जीवन का कोई विशिष्ट लक्ष्य न होने के कारण वह अध्यात्मोन्मुख होती है । वह अपने निम्न वर्ग के कारण मानसिक अन्तर्द्वन्द में डूब जाती है कि उसे मतंग ऋषि अपने आश्रम में प्रवेश देगें या नहीं । वह कहती हैं -

लघु वर्णा हूँ मैं नारी
ऋषि सेवा की अभिलाषा
हे हरि कब होगी पूरी
चिरवांछित मेरी आशा ।।-1

अन्ततः उसकी यह अभिलाषा पूर्ण होती है । आश्रम में रहते हुए वह निःस्वार्थ भाव से आश्रमवासियों की सेवा करती है । यहाँ उसका श्रमशील व्यक्तित्व ही उभरता है । समग्रतः शबरी का चरित्र उदात्त है ।

धनञ्जय अवस्थी कृत "शबरी"-2 में शबरी का चरित्र पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में चित्रित हुआ है ।

1· शबरी-मायादेवी 'मधु', पृ0- 18

2· शबरी-धनञ्जय अवस्थी - रचना 1981 ई0

आधुनिक नव्य मानवतावादी, कर्मवादी, गाँधीवादी चेतना के प्रभावस्वरूप शबरी का चरित्रांकन बाल-विवाह की विरोधी, अहिंसावादी व विद्रोही नारी के रूप में हुआ है, साथ ही उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों व मानवीय संवेदनाओं का भी सर्वथा मौलिक रूप में सहज अंकन हुआ है ।

इस रचना में शबरी अहिंसावादी नारी के रूप में वर्णित हुई है । शबरी परिवार में तथा समाज में निरीह पशुओं का बलि के नाम पर होने वाले वध का शबरी घोर विरोध करती है । वे यज्ञ हेतु दिये जाने वाले बलि के कृत्य को घृणित व क्रूरकर्म कहती हैं -

मूक वन्य पशुओं पर
घोर कुलिश वज्रपात् संघात
× × ×
पुण्य नहीं
पाप, यही
घृणित क्रूर कर्म है ।-1

आधुनिक युग में नव-जागरण आन्दोलनों व गाँधीवादी विचारधारा द्वारा समाज में व्याप्त बाल-विवाह आदि कुप्रथाओं के उन्मूलन का महत कार्य किया गया । नारी-जागरण आन्दोलन के फलस्वरूप नारियों में अपने स्वत्व व अस्तित्व के प्रति जागरूकता बढ़ी । स्वतन्त्र चेतना का उन्मेष हुआ । इस रचना में शबरी नव्य स्वतन्त्र चेतना से प्रभावित है । वह माता की शिक्षा को महत्त्व देते हुए बाल-विवाह से इन्कार कर देती है । उसे बाल-विवाह की बुराइयों को उजागर करने वाली माँ की शिक्षा याद आती हैं -

---

1· शबरी - धनंञ्जय अवस्थी, पृ० 14-15

कच्ची उमर का ब्याह
विपदायें भरता है
कटुतायें गढ़ता है
× × ×
कभी न इसे स्वीकारें बेटियाँ
सहनी ही क्यों न पड़े हेठियाँ
क्वाँरी ही जी लेना, अच्छा है ।-1

और शबरी इसी शिक्षा को अपने जीवन में कार्यरूप देने का दृढ़ निश्चय कर लेती है । वह कहती हैं -

मैं वही करूँगी -2

इस रचना में शबरी का चरित्रांकन पूर्ववती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में विद्रोही नारी के रूप में हुआ है । शबरी बाल्यावस्था में हिंसा एवं बाल-विवाह से विद्रोह करती हैं और घर त्याग देती हैं और अनजान लक्ष्य की ओर बढ़ जाती है । गृह-त्याग के बाद उसे अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता है, किन्तु वह हताश नहीं होती -

सहज सहानुभूति पा गयी
गुफाओं से
सहेलियाँ शिलाओं की
सुलझाती
उलझी आपदाओं को ।-3

अवस्थी जी ने शबरी के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों व संवेदनाओं का भी प्रथम बार सहज अंकन किया है । गृह परित्याग के बाद

1· शबरी - धनंञ्जय अवस्थी, पृ0 27-28

2· वही, वही, - 28

3· वही, वही, पृ0 19

बालिका शबरी को अछूत व निम्न जातीय होने के कारण आश्रम में स्थान नहीं मिलता, न ही अन्यत्र वह ठहर पाती है । उसे समाज के कठोर प्रश्न-बाण व बहिष्कार का सामना भी करना पड़ता है—

भीलनी व्यथा-विभोर
ढूँढती रही प्रवास
व्यर्थ हो गये प्रयास ।-1

अन्ततः वह मतंग ऋषि के आश्रम में जाती है तथा निःस्वार्थ सेवा से आश्रमवासियों की सेवा करके गुरू का हृदय परिवर्तन करने में समर्थ होती है । मतंग ऋषि बालिका शबरी को अपने आश्रम में आश्रय प्रदान करते हैं ।

इस रचना में प्रथम बार शबरी के अध्यात्मोन्मुख होने का कारण प्रदान किया गया है । बाल्यावस्था के बाद युवावस्था में कदम रखने पर, शबरी जीवन में स्वयं को एकाकी महसूस करने लगती है । शबरी के इस अन्तर्दन्द का चित्रण "शबरी" में प्रथम बार हुआ है -

यौवन झकझोर झोर
तोड़ तोड़ देता था
संयम की ग्रंथि, ग्रंथि
भरता प्रणयानुराग -2

किन्तु वह अपने इस अनुराग को भगवान राम के चरणों में समर्पित कर देती है । उन्हें आराध्य मानकर आपने जीवन का लक्ष्य नियत कर देती है ।

1· शबरी - धनंञ्जय अवस्थी, पृ0 50

2· वही, पृ0-53

शम्बूक

परम्परागत् रूप में रामकथाधृत रचनाओं में शम्बूक का चरित्र सर्वाधिक उपेक्षित रहा है । स्वयं पुरुषोत्तम राम द्वारा उसे शूद्रवर्ग का होते हुए भी तपस्या करने के कारण दण्डित किया जाता है, उसका वध करके । परम्परागत रूप में शम्बूक का चरित्र संक्षिप्त रूप में मात्र इतना ही वर्णित हुआ है कि शम्बूक शूद्र वर्ग का व्यक्ति है जो सवर्णो हेतु निर्धारित तपस्या के कार्य को करने का दुःस्साहस करता है, फलतः उसदेश के सम्राट राम द्वारा उसका वध कर दिया जाता है । "वाल्मीकि-रामायण" के उत्तर काण्ड में यही प्रसग वर्णित हुआ है ।-1 "रामचरित-मानस" में शम्बूक प्रसंग का वर्णन नहीं हुआ है, किन्तु "गीतावली" में तुलसीदास ने भी शम्बूक प्रसंग का उल्लेख किया है ।-2 इसके अतिरिक्त महाभारत आदि में भी शम्बूक-प्रसंग वर्णित हुआ है ।

आधुनिक युग में नव्य बौद्धिक तथा मानवतावादी चेतना के उन्मेष ने समाज से वर्ग-भेद व जातीय वैषम्य के उन्मूलन का महत कार्य किया । साहित्य में भी उपेक्षित व निम्न वर्गीय पात्रों के प्रति नवीन मानवीय संवेदना जाग्रत हुई । उनके प्रति नवीन न्यायात्मक दृष्टिकोण का उन्मेष हुआ । शम्बूक का चरित्रांकन भी इसी नव्य दृष्टिकोण से प्रभावित है ।

"रामचरित – चिन्तामणि" में शम्बूक का चरित्रांकन दृढ़ता से युक्त तपस्वी का है । स्वयं सम्राट राम के समझाने पर भी तथा वध करने की धमकी देने पर भी अपनी तपस्या से विरत नहीं होता अन्ततः राम द्वारा मारा जाता है ।

1· वाल्मीकि-रामायण - उत्तरकाण्ड

2· गीतावली- उत्तरकाण्ड - रामराज्य - पृ०-428

बहु प्रकार बुझाकर थके,
पर उसे तप से न हटा सके ।-1

"वैदेही-वनवास" में शम्बूक - प्रसंग का उल्लेख मात्र है ।

"रामराज्य" में बल्देव प्रसाद मिश्र ने शम्बूक-प्रसंग के औचित्य को ठहराने का प्रयास किया है । इसमें शम्बूक को सात्विकता से दूर तथा स्वर्ग जीतने की अभिलाषा युक्त मानव के रूप में अंकित किया गया है -

उल्टा तप शम्बूक तपी का सात्विकता से दूर बहुत था,
शुद्र देह से स्वर्ग जीत ले, इस इच्छा से जो आप्लुत था ।-2

यहाँ राम के चरित्रोन्नयन हेतु शम्बूक का चरित्र सात्विकता से दूर मानव के रूप में निरूपित किया गया है ।

रामकुमार वर्मा जी ने शम्बूक -प्रसंग में राम द्वारा शम्बूक वध के अनौचित्य को स्पष्टतः स्वीकार किया है । उन्होंने उत्तरायण में इस प्रसंग का राम की उदात्त गरिमा के प्रतिकूल मानते हुए इसे प्रक्षिप्त माना है । डॉ0 आशा भारती नेभी शम्बूक-वध के प्रसंग को "राम के गरिमामय व्यक्तित्व के सम्मुख एक प्रश्न-चिन्ह"-3 की संज्ञा दी है ।

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में जगदीश गुप्त कृत "शम्बूक" का विशिष्ट महत्त्व है । आधुनिक युग की बौद्धिक चेतना, तार्किकता परिवर्तित नैतिक मान्यताओं के परिणाम स्वरूप इस रचना में शम्बूक का चरित्र नयी दृष्टिकोण से वर्णित हुआ है । गुप्त जी ने शम्बूक को भूमिपुत्र के रूप में लेकर उसके द्वारा सामाजिक वर्ण-भेद व जातीय वैषम्य का विरोध कराया

1· रामचरित चिन्तामणि-रामचरित उपाध्याय-पृ0 365
2· उत्तरायण-रामकुमार वर्मा, पृ0 13
3· रामकाव्य परम्परा विकास और प्रभाव - डॉ0 आशा भारती, पृ0 82

है । जगदीश गुप्त के शब्दों में_"नये युग के अनुरूप अधुनातन मनोभूमि पर राम के कर्मशील लौकिक राजसी चरित्र को शम्बूक के माध्यम से प्रश्नांकित कराते हुए प्रस्तुत करने की चेष्टा हुई है ---- इससे शम्बूक को एक प्रखर एवं जागरूक व्यक्तित्व मिल सका है ।-1 शम्बूक इस रचना में वर्ण-व्यवस्था के प्रति विद्रोही, प्रजातंत्र के समर्थक, मानवतावादी, समतावादी तथा बौद्धिक व तर्कशील मानव के रूप में निरूपित हुआ है, किन्तु उसका यह रूप प्रत्यक्षतः सामने न आकर, मानसिक-संवाद के स्तर पर उभरा है ।

इस प्रबन्ध-कृति में शम्बूक ऐसी वर्ण व्यवस्था की भर्त्सना करता है जो कि वर्ण भेद की कलुषित नीति के कारण तपस्या जैसे सत्कर्म को भी अपराध की संज्ञा दे देता है । यहाँ शम्बूक का चरित्र-निरूपण आधुनिक मानवतावादी व बौद्धिक चेतना से प्रभावित है । शम्बूक राम से उनकी जातिभेद की नीतियों की भर्त्सना करता हुआ, उस व्यवस्था के प्रति विद्रोह प्रकट करता है, जो जातिवाद पर टिकी हो -

जो व्यवस्था व्यक्ति के सत्कर्म को भी, मान लें अपराध,
जो व्यवस्था वर्ग-सीमित स्वार्थ से, हो ग्रस्त,
वह विषम घातक व्यवस्था शीघ्र ही हो अस्त ।-2

इस रचना में शम्बूक प्रजातन्त्र के समर्थक के रूप में निरूपित हुआ है । वह उसे लोकनायक मानता है जो प्रजा के संवेदना का मर्म समझने वाला, धर्म और अधर्म को समझने वाला तथा कर्म-अकर्म की अर्थवत्ता समझने वाला हो। यहाँ वह राम के लोकनायक छवि पर प्रश्न-चिन्ह ही लगाता है । शम्बूक कहता है -

लोकनायक वही, जो विश्वास अर्जित कर सके
प्रत्येक का, और जो सारी प्रजा के चित्त का प्रतिरूप हो ।-3

---

1. शम्बूक-जगदीश गुप्त, भूमिका में कवि, पृ0 9

2. वही, पृ0 45

3. वही, पृ0 48

जगदीश गुप्त जी ने शम्बूक पर आधुनिक बौद्धिक तथा समतावादी चरित्र का आरोपण किया है । परम्परागत रूप में शम्बूक शूद्र होते हुए, सवर्णों के लिए नियत तपस्या का कार्य करने के कारण राम द्वारा मारा जाता है । "शम्बूक" में इसी विषमता के प्रति मौलिक रूप में विद्रोह प्रकट किया गया है । जन्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था का विरोध करते हुए शम्बूक सभी मानवों को पृथ्वी पुत्र मानता है । जब सभी मानव एक ही पृथ्वी की सन्तान है, तब वर्ग-वैषम्य क्यों ? वह कहता है -

> सभी पृथ्वी-पुत्र हैं तब जन्म से
> क्यों भेद माना जाय
> जन्मजात समानता के तथ्य पर
> क्यों खेद माना जाय
> × × ×
> जड़ समाज मनुष्य की रचना नहीं है ।-1

भारतीय समाज में तपस्या को विशिष्ट महत्ता व सम्मान मिलता रहा है । किन्तु यही तपस्या जब शम्बूक ने करनी चाही तो उसका वध कर दिया गया, कारण वह शूद्र था । राम द्वारा किये इस कृत्य के सम्मुख आधुनिक युग में नवीन प्रश्न-चिह्न लगा है । शम्बूक के चरित्रांकन पर इस नवीन जागरूकता का प्रभाव पड़ा है । वह राम के सम्मुख, उनके कृत्य पर प्रश्नचिन्ह लगाता हुआ, नवीन प्रश्न प्रस्तुत करता है । वह राम से कहता है -

> मैं तुम्ही से पूछता हूँ राम ।
> वही तप दुष्कर्म कैसे हो गया ?
> वही कृत्यअधर्म कैसे हो गया ?
> वही तप अपराध कैसे हो गया ?
> राजदण्ड निर्बाध कैसे हो गया ?-2

1· शम्बूक - जगदीश गुप्त, पृ0 49

2· वही, पृ0 51

इस रचना में मौलिक रूप में शम्बूक राम के द्वारा भ्रातृद्रोही विभीषण को शरण देने के कृत्य पर प्रश्न-चिन्ह लगाता है । शम्बूक का यह चरित्राकन सर्वथा मौलिक तथा बौद्धिक तथा तार्किक चेतना से प्रभावित है । यही नहीं वह सीता निष्कासन पर भी आक्षेप करता है । राम की नीतिवादिता पर आक्षेप लगाते हुए वह कहता है -

ली परीक्षा अग्नि की, फिर किया अस्वीकार ।
कब मिला अवसर उन्हें जो कर सके प्रतिवादी
स्नेह था तो छोड़ देते, राम तुम भी राज्य
क्यों हुई केवल तुम्हारे हेतु सीता त्याज्य ।-1

इस प्रबन्ध कृति में शम्बूक का चरित्र-निरूपण गाँधीवाद से प्रभावित है । शम्बूक ऐसे समाज की कल्पना करता है जिसमें मानव की महत्ता उसके जाति से नहीं, अपितु उसके कर्मो से आंकी जाय। समाज में सभी को समान रूप से अधिकार प्राप्त हो—

वर्ण से होगा नहीं अब त्राण, कर्म से ही मनुज का कल्याण,
जन्म से निश्चित न होगा वर्ण, वर्ग तक सीमित न होगा स्वर्ण
कर्म से ही श्रेष्ठता अधिकार, कर्म सबके लिए सम आधार ।-2

शम्बूक का चरित्रांकन स्वाभिमानी मानव के रूप में हुआ है । शम्बूक मानव का सर्वश्रेष्ठ गुण उसका स्वाभिमान मानता है । स्वाभिमान रहित मानव को वह श्वान का संज्ञा देता है—

स्वाभिमानी व्यक्ति ही इन्सान, स्वाभिमान रहित मनुज है श्वान
दे सको तो दो उसे यह ज्ञान ।-3

इस रचना में शम्बूक पर प्रजातान्त्रिक व बौद्धिक व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है । वह मानव में समता के साथ-साथ ही पृथ्वी पर नये रूप में भूमि-पुत्रों के शासन का भी इच्छुक है । वह कहता है -

सहज समता हो सभी में व्याप्त
व्यवस्था के हेतु यह पर्याप्त
भूमि पर फिर भूमि की सन्तान
करे शासन श्रम बने श्रीमान्।-4

1· शम्बूक- जगदीश प्रसाद गुप्त पृ0 57
2· वही, पृ0 62
3· वही, पृ0 62
4· वही, पृ0 68

रावण

ब्राह्मण कुलोत्पन्न रावण विद्वान, राजनीतिज्ञ होते हुए भी रामकथा परम्परा में खल-पात्र के रूप में ही चित्रित हैं । "वाल्मीकि-रामायण" में वह क्रूरकर्मा,दुरात्मा व दारूणकार आदि कहा गया है । "रामचरित मानस" में भी रावण निम्न चरित्र के रूप में वर्णित हुआ है । वह अहंकारी, लोभी व हिंसावृत्ति के साथ-साथ विलासी भी है ।-2

आधुनिक युग में नव्य मानवतावादी तथा बौद्धिक चेतना व वैज्ञानिक दृष्टिकोण के उन्मेष के कारण परम्परागत् रूप में उपेक्षित व दलित पात्रों के साथ-साथ परम्परागत् रूप में खलपात्र के रूप में वर्णित पात्रों के प्रति भी नवीन मानवीय संवेदना जाग्रत हुई । खलपात्रों के कार्यों के औचित्य-अनौचित्य को नवीन तार्किक व बौद्धिक धरातल पर जाँच-परखा गया, नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से निरूपित किया गया । डॉ0 प्रेमचन्द महेश्वरी के शब्दों में - "एक लक्ष्य लगभग सभी आधुनिक काव्यों में नवयुग की वैज्ञानिक चेतना के अनुसार प्रस्तुत हुआ है और वह है रावण के अतिप्राकृत अमानवीय स्वरूप का मानवीकरण तथा बौद्धिकीकरण ।"-3 आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में रावण से जुड़े उन सन्दर्भों की, जो उसे निम्न व हेय बनाते हैं, उनका पुनः नव्य तार्किक पुनर्मूल्याकंन हुआ ।

रामचरित उपाध्यायकृत "रामचरित-चिन्तामणि" रामकथाधृत रचनाओं में प्रथम कड़ी है । इसमें रावण परम्परागत रूप में ही कामी, नारी अपहर्ता, अहंकारी व छली के रूप में निरूपित हुआ है । कुछ सन्दर्भो में उसका चरित्र चित्रण मौलिक रूप में भी दृष्टिगत होता है ।

1· वाल्मीकि रामायण-लंकाकाण्ड - 2,6,

2· रामचरित मानस-लंकाकाण्ड पृ0 23

3· हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप विकास-प्रेमचन्द महेश्वरी, पृ0 209

"रामचरित-चिन्तामणि" का रावण परम्परागत् रूप में ही सीता के प्रति आशक्त चरित्र के रूप में निरूपित हुआ है । "मानस" में रावण सीता से केवल एक बार देखने का आग्रह करता है । "रामचरित-चिन्तामणि" में भी रावण अपनी दुर्बलता प्रकट करते हुए उन्हें अपने धन, जन, बल व सर्वस्व न्यौछावर कर देने का लालच अपने वश में करना चाहता है । यहाँ उसकी चारित्रिक निम्नता ही प्रकट होती है ।

परम्परागत् रूप में विभीषण द्वारा सद्ज्ञान दिये जाने पर रावण उसे लात मारकर राज दरबार से निकाल देता है । "रामचरित-चिन्तामणि" में रावण का चरित्रांकन इस सन्दर्भ में मौलिक रूप में हुआ है । रावण अयश के डर से तथा अनुज होने के कारण विभीषण को मारता नहीं किन्तु राम का समर्थनकर्ता मानकर उसे राजदरबार से बहिष्कृत कर देता है -

अनुज मानकर तुझे क्षमा फिर भी करता हूँ ।
नहीं मारता दुष्ट अयश से मैं डरता हूँ ।
कुल-पांसन तू शत्रु है, यहाँ न तेरा काम है ।
यदि मुझ से भी अधिकतर तुझको प्यारा राम है ।-1

इस रचना में रावण का चरित्र पिता के रूप में कोमल भावनाओं व संवेदनाओं से युक्त मानव के रूप में चित्रित हुआ है । घननाद के मृत्यु के समय रावण की हृदयगत दुर्बलता प्रकट होती है । घननाद की मृत्यु से व्यथित वह एक सामान्य मानव सदृश रो पड़ता है—

तेरी माता सुता और वनिता रोती है,
उर ताड़न के साथ अश्रु से तन धोती हैं ।
दौड़ा आ जा पुत्र तनिक चुप उन्हें करा जा,
कहाँ छिपा है । बोल, अरे आ धैर्य धरा जा ।-2

1· रामचरित-चिन्तामणि-रामचरित उपाध्याय, पृ0 256

2· वही, पृ0 310

मैथिलीशरण गुप्त कृत "साकेत" में राम-रावण युद्ध को आर्यो-अनार्यो के संघर्ष से भी जोड़ा गया है । फलतः रावण का चरित्रांकन परम्परागत् रूप से विलग नवीन धरातल पर हुआ है । रावण को तत्कालीन विदेशी शासन का भी प्रतीक माना गया है, इसी कारण उसे "कौणप-कुल" का भी कहा गया है । रावण के दस सिर की परम्परागत् कल्पना को "साकेत" में नवीन रूप दिया गया है, उसे दस इन्द्रियों का प्रतीक माना गया है ।

"साकेत" में मौलिक रूप में रावण के कामी व विलासी चरित्र का निषेध हुआ है । इस रचना में रावण द्वारा सीता का अपहरण काम-वासना के कारण नहीं होता अपितु विशुद्ध बैर-भाव व प्रतिशोध वृत्ति के कारण किया जाता है । अपनी बहन शूर्पणखा के अपमान का प्रतिशोध वह सीता-अपहरण करके लेता है -

> शूर्पणखा की बातें सुनकर क्षुब्ध हुआ रावण मानी,
> बैर शुद्धि के मिष उस खल ने सीता हरने की ठानी ।-1

"कौशल-किशोर" में बल्देव प्रसाद मिश्र जी ने रावण का चरित्र पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है । इस रचना में रावण विदेशी आक्रान्ता के रूप में निरूपित हुआ है । स्वदेशी राजाओं की दुर्बलता व निष्क्रियता के कारण ही भारत पर विदेशियों का आधिपत्य स्थापित हुआ था । "कौशल-किशोर" में रावण विदेशी आक्रान्ता का ही प्रतीक बनकर उभरा है -

> रावण ने पाया सुयोग, फैले उसके सब ओर लोग ।
> स्वाधीन देश यों पराधीन सा बना, हुआ दुख दग्ध हीन ।-2

---

1. साकेत - पृ0 208

2. कौशल-किशोर - बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 213

परम्परागत् रूप में रावण के राक्षसीय दुष्प्रवृत्तियों का, विषम व कठोर कुकृत्यों का अंकन ही प्राप्त होता है । भगवान राम दुष्टों व राक्षसों के संहार हेतु अवतार लेते हैं, अतः रावण में राक्षसी तत्वों व दुष्ट स्वभाव का अंकन स्वाभाविक भी था । आधुनिक युग के बौद्धिक व तार्किक विचारधारा ने जहाँ राम का चरित्र मानवीय रूप में निरूपित किया, वहीं खल पात्रों के चरित्र में भी नवीनता का समावेश किया गया है । "कौशल-किशोर" में रावण को मानवीय रूप में अंकित करने के प्रयास के कारण ही उसे साम्राज्यवादी-विदेशी आक्रान्ता के रूप में निरूपित किया गया है ।

'नवीन' कृत "उर्मिला" में रावण परम्परागत् रूप से परे साम्राज्यवादी नास्तिक तथा स्वत्व पर बल देने वाला, अपने कार्यों के प्रतिदृढ़ व स्वाभिमानी मानव के रूप में निरूपित हुआ है । इसके पीछे कवि का उद्देश्य रावण का सहज विश्वसनीय व आधुनिक सन्दर्भों के अनुकूल चित्रण का ही परिलक्षित होता है ।

इस रचना में रावण भौतिकतावादी, आर्यसभ्यता का विरोधी होने के साथ-साथ साम्राज्यवादी शासक के रूप में भी निरूपित हुआ है । युद्ध तथा वैभव जनित विलास उसकी प्रवृत्ति है—

> भू-अर्जन, पर-शासन, मारण, रण, धन, सुख, उपभोग, विलास,
> इतने ही तक, हन्त रह गया, सीमित उनका मनोविकास ।-1

"ऊर्म्मिला" में रावण के चरित्र का मौलिक रूप है, उसका निजत्व पर बल देने वाला रूप । वह स्वयं के रावणवाद के प्रति गहरी दृढ़ता से युक्त, स्वाभिमानी है । वह मृत्यु के समय भी अपने रावणवाद को चिरस्थायी मानता है । वह लक्ष्मण से कहता है -

---

1· ऊर्म्मिला - बालकृष्ण शर्मा नवीन, पृ0- 541

रावणवाद चिरस्थायी है, वह है सृष्टि तत्व लक्ष्मण,
धर्म-भावना-में मत भूलों, पहचानो निजत्व लक्ष्मण ।-1

'नवीन' जी ने रावण का चरित्रांकन जप- तप के विरोधी मानव के रूप में किया है । परम्परागत् रूप में परम शिव भक्त तथा तपस्वी रावण का चरित्र "ऊर्म्मिला" में सर्वथा मौलिक है । अन्तिम समय राजनीति की शिक्षा हेतु आये लक्ष्मण को रावण जप-तप की निरर्थकता की ही शिक्षा देता है -

रावण ने भी खेले है ये, सब जप-तप के खेल लखन,
पर सच कहता हूँ पाई है, सब बातें बेमेल लखन ।।-2

"वैदेही-वनवास" व "साकेत-सन्त" में रावण का चरित्र नाम मात्र के लिए उल्लिखित हुआ है ।

"अशोक-वन" में गोकुल प्रसाद शर्मा ने रावण का चरित्र निरूपण भौतिकतावादी व कर्मवादी के रूप में हुआ है । परम्परागत् रूप में उसके शिवभक्त चरित्र का भी अंकन हुआ है ।

"अशोक वन" में रावण का चरित्र पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक उदात्त व मानवीय रूप में निरूपित हुआ है । वह अपनी बहन शूर्पणखा के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए ही सीता का अपहरण करता है| इसके पीछे उसका दूसरा उद्देश्य यह भी होता है कि वह व्यर्थ के रक्तपात से बचना चाहता है । रावण का यह चरित्र सर्वथा मौलिक है—

प्रतिहिंसा का ही प्रयोग था माया मृग की रचना,
बने जहाँ तक अच्छा ही है रक्तपात से बचना ।-3

1· ऊर्म्मिला- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', पृ0- 544

2· वही, पृ0- 544

3· अशोक वन-गोकुल प्रसाद शर्मा, पृ0- 34

"अशोक-वन" में रावण के परम्परागत् कामी रूप का निषेध हुआ है । इस रचना में मौलिक रूप में रावण सीता पर श्रद्धा रखने वाला परम श्रद्धालु है । अपनी इस श्रद्धा को सीता के समक्ष प्रकट करता हुआ कहता है -

रूप नहीं, यह हृदय चाहता, जिसे न पहले देखा,
बहुत खोजने पर भी मुझको मिला न जिसका लेखा ।-1

इस रचना में रावण के पितृ-हृदय का भी सहज अंकन हुआ है । मेघनाद की मृत्यु के बाद वह फूट-फूट कर रोता है । "रामचरित-चिन्तामणि" व "साकेत" में भी उसके संवेदनशील पितृ रूप का अंकन प्राप्त होता है । "अशोक वन" में रावण का यह रूप अधिक मार्मिक है -

रावण, रुदन कराने वाला, फूट-फूट कर था रोता,
सती प्रमीला का सर्वस्व सुवर्ण धरा पर था सोता ।-2

आधुनिक युग में नव्य मानवतावादी तथा बौद्धिक चेतना के प्रभाव-स्वरूप परम्परागत् खल पात्रों के प्रति नवीन मानवीय संवेदना का उन्मेष हुआ । फलतः खलपात्रों के चरित्रोन्नयन व परिष्कार हेतु उन्हें नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया । हरिदयालु सिंह कृत "रावण-महाकाव्य" इसी क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है

"रावण महाकाव्य" रावण के चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध-कृति है । इस रचना में रावण को नायक रूप में प्रस्तुत किया गया है । हरदयालु सिंह के शब्दों में - "इसके लिखने की प्रेरणा मुझे श्री माइकेल मधुसूदन के "मेघनाद वध" से मिली । गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने "रामचरित मानस" में राक्षस-राक्षसियों का जैसा वीभत्स चित्र अंकित किया है, हम उससे सहमत नहीं है ।"-3 इस रचना में रावण उदात्त मानवीय गुणों से युक्त, आदर्श पात्र के रूप में वर्णित हुआ है ।

1· अशोक-वन, पृ0 39
2· वही, पृ0 128
3· रावण महाकाव्य-हरदयालु सिंह भूमिका में पृ0 1

इस रचना में रावण बाल्यावस्था से ही महान धनुर्धर है, वह एक साथ दस धनुष चलाने में समर्थ है । यहाँ रावण के परम्परागत बीस भुजा वाले स्वरूप को नया प्रतीक दिया गया है । वह परम्परागत् रूप में ही अपनी तपस्या से देवों को प्रसन्न कर अतुलित शक्तियाँ अर्जित करता है । देवताओं के प्रति उसकी बैर-भावना को मौलिक अर्थवत्ता प्रदान की गयी है । रावण देवताओं से आकस्मिक बैर संधान नहीं करता, नहीं वह उन्हें सताना ही चाहता है । वह अपने नाना के मृत्यु का प्रतिशोध लेनें के लिए ही देवताओं के कूटनीति का सम्यक् उत्तर देता है -

लाग्यो करन हिय मांहि विचारा, नानहिं समर विष्णु-सहारा,
देवन मिलि उनको उकसायो, अरू अति प्रबल बैर बधवाये,
देवहि सब आपत्ति के कारन, इन्हीं को अब करों संहारन ।।-1

"साकेत" व "अशोक-वन" (गोकुल प्रसाद शर्मा) की ही भाँति "रावण-महाकाव्य" में भी रावण द्वारा सीता का अपहरण प्रतिशोध की भावना के कारण किया जाता है । विश्व विजेता रावण अपनी बहन के अपमान का बदला लेने के लिए ही सीता को अपहृत करता है । यहाँ उसका कूटनीतिक रूप भी दृष्टव्य है । स्वयं कवि के शब्दों में - "रावण ने सीता-हरण तो अवश्य किया था, परन्तु उसे विशुद्ध बैर-प्रतिशोधन की दृष्टि से किया था, किसी कुत्सित भावना-पूर्ति के लिए नहीं ।"-2 रावण राम को भी स्वयं के समान ही कष्ट देना चाहता है -

करि विरूपा भगिनि को इन कियो जिमि अपकार,
तैसे ही हो करों इनको, हरन के प्रियदार ।
जाइहैं जब अवधपुर में पूँछिहैं कुसलात,
फैलि जैहें जगत में तिय अपहरन की बात ।
होयगो अपमान निन्दा, करे सकल समाज ।-3

---

1. रावण-महाकाव्य-हरदयालु सिंह, पृ0-128

2. वही, भूमिका में कवि, पृ0 2

3. वही, पृ0 156

इस रचना में नव्य आदर्शवादी चेतना का प्रभाव भी रावण के चरित्रांकन पर पड़ा है । "अशोक-वन" में रावण व्यर्थ का रक्तपात बचाने के उद्देश्य से सीता-हरण करके राम को दण्ड देना चाहता है । "रावण-महाकाव्य" में उसका यह रूप नीतिवादी रूप में रूपान्तरित हो गया है । वह राम को असहाय देख कर उन पर पहले आक्रमण करना नीति-सम्मत नहीं मानता । सुरेशचन्द्र "निर्मल" के शब्दों में - "रावण के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है उसका नीतिवान होना सीता हरण से पूर्व वह नीतिपालन करने के कारण ही राम से प्रत्यक्ष युद्ध नहीं करता ।-1 रावण का नीतिवादी रूप "रावण-महाकाव्य" की मौलिकता है ।

"रावण-महाकाव्य" में रावण नीतिवान होने के साथ-साथ दृढ़-चरित्र भी है । उसका यह रूप "रावण-महाकाव्य" में नवीन रूप में निरूपित हुआ है । परम्परागत् रूप से परे वह सीता के प्रति शिष्ट व मर्यादापूर्ण है । वह सीता को राजबन्दी के रूप में रखता है तथा उनके सम्मान योग्य सुविधाओं की व्यवस्था करता है –

ल्याइके तेहि लंक में निज राजबन्दी कीन्ह,
तासु सुख की सब व्यवस्था करी लंक नरेश
तथा पूछत रहयो वाको कुसल-वृत्त हमेस ।-2

इस रचना में रावण के चरित्र की उदात्तता है, उसके चरित्र की उदारता । वह शत्रु के प्रति भी उदार व सहृदय है । लक्ष्मण को शक्ति लगने पर वह विपक्षी होते हुए भी, लक्ष्मण के उपचार हेतु अपने राजवैद्य सुषेन को हनुमान के साथ भेज देता है । रावण के इस चरित्र का अंकन "रावण-महाकाव्य" में मौलिक रूप में हुआ है –

1· हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में रावण-सुरेश चन्द्र 'निर्मल', पृ0-170

2· रावण-महाकाव्य- पृ0 156

आये वैद्य लकपति पासा, कियो वचन यहि भाँति प्रकासा ।
भेज्यो दूत राम मोहि ल्यावन । "तुरतहिं जाहु तहाँ" कह रावन ।-1

यही नहीं वह अपने अधिकार-क्षेत्र में निःशस्त्र व मूर्च्छित पड़े लक्ष्मण को प्राणदान देकर भी अपनी आदर्श व उदात्त वीरता का परिचय देता है । यह चरित्र उसे विशिष्ट चारित्रिक उत्कर्ष प्रदान करता है—

रामानुज मूर्च्छित गिरे तुरत गेह के द्वार,
रावनि बाहर जान हित दीन्ह्यो खोलि किवार ।-2

"रामराज्य" में रावण आधुनिक-युग के साम्राज्य वाद व भौतिकतावाद के प्रतीक रूप में निरूपित हुआ है । साथ ही उनके परम्परागत् चरित्र को नवीन अर्थवत्ता प्रदान की गई है । "रामराज्य" में रावण का चरित्र साम्राज्यवादी, भौतिकतावादी व भैरवमत के समर्थक के रूप में अंकित हुआ है । रावण अपने साम्राज्य-विस्तारक आकांक्षा की पूर्ति हेतु समस्त विश्व पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहता है । यही नहीं विज्ञान के क्षेत्र में भी वह अपना वर्चस्व स्थापित कर लेता है, विज्ञान के माध्यम से प्रकृति पर भी वह अधिकार लेता है -

उस युग के साम्राज्यवाद का मान-विद्रावण अवतार,
रावण लंका अधिपति बनकर विचल किये था सब संसार ।
परम चतुर था और साहसी उसके भेद भाष्य विख्यात,
उस विज्ञानी के वश में थे प्रकृति देव सेवक दिनरात ।-3

"रामराज्य" में रावण मौलिक रूप में निरंकुश साम्राज्यवादी के रूप में वर्णित हुआ है । वह अपने पड़ोसी देशों को उपनिवेश बनाकर उन पर अधिकार करने का इच्छुक है । इस कृत्य के लिए वह छलबल सभी का सहारा लेता है । वह अपने देश की सीमा सुरक्षित रखने के लिए बालि से समझौता कर लेता है, किन्तु स्वयं भारत पर अधिकार करने का इच्छुक है -

---

1· रावण महाकाव्य- पृ0 171

2· वही, पृ0 173

3.रामराज्य-बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0 67

चाह रहा था वह कि भारत भू उसका उपनिवेश बन जाय,
इसलिए तो रच रक्खे थे उसने छल-बल सभी उपाय ।
× × ×
किन्तु बालि से रची संधि वह उभय सुरक्षा का प्रण हो,
अनजाने ही उस पर सहसा भारत का आक्रमण न हो ।-1

"रामराज्य" में रावण का चरित्र निरूपण मौलिक रूप में आतंकवाद के प्रसारक रूप में हुआ है । रावण भारत में आतंकवाद का बीज बोकर अपने संस्कृति व प्रभुत्व की स्थापना करना चाहता है । रावण अपने गुप्त अनुचरों को भारत में आधिपत्य स्थापित करने तथा अनार्य संस्कृति के प्रचार-प्रसार व स्थापना के उद्देश्य से भेजता है । वह उन्हें 'भैरव' बनाकर नर-भक्षण तक के कुकृत्य सिखाता है -

उस रावण के उद्तगण थे । खर दूषण से बलशाली ।
जिनने थी चुपचाप यहाँ पर बहु अनार्य सेना पाली ।
नर-भक्षण उनको सिखलाया देकर माया मंत्र महान ।
और कहा भैरव बनना ही है, जीवन का तंत्र महान ।।-2

सुरेश चन्द्र 'निर्मल' "रामराज्य" के रावण के सन्दर्भ में लिखते हैं -"तमः प्रधानता के कारण "रामराज्य" का रावण मानव तो क्या केवल अधमत्व का प्रतीक बनकर रह गया है । चरित्र विकास की दृष्टि से वह नगण्य है ।"-3 किन्तु नवीन युगीन सन्दर्भो से जोड़ा जाय तो रावण का चरित्र उन विदेशी शक्तियों के प्रतीक रूप में भी अंकित हुआ है जिन्होंने भारत में उपनिवेश स्थापित किया ।

1· रामराज्य-बल्देव प्रसाद मिश्र, पृ0- 68

2· वही, पृ0 67

3· हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में रावण — पृ0-175

हरिशंकर सिन्हा कृत "माण्डवी" में रावण के चरित्रोन्नयन हेतु उसे नवीन रूप में चरित्रांकित किया गया है। पूर्ववर्ती अशोक-वन व "रावण-महाकाव्य" की भाँति "माण्डवी" में भी रावण अपनी बहन के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए ही सीता का अपहरण करता है । किन्तु वह अपनी उदात्तता का परिचय देते हुए, द्विज रूप के निर्वाह हेतु राम को विजय का आर्शीवाद भी देता है । कवि के शब्दों में -"सेतुबन्ध रामेश्वर में शिव-स्थापना के लिये रावण का सीता को लेकर आना, दक्षिण की एक किंवदन्ती के आधार पर लिखा गया है । यह उसकी महत्ता, ब्राह्मणों के शील तथा सीमित शत्रुता का एक ज्वलन्त उदाहरण है, जो हर मानव के लिए आदर्श है ।"-1

"माण्डवी" में रावण सीता का अपहरण अपनी बहन के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए "जैसे को तैसा" सिद्धान्त के अनुरूप करता है । यहाँ उसके स्वाभिमान व आदर्श भ्रातृत्व ही मुखर हुआ है –

धधक पड़ी वह द्वेष अग्नि तब, सबने कहा, "हमें आज्ञा दो ।
रावण ने "जैसे को तैसा" का सिद्धान्त उन्हें समझाया ।-2

इस रचना में रावण मौलिक रूप में आदर्श ब्राह्मण के रूप में निरूपित हुआ है । पूर्ववर्ती रचनाओं में रावण का यह रूप नहीं प्राप्त होता । रावण राम द्वारा शिव-पूजन व रामेश्वरम् स्थापना में द्विज बनकर उनका कार्य सम्पन्न कराता है, साथ ही उन्हें विजयी होने का आशीर्वाद भी दे डालता है । यह उसके विशाल हृदय व द्विजत्व के उदात्तता का ही द्योतक है -

यद्यपि शत्रु, हुआ तब शील से विनत रावण भी सुरत्रास जो,
विजय वाहक राम अतः बनो, सुफल आशिष ब्राह्मण की सदा ।-3

1· माण्डवी-हरिशंकर सिन्हा, भूमिका में, पृ0-7

2· वही, पृ0-183

3· वही, पृ0-204

"माण्डवी" में रावण चारित्रिक-दृढ़ता से युक्त व्यक्तित्व के रूप में चरित्रांकित हुआ है । वह सीता का अपहरण अवश्य करता है, किन्तु कभी भी उनके प्रति मर्यादारहित नहीं होता । स्वयं सीता उसके इस चारित्रिक दृढ़ता की प्रशंसा करती है -

बहुत हीन फिर भी न कहूँगी, शिष्ट दुष्टता की मर्यादा,
कभी उल्लघंन किया न उसने, मिलती मेरी राख अन्यथा ।-1

रघुवीर शरण 'मित्र'कृत "भूमिजा" में रावण चरित्र सर्वथा नवीन रूप में चित्रित हुआ है । रावण के चरित्र पर सीता-भक्त रूप काआरोपण हुआ है । इस रचना में रावण का चरित्र प्रत्यक्षतः प्रकट नहीं होता, प्रत्युत मरणोपरान्त रावण की आत्मा के माध्यम से उसका चरित्र उभरता है । "भूमिजा" में रावण के सन्दर्भ में यह नवीन प्रयोग है । यहाँ रावण के परम्परागत् रूप से परे नवीन रूप में अंकित करके उसके चरित्रोन्नयन का ही प्रयास दृष्टिगत होता है । डॉ0 बनवारी लाल शर्मा के शब्दों में- "प्रस्तुत कृति में कवि ने सर्वत्र सीता के प्रति रावण के कृत्यों को उचित बताने का प्रयास किया है । और इसी में कृति की नूतनता है ।"-2 इस रचना में मौलिक रूप में रावण के संवेदनशील रूप का अंकन हुआ है ।

"भूमिजा" में रावण का चरित्रांकन आदर्श गुरू-भक्त व शिव भक्त के रूप में हुआ है । सीता-स्वयंवर में रावण शिव के धनुष को तोड़ने में समर्थ था । किन्तु वह शिव-धनुष का खंडित नहीं करता क्योंकि यह उसके गुरू व शिव का धनुष था । यहाँ वह अपने आराध्य व गुरू की मर्यादा की रक्षा करता है -

धनुष तोड़कर विजय प्राप्त कर, सीता ला सकता था
× × ×
किन्तु धनुष शिव का था, गुरू का, गौरव कैसे ढाता ।-3

1· माण्डवी हरिशंकर सिन्हा, भूमिका में, पृ0-221

2· स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध-काव्य-बनवारी लाल शर्मा, पृ0-125

3· भूमिजा-रघुवीर शरण मित्र, पृ0-20

इस रचना में नव्य रूप में रावण का सीता के प्रति भावुक व प्रेमी-चरित्र के रूप में अंकन हुआ है । इसके साथ ही उसके चारित्रिक दृढ़ता का भी अंकन हुआ है । रावण सीता के प्रति असीम प्रेम भाव के कारण ही राम से स्वयं पराजित होता है, किन्तु उसका प्रेम कभी मर्यादाहीन नहीं होता । वह अन्त समय सीता का कभी स्पर्श तक नहीं करता । वह कहता है -

तेरे लिए मुकुट मिटाकर, रामचन्द्र से हारा,
सीता से था प्यार, राज्य कब था रावण को प्यारा ।
किन्तु प्यार के लिये रूप को मैंने नहीं जलाया ।
मर गया, मगर वैदेही तुझे न हाथ लगाया ।-1

"भूमिजा" में भी "माण्डवी" के सदृश रामेश्वरम् स्थापना के समय, रावण द्विज रूप में राम के कार्यो को सम्पन्न कराकर, उन्हें विजय का आशीर्वाद प्रदान करता है। किन्तु इस रचना में रावण यह कार्य सीता के प्रति गहन प्रेम के कारण करता है -

बना पुरोहित रामचन्द्र का, जय का वर दे आया ।
अपनी मृत्यु विजय रघुवर की रावण शिव से लाया ।-2

रावण के चरित्र का उदात्त पक्ष है - उसका सर्वथा निरपेक्ष रूप । रावण अन्याय व अधर्म करने वाले किसी भी व्यक्ति को वह सहन नहीं कर सकता, चाहे वह उसकी अपनी बहन ही क्यों न हो । रावण के इस रूप को निरूपण "भूमिजा" में मौलिक रूप में हुआ है । वह कहता है कि कोई भी वीर अपनी बहन का अपमान नहीं सह सकता -

अगर कैदकर शूर्पणखा को, राम सामने आते,
मेरे हाथों दुर्मति का शीश कटा वे पाते ।
भगिनी का अपमान किसी से, वीर नहीं सह सकता
नाक कटाये, शीश न काटे, क्या यह जग कह सकता ।-3

1· भूमिजा - रघुवीर शरण मित्र, पृ0-20

2· वही, पृ0-22

3- वही, पृ0-25

शूर्पणखा

भारतीय वाङ्मय में रामकथा के प्रतिपक्षी नारी चरित्रों में शूर्पणखा का चरित्र सर्वाधिक निकृष्ट रूप में वर्णित हुआ है । वाल्मीकि-रामायण के अरण्यकाण्ड में वर्णित है कि राम के टाल देने पर शूर्पणखा लक्ष्मण से प्रणय-याचना करती है, फिर उनके भी टालने पर सीता पर आक्रमण कर देती है । इससे क्षुब्धलक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा का नाक व कान काट लिया जाता है ।-1 "अग्नि-पुराण" में भी शूर्पणखा का चरित्र लगभग इसी प्रकार है । इसमें शूर्पणखा राम से कहती है - तुम कौन हो, किस देश से यहाँ आये हो ? मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि तुम मेरे पति बन जाओ । किन्तु इन दोनों को तो मैं खा ही जाऊँगी । इस पर राम के कहने पर लक्ष्मण ने शूर्पणखा का नाक-कान काटते हैं ।-2 ब्रह्मवैवर्त पुराण में भी किंचित विस्तार के साथ इसी सन्दर्भ का निरूपण हुआ है ।-3 "रामचरित मानस" में तुलसी ने भी शूर्पणखा के परम्परागत चरित्र को ही उभारा है ।-4

आधुनिक काल में नव्य मानवतावादी व बौद्धिक चेतना के प्रभावस्वरूप उपेक्षित चरित्रों की ही नहीं प्रत्युत निन्द्य व निम्न कहे गये, रामकथा के प्रतिपक्षी चरित्रों के प्रति भी मानवीय संवेदना का उन्मेष हुआ । राक्षस माने गये इन चरित्रों के कृत्यों का पुनर्मूल्यांकन हुआ, उन्हें नवीन तार्किक आलोक में जांचा-परखा गया । शूर्पणखा का चरित्र भी इन्हीं में एक है । परम्परागत रूप में कामी, उच्छृंखल व अविवेकी दानवी के रूप में वर्णित शूर्पणखा, आधुनिक युग में नवीन रूप से चित्रित की गयी । "रामचरित-चिन्तामणि", में शूर्पणखा का चरित्रांकन परम्परागत व मौलिक दोनों रूपों में हुआ है । परम्परागत् रूप में शूर्पणखा कामी व विलासी नारी के रूप में चित्रित हुई है । व अन्जान पुरुषों के साथ अमर्यादित सम्भाषण करते समय कामी व वासनायुक्त नारी ही परिलक्षित होती है -

---

1· वाल्मीकि रामायण-अरण्यकाण्ड सर्ग-18 पृ0 533

2· कस्त्वं कस्मत्समायतो भर्ता में भव चार्थितः ।। एतौच भक्षयिष्यामि इत्युक्त्वातुं समुधता ।।5।। तासां नास च कर्णो च रामोक्तो लक्ष्मणोडच्छिनन ।।51/2।।
अग्निपुराण -अध्याय-7, पृ0 29

3· ब्रह्मवैवर्त पुराण-अध्याय562,पृ0577-578

4· रामचरित मानस-अरण्यकाण्ड, पृ0 640

काम-पीड़िता हूँ मैं, मेरी इच्छा पूरी करिये,
युवक भ्रूण हत्या दुःखद है, उससे मन में डरिये ।-1

उपाध्याय जी ने शूर्पणखा के परम्परागत् रूप के साथ-साथ उसके चरित्र पर मौलिक चेतना का भी आरोपण किया है "रामचरित-चिन्तामणि" में शूर्पणखा के चरित्र की नवीनता है - उसका देश-प्रेमी व प्रजातन्त्र की समर्थिका नारी का रूप । अंग-विच्छेदन के पश्चात् रावण के समक्ष अपनी दीनावस्था प्रस्तुत करते हुए वह रावण में स्वदेश के प्रति कर्त्तव्य बोध का जाग्रत करने का प्रयास करती है -

दशकन्धर । तू विषयलीन हो, क्यों हो गया प्रमादी ?
उधम मचा रहे है तेरे राज्य मध्य में वादी । -2

इस रचना में शूर्पणखा के प्रजातन्त्र प्रेम का भी प्रकटन हुआ है । वह रावण को प्रजा के प्रति उसके कर्त्तव्यों की याद दिलाती हुई, प्रजा के हितों को महत्ता देती है । वह प्रजा पर निरंकुशता का शासन नहीं अपितु प्रजा हितों का मर्म्म समझने वाला शासन स्वीकार करती है। यद्यपि शूर्पणखा के इस रूप के पीछे रावण को अपनी दीन-दशा की ओर संकेतित करने का उद्देश्य भी निहित है, तथापि मौलिक पक्ष है -

तेरे राज्यों में रह कोई कैसे सुख पावेगा ?
प्रजावर्ग के हितसाधन से यदि तू हट जावेगा
अरे घमण्डी । निष्ठुरता से काम नहीं चलता,
कभी मतलबी भी सिर धुनकर हाथों को मलता है ।-3

"रामचरित-चिन्तामणि" में शूर्पणखा रावण को देश की परिस्थिति से अवगत कराती है । स्वयं अपनी दशा संकेतित करती

1· रामचरित-चिन्तामणि - रामचरित उपाध्याय, पृ0 136

2· रामचरित चिन्तामणि, पृ0-142

3· वही- पृ0-143

हुई कहती है कि देश में अबलाओं पर बल प्रयोग होने लगा है, तथा देश-वासियों में देश प्रेम का अभाव है; धर्मविहीन व्यक्तियों से मही भारी पड़ने लगी है। यहाँ यदि निरपेक्ष भाव से देखा जाय तो शूर्पणखा में अपने देश के प्रति जागरूकता व बौद्धिकता भी परिलक्षित होती है -

अबलाओं पर बल-प्रयोग अब होने लगा यहाँ है,
अरे नृपाधम् ! देख नीति की तेरी बुद्धि कहाँ है ?
देश-प्रेम का लेश किसी में कुछ भी शेष नहीं है,
धर्म-विहीनों से पद-दलिता हुई मही है ।-1

यही नही शूर्पणखा राम-लक्ष्मण से प्रतिशोध लेने के लिए ही, रावण के समक्ष सीता के सौन्दर्य का वर्णन करके, उसे सीता-अपहरण के लिए भी प्रेरित करती है ।

मैथिलीशरण गुप्त जी की "पंचवटी" में भी शूर्पणखा के परम्परागत् चरित्र में मौलिकता का समावेश किया गया है । इसमें शूर्पणखा के प्रणयी-स्वरूप का निरूपण हुआ है तथा लक्ष्मण के प्रति उसके प्रणय-याचना को विस्तार से व्यजित किया गया है । "पंचवटी" में शूर्पणखा के चारित्रिक उन्नयन का प्रयास हुआ है ऐसा नही कहा जा सकता किन्तु मौलिक दृष्टिकोण का प्रभाव अवश्य है ।

शूर्पणखा लक्ष्मण के प्रति अपने प्रेम का "प्रकटन जिस ढंग से करती है, उसमें उसका छली स्वभाव कहीं नजर नही आता । वह लक्ष्मण से कहती हैं -

समझो मुझे अतिथि ही अपना
कुछ आतिथ्य मिलेगा क्या ?
पत्थर पिघले किन्तु तुम्हारा
तब भी हृदय हिलेगा क्या ? -2

---

1. रामचरित-चिन्तामणि-पृ0 142
2. पंचवटी- पृ0-22

यही नही वह लक्ष्मण द्वारा बहुविवाह को अनुचित मानते हुए, जब उसे बताते हैं कि वे विवाहित हैं, तब शूर्पणखा विधि-विधानों पर आक्षेप करती हुई कहती हैं -

पर क्या पुरूष नहीं होते हैं,
दो-दो दाराओं वाले ?
नरकृत शास्त्रों के सब बन्धन
हैं नारी को ही लेकर -1

यहाँ शूर्पणखा के परम्परागत चरित्र का नवीन दृष्टिकोण से पुनर्मूल्याकंन ही दृष्टिगत होता है । यद्यपि रक्ष-कन्याओं से विवाह तथा पुरूषों द्वारा अनेक विवाह की प्रथा भी, तत्कालीन समाज में प्राप्त होता है, किन्तु शूर्पणखा-प्रसग को जितना निम्न व हेय माना गया, वह विचारणीय है । परम्परागत् शूर्पणखा-प्रसंग के पीछे अनार्य शासक रावण के अपकर्ष का उद्देश्य भी स्पष्टतः व्यंजित होता है ।

"साकेत" में गुप्त जी ने शूर्पणखा का उल्लेख मात्र किया है । इसमें वह राम-लक्ष्मण पर आशक्त व विमोहित रूप में उल्लिखित है -

शूर्पणखा रावण की भागिनी, पहुँची वहाँ विमोहित सी ।-2

आधुनिक युग में रामकथा के प्रतिपक्षी व खलपात्रों का नवीन मानवतावादी तथा बौद्धिक दृष्टिकोण से चित्रण हुआ उनके परम्परागत स्वरूप व कृत्यों का तार्किकता के आधार पर पुनर्मूल्याकंन हुआ । शूर्पणखा का चरित्र भी परम्परागत् रूप से हुय व निंद्य रहा है, किन्तु आधुनिक नव्य मानवतावादी चेतना के प्रभाव-स्वरूप "रावण-महाकाव्य" तथा "शूर्पणखा" में शूर्पणखा का चरित्र पुनर्व्याख्यायित व पुनर्मुल्यांकित हुआ ।

1· पंचवटी - मैथिली शरण गुप्त पृ0 23

2· साकेत - वही, पृ0 205

हरदयालु सिंह कृत "रावण-महाकाव्य" में शूर्पणखा का चरित्र परम्परागत् रूप से परे सर्वथा नवीन रूप में निरूपित हुआ है । इसमें वह राजकुमारी के उदात्त आदर्श से सम्पूरित कुशल-प्रशासिका व स्वाभिमानी नारी है, साथ ही संवेदनशील भी। उनके परम्परागत् कामुक व विलासी चरित्र का निषेध हुआ है ।

रावण-महाकाव्य में शूर्पणखा बौद्धिक तथा राजनीति में निपुण विदुषी बाला के रूप में प्रस्तुत है । वे जटिल से जटिल राजनीतिक प्रश्नों के समाधान हेतु अपनी सम्मति प्रदान करती हैं । यह उनके राजनीतिक सक्षमता का ही परिचायक है -

> राजनीति में निपुण भई, सुपनखा बाला
> जटिल प्रश्न में देन लगी निज सम्मति आला ।-1

"रावण-महाकाव्य" में शूर्पणखा के राजनीतिक कुशलता के कारण ही रावण द्वारा उसे पचवटी क्षेत्र का शासन-सूत्र प्रदान करके, प्रान्त-शासिका बना दिया जाता है । किन्तु खरदूसन, त्रिसिरा व विराध द्वारा एक प्रकार से 'आपात्काल' की योजना बनाकर, शूर्पणखा का हस्ताक्षर करवा लिया जाता है । पंचवटी में आपात्कालीन स्थिति लागू हो जाने पर, उस प्रान्त के निवासी मुनिगण शूर्पणखा के विरूद्ध हो जाते हैं । और यही लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के विरूपीकरण का कारण भी बनता है । डा0 श्याम सुन्दर व्यास के शब्दों में - "रावण की चरित भूमि में सुपनखा का व्यक्तित्व एक नवीन रूप में परम्परा के प्रतिकूल उपस्थित किया गया है । उसकी कुरूपता का कारण विषयांधता न बताकर, उसे राजनैतिक रूप प्रदान किया गया और इस प्रकार सुपनखा को एक कर्त्तव्यनिष्ठ, नीति पटु शासन-संचालिका के रूप में उपस्थित किया गया है ।-2 "रावण-महाकाव्य" में शूर्पणखा के परम्परागत् रूप का निषेध करते हुए उसके चारित्रिक-उत्कर्ष का महत तार्किक प्रयत्न, सराहनीय विश्वसनीय है ।

1· रावण-महाकाव्य-हरदयालु सिंह, पृ0 67

2· हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण डॉ0 श्याम सुन्दर व्यास, पृ0 162

"रावण-महाकाव्य" में शूर्पणखा के चारित्रिक उदात्तता व आदर्श पातिव्रत्य का अंकन उससमय दृष्टिगत होता है, जब लक्ष्मण द्वारा अपमानित व विरूप किये जाने के बाद शूर्पणखा अग्निदाह कर लेती है । यद्यपि अग्निदाह मानवीय कायरता का ही द्योतक है, उसके आत्मविश्वास व साहस का नहीं । तथापि शूर्पणखा के प्रसंग में उसकी यह कायरता ही उसके चारित्रिक दृढ़ता व आदर्श नैतिक स्वरूप का परिचायक बन जाती है -

सयन कच्छ में जाय सुपनखा दूतहिं लियो बुलाई ।
दर्पन की दिसि देखि लियो निज चित्र विरूप बनाई ।।
ताहि दियो पाती संग अपनी रावन पास पठाई ।
मूँदि किवार लिये मन्दिर में आगी आपु लगाई ।। -1

समग्रतः "रावण-महाकाव्य" में शूर्पणखा के परम्परागत् चरित्र को सम्यक व विश्वसनीय आधार प्रदान करते हुए, उसका विशिष्ट चारित्रिक उत्कर्ष हुआ है ।

आधुनिक मानवतावादी, बौद्धिक, व तार्किक चेतना के प्रभाव-स्वरूप प्रीतम सिंह 'बगरेचा' कृत "शूर्पणखा" में भी शूर्पणखा के परम्परागत् चरित्र का परिष्कार करते हुए, उसका चारित्रिक उन्नयन किया गया है । प्रीतम सिंह 'बगरेचा' जी ने "शूर्पणखा" की भूमिका में लिखा है- "प्रणय-निवेदन करना भी क्या कोई अपराध है, किन्तु वह सुकुमारी व अनन्य सुन्दरी उन आर्य-बन्धुओं द्वारा विकलांगिनी बना दी जाती है ।" इसी सन्दर्भ में वे आगे कहते हैं - "हमारा विवेक, हमारी न्याय-बुद्धि और हमारा संवेदनशील हृदय शूर्पणखा के प्रति समाज के घृणास्पद विश्वास को निकाला फेंकेगा ।"-2 बगरेचा जी ने शूर्पणखा का चरित्रांकन बौद्धिक व समन्वयवादी नारी के रूप में प्रस्तुत किया है ।

1- रावण महाकाव्य- पृ० 154
2- शूर्पणखा - प्रीतम सिंह 'बगरेचा' - भूमिका में कवि

"शूर्पणखा" में शूर्पणखा के परम्परागत् कामुक व विलासी चरित्र का निषेध करते हुए, मौलिक रूप में उस पर प्रणयी व सवेदनशील व्यक्तित्व का अरोपण हुआ है । शूर्पणखा आर्यों के साथ अपनी संस्कृति के समन्वय की इच्छुक होती है, इसी कारण वे आर्य राम व लक्ष्मण के प्रति संवेदनशील होती है, उनसे रक्षकुल का सम्बन्ध जोड़ना चाहती है । वह कहती हैं -

यदि वे मुझसे सहमत होगें, यदि हो जायेगा परिणय,
होवेगा सम्बन्ध रक्त का सेतु समन्वय का सुखमय ।-1

अन्य रचनाओं में "रामराज्य" (बल्देव प्रसाद मिश्र) व "माण्डवी" (हरिशंकर सिन्हा) में शूर्पणखा का चरित्र-निरूपण परम्परागत् रूप में ही उल्लिखित है, उनमें कोई मौलिक विशिष्टता नहीं है । "भूमिजा" (रघुवीर शरण मित्र) में शूर्पणखा का नाममात्र का उल्लेख हुआ है ।

समग्रतः "रामचरित-चिन्तामणि" में शूर्पणखा के चरित्र के कुछ अंशों को छोड़कर, शूर्पणखा का चारित्रिक उन्नयन "रावण-महाकाव्य" व "शूर्पणखा" (बगरेचा कृत) में ही विशिष्ट रूप से सन्दर्भित है । अन्यत्र परम्परा का ही अनुकरण हुआ है ।

1· शूर्पणखा - प्रीतम सिंह 'बगरेचा' - पृ0- 41

कौशल्या

कौशल्या का चरित्र वाल्मीकि रामायण तथा रामचरित मानस में विशेष रूप से प्राप्त होता है । वाल्मीकि रामायण में कौशल्या का मानवीय दुर्बलताओं में संयुक्त आदर्श माता, पत्नी व सास का स्वरूप प्राप्त होता है।-1 रामचरित मानस में तुलसीदास ने उनके आदर्श और विवेकी स्वरूप को ही महत्ता प्रदान की है। वे धर्मभीरु तथा भाग्यवादी है। कौशल्या के चरित्र का विशेष रूप से चरित्राकन नहीं प्राप्त होता, वे केवल माता के रूप में ही कुछ स्थलों पर सक्षिप्त रूप में व्यंजित हुई हैं। धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में, "कौशल्या के चरित्र में आदि कवि से प्रारम्भ होकर तुलसीदास के द्वारा जिस आदर्श की परिणति हुई है, वही वस्तुतः लोकमत में प्रतिष्ठित होकर रह गया है।-2

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में "कौशल्या" का चरित्रपरम्परा रूप में ही विशेष रूप से चित्रित हुआ है। कुछ रचनाओं में उनका चरित्र मौलिक भी है।

"रामचरित-चिन्तामणि" में कौशल्या का चरित्र वाल्मीकि-रामायण के कौशल्या के सन्निकट हैं। वे "रामचरित-मानस" की भाँति "काल करम गति अघटित जानी"-3 कहकर सन्तोष नहीं करतीं अपितु सीधे-सीधे कैकेयी के करतूत को दोषी ठहराती हुई कहती हैं-

> वन में मम राम वत्स हा! कयकेयी-करतूत से गये।
> छल से छल छद्म हा वृथा, वनवासी मम राम को बना।
> सुख से धन्य-धान्य पूरिता, तुम भोगो गत कण्टका मही।।-4

1- वाल्मीकीय-रामायण- 2।20।38-39
2- हिन्दी साहित्य कोश-भाग-2-धीरेन्द्र वर्मा-पृ0 113
3- रामचरित-मानस - तुलसीदास - पृ0 475
4- रामचरित-चिन्तामणि- पृ0 109

"साकेत" में कौशल्या का चरित्र आदर्शवादी अधिक है। मातृ ह्रदय के कोमल भावनाओं से युक्त कौशल्या का चित्रण "साकेत" में विशेष रूप से व्यक्त हुआ है। डॉ0 श्याम सुन्दर व्यास के शब्दों में— "साकेत की कथावस्तु में कौशल्या की चरित-सृष्टि राम जननी के अनुरूप ही है। अपने उदात्त मातृह्रदय के कारण साकेत की कथावस्तु में उसका स्थान गौण नहीं रहने पाया है।"-1

इस प्रबन्ध रचना में कौशल्या के चरित्र की मौलिकता है उनका संदेह रहित मातृह्रदय। कैकेयी द्वारा भरत की राजगद्दी की माँग को वे उसका पुत्र-स्नेह मानकर सहर्ष स्वीकार कर लेती है, किन्तु उनका अपना मातृ-ह्रदय स्वपुत्र को आँखों के निकट ही रखना चाहती हैं—

मँझली बहन राज्य लेवें, उसे भरत को दे देवें।
पुत्रस्नेह धन्य उनका, हठ है ह्रदय-जन्य उनका
मेरा राम न वन जावे, यहीं कहीं रहने पावे।-2

राम के वन चले जाने पर कौशल्या आदर्श सास की भाँति उर्मिला के ह्रदय को साहस प्रदान करती हैं। इस रचना में कौशल्या का आदर्श मातृरूप विशिष्ट रूप में चरित्रांकित हुआ है।

"कैकेयी" प्रबन्ध-काव्य में शेषमणि शर्मा जी ने कौशल्या के संक्षिप्त किन्तु मौलिक स्वरूप की व्यंजना की है। इस रचना में कौशल्या अपने पति के प्रति असन्तोष व्यक्त करती हुई राम से कहती हैं कि राजस्वत्व पाकर वे उन्हें पिता की भाँति उपेक्षित न करें। यहाँ उनके ह्रदयगत् दुर्बलता का ही अंकन हुआ है। वे कहती हैं-

---

1- हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण- श्यामसुन्दर व्यास- पृ0-145

2- साकेत-पृ0-47-48

तुम युवराज हो रहे राघव, जननी को न भूल जाना।
राजस्वत्व पा मुझ उपेक्षिता, को न पिता सा ठुकराना।-1

इस रचना में कौशल्या के विद्रोही रूप का भी चरित्राकन हुआ है वे राम से पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके, रुकने हेतु आज्ञा देती है। वे राजाज्ञा तथा पितृाज्ञा, दोनों का ही विरोध करने की आज्ञा देती हुई कहती हैं-

माँ का स्वत्व बड़ा होता है, मैं कहती हूँ मत जाओ,
माँ की आज्ञा का महत्व तुम, आज पिता को दिखलाओ।-2

कौशल्या का उदात्त स्वरूप उस समय प्राप्त होता है जब वे कैकेयी द्वारा पश्चाताप करने पर, उन्हें सान्त्वना देते हुए, राम के वनवास और दशरथ के मरण को नियति मानती हैं। वे राम वनवास को वे पृथ्वी के भार को दूर करने का हित कार्य भी मानती हैं। कौशल्या कहती हैं:-

पूर्व जन्म के कर्म यही थे, नहीं नृपति का पाप रहा।
पुत्र विरह में प्राण जायेंगे, मुनि का था अभिशाप रहा।
नृप का मरण और राघव का, वन जाना निश्चित ही था।
दुःख भार नत् वसुन्धरा का, हित भी अन्तर्हित ही था।-3

"साकेत-सन्त" प्रबन्ध-काव्य में कौशल्या का चरित्र मुख्यतः परम्परागत् रूप में ही चित्रित हुआ है। वे भरत और राम में भेद नहीं मानती, वे उसे निष्कलंक मानती हैं। यह सम्पूर्ण कृत्य को "कुटिल काल की घातें" मानती हैं।

1- कैकेयी - शेषमणि शर्मा-पृ0 61

2- वही, पृ0-64

3- वही, पृ0-121

कौशल्या के चरित्र की सहृदयता तथा उदात्तता उस समय प्रकट होती है जब वह मन्थरा दासी को शत्रुघ्न द्वारा पीटे जाने पर, भरत से उसको छुड़ाने के लिए कहती हैं। वे कहती हैं-

दया योग्य है निर्बल नारी, दासी का कल्याण करो। -1

उनका यह रूप सर्वथा मौलिक है। वह मानवीय संवेदनाओं से युक्त हैं।

"मांडवी" प्रबन्ध-रचना में कौशल्या वाल्मीकीय रामायण के कौशल्या के समकक्ष हैं। इस रचना में वे अति संक्षिप्त रूप में व्यंजित हुई हैं। कैकेयी की भर्त्सना करती हुई वे कहती हैं-

क्या रो रही कर राज्य निष्कष्टक अधम्,
अभिलाष तेरा क्या नहीं पूरा हुआ।
मम् पुत्र वन में, पति पड़ा निर्जीव यों,
मैं भी चितारोहण चली वन अनुगता।
खुलकर चिताओं से हमारी खेल अब,
खुल सो अधम् निश्चिन्त इस श्मशान में।
परे हट अभी हत्भगिनी! दुश्चारिणी,
कर थल न दूषित रे कुहूकी कालि में। -2

यहाँ उनके सहज मानवीय रूप का चरित्रांकन हुआ है। उनको आत्म व्यथा उग्रता में परिणित हो गयी है।

समग्र रूप से कौशल्या केवल माँ व पत्नी के संक्षिप्त चरित्र में बधकर रह गयी है। वे देश, समाज व राष्ट्र से कटकर केवल परिवार के चहारदीवारी

1- साकेत सन्त- पृ0-61
2- माण्डवी-हरिशंकर सिन्हा- पृ0-102

में सीमित हो गयी हैं। प्रेमचन्द महेश्वरी के शब्दों में— "कौशल्या राजनीतिक घटना-क्रम में कोई निर्णायक हस्तक्षेप नहीं करती। स्थान-स्थान पर अपने भावना-प्रधान उद्‌गारों के माध्यम से वह क्षीण सी प्रतिक्रिया जगाकर ही दृश्यपट से हट जाती है। आदर्श-भावना, धर्म-प्रियता पारिवारिक मंगल-कामना जैसे दो चार सूत्रों से ही उसका सम्पूर्ण चरित्र-पट निर्मित हुआ है।"-1

1- हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास- प्रेमचन्द महेश्वरी- पृ0285

बालि

"बालि" का चरित्र वानरराज तथा सुग्रीव के बड़े भाई के रूप में चित्रित हुआ जो अपने अनुज तथा अनुजवधू पर कुदृष्टि के कारण राम द्वारा छल से वध किया जाता है। श्रीमद्भागवद् पुराण {सुखसागर} के नवम् स्कन्ध में बालि नाम के वानर राजा का संहार राम द्वारा किया जाता है।-1 केवल इतना ही उल्लिखित हुआ है। "रामचरित-मानस" में बालि के चरित्र की कुछ विस्तृत व्यंजना हुई है। इसमें बालि किष्किंधा का राजा है उसमें अपने भाई सुग्रीव के प्रति प्रगाढ़ प्रेम होता है। मायावी नामक राक्षस के वध हेतु गये बालि के माह भर बाद भी न लौटने पर सुग्रीव द्वारा राज्य भार संभाल लिया जाता है। बालि जब लौटकर आता है तब वह सुग्रीव को राज्यलोभी मानकर उसे निष्कासित कर उसकी पत्नी को भी छीन लेता है। इसी अपराध स्वरूप वह रामचन्द्र जी के हाथों छिपकर मार दिया जाता है।-2 मृत्यु के समय बालि अपने कृत्य पर पश्चाताप् करता है तथा भगवद् प्रेम से विह्वल हो स्वपुत्र अगद को राम के शरण में छोड़कर प्राण त्याग करता है।

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में बालि के चरित्र की परम्परागत् तथा नवीन दोनों ही अभिव्यंजना हुई है। डॉ० प्रेमचन्द्र महेश्वरी के शब्दों में– "असाधारण शक्ति एवं विवेकशीलता के कारण बालि का चरित्र प्रतिपात्रों का परम्परित सरणी से एकदम् भिन्न है।------ उसके चरित्र का एक मात्र दुर्बल पक्ष सुग्रीव की पत्नी को बलात् अपनी अर्धांगिनी बना लेने में निहित है। वस्तुतः वानर संस्कृति के सन्दर्भ में यह कृत्य इतना गर्हणीय नही है कि राम द्वारा बालि के वध के औचित्य का समर्थन किया जा सके।"- 3

1- श्रीमद्भागवद्पुराण {सुखसागर}- नवम् स्कन्ध- पृ0 427
2- रामचरित मानस - किष्किंधाकाण्ड, पृ0 684-85, 689, 691
3- हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप-विकास- डॉ0 प्रेमचन्द महेश्वरी- पृ0242

"रामचरित - चिन्तामणि" में बालि राम के कृत्य की भर्त्सना करता है, वह परम्परागत् रूप से उन्हें ईश्वर मानकर विनय न करके उनके द्वारा छल से किये गये प्रहार की निन्दा यकरता हुआ कहता है-

छली आपके बाप थे आप ही से,
पड़ें वे बड़े दुःख में शाप ही से।
बकों से नहीं हंस उत्पन्न होंगे,
नहीं सर्प पीयूष सम्पन्न होंगे।
मुझे मारकर क्या यशस्वी बने हो?
धनुवणि ले क्या तपस्वी बने हो। -1

सुरक्षित बालि के चरित्र में विनयशील व आदर्श पिता का चरित्रत्र है। वह अपने पुत्र अंगद के सुरक्षित भविष्य हेतु राम से आग्रह करता है कि वे अंगद का पालन-पोषण करें तथा उसे कभी भी दुख न होने दें। वह राम से कहता है-

प्रभो! आप तारेय को पालियेगा,
उसे भी कभी नहीं दुःख डालियेगा। -2

"रावण-महाकाव्य" में बालि का नामोल्लेख मात्र हुआ है। इसमें बालि के पराक्रम का उल्लेख करते हुए, उसका राम द्वारा वध वर्णित कर दिया गया है।

"बालि-वध"-3 में रामकुमार वर्मा जी ने बालि का चरित्र परम्परागत रूप में ही उठाया है। इसमें बालि अजेय है। वह सुरेन्द्र-प्रदत्त माला के कारण समक्ष आने वाले व्यक्ति से द्विगुणित बल से सम्पन्न हो जाता है। अर्थात् सामने

1- रामचरित चिन्तामणि, पृ0 174
2- रामचरित चिन्तामणि- रामचरित उपाध्याय-पृ0 -179
3- बालि-वध - डॉ0 रामकुमार वर्मा, प्र.सं.- 1989

वाले की शक्ति आधी ही रह जाती है। इस प्रकार बालि दिव्य-शक्ति से सम्पन्न राजा है—

-------बालि सब भाँति से अजेय था।
वह बलशाली था सुरेन्द्र दत्त माला से,
जो कि युद्ध-हेतु आता उसके समक्ष था
उसका समस्त बल आधा रहा जाता था।-1

बालि के चरित्र में विद्रोहात्मक चेतना निहित है। इस रचना में "राम चरित मानस" की भाँति बालि राम को भगवान मानकर उनसे सविनीत प्रश्न नहीं करता अपितु उन्हें 'व्याघ्र' कहने का साहस रखता है।

समग्रतः आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में बालि का चरित्र किंचित विद्रोह के सिवाय और विकास नहीं पा सका है। वह अपने परम्परागत रूप में ही स्थिर है। आधुनिक कवि कुछ विशिष्ट चरित्रों को छोड़कर गौण पात्रों की ओर बहुत कम ही उन्मुख हुए हैं।

1- बालि-वध-डॉ0 रामकुमार वर्मा, पृ0 - 39

अध्याय - तीन

कृष्ण कथा : पात्रों का चरित्र विकास

भारतीय वाङ् मय में लीला पुरूष व योगीश्वर कृष्ण का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय जन मानस के परम् आराध्य पुरूषोत्तम राम के समान ही कृष्ण के अवतारी दिव्य व अलौकिक रूप को पुराणों में निरूपित किया गया है। हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार_"ऋग्वेद में कृष्ण नाम का उल्लेख दो रूपों में मिलता है। एक कृष्ण आंगिरस जो सोमपान के लिए अश्विनी कुमारों का आह्वान करते हैं §ऋग्वेद 8/85/19§ और दूसरे कृष्ण नाम का एक असुर -------- जो इन्द्र द्वारा प्राभूत हुआ।"-1 यहाॅ कृष्ण का मूल रूप आंगिरस के रूप में ही है। "ब्रम्हपुराण" में कृष्ण के अवतारी रूप व उनके सम्पूर्ण जीवन के लीला का अंकन हुआ है।-2 विष्णु-पुराण" में भी कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र का निरूपण हुआ है।-3 श्रीमद्भागवत पुराण के दशम व एकादशस्कन्ध के अनुसार कृष्ण जगत में धर्म की स्थापनाा तथा अधर्म के विनाश हेतु अवतार लेते हैं। वे अपने दिव्य बल से अनेकों राक्षसों सहित कंस का वध करते हैं। द्वारिकाधीश के रूप में राज्य करते हुए अन्ततः अपने सम्पूर्ण यदुवंश को अपनी ही माया से लड़ाकर विनष्ट कर देते हैं।-4 अन्ततः वे बहेलिये के वाण से घायल होते हैं तथा स्वधाम गमन करते हैं। "अग्निपुराण" के पंचादश अध्याय में वर्णित है कि भगवान कृष्ण ने धर्म की रक्षा और अधर्म के नाश के लिए पाण्डवों को निमित्त बनाकर

1- हिन्दी साहित्य कोश भाग-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ098

2- ब्रम्हपुराण अध्याय-179 से अध्याय 185 तक

3- विष्णु पुराण- पृ0 363 से 485 तक

4- श्रीमद्भागवत पुराण- ब्रह्मशापोवसृष्टानां कृष्णमायावृतात्नाम1स्पर्धा क्रोधः क्षयं निन्धेवेण्वोडग्नियथावनम् §24§ एवं नष्टेसु कुलेसु स्वेषु केशवः। अवतरितो भुवो भार इति मेनेण्वशोषितः §25§ §जैसे बांसों की रगड़ से उत्पन्न होकर दवानल बाॅसों को ही भष्म कर देता है, वैसे ही ब्रह्मशाप ग्रस्त और भगवान श्रीकृष्ण की माया से मोहित यदुवंशियों की स्पर्धामूलक क्रोध ने उनका ध्वंस कर दिया। जब कृष्ण ने देखा कि समस्त यदुवंशियों का संहार हो गया तब यह सोचकर संतोष की सांस ली की पृथ्वी का भार उतर गया।-एकादश स्कन्ध, पृ0-894

यह संहार कार्य किया। तत्पश्चात् ब्राम्हण शाप के बहाने मुसल-युद्ध के द्वारा भारत मूल-यादवों का संहार कर दिया।-1 कृष्ण के लीलामय चरित्र का वर्णन "ब्रह्मवैवर्त पुराण" में भी हुआ है।-2 "स्कन्द-पुराण" के वैष्णवखण्ड में कृष्ण के दिव्य रूप व उनके नामों के अतुलित प्रभाव का वर्णन प्राप्त होता है।-3 समग्रतः परम्परागत रूप में कृष्ण के अलौकिक, दिव्य व अवतारी रूप का वर्णन हुआ है, जो जगत में धर्म की स्थापना व अधर्म के विनाश हेतु अवतार लेते हैं।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध व बीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के नवजागरण आन्दोलनों के प्रभाव-स्वरूप मानवतावादी व बौद्धिक चेतना का उन्मेष हुआ। गाँधीवादी विचारधारा के प्रभाव स्वरूप समाज में अछूतोद्धार, व ग्रामोत्थान आदि की भावना जागृत हुई। नव्यचेतना के कारण पौराणिक दिव्य चरित्रों का सम-सामयिक तथा युगानुकूल दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन हुआ। दिव्य व अलौकिक चरित्रों को मानवीय रूप में निरूपित किया जाने लगा है। आधुनिक प्रबन्धकृतियों में कृष्ण का चरित्र-चित्रण आधुनिक नव्य चेतना से प्रभावित है। आधुनिक प्रबन्ध रचनाओं में कृष्ण महामानव लोकसेवक, समाजोद्धारक स्वदेश-प्रेमी व समष्टिवादी आदि रूपों में अभिव्यंजित किये गये हैं। यही नहीं उन्हें अन्तर्द्वन्द्वग्रस्त सामान्य् मानव तक के रूप में निरूपित किया गया है। महाभारतीय कथाधृत रचनाओं में प्रबन्ध-कवियों ने कृष्ण के परम्परागत राज-नीतिक पक्ष का चित्रण मौलिक रूप में किया गया है। "महाभारत में कृष्ण के कूटनीतिक चरित्र को ईश्वरीय कृत्य मानकर श्रद्धाभाव से स्वीकार किया गया है। किन्तु आधुनिक प्रबन्ध रचनाओं में कृष्ण के कूटनीतिक

1- धर्मायाा धर्मनशाय निमित्तीकृतम् पाण्डवान्। स विप्रशाप त्याजेन मुसलेनाहरतम्कुलम्।।31।। पृ0 71

2- ब्रह्मवैवर्त पुराण- पृ0 609 से 1013 तक

3- स्कन्दपुराण - वैष्णव खण्ड, मार्गशीर्ष महात्म्य अध्याय-15 पृ0 84

, चरित्र के औचित्य-अनौचित्य का; तार्किक व बौद्धिक दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन हुआ है। आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में कृष्ण के महाभारतीय चरित्र की ही विशिष्ट रूप से व्यंजना प्रदान करने के कारण उनके लीलामय चरित्र का निरूपण कुछ कम ही हुआ है । उनके चरित्र के इस पक्ष का अंकन "प्रियप्रवास", "द्वापर", "कृष्णायन" तथा "कनुप्रिया" आदि प्रबन्ध-काव्यों में विशिष्ट रूप से हुआ है । इन रचनाओं में कृष्ण के परम्परागत अवतारी, अलौकिक व दिव्य रूप के स्थान पर मानवीय, लौकिक तथा सहज रूप का निरूपण हुआ है ।

"प्रिय प्रवास" -1 में अयोध्या सिंह उपाध्याय जी ने कृष्ण को सर्वप्रथम महामानव लोकसेवक व देश प्रेमी के रूप में चरित्रांकित करते हुए, उनके अवतारी व दिव्य रूप का निषेध किया है। 19वीं- 20वीं शताब्दी के नवजागरण व राष्ट्रीय आन्दोलनों से उत्पन्न चेतना के उदात्त पक्षों का प्रतिफलन "प्रियप्रवास" के कृष्ण का चरित्र है । "प्रियप्रवास" की भूमिका में हरिऔध जी ने लिखा है -"मैंने तो कृष्ण को इस ग्रन्थ में महापुरुष की तरह अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं ।" -2 कृष्ण का यह मानवीय रूप आधुनिक नवीन बौद्धिक दृष्टिकोण का परिचायक है। कृष्ण जननायक देशभक्त, समाज-सुधारक, जातिउद्धारक के साथ-साथ विश्व प्रेमी हैं । वे व्यष्टिवादी न होकर समष्टिवादी हैं । डॉ सरोजिनी कुलश्रेष्ठ के शब्दों में-"बुद्धिवाद, आदर्शवाद, जातिवाद तथा राष्ट्रीयता की प्रवृत्तियों से प्रेरणा लेकर हरिऔध जी ने कृष्ण को महामानव का रूप प्रदान किया है ।"-3 "प्रियप्रवास" में कृष्ण के अलौकिक व चमत्कारपूर्ण कृत्यों का आधुनिक युगानुरूप नवीन व मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है ।

1- प्रियप्रवास- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रचना- 1913 ई०

2- प्रिय प्रवास- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', भूमिका में कवि

3- हिन्दी साहित्य में कृष्ण- डॉ0 सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, पृ0 338

आधुनिक मानवतावादी चेतना के प्रभाव स्वरूप ऊँचनीच का भेद समाप्त होने लगा । 'हरिऔध' जी ने कृष्ण का चरित्रांकन जननायक के रूप में किया है । कृष्ण के चरित्र का यह मौलिक पक्ष है । वे साधारण सरल हृदय मानव की भाँति छोटे-बड़े सभी मानव से मिलते हैं, उनके हित के लिए प्रयासरत् रहते हैं । उन्हें राजपुत्र होने का कोई अभिमान नहीं होता, वे गरीबों के घर भी सहज भाव से जाते हैं :-

बातें बड़ी सरस कहते थे बिहारी, छोटे-बड़े सकल का हित चाहते थे ।
अत्यन्त प्यार संग में मिलते सबों से, वे थे सहायक बड़े दुःख के दिनों में ।
थे राजपुत्र उनमें मद था न तो भी, वे दीन के सदन थे अधिकांशतः जाते।-1

राष्ट्रीय जागरण आन्दोलन के फलस्वरूप देश-प्रेम व वीरता के भावों का उन्मेष जन-साधारण में हुआ । भारतीय जनमानस में देश-प्रेम की भावना के विकास हेतु चरित्रों में देशभक्ति की भावना का आरोपण हुआ । "प्रियप्रवास" में कृष्ण के देशभक्त स्वरूप का अंकन आधुनिक नव्यचेतना का ही प्रभाव है । कृष्ण अपने जन्मभूमि के लिए कठिन से कठिन कार्य करने के लिए तत्पर होते हैं । अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए ही वे विषैले कालरूपी सर्प से भी भयभीत नहीं होते । कृष्ण कहते हैं -

स्वजाति औ जन्म धरा निमित्त मैं,
न भीत हूँगा विष काल सर्प से । -2

"प्रियप्रवास" के कृष्ण का चरित्रांकन नव-चेतना के प्रभाव स्वरूप व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को महत्ता देने वाले महामानव के रूप में हुआ है। कृष्ण कहते हैं कि जब तक उनके शिराओं में रक्त है तथा शरीर में शक्ति है,

---

1- प्रियप्रवास-पृ0-28

2- प्रियप्रवास, सर्ग-11, पृ0 140

वे समष्टि के हित साधना में ही निरत रहेंगे । कृष्ण का यह चरित्र लौकिक व उदात्त है । समष्टि के प्रति यह त्याग-पूर्ण दृष्टिकोण कृष्ण चरित्र का विशिष्ट पक्ष है । वे कहते हैं -

प्रवाह होते तक शेष श्वास के, सरक्त होते तक एक भी शिरा ।
सशक्त होते तक एक एक लोम के, किया करूँगा हित सर्वभूत का।-1

नवजागरण आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप उन सामाजिक रूढ़ियों व मिथ्याडम्बरों का खंडन हुआ, जिन्हें धर्म के नाम पर युगों से स्वीकृति मिलती रही । आधुनिक युग में नवीन आदर्शों की प्रतिस्थापना हुई । 'हरिऔध' जी के कृष्ण भी समाज सुधारक, आदर्शवादी तथा पशुत्व भाव वालों को भी मानवता का सन्देश देने वाले महामानव हैं । कृष्ण मानवता के पथ से भटके मानव को नरत्व का आदर्श सिखाते हैं । कृष्ण का यह स्वरूप उनके परम्परागत् रूप से विलग सर्वथा मौलिक है । वे कहते हैं :-

अपूर्व आदर्श दिखा नरत्व का, प्रदान की है पशु को मनुष्यता।
सिखा उन्होंने चित्त की समुच्चता, बना दिया मानव गोप वृन्द को।-2

"प्रियप्रवास" के कृष्ण असत् के विनाश के लिए शक्ति प्रयोग में विश्वास करते हैं। वे अहिंसा को उसी सीमा तक उचित मानते हैं, जबतक उसकी सार्थकता होती है। समाज के उत्पीड़क, धर्म विप्लवी तथा स्वजाति के शत्रु व मानवद्रोही के लिए वे हिंसा को ही सर्वप्रमुख मानते हैं। परम्परागत रूप में कृष्ण धर्म विरोधी के विनाशक व धर्म संस्थापक हैं, किन्तु इस रचना में कृष्ण का कार्यक्षेत्र विस्तृत हो चला है। कृष्ण कहते हैं -

मनुष्य क्या एक पिपीलिका कभी, न बध्य है जो अश्रेय हेतु हो।
समाज उत्पीड़क, धर्म विप्लवी, स्वजाति का शत्रु दुरन्त पातकी।
मनुष्य द्रोही भव-प्राणि पुंज का, न है क्षमा योग्य वरं च बध्य है।-3

1- प्रियप्रवास-पृ0-140
2- प्रियप्रवास- पृ0 174
3- वही, पृ0-183

पुराणों में जिन दुःसाहसी कार्यों को कृष्ण अपनी दिव्य शक्ति से करते हैं, उसको स्वाभाविक व विश्वसनीय बनाने के लिए और बौद्धिक तथा मानवीय आधार प्रदान करने के लिए 'हरिऔध' जी ने नयी परिकल्पना प्रस्तुत की है। "प्रियप्रवास में कृष्ण का चरित्रांकन परम् वीर तथा अद्भुत कौशल संयुक्त, साहसी मानव के रूप में किया गया है। कृष्ण द्वारा अघोष नामक व्याल, व्योमासुर व केशी अश्व आदि का वध अपने मानवीय पराक्रम व बुद्धिकौशल से किया जाता है। -1 उनके इस कृत्य में दिव्यत्व व अलौकिकता नहीं है। कृष्ण कालियानाग को भी अपने वेणुनाद से वश में करते हैं । उनका यह स्वरूप सर्वथा मौलिक है -

ब्रजेन्द्र के अद्भुत वेणुनाद से। सतर्क संचालन से स-युक्ति से।
हुए वशीभूत समस्त सर्प थे। न अल्प होते प्रतिकूल थे कभी।।-2

कृष्ण द्वारा गोवर्द्धन - पर्वत धारण करने की पौराणिक कथा का चित्रण "प्रियप्रवास" में वास्तविक व यथार्थ रूप में किया गया है। इस रचना में कृष्ण गोवर्द्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर नहीं उठाते, अपितु घोर वर्षा व बाढ़ से ब्रजवासियों को बचाने के लिए उन्हें गोवर्द्धन पर्वत की कन्दराओं में ले जाते हैं। यह उनके बौद्धिक कुशलता का उदाहरण है। कृष्ण ब्रजवासियों से कहते हैं -

इसलिए तजके गिरिकन्दरा, अपर यत्न न है अब त्राण का।
उचित है इस काल एकत्र हो, शरण में चलना गिरिराज की। -3

पौराणिक रूप में कृष्ण के जिस श्रृंगारिक चरित्र को लीला धाम कृष्ण की लीला मानकर स्वीकृति मिलती रही, आधुनिक युग में बौद्धिकता व आदर्शवादी दृष्टिकोण के उन्मेष के कारण उनका निषेध हुआ। कृष्ण के लीलामय श्रृंगारिक रूप

1- प्रियप्रवास-पृ0-143

2- वही, पृ0 159

3- वही, पृ0 210

की आदर्शानुरूप नवीन रूप में अकन आधुनिक प्रबन्ध काव्यों की विशिष्टता रही है। "प्रियप्रवास" में कृष्ण के परम्परागत् "रास-प्रसंग" का चित्रण, सर्वथा मौलिक रूप में हुआ है। कृष्ण के रासलीला में केवल गोपियाँ ही नहीं प्रत्युत गोप- गोपियाँ दोनों ही पारस्परिक आमोद-प्रमोद के साथ भाग लेते हैं। यहाँ उनके श्रृंगारिक तथा अनेक रूप धारण करने वाले दिव्य चरित्र का निषेध करके, मानवीयता प्रदान की गई है -

बीसों विभिन्न दल केवल नारि का था
यों ही अनेक दल केवल थे नरों के।
नारी तथा नर मिले दल थे सहस्त्रों
उत्कण्ठ हो सब उठे सुन श्याम बातें।-1

यहाँ कृष्ण के मर्यादाशील रूप का ही चित्रण हुआ है। वे दूरदर्शी तथा पराक्रमशील मानव है, जो लोक-हित के लिए कठिन से कठिन कार्य करने में सक्षम हैं। "कृष्ण की बाल लीलाएँ अलौकिक न होकर मानव-सेवा की अदम्य भावना को प्रेरित कल्याणकारी कर्म है । ये लीलाएँ उनके साहस, शौर्य, चातुरी एवं अद्भुत वेणुनाद की परिचायक भी हैं।"- 2

"प्रियप्रवास" में कृष्ण का चरित्रांकन नवीन रूप में जातीय-प्रेम से समन्वित है। वे स्वजाति के उद्धार को महान धर्म मानते हैं। वे स्वजाति को संकट से उबारना मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म मानते हैं। दावानल में फँसे ब्रजवासियों व पशुओं को बचाने के लिए सभी ब्रजवासियों को उनकी रक्षा के लिए प्रेरित करते हुए वे कहते हैं -

बिना न त्यागे ममता स्व प्राण की, बिना न जोखो जबलदाग्नि में पड़े।
न हो सका विश्व महान कार्य है, न सिद्ध होता भव-जन्म हेतु है।

1- प्रियप्रवास-पृ0-210

2- आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा- डाॅ0 मालती सिंह, पृ0-96

बढ़ो करो वीर स्व-जाति का भला, अपार दोनों विध लाभ हैं हमें।
किया स्वकर्तव्य उबार जो लिया, सु-कीर्ति पाई यदि भस्म हो गये। -1

इस रचना में सामान्य मानव रूप में चित्रण होने के कारण, कृष्ण की दुर्बलताओं का चित्रण भी है। कृष्ण के मानवीय अन्तर्द्वन्दों व मानसिक व्यथा का चरित्रांकन "प्रियप्रवास" में सर्वप्रथम हुआ है। एक सामान्य मानव की भाँति वे भी समय के थपेड़ों व विषम् परिस्थितियों की पीड़ा से संत्रस्त हैं। अपनी निजी विवशताओं का प्रकटन करते हुए कृष्ण कहते हैं -

प्राणी है यह सोचता समझता मैं पूर्ण स्वाधीन हूँ,
इच्छा के अनुकूल कार्य सब मैं हूँ साध लेता सदा।
ज्ञाता है कहते मनुष्य वश में है कालकर्म्मादि के,
होती है घटना-प्रवाह, पतिता-स्वाधीनता यंत्रिता।
देखो यद्यपि अपार ब्रज के प्रस्थान की कामना,
होता मैं तब भी निरस्त नित हूँ व्यापी द्विधा में पड़ा। -2

"प्रियप्रवास" में कृष्ण के संवेदनाओं व भावनाओं का अंकन प्रथम बार हुआ है। परम्परागत् रूप में कृष्ण का चरित्र ईश्वरीय व दिव्य होने के कारण राधा के प्रति उनके सहज संवेदनशील रूप का अभाव है। किन्तु इस रचना में कृष्ण राधा के उदात्त गुणों का स्मरण करते हैं। उनके दुःखों से दुखी होते हैं। कृष्ण आदर्श प्रेमी हैं, किन्तु समाज व देश के प्रति समर्पित होने के कारण अपनी प्रेमिका राधा के प्रति, कर्तव्यों का उचित निर्वाह न कर सकने की विवशता से भी त्रस्त हैं। उन्हें इस तथ्य का पूर्ण ज्ञान है, कि राधा उनके वियोग में कितनी व्यथित होगीं। कृष्ण अपनी वेदना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि-

---

1- प्रियप्रवास- पृ0 150

2- प्रियप्रवास- पृ0- 97

जो राधा वृषभानु-भूप- तनया स्वर्गीय दिव्यांगना,
शोभा है ब्रजप्रान्त की, अवनि की, स्त्री जाति की, वंश की।
होगी हा! वह मग्न भूत अति मेरे वियोगाब्धि में,
जो हो संभव तात पोत बनके तो त्राण देना उसे। -1

समग्रतः "प्रियप्रवास" में कृष्ण का चरित्र सर्वथा मानवीय तथा आधुनिक युगानुकूल है। इस रचना का आधार "श्रीमद्भागवत् पुराण" होते हुए भी कृष्ण के परम्परागत् अलौकिक व दिव्य कृत्यों को स्वाभाविक व विश्वसनीय बनाने के लिए बौद्धिक व मानवीय आधार प्रदान किया गया है। कृष्ण को लौकिक व मानवीय रूप में चरित्रांकित किया गया है। कृष्ण चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उनका मानवोचित वृत्तियों से सम्पन्न होना है। प्रियप्रवासकार ने बड़े कौशल से कृष्ण के ईशावतारी रूप को छोड़कर भी, उनकी महिमा को अक्षुण्ण रखा है। "प्रियप्रवास" के नायक श्रीकृष्ण में न तो भक्ति-कालीन आध्यात्मिकता है और न रीतिकालीन वासनात्मकता। उसमें एक ऐसी नवीनता है, जो प्राचीन श्रद्धा भावना को विकसित और कामुकता को खण्डित करती है।"-2 इस रचना में कृष्ण के प्राचीन व नवीन, लौकिक व उदात्त रूप का अद्भुत समन्वय प्राप्त होता है।

मैथिलीशरण गुप्त की रचना "द्वापर" में कृष्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में व्यंजित किया गया है। इस रचना में कृष्ण का प्रत्यक्ष चरित्रांकन नहीं हुआ है, प्रत्युत अलग-2 पात्रों द्वारा हुआ है। "श्रीमद्भागवाद्-पुराण" के लीलापुरूष कृष्ण के चरित्र को मैथिलीशरण गुप्त जी ने "द्वापर" में कृष्ण के चरित्रांकन का आधार बताया है। इस रचना में कृष्ण मौलिक रूप में परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ने वाले, आधुनिक युग के प्रतिनिधि व देश-भक्त के रूप में चरित्रांकित किये गये हैं।

"द्वापर" में कृष्ण के परम्परागत् रूप का निरूपण 'कुब्जा-प्रसंग' व 'कंसवध-प्रसंग' में प्राप्त होता है। कृष्ण कुब्जा के कूबड़ को ठीक करके उसे

1- प्रियप्रवास- पृ0 97

2- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान- डॉ0 श्यामनंदन किशोर- पृ0 212

अनिंद्य सुन्दरी बना देते हैं। कंस का वध करके उग्रसेन को कंस के कारागार से मुक्ति प्रदान करते हैं। कृष्ण के इस चरित्र का वर्णन "द्वापर" में कुब्जा के शब्दों में हुआ है।

आधुनिक युग में गाँधीवादी सिद्धान्तों व नव-जागरण आन्दोलन से समुत्पन्न अहिंसावाद व मानवतावाद का उन्मेष हुआ। हिंसा के स्थान पर प्रतिपक्षी के हृदय पर विजय प्राप्ति कराने वाली अहिंसावादी चेतना की महत्ता बढ़ी। "द्वापर" के कृष्ण का चरित्रांकन भी प्रेम द्वारा शत्रु विजय करने वाले कृष्ण के रूप में हुआ है। कृष्ण का प्रमुख अस्त्र उनकी मुरली है -

मुरली है अपूर्व असि उसकी
विजयी है वह प्रेम का। -1

"प्रियप्रवास" की भाँति ही "द्वापर" में भी कृष्ण लोकसेवक के रूप में निरूपित हुए हैं। कृष्ण सभी की कुशलता का ध्यान रखते हैं। कृष्ण के इस चरित्र पर आधुनिक मानवतावादी चेतना का ही प्रभाव है -

शिखि-शेखर को ध्यान सदा है,
सबके योग-क्षेम का। -2

इस रचना में कृष्ण का मौलिक चरित्रांकन परम्परागत् मिथ्या रूढ़ियों के खंडन करने वाले, नूतन-यज्ञ के होत्री व विद्रोही के रूप में हुआ है। कृष्ण पशुबलि पर आधारित, मानव की स्वार्थमयी नीतियों का अंकन करने वाली उस यज्ञ- प्रणाली का विरोध करते हैं, जो परम्परा से चली आ रही है। कृष्ण के इस चरित्र का वर्णन बलराम के शब्दों में हुआ है। वे कहते हैं -

प्रस्तुत रहो, कृष्ण नूतन मख, रचने ही वाला है,
अब निमि विद्रोह मोह पर मचने ही वाला है। -3

1- द्वापर-पृ0 49

2- द्वापर-मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 49

3- वही, पृ0-49

"द्वापर " के पश्चात् कृष्ण के सम्पूर्ण चरित्र पर आधारित रचना द्वारिका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" है। इस काव्यकृति में कवि कृष्ण के अलौकिक व अवतारी रूप का मोह नहीं छोड़ पाया है, फिर भी कृष्ण का चरित्र श्रृंगारिकता से परे मर्यादाशील है। वे रसराज कृष्ण न होकर मर्यादा पुरुषोत्तम कृष्ण हैं। डॉ॰ श्याम नन्दन किशोर के अनुसार कृष्ण में "मनुष्यता है तो पर देवत्व के कारण उभर नहीं पायी है, फिर भी एक बड़ी बात यह है कि कृष्ण में श्रृंगारिकता या कामुकता नहीं है। उनके प्रेम में उच्च-मर्यादा और सात्विकता है। उनमें विलासिता के स्थान पर लोकभावना है।" -1 इस रचना में कृष्ण अपनी लोक-हितकारी कार्यों से नवयुग के संवाहक बनते हैं।

"कृष्णायन" में कृष्ण का चरित्रांकन "महाभारत" व "श्रीमद्भागवद् पुराण" के आधार पर निरूपित किया गया है, किन्तु कृष्ण के अविश्वसनीय दिव्य व अलौकिक कृत्यों की मौलिक उद्भावना भी की गई है। परम्परागत् रूप में "श्रीमद्-भगवद्गीता" व "महाभारत" की भाँति असुरों के विनाश, धर्म की स्थापना व अधर्म के नाश हेतु तथा जनहित के लिए भगवान विष्णु "कृष्ण" के रूप में अवतरित होते हैं -

जन्में पारब्रह्म साक्षाता, असुर विनाशन जन हितकारी।
नाम कृष्ण विष्णुहिं अवतारी, कंस विनाश जासु कर होई। -2

"कृष्णायन" में कृष्ण द्वारा कालिय-दमन, पूतना-वध, तृणावर्तवध यमलार्जुन उद्धार, वत्सासुरवध, बकासुरवध, अघासुर-वध आदि कृत्य अपनी अलौकिक व दिव्य शक्तियों से ही करते हैं। उनका यह चरित्र परम्परागत् रूप में दिव्यता से युक्त है।

द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने "कृष्णायन" में कृष्ण के चरित्र का निरूपण मौलिक रूप में लोकनायक, समाज सुधारक, समाज-हितकारी, दूरदर्शी राजनीतिज्ञ,

---

1- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प-विधान- श्यामनन्दन किशोर, पृ0- 218-19

2- कृष्णायन- द्वारिका प्रसाद मिश्र- पृ0- 35

त्यागी, देश-प्रेमी, अहिंसावादी तथा संवेदनशील भावुक मानव के रूप में भी किया है।

19वीं-20वीं शती के नव-जागरण आन्दोलनों द्वारा भारतीय जनमानस में नवीन चेतना जागृत हुई। परम्परागत् रूढ़ियों व मिथ्याडम्बरों का खंडन हुआ। बौद्धिक व तार्किक दृष्टिकोण के कारण उन पौराणिक प्रसंगों का पुनर्मूल्यांकन हुआ जो युगसाक्षेप न थे। उन प्रसंगों को समसामयिक दृष्टिकोण से मौलिक अभिव्यंजना प्राप्त हुई। "कृष्णायन" में परम्परागत् चीरहरण के प्रसंग को नवीन व्याख्या प्रदान करके, कवि ने कृष्ण के समाज सुधारक स्वरूप को उभारा है। इस रचना में कृष्ण गोपियों द्वारा यमुना में नग्न होकर स्नान करने की, प्राचीन काल से चली आ रही परिपाटी को तोड़ने के लिए ही चीर-हरण करते हैं। कृष्ण गोपियों की भर्त्सना करते हुए, उन्हें नैतिकता व आदर्श की शिक्षा देते हैं। कृष्ण का यह रूप आदर्श समाज-सुधारक का है-

नीर निमज्जत नग्न नित, सब ब्रजनारि समाज,
चलत प्रथा प्राचीन गहि, रंचहु नहिं उर लाज।
आज देहुँ अनरीति मिटाई, लोकलाज मैं देहुँ सिखाई।
सोचत मन कछु युक्ति विचारी, हरे वसन भूषन बनवारी। -1

आधुनिक युग में 'नारी-जागरण' आन्दोलन से समुत्पन्न चेतना के कारण नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण जागृत हुई । नारी के स्वत्व व महत्ता की प्रतिष्ठा हुई। समाज में नारी के दयनीय दशा के सुधार हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाये गये। साहित्य में भी नारी उन्नयन हेतु उदात्त विचारों का उन्मेष हुआ। "कृष्णायन" के कृष्ण का चरित्रांकन नारी-उद्धारक व उन्नयनकर्ता के रूप में हुआ है। परम्परागत् रूप से वर्णित कृष्ण की असंख्य पत्नियों के बारे में कवि नई व्याख्या देता है। भौमासुर द्वारा कैद की गई 16 हजार कन्याओं को बन्दीगृह से कृष्ण

1- कृष्णायन- द्वारका प्रसाद मिश्र, पृ0-69

द्वारा मुक्त कराया जाता है। समाज में इन कन्याओं का कोई गरिमामय स्थान न देखने पर, कृष्ण स्वयं उन्हें अपनाते हैं। उन्हें पत्नी के गरिमामय पद पर प्रतिष्ठित करके, समाज में उनके लिए गौरवमयी व प्रतिष्ठापूर्ण स्थान बनाते हैं -

लीलापति कल्याणमति अपयश सुयश अतीत,
कृपा कटाक्षहिं मात्र तें, कीन्हीं वाम पुनीत। -1

आधुनिक युग में देश के प्रति सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले चरित्र नायकों का निरूपण आधुनिक प्रबन्ध कृतियों में हुआ। पौराणिक चरित्रों में भी इसी त्यागपूर्ण देशप्रेमी के चरित्र का आरोपण हुआ। "कृष्णायन" में कृष्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में त्यागी, व जनप्रेमी मानव के रूप में हुआ है। कृष्ण भौतिकता के व्यामोह से परे आदर्श महामानव हैं। कंस का वध करने के बाद वे न केवल उग्रसेन तथा अपने माता-पिता को बन्दीगृह से मुक्त करते हैं, अपितु कारागार में बन्दी सभी बन्दियों को भी मुक्त कर देते हैं। यहाँ उनके जनप्रेमी रूप का ही अंकन हुआ है। मथुरा जैसे विशाल राज्य पर अधिकार करने के बाद भी, वे उस पर शासन करने के इच्छुक नहीं होते। यहाँ उनका भौतिकता से निरपेक्ष त्यागी व्यक्तित्व का ही निरूपण हुआ है। कृष्ण कहते हैं -

राज्य संभारि बहुरि निज लेहीं, मोहिं निदेश योग्य मम देहीं।
निज र्स्वस्व महर मोहिं दीन्हा, पुत्र-स्नेह पालि बड़ कीन्हा।
आयसु देहिं नृपति, पितु, माता जाहुँ लौटि पुनि ब्रज सुखदाता। -[2]

आधुनिक नवजागरण व राष्ट्रीय आन्दोलनों से समुत्पन्न आधुनिक नव-चेतना के उन्मेष के कारण परम्परागत पौराणिक चरित्रों में देश-प्रेम की भावना की अवतारणा हुई। "कृष्णायन" में कृष्ण का चरित्रांकन देश-प्रेम की उदात्त भावना से युक्त है। कृष्ण भारत को यवन आक्रमण से बचाने के लिए तथा मगधपति के षडयन्त्रों से देश व जन-समाज की रक्षा के लिए ही मथुरा का राज्य स्वीकार

1- कृष्णायन- पृ0 333

2- वही, पृ0-161

करते हैं। कृष्ण का यह स्वरूप "प्रियप्रवास" व "द्वापर" की अपेक्षा सर्वथा मौलिक है।

द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने राजा के रूप में कृष्ण को एक दूरदर्शी शासक के रूप में निरूपित किया है। कृष्ण अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता के कारण दुर्ग की सुरक्षा के लिए मथुरा से द्वारिका में अपनी राजधानी का स्थानान्तरण करते हैं। कृष्ण का यह रूप सर्वथा मौलिक है।

"कृष्णायन" के कृष्ण अहिंसा में भी विश्वास करते हैं। कृष्ण का यह चरित्र निरूपण गाँधीवाद से प्रभावित है। कृष्ण व्यर्थ के रक्तपात को अपना उद्देश्य नहीं मानते। बलराम से अपने विचारों को प्रकट करते हुए वे कहते हैं कि व्यर्थ के संग्राम का कोई औचित्य नहीं होता। युद्ध की निरर्थकता सिद्ध करते हुए वे मानवतावाद को महत्ता देते हैं। वे कहते हैं -

उचित न तदपि सदा संग्रामा, युद्ध निरर्थक गर्हित कामा।
केवल बल श्वापद व्यवहार, बुद्धि-युक्त, मानव आचारा।
बुद्धि साध्य जब लगि नृप-कर्मा, गहब युद्ध पथ घोर अधर्मा।-1

मानवीय रूप में चित्रण होने के कारण इस प्रबन्धकृति में कृष्ण संवेदनशील भावुक मानव के रूप में वर्णित हुए हैं। मथुरा के सुर-दुर्लभ सुख साज के मध्य भी वे ब्रजजनों को नहीं भूल पाते। वे बलराम से पुनः ब्रज चलने के लिए कहते हैं -

एक दिवस हरि बंधु बोलायी, कहेउ "चलहु ब्रज देखहिं जायी।
गोपी, गोप, वत्स, प्रिय धेनू, मिलहिं समोद बजावहिं वेणू।
बसि कछु दिन करि मातु सुखारी, फिरहिं बुझाय वियोग-दवारी।-2

1- कृष्णायन, पृ0-229

2- वही, पृ0-201

इस काव्य रचना में कृष्ण के प्रेमी चरित्र का निरूपण सहज भाव से हुआ है। बालकाल का कृष्ण व राधा का निश्छल, उदात्त प्रेम भाव युवावस्था में सात्विक व दार्शनिक हो जाता है। कृष्ण अपने व राधा के प्रेम को उदात्तता प्रदान करते हुए कहते हैं -

एकहिं मैं और राधिका द्वैत भाव भव-भ्रान्ति।-1

कृष्ण का चरित्रांकन उदात्त रूप में जनकल्याण हेतु सन्नद्व लोकनायक के रूप में हुआ है। कृष्ण जन-समाज की भलाई के लिए अविनय व अपमान तक सहने के लिए तैयार होते हैं। वे कहते हैं -

करन हेतु बहु जन कल्याणा,
सहिहौं सब अविनय अपमाना। -2

"प्रियप्रवास" की भाँति "कृष्णायन" में भी कृष्ण के समष्टिवादी रूप का अंकन हुआ है। "साकेत" में गुप्त जी ने राम को भी समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदानी रूप में प्रस्तुत किया है। "कृष्णायन" के कृष्ण भी समष्टि के लिए व्यष्टि बलिदान को मूल नीति तत्व के रूप में स्थापित करते हैं-

एकहिं नीति तत्व मैं जाना
हेतु समष्टि व्यष्टि बलिदाना
स्वजनहिं बसत जासु मन मांही
सधत धर्म-हित तेहि ते नांही ॥-3

1- कृष्णायन- पृ0 226

2- कृष्णायन - पृ0 496

3- वही, पृ0 274

"अंगराज" कर्ण चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध रचना है। "अंगराज" में "कृष्ण" का चरित्र कूटनीतिज्ञ तथा पांडवों के पक्षधर के रूप में प्रस्तुत है। कौरव पक्ष के कर्ण पर आधारित रचना होने के कारण इसमें कृष्ण के चरित्र के कूटनीतिक पक्ष को अवमूल्यित करके प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण के कृत्य वही हैं, पर उसकी व्याख्या उनके प्रभामंडित चरित्र को खंडित करता है। इसके मूल में कवि का अभिप्रेत है कर्ण सहित कौरवों के चरित्र को प्रभामंडित करना।

"अंगराज" में कृष्ण के परम्परागत शान्ति - प्रेमी चरित्र की नवीन दृष्टिकोण से व्याख्या हुई है। इनमें कृष्ण का चरित्रांकन कूटनीतिज्ञ रूप में हुआ है। एक तरफ वे जन-समाज में अपने यश व कीर्ति हेतु, स्वयं को शान्ति - प्रेमी रूप में प्रचारित करते हैं, वहीं दूसरी तरफ कौरवों के समक्ष सन्धि प्रस्ताव को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, जिसे कोई भी स्वाभिमानी अस्वीकृत कर सकता था। कृष्ण का यह कूटनीतिज्ञ चरित्र अप्रत्यक्षतः आधुनिक युग के राजनीतिक परिस्थिति को भी प्रकट करता है—

> युद्ध-भयदान और भेद के विधान द्वारा,
> करने विवश कुरुराज स्वाभिमानी को।
> सारे लोकग्राम में प्रसिद्ध करने को निज
> सन्धि हेतु निष्फल प्रयास की कहानी को।
> विश्व क्रान्तिकारी यही शान्ति के पुजारी बने।-1

कृष्ण दुर्योधन से सम्पूर्ण कुरुराज की माँग करते हुए, सन्धि - प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं, जिसका अस्वीकृत होना स्वाभाविक ही था। कृष्ण का युद्ध-समर्थक चरित्र उस समय भी परिलक्षित होता है, जब वे कर्ण को पाण्डवों के पक्ष से युद्ध करने के लिए प्रेरित करते हैं। वे कर्ण को उनके जन्म का रहस्य बतलाते हुए, उन्हें पाण्डव पक्ष में सम्मिलित करना चाहते हैं। उनके इस रूप के पीछे

1- अंगराज- आनन्द कुमार (1950 ई0) पृ0 118

कर्ण के अतुलित वीरता से पांडुपक्ष को दृढ़ करने का कूटनीतिक उद्‌देश्य ही रहता है। कृष्ण कर्ण से कहते हैं -

हे जीव, भीषण युद्ध होना हो गया अनिवार्य है,
अब धर्मतः सबके लिए कर्त्तव्य-प्रश्न विचार्य है।
× × ×
तुम राजवंश प्रसूत हो तुम राजवंश प्रधान हो।
निजकर्म के ही संग कुल प्रारब्ध के बलवान हो।
तुम सूतपुत्र नहीं सखे! नृप पांडु के युवराज हो। -1

"अंगराज" में कृष्ण के चरित्र -निरूपण पर आधुनिक कर्मवादी चेतना का प्रभाव भी है। इस रचना में कृष्ण कर्मवादी के रूप में प्रस्तुत है। वे कहते हैं कि कर्म से ही अप्राप्य वस्तु को भी प्राप्त किया जा सकता है। मानव प्रसिद्धि व यश की प्राप्ति कर्म पथ पर चलकर ही करते हैं। कृष्ण अर्जुन को निष्क्रिय व हताश देखकर, उन्हें कर्म की शिक्षा देते हैं -

विपत्ति का व्यापक रूप देखके, क्रियोधमी साहस है न त्यागते।
प्रयत्न में होकर वे असिद्ध भी, प्रसिद्ध होते निज शेष कीर्ति से।।
विनाशकारी भय त्याग दो सभी, तुम्हें मिलेगा फल वीर कर्म का।
उपाय से साधित कर्म कृत्य से, अलभ्य होता कुछ भी न जीव को।-2

आधुनिक युग की नवीन बौद्धिक व तार्किक चेतना के प्रभाव स्वरूप पौराणिक चरित्रों के उन कृत्यों का पुनर्मूल्यांकन हुआ, जो अनुचित होते हुए भी बिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकृत होते रहे। परम्परागत रूप में कृष्ण द्वारा विरथ व निःशस्त्र कर्ण के वध हेतु अर्जुन को प्रेरित करने का प्रसंग प्राप्त होता है। किन्तु इस कृत्य के पीछे बालक अभिमन्यु के वध का प्रतिशोध भी छिपा था। "अंगराज" में कृष्ण जय प्राप्ति हेतु, दुर्नय से भी शत्रु वध करने के समर्थक हैं। वे अर्जुन से कहते हैं -

---

1- *अंगराज*, पृ0 136

2- *वही* - पृ0 245

अब चिन्त्य नहीं है धर्म-नीति। हम ग्रहण करेंगे जयद रीति।।
दुर्नय से भी कर रिपु समाप्ति। बुधजन करते हैं सिद्धि प्राप्ति।।

हे सखे! अभी है कर्ण व्यस्त। निर्हेति, विरथ, आपदा ग्रस्त।।
बन यही पुरोयुध सावकाश। कर देगा तेरा सर्वनाश।।
अब धर्म-त्याग कुन्ती कुमार। छल से इस पर कर प्रहार।।-1

"अंगराज" में कृष्ण का यह स्वरूप सर्वथा नवीन है। "कृष्णायन" में कृष्ण अधर्म का प्रत्युत्तर अधर्म से देने के नीति के पक्षधर हैं, किन्तु "अंगराज" में कृष्ण सीधे-2 अधर्मोन्मुख व छली दृष्टिगत होते हैं। कृष्ण के इस चरित्र के पीछे कवि द्वारा कौरव पक्ष को निर्दोष व आदर्श स्थापित करने का अभिप्रेत भी रहा है।

केदार मिश्र 'प्रभात' कृत "कर्ण" में कृष्ण का चरित्र संक्षिप्त रूप में वर्णित है। कर्ण पर केन्द्रित इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इस रचना में कृष्ण युद्ध विरोधी, शान्ति के समर्थक व मानवता वादी चरित्र के साथ-2 कूटनीतिक रूप में भी प्रस्तुत हुए हैं।

इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में शान्ति के समर्थक मानव के रूप में हुआ है। कृष्ण सन्धि-प्रस्ताव लेकर दुर्योधन के पास जाते हैं। वे उसे विभिन्न तर्क-वितर्कों से समझाते हुए, युद्ध-विमुख करना चाहते हैं। किन्तु अपने प्रयत्न में असफल हो, वे कर्ण को दुर्योधन पक्ष से अलग करने का प्रयत्न करते हैं। इस तथ्य की पृष्ठभूमि में कृष्ण की दूरदर्शिता ही निहित होती है। दुर्योधन कर्ण के शौर्य और बल पर ही अपनी शक्ति का इतना अभिमान करता है। अतः वे कर्ण को ही दुर्योधन से विलग करने का यत्न करते हैं, ताकि युद्ध के विध्वंशक दावानल को रोका जा सके। कृष्ण युद्ध की विभीषिका के प्रति कर्ण को सचेत करते हुए उससे दुर्योधन का पक्ष छोड़ने का आग्रह करते हैं -

---

1- *अंगराज* , पृ0 259-260

सोचो दुनिया किधर जा रही, किसने आग लगाई।
दुर्योधन का साथ न दो, वह रणोन्मत्त पागल है।
द्वेषदम्भ से भरा हुआ अति कुटिल और चंचल है।-1

आधुनिक युग में पौराणिक चरित्रों के माध्यम से नवीन युग चेतना का प्रसार किया गया। भावी युद्ध के प्रति आशंकाग्रस्त तथा पूर्व के युद्ध की विभीषिका से त्रस्त मानव युद्ध के प्रति विरक्त सा हो गया। इस विरक्ति के प्रकटन हेतु परम्परागत आदर्श चरित्र अधिक उपयुक्त थे। "कर्ण" में कृष्ण का चरित्रांकन युद्ध विरोधी मानव के रूप में हुआ है। वे युद्ध को दानवता का द्योतक, भयंकर पागलपन तथा मानवता का महाक्रूर परिहास मानते हैं। वे युद्ध के विषम दावानल को फैलाने में सहयोगी मानव-वृत्तियों की कटु निन्दा करते हैं -

युद्ध भयंकर पागलपन है, द्योतक दानवता का,
महाक्रूर परिहास मनुज का, संस्कृति का मानवता का।
ऐसे पाप - प्रचार कार्य में, तुम हो रहे सहायक,
यह अनुचित है, हे मानव ज्ञानी, पाण्डव कुलनायक।-2

इस रचना में मौलिक रूप में कृष्ण अनीति पर आधारित कूटनीति के पक्षधर के रूप में प्रस्तुत हैं। वे समरांगण मध्य धर्म को त्याज्य मानते हैं। कृष्ण के इस चरित्र पर "अंगराज" का प्रभाव है। पूर्ववर्ती "कृष्णायन" में तथा परम्परागत रूप में कृष्ण अधर्म का प्रत्युत्तर अधर्म से देने के पक्षधर अवश्य हैं, किन्तु धर्म का निषेध नहीं करते। "कर्ण" में कृष्ण युद्ध व धर्म के सम्बन्ध को ही तोड़ देते हैं। वे अर्जुन से कहते हैं -

---

1- कर्ण- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' (1950 ई0), पृ0-46

2- वही, पृ0-48

--------------अधर्म-धर्म क्या

तुमने कब यह जाना

रथारूढ़ हो, या कि विरथ हो,

रिपु कब छोड़ा जाता

युद्ध क्षेत्र में नहीं धर्म से

नाता जोड़ा जाता।-1

"जयभारत" में कृष्ण का चरित्रांकन पूववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में हुआ है। यद्यपि "जयभारत" के कृष्ण चरित्र का अंकन महाभारतीय आधार पर हुआ है, फिर भी उस पर आधुनिक नवचेतना का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। आधुनिक मानवतावादी, बौद्धिक, कर्मवादी चेतना के साथ-2 आदर्शवाद का प्रभाव भी कृष्ण के चरित्र-निरूपण पर पड़ा है।

"जयभारत" में कृष्ण के चरित्र का उदात्त पक्ष है- उनका नीतिज्ञ रूप। द्वारिकाधीश कृष्ण स्वयं ही संधि-प्रस्ताव ले जाने वाले दूत का कार्य करते हैं। कृष्ण का यह रूप परम्परागत ही है। किन्तु समष्टि को युद्ध के भयंकर दावानल से बचाने के लिए प्रयासरत कृष्ण का नीतिज्ञ रूप "जयभारत" में मौलिक रूप वर्णित हुआ है। वे राम और भरत के आदर्श भातृ-प्रेम का उदाहरण रखते हुए कहते हैं कि जहाँ अपनों के लिए राज्य त्याग का आदर्श प्रस्तुत हुआ है, वहीं अपनों के ही राज्य का हरण करना कहाँ तक उचित है?

था अपनों के लिए राज्य का त्याग जहाँ पर

अपनों का ही हरा जाय क्या भाग्य वहाँ पर ?

तात प्रगति का द्वार तनिक नीचा पड़ता है,

उद्धत नर का वहाँ सहज ही सिर लड़ता है।-2

1- कर्ण, पृ0 90

2- जयभारत- पृ0 320

इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन यथार्थवादी व बौद्धिक चेतना से प्रभावित है। कृष्ण कौरव पक्ष द्वारा किये जा रहे अधर्म व अनय पूर्ण कृत्यों के दूरगामी परिणामों को प्रस्तुत करते हुए, उन्हें सचेत करने का प्रयास करते हैं। वे भीष्म से कहते हैं -

रहा धर्म के लिए आपका वंश प्रशंसित,
उसमें ऐसा अनाचार है अति ही अनुचित।
इसका कुछ प्रतिकार आप यदि नहीं करेंगे
तो निश्चय ही बन्धु करों से बन्धु मरेंगे।-1

"जयभारत" में कृष्ण का चरित्र मौलिक रूप में प्रजातंत्र के विरोधी रूप में अंकित हुआ है। इस रचना में आधुनिक युग के चुनाव प्रणाली में 'वोट' पर आधारित प्रजातंत्री व्यवस्था का प्रत्यक्ष संकेत हुआ है, साथ ही उसकी अर्थवत्ता पर भी प्रश्न-चिन्ह लगा है। कृष्ण आधुनिक विचारशील राजनीतिज्ञ की तरह कहते हैं-

हो जाती है साथ बिना जाने ही जनता,
पात्र- योग्य मतदान कहाँ बहुतों से बनता।
बहुजन जिनको यहाँ जानते हैं नामों से,
उनको कितने कहाँ समझते हैं कामों से ?-2

इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन समष्टिवादी महामानव के रूप में हुआ है। कृष्ण के चरित्र में स्व के स्थान पर पर के लिए सचेत संवेदनशीलता प्राप्त होती है। दूसरों के कल्याण के लिए स्वजन, कुल, समाज देश सभी के परित्याग की उनमें गहरी निष्ठा है। यहाँ उनकी समष्टिवादी भावना ही प्रकट होती है। वे कहते हैं -

---

1- जयभारत , पृ0 322

2- जयभारत, पृ0 326

एक स्वजन को त्याग करे कुल कष्ट निवारण,
ग्राम हेतु कुल तजे, ग्राम जनपद के कारण
जनपद जगती सभी तजे आत्मा के हित में
सब मरे व्यर्थ ही जूझकर, यह अनर्थ क्यों कीजिए।-1

कृष्ण युद्ध के दावानल से समष्टि के विनाश को बचाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करते हैं। कृष्ण पाण्डव अर्जुन के साथ किसी एक कौरव के द्वन्द युद्ध से भी युद्ध का निर्णय करने का प्रस्ताव रखते हैं। उनका यह रूप भी जयभारत की अपनी नवीन व्यंजना है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत "रश्मिरथी" कर्ण चरित्र पर आधारित रचना है, इसी कारण इसमें कृष्ण का संक्षिप्त चरित्र-चित्रण ही उपलब्ध होता है। स्वातंत्र्योत्तर कालीन इस रचना में कवि कृष्ण के अलौकिकता व दिव्यत्व का मोह पूर्णरूपेण नहीं त्याग सका है। किन्तु आधुनिक नवीन चेतना का भी प्रभाव कृष्ण के चरित्रांकन पर पड़ा है। मौलिक रूप में कृष्ण युद्ध विरोधी, शान्ति के समर्थक, मानवतावादी व कूटनीतिज्ञ तथा यथार्थवादी मानव के रूप में भी निरूपित हुए हैं।

"रश्मिरथी" में कृष्ण का चरित्रांकन "जयभारत" के कृष्ण की ही भाँति युद्ध विरोधी मानव के रूप में हुआ है। कृष्ण युद्ध के विध्वंशक तांडव नर्तन को रोकने के लिए सन्नद्ध दृष्टिगत होते हैं। युद्ध के विकट और विषम परिस्थितियों तथा उसके परिणाम के प्रति सचेत करते हुए, कृष्ण कहते हैं -

भाई पर भाई टूटेंगे, विष बाण बूँद से छूटेंगे,
वायस-श्रृगाल सुख लूटेंगे, सौभाग्य मनुज के फूटेंगे।-2

1- जयभारत पृ0 328

2- रश्मिरथी- रामधारी सिंह 'दिनकर' (रचना काल-1952 ई0) पृ033

इस रचना में कृष्ण शान्ति प्रेमी व समष्टिवादी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। "जयभारत" में भी कृष्ण के शान्ति- प्रिय व समष्टिवादी रूप का चित्रण प्राप्त होता है, किन्तु "रश्मिरथी" में कृष्ण का यह रूप उदात्त व किंचित विस्तृत धरातल पर अंकित हुआ है। कृष्ण दुर्योधन को युद्ध से विमुख करने का पूर्ण प्रयत्न करते हैं, किन्तु असफलता ही उनके हाथ लगती है। अन्ततः वे कर्ण के प्रति उन्मुख होते हैं। युद्ध की विध्वंशक ज्वाला को फैलाने से रोकने के लिए वे कर्ण से दुर्योधन का पक्ष छोड़ने का आग्रह करते हैं। कर्ण दुर्योधन का मूल शक्ति था। कर्ण के हटने पर दुर्योधन को भी युद्ध से विरत किया जा सकता था। इसी कारण कृष्ण कर्ण से कहते हैं -

चिन्ता है, मैं क्या और करूँ, शान्ति को छिपाकर किस ओट धरूँ?
सब राह बन्द मेरे जाने, हाँ, एक बात यदि तू माने।
तो शान्ति नहीं जल सकती है, समराग्नि अभी टल सकती है।
x x x
कौरव को तज रण रोक सखे, भू का हर भावी शोक सखे।
x x x
रण अनायास रूक जायेगा, कुरुराज स्वयं झुक जायेगा।-1

इस रचना में कृष्ण संवेदनशील तथा मानवतावादी मानव के रूप में निरूपित हुए हैं। वे पाण्डव पक्ष के समर्थक मात्र न होकर समस्त समष्टि के कल्याण के प्रति चिन्तनशील हैं। युद्ध के विकराल ज्वाला से जन-सामान्य की रक्षा हेतु वे विशेषतः चिन्तित हैं -

सोचो क्या दृश्य विकट होगा रण में जब काल प्रकट,
बाहर शोणित की तप्तधार, भीतर विधवाओं की पुकार
निरशन, विषण्ण बिललायेंगे, बच्चे अनाथ चिल्लायेंगे।-2

1- रश्मिरथी- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ0 34, 35, 36

2- वही, पृ0 34

"रश्मिरथी" में कृष्ण के चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका यथार्थवादी रूप। निहत्थे व विरथ कर्ण के वध हेतु कृष्ण अर्जुन को प्रेरित करते हैं- इस प्रसंग को "अंगराज" में कृष्ण का छल माना गया है। "कर्ण" में कूटनीति व "जयभारत" में अधर्म का प्रत्युत्तर अधर्म से देने की प्रवृत्ति मानी गयी। "रश्मिरथी" में कृष्ण बहुत कुछ "जयभारत" से ही प्रभावित हैं। 'दिनकर' ने कृष्ण के चरित्र पर विद्रोही भावना का आरोपण किया है। कृष्ण कौरवों के प्रति विद्रोहात्मक भावना को प्रकट करते हुए, अर्जुन को निहत्थे कर्ण के वध हेतु प्रेरित करते हैं—

हमीं धर्मार्थ क्या दहते रहेंगे? सभी कुछ मौन हो सहते रहेंगे?
कि देंगे धर्म को बल अन्य जन भी? तजेंगे क्रूरता छल अन्य जन भी?
x x x
शिथिल कर पार्थ किंचित भी न मन तू न धर्माधर्म में पड़ भीरू बन तू
कड़ाकर वक्ष को, शर मार इसको, चढ़ा सायक तुरत संहार इसको-"-1

इस रचना में कृष्ण का चरित्र निरूपण उदात्त व मौलिक रूप में व्यक्ति के चरित्र को महत्ता देने वाले मानव के रूप में हुआ है। कृष्ण प्रतिपक्षी कर्ण के चारित्रिक विशिष्टताओं को महत्ता देते हुए, उसे अर्जुन से भी श्रेष्ठ व मनुजता के नेता के रूप में विभूषित करके, गौरवान्वित करते हैं। कर्ण के मृत्युपरात, युद्ध की समाप्ति पर ; कृष्ण युधिष्ठिर से कहते हैं -

समझकर द्रोण मन में भक्ति भरिये,
पितामह की तरह सम्मान करिये।
मनुजता का नया नेता उठा है।
जगत से ज्योति का जेता उठा है।-2

रांगेय-राघव कृत "पांचाली" में कृष्ण का चरित्रांकन सामान्य मानव के रूप में हुआ है। उनके चरित्र पर युगीन परिवेश के सन्दर्भ में नये प्रश्नों को

1- रश्मिरथी-, पृ0 96

2- रश्मिरथी- पृ0 102

उठाने वाले युवा के व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है। उन्हें मनोवैज्ञानिक रूप में, सामयिक चेतनायुक्त तथा युगीन सन्दर्भो के प्रति संवेदनशील व यथार्थवादी मानव के रूप में निरूपित किया गया है।

"पाँचाली" में कृष्ण का चरित्रांकन परम्परागत् दिव्य व अलौकिक रूप से परे, जीवन की विसंगतियों से त्रस्त सामान्य मानव के रूप में हुआ है। कृष्ण का यह चरित्र "पाँचाली" की मौलिकता है। कृष्ण जीवन में अत्याचारों से संघर्षण तथा हर क्षण विभिन्न कठिनाइयों से संघर्ष के प्रति प्रश्नाकुल हैं। वे कहते हैं-

जीवन क्या है वह प्रतिक्षण है लड़ना ही
अत्याचारों से संघर्षण ही जीवन
क्यों त्राहि-त्राहि कर स्वाभिमान खंडित हो,
यों धूल- धूसरित पड़ा क्लान्त है, हारा। -1

इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन आधुनिक मानवतावादी व कर्मवादी चेतना से प्रभावित है। इसके साथ ही आधुनिक विद्रोहात्मक चेतना का प्रभाव भी स्पष्टतः परिलक्षित होता है। पूर्ववर्ती रचनाओं में कृष्ण के कृत्यों का पुनर्मूल्याकन हुआ है, किन्तु "पाँचाली" में कृष्ण के चरित्र पर तद्‌युगीन राजनीतिक व सामाजिक विसंगतियों के प्रति विद्रोही व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है। कृष्ण राजनीति में व्याप्त विलासिता की प्रवृत्ति तथा जन-समाज के शोषण का विरोध करते हुए, उसकी तीव्र भर्त्सना करते हैं। मानव श्रम को महत्ता प्रदान करते हुए, वे कहते हैं-

जो न्याय हेतु जीवित रहते हैं जग में,
उनके हृदय में रोष भयानक पलता,
वे जो मानव-श्रम के सुन्दर गौरव को
जुए से देते स्थान कहीं ऊँचा है-

1- पाँचाली- रांगेय राघव (रचना 1955 ई0) पृ0-10

जब जागेंगे, तब निकलेंगे।
छल से जो हँसते आज बने भूस्वामी,
पायेंगे ठौर न सागर के तल में भी।-1

"पाँचाली" में कृष्ण मौलिक रूप में शक्ति पर आधारित राजतन्त्र के विरोधी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। कृष्ण श्रमिकों के श्रम का उत्पीड़न कर ऐश्वर्य व विलास के साधन प्राप्त करने वालों की तीव्र भर्त्सना करते हैं। यही नहीं वे वैष्णव यज्ञों में स्वर्ण-जड़ित हल लेकर भूमिकर्षण करने वालों की भी निन्दा करते हैं। कृष्ण का यह रूप बौद्धिक व तार्किक चेतना से प्रभावित है। कृष्ण द्रौपदी से कहते हैं -

वैष्णव यज्ञों में सोने के हल लेकर
धरती जोता करते वे दिखलाने को
पर धरती स्वर्ण उगलती है जो श्रम फल
उसको वे लेते छीन महल भरने को।-2

कृष्ण के चरित्र में नारी के प्रति एक नवीन चेतना परिलक्षित होती है। वे नारी के स्वत्व की महत्ता देते हुए, उसे सृष्टिकर्त्री होने के कारण सर्वाधिक गौरवशाली मानते हैं। वे नारी के प्रति पुरूषों के उस निम्न दृष्टिकोण की भर्त्सना करते हैं,जिसमें नारी को वस्तु समझकर द्यूत में दांव पर लगा दिया जाता है। वे द्रौपदी की ओर संकेत करते हुए कहते हैं -

नारी का क्या सम्मान कहो जीवन में?
जो ब्रह्मा सी है सृष्टि कर रही जग में।
वह पराधीन क्यों है बलि पशु सी दीना।-3

1- पांचाली- रांगेय राघव, पृ0 15

2- वही, पृ024

3- वहीं, पृ0 19

"पांचाली" में कृष्ण के परम्परागत धर्म संस्थापक रूप की मौलिक व्याख्या हुई है। कृष्ण जनवादी नेता के रूप में निरूपित हुए हैं। वे कहते हैं कि, जब तक मानव धर्म विस्थापित होता रहेगा, उनके जैसे जनता जनार्दन धर्म संस्थापना हेतु सन्नद्ध रहेंगे -

जब तक न मनुज का धर्मभूमि पायेगा
आयेंगे सदा जनार्दन मेरे जैसे,
जो धर्म स्थापना हेतु लड़ेंगे अविरत।-1

"पांचाली" में मौलिक रूप में दास प्रथा पर आक्षेप किया गया है। कृष्ण दास प्रथा की विसंगतियों की कटु भर्त्सना करते हैं। यही नहीं वे दासों के अधिकारों के प्रति भी नवीन दृष्टिकोण प्रकट करते हैं। तत्कालीन समाज में दासों के मानवीय व मौलिक अधिकारों का भी निषेध करने वाला उच्च वर्ग स्वयं के पास अपरिमित अधिकार क्षेत्र सुरक्षित रखता था। इसी सन्दर्भ में कृष्ण कहते हैं-

यदि धर्म पास है तो क्या वह अधिकारी
हारे उनको अधिकार न उनका जिन पर?
यदि स्त्री हो सकती किसी दास की संपद
तो दास नहीं क्या अधिकारी जग में ?-2

"सेनापति कर्ण" कर्ण-चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध-कृति है। इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन परम्परागत है, किन्तु मौलिक रूप में नीतिज्ञ व बौद्धिक चेतना से भी प्रभावित है। वे शक्ति की तुलना में वे बुद्धि और मानवीय विवेक के समन्वय को सृष्टि-कल्याण का मूल मानते हैं। शक्ति के क्षेत्र में पशु मानव से कई गुना आगे है किन्तु बुद्धि बल के कारण मानव उस पर अधिकार रखता है। मानव भी शक्ति के दम्भ में जब पशु तुल्य हो जाता है, तब विवेक व बुद्धि

1- पांचाली, पृ0 22

2- पांचाली - पृ0 19

विजय श्री प्राप्त करती है। मानव को अपनी शक्ति पर विवेक को अंकुश बनाना चाहिए, तभी वह शक्ति मंगलकारी व कल्याणकारी हो सकती है-

मानव से श्रेष्ठ पशु, किन्तु बुद्धि बल में
हीन है, इसी से वह मानव अधीन है,
छोड़ो रोष, छोड़ो ग्लानि, छोड़ो दंभ बल का,
बुद्धि से विचारकर, देखो हित साधना,
मानव-विवेक जहाँ शक्ति का नियन्ता हो,
निश्चय ही जानो वहाँ मंगल विजय है।-1

"सेनापति-कर्ण" में पूर्ववर्ती रचना "अंगराज" की भाँति कृष्ण के कूटनीतिक चरित्र का अंकन हुआ है। कृष्ण युद्ध में विजय प्राप्ति हेतु कूटनीति को महत्ता प्रदान करते हैं -

कूटनीति कहती जिसे हो, मैं विजय की
नीति मानता हूँ उसी नीति से समर में
विजयी बने हैं सुत पाण्डु के ------2

"स्वातंत्र्योत्तर प्रबन्ध-कृति "कनुप्रिया" में धर्मवीर भारती ने कृष्ण के सामान्य मानवी रूप का निरूपण किया है। इस रचना में कृष्ण व राधा के सनातन प्रेम का भी अंकन हुआ है। छायावादोत्तर रचना होने के कारण इस रचना में 'नयी-कविता' की पुरातन जीवन मूल्यों के सारहीन तत्वों के प्रति विद्रोहात्मकता की भी अभिव्यक्ति हुई है। 'नयी-कविता' में युग जीवन की विषम स्थितियों एवं समस्याओं को भी उभारा गया है। "कनुप्रिया" में भारती जी ने महाभारत युग के नेता कृष्ण का चरित्रांकन आधुनिक राजनीतिक व सामाजिक सन्दर्भ में रखकर निरूपित किया है। कृष्ण के जिन कृत्यों को ईश्वरीय तथा आदर्श मानकर कर स्वीकृति मिलती रही उन कृत्यों की आधुनिक युग-सन्दर्भ से जोड़ते

1- सेनापति कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, (प्र॰प्र॰1958 ई0) पृ066-67

2- वही, पृ0 208

हुए व्याख्या की गई।

"कनुप्रिया" में कृष्ण का चरित्रांकन राधा के शब्दों में हुआ है। इसमें कृष्ण प्रत्यक्षतः वर्णित नहीं हुए हैं। "कनुप्रिया" में कनु अप्रत्यक्ष हैं, फिर भी इस रचना में आद्यान्त उन्हीं के आदर्शों, युगान्तकारी सिद्धान्तों तथा सशक्त जीवन मूल्यों का अंकन हुआ है। इस रचना में भारती जी ने कृष्ण के परम्परागत् मान्यताओं को टूटे क्षण व रीते घट सदृश असफल करार दिया है। इस रचना में प्रथमतः महाभारत युद्ध की अप्रासंगिकता सिद्ध करते हुए इस युद्ध में कृष्ण के उत्तरदायित्व का मूल्यांकन हुआ है। उनके कर्म के औचित्य- अनौचित्य की आलोचना हुई है। छायावादोत्तर रचनाकार "भारती" जी ने कनुप्रिया में कृष्ण का चरित्रांकन आदर्श प्रेमी, संवेदनशील व भावुक मानव, अन्तर्द्वन्द ग्रस्त सामान्य मानव तथा अपनी असफलता से त्रस्त मानव के रूप में किया है।

आधुनिक नवचेतना के प्रभाव स्वरूप कृष्ण व राधा के प्रेम को भारती ने "कनुप्रिया" में प्रथम बार निश्छल व सहज प्रेम के उदात्त रूप का अंकन किया है। पौराणिक रूप में रसराज कृष्ण का प्रेम "कनुप्रिया" में मौलिक रूप में निरूपित किया गया है। कृष्ण का प्रेम वासना व शारीरिक आकर्षण से परे अद्भुत है, यह विशिष्ट आदर्शों पर आधारित है। कृष्ण के इस उदात्त रूप का स्मरण करती हुई राधा कहती है -

हाय मैं सच कहती हूँ
मैं इसे समझी नहीं, नहीं समझी, बिल्कुल नहीं समझी।
यह सारे संसार से पृथक पद्धति का
जो तुम्हारा प्यार है न
इसकी भाषा समझ पाना क्या इतना सरल है।-1

1- कनुप्रिया - धर्मवीर भारती, ‌‌(प्र॰सं॰-1959 ई0), पृ0 31

पौराणिक रूप में दिव्य तथा अलौकिक व आधुनिक युग में 20वीं शती के पूर्वार्द्ध के आदर्श महामानव कृष्ण का चरित्र, स्वातंत्र्योत्तर काल तक आते-आते सामान्य संवेदनशील व भावुक युवा के रूप में वर्णित होने लगा। कृष्ण भी सामान्य मानव सदृश प्रेम के कोमल भावनाओं से युक्त ऐसे प्रेमी हैं, जो प्रेम के समक्ष सब कुछ भुला बैठते हैं। कठिन से कठिन कृत्यों को करने वाले, भयानक से भयानक राक्षसों का पल में संहार करने वाले तथा ब्रजवासियों को भीषण जल-प्रलय से बचाने वाले, महापराक्रमी व शूरवीर कृष्ण, साधारण सी वर्षा से बचने के लिए राधा के आँचल का आश्रय लेते हैं। कृष्ण को वर्षा से बचाने के लिए राधा उन्हें अपने बाहों में छिपाते हुए गाँव की सीमा तक पहुँचाती है। कृष्ण का यह चरित्र उनके भावुक व कोमल हृदय वाले प्रेमी व्यक्तित्व को ही प्रकटन करता है। राधा के शब्दों में कृष्ण के इस चरित्र का निरूपण हुआ है-

पर दूसरे ही क्षण
जब घनघोर बादल उमड़ आये हैं
× × ×
तुम्हें सहारा दे देकर
अपने बाँहों में घेरकर गाँव की सीमा तक तुम्हें ले आयी हूँ।-1

धर्मवीर भारती जी ने "कनुप्रिया" में कृष्ण का चरित्रांकन दोहरे मनःस्थिति द्वन्द्व से ग्रस्त मानव के रूप में किया है। इतिहास की शक्तियों के समक्ष पराजित तथा चतुर्दिक असफलता के मानसिक व्यथा से ग्रस्त कृष्ण का चरित्र "कनुप्रिया" की मौलिकता है। महाभारत युद्ध के औचित्य- अनौचित्य तथा सार्थकता व निरर्थकता के प्रति चिन्तनशील कृष्ण, स्वयं अपने ही द्वारा किये गये निर्णय के प्रति असन्तुष्ट व आत्मव्यथित हैं। विषाद पूर्ण दृष्टि से गहरे अनन्त में देखते हुए कृष्ण के अन्तर्द्वन्द्व ग्रस्त चरित्र, "कनुप्रिया" में राधा के शब्दों में वर्णित हुआ है-

---

1- कनुप्रिया धर्मवीर भारती, पृ0 35

जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म

जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म

× × ×

---------"यदि कहीं उस दिन मेरे पैताने

दुर्योधन होता तो ----------------आह

इस विराट समुद्र के किनारे ओ अर्जुन, मैं भी

अबोध बालक हूँ।-1

यहाँ कृष्ण के विवशता व आत्मव्यथा का ही निरूपण हुआ है। डॉ0 रामस्वार्थ सिंह के शब्दों में_"स्वधर्म अधर्म के सम्बन्ध में कृष्ण के पश्चातापपूर्ण चिन्तन की कल्पना करके युद्ध के न्यायपूर्ण होने की धारणा का निषेध किया गया है।"-2 आधुनिक प्रबन्ध - कृतियों में "कनुप्रिया" के कृष्ण का चरित्र सर्वथा विलग है।

"महाभारत" के मुख्य कर्ताधर्ता तथा योगीश्वर कृष्ण अन्ततः इतिहास की दुर्दान्त शक्तियों के समक्ष पराजित हो जाते हैं। वे अपने इस पराजय को भूलने तथा अपनी सार्थकता के लिए राधा के सहज व सामान्य प्रेम के प्रति उन्मुख होते हैं। वे अपने सम्पूर्ण दायित्व, धर्म-अधर्म का चिन्तन तथा सत्यासत्य के झमेले को त्यागकर पुनः ब्रज के कन्हैया के रूप में राधा के प्रेमाश्रय में लौटना चाहते है। कृष्ण का यह स्वरूप उनके भावुकता व संवेदनशीलता का द्योतक तो है ही, साथ ही परम्परागत् सारहीन मूल्यों के विखंडन का भी निरूपण है -

तुमने असफल इतिहास को

जीर्ण-वसन की भाँति त्याग दिया है

और इस क्षण

केवल अपने डूबे हुए

1- कनुप्रिया, पृ0-75

2- नई कविता और पौराणिक गाथा- डॉ0 रामस्वार्थ सिंह पृ0164

दर्द से पके हुए
तुम्हें बहुत दिन बाद मेरी याद आयी है।-1

जगदीश चतुर्वेदी कृत "सूर्यपुत्र" कर्ण पर आधारित प्रबन्ध कृति है। इस रचना में कृष्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में युद्ध के विरोधी तथा यथार्थवादी मानव के रूप में हुआ है। कृष्ण दुर्योधन को युद्ध के विध्वंशक रूप तथा उसके दुष्परिणामों से अवगत कराते हुए उसे युद्ध की निरर्थकता के प्रति जागरूक करना चाहते हैं । उनका यह प्रयास दुर्योधन की अहंवृत्ति व मदान्धता को दूर करने में विफल रहता है। कृष्ण के इस चरित्र निरूपण पर आधुनिक नव्य चेतना व गाँधीवाद का भी प्रभाव दृष्टिगत होता है। गाँधी जी ने भारत पाकिस्तान के बँटवारे को .रोकने तथा उस परिस्थिति से उत्पन्न होने वाली विध्वंशक ज्वाला से भारतीय-जनमानस को बचाने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया था। उन्होंने जिन्ना को समझाने का अथक प्रयत्न किया किन्तु असफल रहे। "सूर्यपुत्र" में कृष्ण भाई-भाई के मध्य होने वाले भीषण महाभारत के युद्ध को रोकने के लिए तथा इसके ज्वाला से समस्त देश को बचाने हेतु प्रयत्न करते हैं, किन्तु दुर्योधन की जिद पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता -

रोकना चाहा, यह नर मेध,
जाकर समझानी चाही, अनीति दुर्योधन को
बतानी चाही युद्ध की व्यर्थता और जीवन का औचित्य
घृणा का परिणाम और व्यर्थ की जिद में
भाइयों के बीच सुलगते देष के दुखान्त
x x x
कृष्ण ने समझाया इस द्वेष का घातक परिणाम
इन प्रतिहिंसा के लपटों में
धधकते देश की भावी दुर्दशा।-2

1- कनुप्रिया- पृ0 76
2- सूर्यपुत्र, जगदीश चतुर्वेदी- पृ0 77

राधा

भारतीय वाङ्मय में राधा कृष्ण की चिर प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत है। वे कृष्ण के बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक ही उनका सान्निध्य प्राप्त कर पाती हैं। फिर भी वे कृष्ण की आजीवन प्रेमिका बनी रहती हैं। श्रीमद्‌भागवद् पुराण कृष्ण ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा के प्रेमिका रूप व अन्ततः गोलोकगमन का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।-1 भक्तिकाल में कृष्ण के साथ राधा के प्रेमी रूप का अंकन हुआ, रीतिकाल मे राधा के इसी रूप को विस्तृत धरातल प्राप्त हुआ।

आधुनिक काल में नवजागरण व आन्दोलनों से उत्पन्न चेतना विशेषतः नारी चेतना का प्रभाव राधा के चरित्र पर भी है। परम्परागत रूप में प्रेमिका के संक्षिप्त क्षेत्र में विचरण करती राधा का चरित्रांकन उनके स्वतन्त्र रूप को लेकर होने लगा। राधा को समाज व विश्व के कल्याण पथ के अनुगामी रूप में निरूपित किया जाने लगा। आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में राधा सामान्य मानवीय चरित्र के रूप में कृष्ण की प्रेमिका के साथ लोकसेविका, मानवतावादी, दीनोद्धारक तथा विश्व-प्रेमी आदि रूपों में अंकित हुई है।

राधा के चरित्र को नवीन रूप में प्रस्तुत करने वाली सर्वोत्कृष्ट रचना "प्रियप्रवास" है। आधुनिक नव्य चेतना के प्रभाव स्वरूप इस रचना में राधा प्रेम और कर्तव्य के प्रति समर्पित एक आदर्श भारतीय नारी के रूप में व्यंजित हुआ है। इस रचना में राधा आदर्श प्रेमिका, मानवतावादी, लोकसेविका, दीनोद्धारक, समाज सुधारक, विश्व प्रेमी, जीव व प्रकृति प्रेमी के साथ ही संवेदनशील व त्यागमयी आदर्श नारी के रूप में चरित्रांकित हुई है।

"प्रियप्रवास" में राधा के प्रेमिका रूप का उदात्त रूप में अंकन हुआ है। राधा प्रेमिका रूप से ऊपर उठकर कृष्ण के साथ जीवन व्यतीत करने का स्वप्न देखती हैं। वे कहती हैं-

मम पति हरि होवे चाहती मैं यही हूँ।-2

1- ब्रह्म वैवर्त पुराण- पृ0-609-18,1003
2- प्रियप्रवास- पृ0-42

इस रचना में राधा के चरित्र को इतना उदात्त बनाया गया है कि वे कृष्ण के वियोग में हाहाकार नहीं करती बल्कि अपने दुःख को जनकल्याण में रूपान्तरित कर देती हैं। वे कृष्ण के वियोग में निष्क्रिय पड़े गोकुल वासियों को उद्यमशील बनाती हैं। उन्हें ऐसे कार्यों की ओर उन्मुख होने का निर्देश देती है, जिससे कृष्ण को सुख मिले -

जी से जो आप सब करते प्यार प्राणेश को हैं।
तो पा भू में पुरुष तन को खिन्न होके न बैठे।
उद्योगी हो परम रुचि से कीजिए कार्य ऐसे।
जो प्यार है परम प्रिय के विश्व के प्रेमिकों के।-1

आधुनिक मानवतावादी चेतना के प्रभाव स्वरूप इस रचना में राधा जनसेवी व दीनोद्धारक नारी के रूप में मौलिक रूप में निरूपित हुई हैं। राधा कृष्ण के वियोग में न तो रोती-तड़पती हैं न ही पुष्प-शय्या पर व्यथिता बनी पड़ी रहती हैं प्रत्युत् वह अपना सम्पूर्ण समय लोक सेवा में समर्पित करती है। वे गोप बालकों को शिक्षा देती हैं, पुष्परचित खिलौनों से उनका मन बहलाती है। गाँव के वृद्ध व रोगी जनों की सेवा करती है तथा दीन-हीन निर्बल व विधवा नारियों की यथायोग्य सहायता करती है—

संलग्ना हो विविध कितने सांत्वना कार्य में भी।
वे सेवा थी सतत् करती वृद्ध रोगी जनों की।
दीनों हीनों निर्बल विधवा आदि को मानती थी।
पूजी जाती थी ब्रज-अवनि में देवियों सी अतः थी।-2

"प्रियप्रवास" में राधा देश प्रेमी नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है। राधा के चरित्र में त्यागमयी नारी का उदात्त रूप प्राप्त होता है, वे कृष्ण से

1- प्रियप्रवास- अयोध्यासिंह 'हरिऔध' - पृ0- 267

2= प्रियप्रवास पृ0-268

मात्र इतना चाहती हैं कि वे देश के कल्याण व समष्टि कल्याण में सन्नद्ध रहें। भले ही वे इस कार्य के कारण घर आये या न आयें। राधा के इस चरित्र में देश-प्रेम के साथ अपूर्व त्याग व प्रेरणा छिपी है। प्रिय के अनुराग व लोकानुराग में, वे लोकानुराग को ही महत्ता देती हैं -

प्यारे जीवें जगहित करें, गेह चाहे न आवें। -1

राधा के चरित्र का बौद्धिक व उदात्त पक्ष है, उनका समाज - सुधारक रूप। राधा जन-समाज के आपसी वैमनस्य एवं कलुष को दूर करके उनके घरों में शान्ति की स्थापना करती हैं –

खो देती थीं कलह-जनिता अवधि के दुर्गुणों को।
धो देती थी मलिन मन की व्यापिनी कालिमायें।
बो देती थीं हृदय -तल में बीज भावज्ञता का।
वे थीं चिन्ता-विजित घर में शान्ति धारा बहाती। -2

इस रचना में राधा केवल जन समाज के प्रति ही जागरूक नहीं हैं, प्रत्युत वे प्रत्येक जीव-जन्तुओं से प्रेम करती हैं। वे चीटियों को आटा व पक्षियों को अन्न व जल देती हैं। उनकी सदय दृष्टि कीटों तक पर पड़ती हैं। यही नहीं, वे वृक्षों के पत्तों तक को व्यर्थ में नहीं तोड़ती–

आटा चींटी, विहग गण थे वारि और अन्न पाते।
देखी जाती सदय उनकी दृष्टि कीटादि में भी।
पत्तों को भी न तरुवर के वे वृथा तोड़ती थीं।
जी से वे भी विरत रहतीं भूत सवर्द्धना में। -3

1- प्रियप्रवास सर्ग-16, पृ0 98

2- वहीं, सर्ग-17, पृ0 268

3- वही, सर्ग-17, पृ0 268

"प्रियप्रवास" में राधा के चरित्र को इतना उदात्त बनाया गया है कि वे देश-प्रेम ही नहीं, विश्व प्रेम की सीमाओं तक अतिक्रमण करती हैं। राधा संसार के समस्त चर-अचर वस्तुओं में, उनके रूप रंग में कृष्ण को ही देखती हैं। इसी कारण समस्त विश्व से उन्हें अगाध प्रेम होता है। वे कहती हैं-

मेरे जी में अनुराग महा विश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में।
पाई जाती विविध जितनी वस्तु हैं जो सबों में।
मैं प्यारे को अमित रंग और रूप में देखती हूँ।-1

उदात्त आदर्शों के साथ-2 राधा में मानवगत दुर्बलताएँ व संवेदनाएँ भी हैं। कृष्ण के विरह को भूलने के लिए वे स्वयं को समष्टि के प्रति समर्पित कर देती हैं। किन्तु मन पर किसी का अधिकार नहीं होता, वह तो अपने प्रिय तक पहुँचना ही चाहता है। राधा अपनी मानवीय दुर्बलता व आत्मव्यथा को प्रकट करती हुई, उद्धव से कहती हैं -

मैं नारी हूँ, तरल उर हूँ, प्यार से वंचिता हूँ,
जो होती हूँ विकल, विमना, व्यस्त वैचित्र्य क्या है?-2

राधा के इस चरित्र का मौलिक पक्ष यह भी है कि वे परम्परागत रूप की भाँति न तो उद्धव पर अपना अप्रत्यक्ष क्रोध व्यक्त करती हैं, न ही उन्हें कोई उलाहना ही देती हैं। वे उद्धव के सन्देश को गम्भीरता से सुनकर अपनी आत्मव्यथा को संयमित रूप में सहज अभिव्यक्ति प्रदान करती है।

समग्रतः "प्रियप्रवास" में राधा का चरित्रांकन कृष्ण की निःस्वार्थ प्रेमिका व लोक-सेविका का है। डॉ0 गोविन्द राम शर्मा के शब्दों में -"प्रियप्रवास

1- प्रियप्रवास- सर्ग 16, पृ0 255

2- वही, पृ0-50

की राधा भारतीय नारी की समस्त विभूतियों को आत्मसात करती हुई हमारे सामने आती हैं। वह समाज और देश की एक सच्ची सेविका है जो व्यष्टि को समष्टि में अन्तर्निहित कर देती है।"-1 लोकसेविका राधा कृष्ण के प्रेम को गौण करते हुए जन-समाज के कल्याण पथ की ओर अधिक झुकी हैं।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "द्वापर" में राधा का संक्षिप्त चरित्रांकन प्राप्त होता है। इस रचना में राधा का चरित्र त्यागमयी आदर्श प्रेमिका के रूप में चित्रित है। राधा अपना धर्म कर्म सर्वस्व कृष्ण के प्रति समर्पित करते हुए, कृष्णमय हो जाती है। वे अपना सर्वस्व कृष्ण को मानती हुई कहती हैं -

शरण एक तेरे में आई, धरे रहें सब धर्म हरे।
तुझको- एक तुझी को अर्पित, राधा के सब कर्म हरे।-2

आधुनिक आदर्शवादी चेतना के प्रभाव स्वरूप राधा के चरित्र पर त्यागमयी नारी के व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है। "द्वापर" की राधा कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम रखती हैं, किन्तु अपने इस प्रेम को प्रिय-पथ की बाधा नहीं बनने देना चाहती। वे कृष्ण को अपने उदात्त पथ पर चलने का सन्देश भेजती हुई कहती हैं कि-वे रो- रोकर उनका वियोग सह लेंगी किन्तु वे अपने कर्त्तव्य व कर्म को पूर्ण करते रहें। यहाँ राधा का चरित्र "प्रियप्रवास" के सन्निकट है। राधा कृष्ण के प्रति सन्देश देती हुई,कहती है-

निज पथ धरे चले जाना तू, अलं मुझे सुधि-सुधा हरे।
सब सह लूँगी, रो-रोकर मैं, देना मुझे न बोध हरे।-3

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डॉ गोविन्द राम शर्मा, पृ0-144
2- द्वापर- मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 11
3- वही - पृ0- 12

द्वारका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" में राधा का चरित्र-चित्रण अति संक्षिप्त है। वे 'श्याम सखी राधा' के रूप में कृष्ण की चिरसखी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। इस रचना में राधा व कृष्ण के परम्परागत प्रेम का ही अंकन हुआ है। राधा कृष्ण की अनन्य शक्ति, के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। 'क्षीर सागर की सुधि' के मिस राधा व कृष्ण के चिरन्तन प्रेम का प्रकटन हुआ है।

"कनुप्रिया" नयी कविता की प्रतिनिधि रचना है। इसमें राधा के प्रेमिका रूप का चित्रण नवीन संवेदनाओं के धरातल पर किया गया है। "प्रियप्रवास" और "द्वापर" में राधा के समष्टिवादी व्यक्तित्व से भिन्न "कनुप्रिया" में राधा व्यक्ति के रूप में, कनु की प्रिया के रूप में चित्रित हैं। वह व्यष्टि के धरातल पर ही समष्टि को, इतिहास तथा इतिहास पुरुष कृष्ण को चुनौती देती हैं। वह प्रश्नाकुल हो कृष्ण के समस्त कृत्यों का आकलन करती हैं।" राधा की यह प्रश्नाकुलता ही वह नवीन भाव-बोध है, जो इस रचना को पूर्ववर्ती कृष्ण काव्य की सापेक्षता में विशिष्ट बनाता है। परम्परागत कृष्ण काव्य में राधा विरहानुभूति के क्षणों में कृष्ण के और भी निकट आ जाती हैं। लेकिन "कनुप्रिया" की राधा का विरह - दुःख परम्परागत राधा की दुःखानुभूति से अधिक गहरा तथा व्यापक है, क्योंकि कनुप्रिया सम्पूर्ण इतिहास को सार्थकता प्रदान करने वाले कृष्ण के व्यक्तित्व की रागात्मक पहलू है।"-1 "कनुप्रिया" की राधा का चरित्रांकन संवेदनशील व कोमल हृदया नारी के साथ-साथ बौद्धिक व चिन्तनशील नारी के रूप में हुआ है। वस्तुतः उनका बौद्धिक व चिन्तनशील स्वरूप ही प्रमुख है।

छायावादी भावाभिव्यंजकता तथा संवेदनात्मकता की प्रवृत्ति के प्रभाव-स्वरूप "कनुप्रिया" की राधा सहज मानवीय व संवेदनशील नारी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। वह कृष्ण के साथ बिताये प्रेम के क्षणों का स्मरण करती हुई कभी

1- आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा-डॉ0 मालती सिंह पृ0232

अपने पैरों मे महावर लगाने, कभी सम्पूर्ण समर्पण की भावना से ओत-प्रोत हो उठती हैं। राधा कृष्ण द्वारा आम्रबौर से भरे गये माँग की याद करती हुई व्यथित हो उठती है-

क्या अपने अनजाने में ही
उस आम्र के बौर से मेरी क्वाँरी उजली माँग
भर रहे थे साँवरे? -1

इस रचना में राधा के विवश व व्यथित चरित्र का अंकन हुआ है। मौलिक रूप में राधा चाहते हुए भी कृष्ण की जीवनसंगिनी न बन सकीं। उसका प्रेम ब्रज की गलियों में विवश तड़पता रहा। वे संशयाकुल हो उठती है-

अब भी जो बीत गया,
उसी में बसी हुई
अब भी उन बाहों के छलावे में
कसी हुई
× × ×
अब सिर्फ मैं हूँ, यह तन है-
और संशय है। -2

"कनुप्रिया" में राधा का चरित्रांकन आधुनिक बौद्धिक चेतना से भी प्रभावित है। राधा अपने अस्तित्व के प्रति चिन्तनशील है। वह इस प्रश्न से व्याकुल है कि क्या लीलाभूमि और युद्धभूमि के मध्य कृष्ण ने उसे सेतु मात्र बना दिया है?

सुनो कनु
क्या मैं सिर्फ एक सेतु थी तुम्हारे लिए
लीला भूमि और युद्ध क्षेत्र के
अलंघ्य अन्तराल में। -3

1- कनुप्रिया- धर्मवीर भारती, पृ0-23
2 - वही - पृ0 58-59
3 - वही - पृ0-60

इस रचना में राधा का चरित्र मौलिक रूप में कृष्ण के प्रति विद्रोही नारी के रूप में अंकित हुआ है। परम्परागत रूप में राधा कृष्ण के वियोग में व्यथित दिन-रात आँसू बहाने वाली नारी के रूप में ही वर्णित की गयी हैं, किन्तु "कनुप्रिया" में राधा आँसू बहाकर नहीं रह जातीं। वे कृष्ण के अनुत्तरदायित्व पूर्ण कृत्यों की सहज भर्त्सना करती हैं। वे कहती हैं-

जहाँ तुमने मुझे अमित प्यार दिया था
वहीं बैठकर कंकड़, पत्ते, तिनके, टुकड़े चुनती रहती हूँ
तुम्हारे महान बनने में
क्या मेरा कुछ टूटकर बिखर गया है।-1

राधा का चरित्र बौद्धिक व युद्ध के विरोधी नारी के रूप में भी अंकित हुआ है। कृष्ण 'महाभारत' के वृहत् युद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, परन्तु राधा को कृष्ण का यह रूप किंचित प्रिय नहीं होता। वह कृष्ण के पाप -पुण्य, धर्माधर्म, न्याय-दण्ड तथा क्षमा-शील वाले युद्ध पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहती हैं-

अकल्पनीय अमानुषिक घटनायें युद्ध की
क्या ये सब सार्थक हैं ?-2

राधा के अन्दर विद्रोह का भी अंकुरण प्राप्त होता है। युद्ध की विभीषिका में जन-समाज के त्रस्त स्थिति को देख राधा विक्षुब्ध हो उठती है। राधा कृष्ण के उस निर्णय पर भी आक्षेप करती हैं जिसके अनुसार कृष्ण अर्जुन का पक्ष लेते हैं। वे कृष्ण के इस निर्णय के अनौचित्य को सिद्ध करते हुए कहती हैं-

---

1- कनुप्रिया- पृ0 63

2- कनुप्रिया - पृ0 68

और जुए के पाँसे की तरह तुम निर्णय को फेंक देते हो
जो मेरे पैताने है वह स्वधर्म
जो मेरे सिरहाने है वह अधर्म·········1

"कनुप्रिया" में राधा पूर्ण समर्पिता, भावाकुल प्रिया के रूप में अंकित हुई है। कृष्ण द्वारा आजीवन विस्मृत किये जाने के बाद भी अन्त में उनकी पुकार सुनकर उनके निकट पहुँच जाती है। राधा के चरित्र का यह सर्वथा मौलिक व उदात्त पक्ष है। वे कहती हैं-

तुमने मुझे पुकारा था न
मैं आ गयी हूँ कनु!
x x
तुम्हें मेरी जरूरत थी न , लो मैं सबकुछ छोड़कर आ गयी हूँ।-2

बलराम

कृष्ण के अग्रज होने पर भी पौराणिक ग्रंथों में बलराम का चरित्र कृष्ण के अनुगामी के रूप में अधिकांशतः प्रस्तुत किया गया है। श्रीमद्भागवद् पुराण के अनुसार वसुदेव व रोहिणी के पुत्र बलराम को शेषावतार भी माना जाता है। बलराम कृष्ण के साथ-2 राक्षसों का विनाश करते हैं तथा अत्याचारियों का मान-मर्दन करते हैं। यदुवंश के नष्ट हो जाने पर योगबल से अपना प्राण त्याग देते हैं।-3

"प्रियप्रवास" कृष्ण व राधा पर आधारित रचना है। उसमें बलराम का चरित्रांकन नहीं हुआ है।

1- कनुप्रिया- पृ0 75

2- कनुप्रिया, पृ0-78,79

3- श्रीमद्भागवद्पुराण, दशम व एकादश स्कन्ध

मैथिलीशरण गुप्त कृत "द्वापर" में बलराम का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है। "द्वापर" में बलराम का चरित्र-चित्रण आधुनिक मानवतावादी, बौद्धिक, आदर्शवादी व कर्मवादी चेतना से प्रभावित है।

बलराम प्रगतिशील विचारधारा के बौद्धिक युवा के रूप प्रस्तुत हुए हैं। वे जीवन की महत्ता को स्वीकार करते हुए, जीवन के उद्देश्यों के प्रति जागरूक हैं। जीवन को निरुद्देश्य व्यतीत करने की तुलना में महत लक्ष्य प्राप्ति को महत्त्व देते हैं। बलराम युवा वर्ग को प्रेरित करते हुए कहते हैं-

रखते हो तो दिखलाओ कुछ, आभा उगते तारे,
ओज, तेज, साहस के दुर्लभ, दिन है यही हमारे।-1

बलराम संकीर्ण मानसिकता का निषेध करते हैं। वे खुले विचार से व बौद्धिक रूप से उदात्त लक्ष्य प्राप्त करना चाहते हैं। वे विकास पथ की ओर प्रेरित करते हुए कहते हैं-

अपरिष्कृत संकीर्ण कहीं वह, मार्ग न होने पावे।
थल से जल में, जल से नभ में विस्तृत होता जावे।--2

"द्वापर" में बलराम उन परम्परागत रूढ़ियों के विरोधी हैं जिनका समाज के उपयोगिता की दृष्टि से कोई महत्व नहीं है। आधुनिक संदर्भ में निरर्थक एवं अप्रासंगिक परम्पराओं को मानव जीवन के लिए विनाशकारी समझकर उसका विरोध करते हैं-

जहाँ सर्प की भ्रान्ति रज्जु में, वहाँ विनोद वरण है,
किन्तु सर्प की रज्जु समझना, यह प्रत्यक्ष मरण है।
बन्धनः कर्तनार्थ पुरखों ने, हमको सार दिया है।-3

1- द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 32
2- वही, पृ0 34
3- वही, पृ0 35

गुप्त जी ने बलराम का चरित्र आदर्शवादी मानव के रूप में भी प्रस्तुत किया है। बलराम परम्परागत मान्यताओं के अर्थहीन व अप्रासंगिक तत्वों के विखंडन के समर्थक हैं। किन्तु उन परम्पराओं के प्रति उनमें श्रद्धा है जो देश व समाज के लिए आदर्श हैं। वे ऐसी परम्पराओं के सुरक्षा के लिए तत्पर दृष्टिगत होते हैं। वे कहते हैं-

किन्तु साथ ही साथ उन्होंने, उसका भार दिया है।
जितना उसे स्वच्छ रक्खोगे, उतनी धार बहेगी,
और नहीं तो धूल-छार ही, अपने हाथ रहेगी।-1

"द्वापर" में बलराम बौद्दिक, स्वाभिमानी तथा दूरदर्शी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। प्रत्येक युग की अपनी अलग-2 विशिष्टता होती है। बलराम अपने युगीन जीवन - सन्दर्भो को महत्ता देते हुए मानव को विकास का सन्देश देते हैं। एक जागरूक युवा की भाँति वे कहते हैं-

अपने युग को हीन समझना, आत्महीनता होगी,
सजग रहो, इससे दुर्बलता, और दीनता होगी।
जिस युग में हम हुए, वही तो, आपने लिए बड़ा है,
अहा ! हमारे आगे कितना, कर्मक्षेत्र पड़ा है।-2

इस रचना में बलराम का चरित्र यथार्थवादी मानव के रूप में अंकित हुआ है। बलराम विवेक व तार्किकता को महत्वपूर्ण मानते हैं। वे उसके नाम पर व्याप्त अधर्म का निषेध करते हैं। वे ऐसे अधर्म की भर्त्सना करते हैं-

सावधान ! युग के अधर्म को, हम युग-धर्म न समझें,
कर्म नहीं, हम पतित आप, यदि उनका मर्म न समझें।-3

1- द्वापर-मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 33

2- द्वापर, पृ0-, 37

3- वही, पृ0-37

आधुनिक कर्मवादी चेतना का प्रभाव भी बलराम के चरित्रांकन पर है। बलराम जन-जन को कर्म के प्रति उन्मुख करते हुए उन्हें महत लक्ष्य प्राप्ति की प्रेरणा देते हैं। कर्म की महत्ता की स्थापना करते हुए, वे इसकी अनिवार्यता की ओर संकेत करते हैं-

किन्तु कर्म-कौशल से यदि हम, अपना मुँह मोड़ेंगे
वरुणदेव तो हमें बहाये, बिना नहीं छोड़ेंगे।-1

"द्वापर" में बलराम का चरित्रांकन मौलिक रूप में आधुनिक बौद्धिक व वैज्ञानिक चेतना से प्रभावित है। वे वृष्टि पर इन्द्र का अधिकार मानते हुए भी उसकी बौद्धिक व तार्किक व्याख्या करते हैं। वे वर्षा के जल को पृथ्वी का ही जल मानते हैं तथा वर्षा का कारण पृथ्वी का आकर्षण मानते है-

अम्बु अन्ततः उर्वी का ही, निश्चित वर्षण जिसका,
एक विभाजन मात्र व्योम का, पर आकर्षण किसका?-2

"द्वापर" में मौलिक रूप में बलराम का चरित्र स्वदेश-प्रेमी मानव के रूप में प्रस्तुत हुआ है। बलराम के हृदय में अपने देश के प्रति अप्रतिम प्रेम भावना निहित है। वे एक-एक व्यक्ति को सौ-सौ कंसों के अत्याचार का सामना करने के लिए प्रेरित करते हैं। अपनी पुण्य भूमि पर सर्वस्व न्योछावर करने का आह्वान करते हुए कहते हैं-

एक एक, सौ सौ अन्यायी, कंसों को ललकारो
अपनी पुण्य भूमि के ऊपर, धन-जीवन सब वारो।-3

बलराम के चरित्र पर अहिंसावादी व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है। बलराम यज्ञों में होने वाले पशु-बलि की तीव्र-भर्त्सना करते हैं। देवी-देवताओं के नाम पर होने वाले पशुबलि केवल मानव के निजी स्वार्थ के ही द्योतक

1- द्वापर- पृ0 39

2- वही, पृ0 42

3- द्वापर, पृ0 42

थे। प्रारम्भ में यज्ञ विशुद्ध त्याग भाव से सम्पन्न होते थे. उनमें पशुबलि जैसी हिंसावृत्ति नहीं थी। किन्तु कालान्तर में देवी-देवताओं का बहाना लेकर यज्ञों को भी दूषित किया जाने लगा। यज्ञों में पशुबलि की निन्दा करते हुए बलराम कहते हैं-

अपनी प्रवृत्तियों का पोषण, मिष देवी देवों का,
अमृत नहीं, मृतक-पिण्ड है, विष व देवी देवों का।
यज्ञ वेदियाँ हैं वे अथवा, कौटिक कुटियाँ सारी।-1

इस रचना में बलराम के चरित्र में मौलिक रूप से विद्रोही चेतना भी है। वे न्याय और धर्म के स्थापना के लिए अनय राज और निर्दय समाज से निर्भय संघर्ष का आह्वान करते हैं। वे कहते हैं-

न्याय धर्म के लिए लड़ो, ऋत-हित समझो- बूझो,
अनय राज, निर्दय समाज से, निर्भय होकर जूझो।
राजा स्वय नियोज्य तुम्हारा, यदि तुम अटल प्रजा हो
धात्री नहीं, किन्तु बलिदात्री, बस, अन्यथा अजा हो।-2

द्वारका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" में बलराम का चरित्र प्रमुख रूप से परम्परागत रूप में ही चित्रित हुआ है। उनके भातृ प्रेम के साथ उनके दिव्य शक्ति से सम्पन्न रूप का चित्रण हुआ है। कहीं-2 किंचित मौलिकता का समावेश भी प्राप्त होता है।

महाभारत युद्ध के प्रसंग में बलराम दुर्योधन के पक्षधर होते हुए भी, युद्ध के प्रति तटस्थ रहते हैं। बलराम के चरित्र का यह मौलिक पक्ष है। वे यदुजनों को महाभारत के युद्ध से दूर रहने का निर्देश देते हुए कहते हैं-

---

1- दापर, पृ0- 43-44

2- दापर, पृ0 45

मम उर रंच न श्रद्धा आशा

यदु युवकन यह आशा मोरी,

विनवहुँ सब गुरुजन कर जोरी,

जूझहिं-छीजहिं पाण्डव-कुरुजन

जाय न रण ढिग एकहु यदुजन।-1

दुर्योधन-वध के समय भी बलराम के नीतिज्ञ रूप की प्रस्तुति हुई है। कृष्ण के संकेत पर भीम दुर्योधन के जाँघ पर गदा प्रहार करता है। उसका यह कृत्य युद्ध के नियमों के विपरीत था। यही नहीं भीम दुर्योधन के सिर पर चरण - प्रहार करता है। इस अनैतिक कृत्य का बलराम तीव्र विरोध करते हैं-

युद्ध-नियम खल भीम बिसारा,

कीन्ह नाभि-तल नीच प्रहारा।

तोषेउ तबहुँ न यह मदमाता,

कीन्ह पतित-शिर पद-आघाता।

दीन्हे बिनु यहि दण्ड कठोरा,

लहि है शान्ति हृदय नहिं मोरा।-2

समग्रतः "कृष्णायन" में बलराम के उदात्त व आदर्श रूप का अंकन हुआ है। आधुनिक सन्दर्भो में बलराम के नीतिज्ञ रूप का महत्वपूर्ण स्थान है।

1- कृष्णायन - गीताकाण्ड, पृ0 473

2- वही , पृ0 540

नंद

भारतीय वाङ्मय में नन्द का चरित्र कृष्ण का पालन-पोषण करने वाले ब्रज के प्रतिष्ठित यदुवशी के रूप में वर्णित है। श्रीमद्भागवद् पुराण में वे उदार-ह्रदया मनस्वी हैं। इसमें नन्द का चरित्र आदर्श पिता के रूप में व्यंजित हुआ है। कृष्ण के परमधाम गमन् के समय वे पुत्र-प्रेम की पराकाष्ठा के कारण अपना प्राण त्याग देते हैं।-1

आधुनिक युग के नव जागरण आन्दोलनों तथा गान्धीवादी सिद्धान्तों द्वारा समुत्पन्न नवीन चेतना के फलस्वरूप बौद्धिकता, मानवतावाद, देश-प्रेम आदि गुणों का पृष्ठप्रेषण पौराणिक चरित्रों में भी दृष्टिगत् होता है। आधुनिक पौराणिक प्रबन्ध-कृतियों में नन्द का चरित्र यद्यपि परम्परागत् आदर्श पिता व पति का है, किन्तु उनका यह रूप नवीन चेतना से समन्वित व बौद्धिक है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की प्रबन्ध कृति "प्रियप्रवास" में नन्द का चरित्र सर्वप्रथम प्राप्त होता है। "प्रियप्रवास" के सर्ग-3 में नन्द सामान्य व आदर्श पिता हैं। निरंकुश शासक कंस के आज्ञा का उल्लंघन न कर सकने की मजबूरी से त्रस्त नन्द, पुत्र-प्रेम के कारण विषम अन्तर्द्वन्द्व में फंस जाते हैं। कंस द्वारा कृष्ण हेतु बुलावा प्राप्त होने पर सामान्य पिता की भाँति उनका हृदय अनिष्ट के भय से सिहर उठता है। नन्द का यह रूप सर्वथा मौलिक है-

सित हुए अपने मुख लोम को, कर गहे दुःख व्यंजक भाव से।
विषम संकट बीच में पड़े हुए, बिलखते चुपचाप ब्रजेश थे।-2

"प्रियप्रवास" में नन्द का चरित्र प्रथम बार प्रेमी पति के रूप में व्यंजित हुआ है। आधुनिक मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप मानव के प्रति

1- श्रीमद्भागवद् पुराण-दशम स्कन्ध व एकादश स्कन्ध

2- प्रियप्रवास- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' - सर्ग 3/21

संवेदनात्मकता तथा सहृदयता की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। इस रचना में नन्द आदर्श पिता ही नही, आदर्श पति के रूप में भी व्यंजित हुए हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद, पुत्र-प्रेम से व्यथित नन्द अपने कष्टों को स्वपत्नी यशोदा के दुःखों के समक्ष भुला सा देते हैं। वे ऐसी युक्ति हेतु प्रयत्नशील हो उठते हैं, जिससे यशोदा के मन को शान्ति प्राप्त हो, उनके निराशापूर्ण मन में आशा का संचार हो -

आवेगों से बहु-विकल तो नन्द थे पूर्व ही से।
कान्ता को यों व्यथित लखके शोक में और डूबे।
बोले ऐसे वचन जिनसे चित्त में शान्ति आवे,
आशा होवे उदय उर में, नाश पावे निराशा।-1

"प्रियप्रवास" के नन्द के उदात्त व आदर्श-चरित्र के बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुए डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त जी लिखते हैं- " ब्रजधराधीश होने के कारण उनमें गम्भीरता, दूरदर्शिता एवं धैर्य भी था । अपनी मर्म्मव्यथा को दबाये, भग्न ह्रदय एव आशंकित से वे कृष्ण को लोक हित में रत् छोड़कर वे दृढ़चेता एवं उदार ह्रदय पिता की भाँति खाली ही लौट आते हैं। इस अवसर पर नन्द एक सफल पति की भाँति कृष्ण के पुनरागमन का आश्वासन देकर प्रबोधित करते हैं।"-2

"प्रियप्रवास" के पश्चात् मैथिलीशरण गुप्त कृत "द्वापर" में नन्द चरित्र की सहज व्यंजना हुई है। नन्द के परम्परागत् आदर्श पिता व पति का स्वरूप, इस रचना में आधुनिक नवीन चेतना से समन्वित व उदात्त है। वे त्यागी तथा समाज के प्रति चेतन व जागरूक मानव हैं।

"द्वापर" में नन्द का चरित्र मानवीय संवेदना से संयुक्त, उदात्त मानव का है। कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम होते हुए भी वे देवकी के मातृह्रदय

1- प्रियप्रवास - सर्ग-7, पृ081

2- हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन- डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त

की उपेक्षा नही कर पाते। माता के सवेदनाओं को, महत्ता देते हुए वे उन्हें उनका पुत्र लौटा देते हैं। उन्हें इसका सन्तोष होता है, कि उन्होंने देवकी का कोष उन्हें वापस कर दिया —

नन्द लौट आया मथुरा से, हे ईश्वर, क्या लेकर?
यह सन्तोष-"देवकी का वह, कोष उसी को देकर।-1

नन्द त्यागी व उदात्त चरित्र के साथ ही भावुक व सामान्य मानव भी हैं। देवकी के प्रति संवेदनशीलता के कारण जहाँ वे उनमें उनका पुत्र लौटाने का साहस है, वहीं पुत्र-प्रेम की पराकाष्ठा भी है। नन्द ह्रदय में अत्यन्त प्रगाढ़ पुत्र-प्रेम है। वे देवकी पुत्र कृष्ण को लौटाकर भी अपने पितृह्रदय पर अंकुश नहीं रख पाते। पुत्र-वियोग के कारण वे जी भरके रोना चाहते हैं। वे ऐसे समय घर वापस जाना चाहते हैं, जब उन्हें कोई भी न देख सके। यहाँ नन्द के पितृ ह्रदय का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रण हुआ है। नन्द चाहते हैं-

श्याम नहीं तो तनिक श्यामता, सन्ध्या में आ जावे,
ठीक किसी को यह जन कोई, इसको देख न पावे।-2

"प्रियप्रवास" की ही भाँति "द्वापर" के नन्द भी भावुक व प्रेमी पति है। यशोदा कृष्णागमन् की आशा में राह देख रही होंगी, नन्द को इसी बात की चिन्ताकुलता है। वे मार्ग में इसीलिए अधिक समय ठहरे रहते हैं, ताकि यशोदा की आशा उतने समय तक बनी रहे। वे कहते हैं-

मेरी बाट यशोदा की टुक
आशा को अटकावे।-3

नन्द - चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका स्वदेश-प्रेमी रूप। स्वतन्त्रता - आन्दोलन के दौरान साहित्य में ऐसे चरित्रों की आवश्यकता थी, जो देश

1- द्वापर- मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 96

2- वही, पृ0 96

3- द्वापर- पृ0 96

व राष्ट्र के लिए सर्वस्व बलिदान कर देने को तत्पर रहे। पौराणिक चरित्रों को भी आधुनिक साहित्य में अवतरित करते समय देश-प्रेम की भावना का आरोपण हुआ है। विशेषतः त्यागशील बलिदानी चरित्रों को, राष्ट्र-प्रेम के संदर्भ में नयी अभिव्यक्ति प्रदान की गई है, यथा - नन्द जैसे गौण पात्र में भी देश-प्रेम की भावना का सन्धान गुप्त जी ने किया है। नन्द अपनी पुत्री का बलिदान करके कृष्ण को बचाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि कृष्ण के माध्यम से देश का हित होगा। उनमें अपनी पुत्री के प्रति गर्व भावना है कि वह देश और विश्व के कल्याण मार्ग की सहायिका बनी। नन्द के चरित्र का यह पक्ष आधुनिक स्वदेश प्रेमी का है। वे कहते हैं-

सफल जन्म मेरी बेटी का, बची विश्व की थाती,
उतरा भार मही माता का, मरा कस कुलघाती।-1

आधुनिक युग में नारी के प्रति नवीन-चेतना के फलस्वरूप, उसे उदात्त व महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। "द्वापर" में नन्द के चरित्र में निहित मौलिक पक्ष है, उनका राधा के प्रति संवेदनशील रूप। नन्द द्वारा कृष्ण के चले जाने पर उनके स्थान पर राधा को पुत्रवत् स्वीकार किया जाता है। यही नहीं वे राधा के दुःखों के प्रति भी संवेदनशील हैं। राधा के कष्टों का स्मरण कर, उनका हृदय दुःखी हो उठता है-

हा ! तथापि मुँह दिखलाऊँगा, कैसे उसे यहाँ मैं?
गया खेल ही बिगड़ खिलौना, लेने गया जहाँ मैं।-2

"द्वापर" के नन्द-चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका समस्त जीवों के प्रति समभाव। कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद वे स्वयं के प्रति ही नहीं, समस्त ग्रामवासियों के प्रति संवेदनशील हैं; चिन्तनशील हैं। वे मानव मात्र ही नहीं, पशुओं तक के प्रति संवेदनशील हैं। कृष्ण के वियोग में इन सबकी

1- द्वापर- पृ0 98

2- वही, पृ0 98

क्या दशा होगी? यह चिन्ता उन्हें अत्यधिक व्यग्र व व्यथित कर देती है-

भहराती डोलेंगी गायें, बछड़ों से भी बिचकी,
युवक कहाँ उत्साहित होंगे, लेने को अब मिचकी?
आ बैठेंगे वृद्ध पौर में, बालक नहीं जुड़ेंगे।-1

"द्वापर" में नन्द आदर्श-पिता हैं। वे कृष्ण के वियोग में दुःखी व व्यथित होने के बाद भी इस कारण सुख मानते हैं कि उनका पुत्र सुखी होगा, उसे कोई कष्ट नहीं होगा। वे कहते हैं-

फिर भी हरि को दुःख न हो कुछ,
हमें यही सुख होगा।-2

समग्रतः "द्वापर" में परम्परागत् नन्द का चरित्र आधुनिक नवीन-चेतना संयुक्त, मानवीय संवेदनाओं के संवाहक रूप में चित्रित है।

"द्वापर" के पश्चात् नन्द का चरित्र द्वारका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" में वर्णित हुआ है। "प्रियप्रवास" व "द्वापर" की अपेक्षा इस रचना में नन्द का चरित्र मौलिकता- युक्त है। उनके चरित्रांकन में आदर्श पिता के साथ-2 देश और समाज के प्रति कर्तव्यशील व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है।

"कृष्णायन" में नन्द का चरित्र परम्परागत् रूप से ही पुत्र-प्रेमी पिता के रूप में व्यंजित हुआ है, किन्तु यहाँ वे चुपचाप व्यथित होने की अपेक्षा मुखर हैं। कंस द्वारा कालीदह से कमल लाने का आदेश जब ब्रज-वासियों को प्राप्त होता है, उस समय नन्द भावी अनिष्ट की आशंका से कँपित हो उठते हैं। वे अपने पुत्रों के बदले, अपना समस्त धन-धाम न्यौछावर करने के लिए तत्पर हो उठते हैं। आधुनिक प्रबन्ध कृतियों में नन्द का यह रूप सर्वथा मौलिक है। वे कहते हैं-

---

1- द्वापर- पृ0 99

2- वही, पृ0 99

कहत महर -"मोहि नहि निज शोचू, तनिकहु नहि धनधाम संकोचू।
हतिहै सुतन कंस अपघाती, दहकति सोचि-सोचि यह छाती।-1

नन्द चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका स्वदेश प्रेमी रूप। अगाध पुत्र-प्रेम के बाद भी, वे देश और समाज की भलाई के लिए तथा देवकी व वसुदेव के सुख के लिए कृष्ण को मथुरा रूकने की अनुमति, स्वयं ही देते हैं। नन्द कहते हैं-

भयेऊँ धन्य करि अब लगि सेवा, पावैं अब निज सुत वसुदेवा।।
राज्य संपदा हरि लौटारी, देहुँ, लेहिं हरि शौरि सँभारी।
देत श्याम हहरति यह छाती, सौंपब उचित तबहुँ पर थाती।-2

यशोदा

भारतीय धर्म ग्रंथों, साहित्य तथा लोक साहित्य में यशोदा मातृत्व की सम्पूर्ण विनम्र प्रतिमूर्ति के रूप में है। भारतीय वाङ्मय में यशोदा के चरित्र का निरूपण "श्रीमद्भागवद् पुराण" के दशम स्कन्ध में विशेष रूप से प्राप्त होता है। "सूरसागर" में सूरदास ने यशोदा का वात्सल्यमयी माँ के रूप में जैसा उदात्त एवं दिव्य रूप प्रस्तुत किया है, वैसा अन्यत्र मिलना कठिन है।

आधुनिक प्रबन्ध रचनाओं में यशोदा का चरित्रांकन सर्वप्रथम अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत "प्रियप्रवास" में हुआ है। इसमें वे स्नेहमयी आदर्श माता के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। डॉ0 श्याम सुन्दर व्यास के शब्दों में - "प्रियप्रवास"

1- कृष्णायन- पृ0 58

2- वही, पृ0 166

की चरित भूमि में यशोदा की चरित्र-सृष्टि एवम् मनोभावों के अन्तर्गत उसका जो स्वरूप तथा व्यक्तित्व दृष्टिगोचर होता है। वह करुणा की एक पृथुल धारावत् जान पड़ता है।"-1 "प्रियप्रवास" में यशोदा के मातृत्व का सहज व स्वाभाविक अंकन हुआ है।

हरिऔध जी ने यशोदा का चरित्रांकन सहज व सरल रूप में एक आदर्श माँ के रूप में किया है। कृष्ण के मथुरा चले जाने पर यशोदा का मातृ-हृदय पुत्र-मोह में व्यथित हो उठता है। यही नहीं वे इतनी व्यग्र होती हैं कि प्रतिदिन लोगों को केवल यह जानने के लिए मार्ग तक भेजती हैं कि उनका लाडला कृष्ण आ रहा है, या नहीं। यहाँ उनकी व्यग्रता तथा पुत्र -विक्षोह से उत्पन्न व्याकुलता ही प्रकट होती है-

प्रतिदिन कितनों को पथ में भेजती थीं।
निज प्रिय सुत आना देखने के लिये ही।-2

कृष्ण के वियोग में माता यशोदा इतनी व्याकुल हो जाती हैं कि वे अपने मातृ हृदय पर संयम नहीं रख पातीं। वे कृष्ण के वियोग में अपने प्राण तक देने के लिए तत्पर हो उठती हैं। पुत्र-वियोग में दुखी व करुणा-विगलित मातृहृदय रोते हुए कह उठता है-

यदि मिल न सकेगा जीवनाधार मेरा
तब फिर निज पापी प्राण मैं क्यों रखूँगी।-3

"प्रियप्रवास" में यशोदा का चरित्रांकन सहज व स्वाभाविक रूप में हुआ है। पंचम सर्ग में यशोदा जब कृष्ण के देवकी के पास रहने का समाचार पाती हैं, उस समय वे यह भूल जाती हैं कि कृष्ण उनके नहीं देवकी

1- हिन्दी महकाव्यों में नारी चित्रण - डॉ0 श्यामसुन्दर व्यास, पृ0-138
2- प्रिय प्रवास- अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" पृ0-61
3- वहीं, पृ0 79

के ही पुत्र हैं। वे अपने पुत्र को पराया होते नहीं देख पातीं, उनका हृदय विद्रोही हो उठता है। यशोदा अपने मातृहृदय का विखंडन नहीं सह पाती। वे इसी सन्दर्भ में अपना आक्रोश प्रकट करती हुई, उद्धव से कहती हैं-

उधौ कोई न कल छल से लाल ले ले किसी का।-1

× × ×

हो जाती हूँ मृतक सुनती हाय जो यों कभी हूँ।

हो जाता मम्-तनय भी अन्य का लाडिला है।-2

किन्तु माता की साथ-2 वे एक आदर्श नारी भी हैं, जिसमें त्याग व उदात्तता निहित है। यशोदा अपने भावुक व कोमल स्वभाव के कारण प्रथमतः तो देवकी के प्रति आक्रोश व्यक्त करती हैं, किन्तु वास्तविकता व यथार्थ का बोध होते ही वे सामान्य हो जाती हैं। वे अपने स्वार्थ-भावना से कारण, अपने हृदय की ममता के कारण देवकी के मातृहृदय को व्यथित नहीं करना चाहतीं। वे उनका पुत्र नहीं छीनना चाहतीं। वे तो स्वयं को केवल कृष्ण की 'धाय' मान कर ही अपरिमित सुख व सन्तोष प्राप्त करती हैं। किन्तु धाय रूप में ही सहीं, वे अपने पुत्र कृष्ण को एक बार जी भरके देखना चाहती हैं। यहाँ यशोदा में निहित अन्तर्द्वन्द व मानसिक वेदना का सहज व मौलिक अंकन हुआ है। यशोदा का यह चरित्र उनके त्याग, उदात्तता व आदर्श का द्योतक है-

हाँ रोती हूँ हृदय अपना कूटती हूँ सदा ही,

हा! ऐसी ही व्यथिता अब क्यों देवकी को करूँगी।

प्यारे जीवें पुलकित रहें और बनें भी उन्हीं के।

धाई नाते वदन दिखला एकदा और देवें।।-3

"प्रियप्रवास" की यशोदा के मातृ रूप का सहज, सम्यक व करूणामयी रूप ही उन्हें मौलिक व उदात्त बनाता है। "सूरसागर" के यशोदा के निकट

=---

1- प्रियप्रवास, पृ0-69

2- वही, पृ0 - 65

3- वहीं, पृ0 - 65

होते हुए भी "प्रियप्रवास" की यशोदा का चरित्रांकन मौलिक है। श्यामसुन्दर व्यास के शब्दों में - "सूरसागर की यशोदा से अनुप्राणित होकर भी "प्रियप्रवास" की यशोदा, माता की दृष्टि से हिन्दी महाकाव्यों में अद्वितीय स्थान रखती हैं।"-1 उनकी हृदयगत उदात्तता, उदारता व त्यागी चरित्र उन्हें वीर-जननी के रूप में प्रतिष्ठित करता है। समाज व देश के लिए समर्पित कृष्ण के लिए वे अपने मातृहृदय को व्यथा को भी सहज ही सहने का साहस रखती हैं। यहीं नही वे देवकी के अधिकारों के प्रति भी संवेदनशील नारी के रूप में अंकित हुई हैं। देवकी के लिए वे 'धाय' बनाना भी स्वीकार करती हैं।

समग्रतः "प्रियप्रवास" में यशोदा का चरित्र परम्परागत आधार ग्रहण करते हुए भी सहजता व युगीन मानसिकता के कारण अपनी अलग ही छाप छोड़ जाता है।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "द्वापर" में यशोदा का चरित्रांकन परम्परागत रूप से थोड़ा हटकर मौलिक रूप में हुआ है। यशोदा का चरित्र-चित्रण आधुनिक नव्य मानवतावादी व आदर्शवादी चेतना से प्रभावित है। वे लोकसेविका, स्वाभिमानी, स्वदेश-प्रेमी, प्रकृति-प्रेमी नारी होने के साथ ही आदर्श पत्नी व माता के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। उनका यह रूप सर्वथा मौलिक है।

"द्वापर" में यशोदा मौलिक रूप में आदर्श व प्रेमी पत्नी के रूप में निरूपित हुई हैं। पूर्ववर्ती रचनाओं में यशोदा मातृ रूप का अंकन ही विशिष्ट रूप से हुआ है। किन्तु "द्वापर" में गुप्त जी ने यशोदा के दाम्पत्य जीवन को भी सहज भाव प्रदान किया है। इस प्रबन्ध कृति में यशोदा आदर्श पत्नी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। यशोदा अपने पति नन्द के उदार व्यवहार से सन्तुष्ट तथा प्रेम सिन्धु में बहने वाली प्रेमी-पत्नी हैं-

---

1- हिन्दी महाकाव्यों में नारी चित्रण- डॉ0 श्यामसुन्दर व्यास, पृ0-139

इच्छा कर, झिड़कियां परस्पर, हम दोनों हैं सहते,

थपकी- से हैं अहा! थपेड़े, प्रेम सिन्धु में बहते।-1

यही नहीं यशोदा स्वयं को पूर्णकाम मानती हैं। उनका यह चरित्र उनके सफल दाम्पत्य प्रेम का द्योतक है। यशोदा के इस चरित्र का अंकन "द्वापर" की मौलिकता है।

गुप्त जी ने यशोदा के मातृरूप का अंकन भी सहज व स्वाभाविक रूप में किया है। यशोदा बालक कृष्ण को पालन-पोषण करती हुई उनकी एक-एक बाल लीलाओं पर भाव-विह्वल हो हर्ष विभोर हो उठती हैं। अपने पुत्र कृष्ण के सुख में ही उन्हें अपरिमित सुख प्राप्त होता है। वे कहती है-

जीने का फल पा जाती हूँ, प्रतिदिन उसे खिलाकर।-2

आधुनिक नव्य देश प्रेमी व आदर्शवादी चेतना के प्रभाव-स्वरूप इस रचना में, मौलिक रूप में यशोदा का चरित्रांकन स्वाभिमानी व देश-प्रेमी नारी के रूप में हुआ है। यशोदा में अपने गाँव के प्रति प्रेम व स्वाभिमान है। वे नगरों की तुलना में अपने गाँव वृन्दावन को विशिष्ट महत्ता देती हैं, ब्रज की गलियों की सुरपुर तुल्य मानती हैं। वे कहती है-

बचा रहे वृन्दावन मेरा, क्या है नगर-नगर में।

मेरा सुरपुर बसा हुआ है, ब्रज की डगर-डगर में।

अहा! घास में भी सुवास है, भूमि हरी जब मेरी।-3

"द्वापर" में यशोदा के चरित्र निरूपण पर आधुनिक मानवतावादी चेतना का भी प्रभाव पड़ा है। उनका यह चरित्र भी मौलिक व उदात्त है। यशोदा परोपकारी व जन-सेवी नारी हैं। वे कहती हैं कि उन्हें जब इतना

1- द्वापर, मैथिलीशरण गुप्त, पृ0-14

2- वही, पृ0-16

3- वही, पृ0- 19

धन-धान्य प्राप्त है, तब उसे लोक सेवा में क्यों न अर्पित किया जाय। यशोदा सदैव दीन व असहाय जनों की सेवा हेतु तत्पर रहती हैं-

बाहर में जन-मान्य और धन-धान्य पूर्ण घर मेरा,
पाया है, तब देने को भी, प्रस्तुत है कर मेरा।-1

"द्वापर" के पश्चात् यशोदा का चरित्रांकन द्वारका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" में प्राप्त होता है। इस रचना में यशोदा का चरित्र-चित्रण परम्परागत होते हुए भी सहज व सामान्य रूप में चित्रित होने के कारण मौलिकताओं से युक्त है। मिश्र जी ने उन्हें आदर्श नारी, पत्नी तथा माँ के रूप में प्रस्तुत किया है।

यशोदा के चरित्र में नारी के प्रति सहज प्रेम व संवेदना है। वसुदेव की पत्नी रोहिणी को कंस के भयवश जब उद्धव यशोदा के पास लाते हैं, उस समय यशोदा अपने उदात्त चरित्र का परिचय देती हैं। वे रोहिणी को अपने बहन के सदृश सम्मान व प्रेम प्रदान करती हैं।

"कृष्णायन" में यशोदा स्नेहमयी आदर्श माता के रूप में अंकित हुई हैं। कृष्ण को लोरी गाकर सुलाना, बलराम के बाल सुलभ प्रश्नों का उनके बालरूप के अनुरूप सहज सामान्य भाव से उत्तर देना उनके सहज मातृरूप का ही द्योतक है। पूतना-वध प्रसंग के समय कृष्ण को पूतना के ऊपर देख भयभीत होकर कृष्ण को लेकर भागना तथा उनकी नजर उतारना, तृणावर्त वध के समय कृष्ण को घर में न पाकर रोते हुए घर-घर में कृष्ण के बारे में पूछना। कृष्ण की बाललीलाओं पर मुग्ध होना तथा उनकी गल्तियों पर दण्डित करना आदि सभी कृत्य परम्परागत आधार लेते हुए भी स्वाभाविक व सहज रूप में अंकित हुए हैं।

1- द्वापर, मैथिलीशरण गुप्त, पृ0-20

यशोदा में कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम होता है। उनका यह रूप उस समय प्रकट होता है, जब कृष्ण मथुरा प्रस्थान करते हैं। असीम पुत्र प्रेम के कारण यशोदा अपना सर्वस्व न्योछावर करके कृष्ण को मथुरा में रोकना चाहती हैं। वे कहती हैं-

बरू नृप लेहि धाम, धन, गाई, मनवांछित 'कर' लेहिं चुकायी।

सर्वस लेय देय एक श्यामू, जननी-जीवन, ब्रज सुख धामू।

वासर वदन विलोकि बितावहुँ, निशि शिशु अंक लाय सुख पावहुँ।-1

"कृष्णायन" में यशोदा का चरित्रांकन बौद्धिक व दूरदर्शी नारी के रूप में हुआ है। 'अवतरण काण्ड' में कंस द्वारा कृष्ण व बलराम के आमन्त्रण के समय उनकी दूरदर्शिता प्रकट होती है। वे अपनी दूरदर्शिता के कारण कंस के बुलावे के पीछे किये षडयन्त्र को समझ जाती हैं। वे अक्रूर से अपना आक्रोश प्रकट करती हुई, कंस के निष्ठुरता की निन्दा करती हैं। वे कहतीं है कि कृष्ण व बलराम बहुत छोटे हैं, उन्होंने कभी मल्ल-अखाड़ा भी नहीं देखा है। ये बालक वन-वन गाय चराते हैं, अतः यज्ञ सभा व राज व्यवहार से सर्वथा अपरिचित है। इसी कारण उनका मातृहृदय अज्ञात शंकाओं से भयभीत हो उठता है। यशोदा कहती हैं-

काहे नृपति निष्ठुरता ठानी? हरि हलधर मोरे अति बारे,

लखे कबहुँ नहि मल्ल अखारे, ये बालक गोचारत वन-वन,

× × ×

गुरू दिज कबहुं न ग्राम जोहारा, जानहिं काह राजव्यवहारा।-2

"कृष्णायन में मौलिक रूप में यशोदा संवेदनशील माता के रूप में अंकित हुई हैं,जो कृष्ण के प्रति असीम पुत्र-प्रेम के कारण उनके प्रति भी संशयाकुल हो उठती हैं। कृष्ण दारा जब स्वयं ही मथुरा जाने का आग्रह किया जाता है, उस समय यशोदा का मातृ हृदय उनके प्रति भी अपना आक्रोश प्रकट करती हैं।

1- कृष्णायन- अवतरण काण्ड, पृ0 -112

2- वही, पृ0-112

उनके हृदय में कृष्ण के प्रति सहज सन्देह उभरता है। वे कहती हैं-

जेहि मुख कहेउ महर कहँ ताता
जेहि मुख मोहि कहेउ निज माता,
तेहि मुख आजु कहत तुम जाना,
भए सुमन कस कुलिश समाना?-1

समग्रतः कृष्णायन में यशोदा के उदात्त व आदर्श मातृत्व का सहज मौलिक अंकन हुआ है।

विधृता

'विधृता' कृष्ण कथान्तर्गत आने वाली गौण पात्र हैं। पौराणिक रूप में विधृता को एक बार कृष्ण के पास भोजन लेकर जाते समय, उसे उसके पति द्वारा रोक दिया जाता है। कृष्ण के पास न पहुँच सकने के कारण अत्यधिक आत्म व्यथा के कारण वह अपने प्राणों को त्याग देती है। श्रीमद्भागवद्

1- कृष्णायन- पृ0-113

पुराण के दशम स्कन्ध में विधृता के इसी चरित्र का वर्णन प्राप्त होता है।-1

मैथिलीशरण गुप्त जी ने इस सूक्ष्म कथाधार के सहारे "द्वापर" में विधृता के चरित्र की नयी व्याख्या की है। आधुनिक युग में नारी-जागरण व बौद्धिक तथा मानवतावादी चेतना के प्रभावस्वरूप विधृता के परम्परागत चरित्र की मौलिक व नवीन दृष्टि से व्याख्या हुई। "द्वापर" में विधृता जागरूक बौद्धिक व नवीन चेतना संयुक्त नारी है, वह समाज के उस नारी वर्ग की प्रतिनिधि हैं जो पुरूषों के अहं की शिकार है। उसके चरित्र में विद्रोहात्मक भावना निहित है।

आधुनिक युग में नारी जागरण तथा नव-जागरण आन्दोलनों के फलस्वरूप नवीन स्वातन्त्र्य चेतना तथा स्वत्वबोध की भावना का उन्मेष हुआ। युगों-2 से निम्न वर्गीय दलितों के समतुल्य ही नारी भी पुरूष वर्ग के परतन्त्रता की बेड़ी में ज़कड़ी हुई असहाय व दीन अवस्था को भोगती रही। आधुनिक युग में नव्य-चेतना के प्रभाव स्वरूप नारी में स्वत्व बोध जाग्रत हुआ वह अपने अधिकारों व स्वतन्त्रता के प्रति सचेत हुई। "द्वापर" की विधृता में इसी स्वातन्त्र्य-चेतना का आरोपण हुआ है। परम्परागत रूप की भाँति विधृता चुपचाप स्वबलिदान नही करती अपितु उस पति की भर्त्सना भी करती हैं, जो कि उसे दासी मात्र समझता है। विधृता के स्वर में नारी के अधिकारों व व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के प्रति नवीन जागरूकता है। वह कहती हैं-

पर मेरा पत्नीत्व मिटाया किसने यह पल भर में?
मुट्ठी भर भी जो न दे सके, दासी थी, मैं आहा ।
× × ×
नर, झकझोर डालने को ही, क्या, यह कर पकड़ा था?
कामुक-चाटुकारिता ही थी, क्या वह गिरा तुम्हारी।-2

1- श्रीमद्भागवद् पुराण, दशमस्कन्ध, अध्याय- 23 पृ0-544

2- द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0-22-23

नवजागरण आन्दोलनों व गांधीवादी आदर्शों द्वारा समाज के धार्मिक मिथ्याडम्बरों का तीव्र विरोध हुआ। विधृता के चरित्र पर बौद्धिक तथा अहिंसावादी चरित्र का आरोपण हुआ है। वह पशुबलि पर आधारित यज्ञ के धार्मिक-प्रथा का तीव्र विरोध करती हैं। वह धर्म के सुममतामय स्वरूप को महत्ता देते हुए पशुबलि पर आधारित यज्ञों के विनाश की कामना करती हैं-

जिसमें पशुबध करते-करते, सूखा हृदय तुम्हारा,
वे मख मिटें और हे ईश्वर इन्हीं बालकों द्वारा
स्वय स्वर्ग-फ्ल वाली भी उस, लोलुपता का लय हो।-1

गुप्त जी ने विधृता का चरित्र-निरूपण मौलिक रूप में विद्रोही नारी के रूप में किया है। युगों से उपेक्षा व तिरस्कार की शिकार नारी का स्वत्व के प्रति जागरूकता कवि की मौलिक चेतना का ही सुपरिणाम है। "द्वापर" में विधृता परम्परा से चली आ रही स्त्री-पुरुष के मध्य वैषम्य भाव का विरोध करती हुई, पुरुषों के स्वार्थमय वृत्तियों की धज्जियाँ उड़ाते हुए कहती हैं-

अविश्वास, हा! अविश्वास ही, नारी के प्रति नर का,
नर के तो सौ दोष क्षमा है, स्वामी है वह घर का।-2

आधुनिक युग में नारी-जागरण के फ्लस्वरूप नारी वर्ग में स्वत्व के प्रति नवीन चेतना जाग्रत हुई। नारी के महत्ता का प्रतिपादन हुआ। "द्वापर" की 'विधृता' पर भी इसी नवीन चेतना का प्रभाव है। स्वाभिमानी भावना से युक्त विधृता नारी के महत्ता को स्थापित करती हुई, नारी को नर से श्रेष्ठ मानती हैं। विधृता कहती है:-

एक नहीं दो दो मात्रायें
नर से भारी नारी।-3

1- द्वापर - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 24

2- वही, पृ0 29

3- वही, पृ0 23

"द्वापर" में विधृता के चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है, उसका बौद्धिक चरित्र। विधृता समाज में व्याप्त नारी -विषय संकीर्ण व तुच्छ दृष्टिकोण की भर्त्सना करते हुए यह प्रश्न उठाती है कि क्या नारी पुरूषों की दृष्टि में माँ, बेटी या बहन नहीं हो सकती। पुरूष वर्ग प्रायः परायी नारी को केवल नारी की ही दृष्टि से क्यों देखता है? नारी यदि किसी पराये पुरूष से बात भी कर ले तो उसे समाज केवल निम्न दृष्टि से ही क्यों देखता है? नारी उसे पिता, पुत्र या भाई के भावदृष्टि से चाहती है, समाज इस तथ्य को अस्वीकृत क्यों कर देता है-

हाय! वधू ने वर विषयक, एक वासना पाई?
नहीं और कोई क्या उसका, पिता, पुत्र या भाई?
नर के बाँटे क्या नारी की, नग्न मूर्ति ही आई?
माँ, बेटी या बहिन हाय! क्या संग नहीं वह लाई?-1

समग्रतः "द्वापर" में विधृता के परम्परागत चरित्र को कवि ने नई अभिव्यक्ति प्रदान की है। सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक, सामाजिक विसंगतियों के प्रति विद्रोही विधृता का अंकन "द्वापर" की विशिष्टता है।

कंस

कृष्ण-कथाधृत रचनाओं में कंस खल पात्र के रूप में अंकित हुआ है। कंस अन्याय व अत्याचार का सजीव प्रतीक रहा है। वह अपने पिता को प्रताड़ित करने वाला तथा अपनी ही बहन के पुत्रों का वध करने वाले निन्दित पात्र के रूप में वर्णित हुआ है। कंस मथुरा के राजा उग्रसेन का पुत्र था। डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा के अनुसार -"कंस उग्रसेन का क्षेत्रज तथा दानवराज का वीर्यज

==

1- द्वापर मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 25

पुत्र था। इसकी माता का नाम ऋतुस्नाता था। बड़े होकर कंस ने मगधराज जरासन्ध की अस्ति तथा प्राप्ति नामक दो कन्याओं का पाणिग्रहण किया।"-1 कंस की दुष्टता व निम्न चरित्र का परिचय इसी से मिलता है कि वह अपने पिता को सत्ता से हटाकर उन्हें बन्दी बना लेता है तथा स्वयं राजसिंहासन पर अधिकार कर लेता है। आकाशवाणी सुनकर अपने प्राण व शासन मोह के कारण अपनी बहन देवकी के सन्तानों को जन्म लेते ही हत्या कर डालता है। परम्परागत रूप में वर्णित कंस का यह चरित्र रावण की तुलना में भी हेय व निम्न है।

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में कंस का चरित्रांकन परम्परागत धरातल पर नवीन रूप में अंकित हुआ है। किसी विशिष्ट उदात्त मौलिकता का समावेश नहीं दृष्टिगत होता। यद्यपि रामकथा के प्रतिपक्षी रावण के चरित्रोन्नयन व परिष्कार के प्रयत्न हुए, किन्तु कंस के सन्दर्भ में ऐसी कोई सम्भावना न होने के कारण वह अपने परम्परागत रूप में ही सीमित रह गया है।

"प्रियप्रवास" में परम्परागत रूप में ही कंस क्रूर महीपति के रूप में अंकित हुआ है। उसकी कष्टदायक कुटिलता व कपट-कौशल से ब्रज की प्रजा पीड़ित व त्रस्त होती है -

पर क्रूर-महीपति कंस की
    कुटिलता अब है कष्टदा।
कपट-कौशल से अब नित्य ही,
    बहुत पीड़ित है ब्रज की प्रजा।-2

"द्वापर" में कंस का चरित्र परम्परागत रूप के साथ ही नवीन रूप में भी अंकित हुआ है। कंस भाग्यवाद का विरोधी, अग्निधर्म का संस्थापक,

---

1- हिन्दी साहित्य कोश- भाग-2, धीरेन्द्र वर्मा, पृ0-61

2- प्रियप्रवास- पृ0-30

निरकुश, साम्राज्यवादी, स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाला तथा मत्स्य न्याय का समर्थक है। इसके साथ ही वह मानव बलि का समर्थक व अपने मृत्यु के प्रति चिन्ताकातर चरित्र भी है।

इस रचना में कंस के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उसका कर्मवादी अग्निधर्म का समर्थक व अहंकारी रूप। कंस नियतिवाद को कर्मभीरुओं का पाप मानता है। व अपना नियन्ता स्वयं अपने आपको मानता है। वह कहता है कि एक मात्र अग्निधर्म सर्वोत्कृष्ट धर्म है, जिसमें पड़कर जल व मल दोनों ही छार हो जाते हैं। वह कहता है-

धर्म एक बस, अग्नि धर्म है, जो आवे सो छार।
जल भी उड़े वाष्प बन बनकर, मल भी हो अंगार।-1

इस रचना में कंस निरंकुश साम्राज्यवादी के रूप में प्रस्तुत हुआ है। कंस साम्राज्य के विस्तार हेतु मानव विनाश को भी उचित मानता है। कस के साम्राज्य विस्तार हेतु जन-सामान्य के दमन व शोषण का सहारा लेता है। किन्तु वहीं जन-सामान्य के समक्ष स्वयं को आदर्श दिखाने के लिए दया धर्म का आलम्बन लेकर उन्हें भुलावे में डालना चाहता है। कंस के इस रूप में एक तरफ वहाँ उसकी निरंकुशता व्यक्त होती है, वहीं निरंकुश शासन तन्त्र की पोल भी खुलती हुई नजर आती है। आधुनिक काल की दो मुखी राजनीति भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होती है। कंस कहता है-

बनता नहीं ईंट-गारे से, वह साम्राज्य विशाल,
सुनो, चुने जाते हैं उसमें, रुधिराप्लुत कंकाल।
लिखो भले उसकी भीतों पर, दया-धर्म का चित्र।
सदा भुलाते रहे जनों को, जिनके चटुल चरित्र।-2

1- द्वापर, पृ0-66

2- वही, पृ0-80

गुप्त जी ने कस का चरित्र स्वच्छन्दता प्रेमी चरित्र के रूप में निरूपित किया है। उसे स्वतन्त्रता प्रेमी नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह चरित्र मर्यादाशील व त्यागमयी होता है। कंस बन्धन को 'अबलों के अर्थ' मानता है। वह किसी भी प्रकार के बन्धन को नहीं स्वीकार करता। यह उसकी स्वच्छन्द प्रकृति का ही द्योतक है।

कंस 'मत्स्यन्याय' का अनुयायी व समर्थनकर्ता है। मत्स्यन्याय में छोटी मछली को बड़ी मछलियाँ निगल जाती हैं। कंस भी असमर्थ असहाय व्यक्तियों के लिए केवल मृत्यु के विधान को स्वीकार करता है। वह 'अहं ब्रह्म' का विश्वासी है। वह स्वय को ही नारायण मानता है, यह उसके घोर अहंकार का ही प्रतीक है। वह कहता है-

नर ही नारायण है, नर मैं, सुनो इसे अब मौन।-1

"द्वापर" में कंस का चरित्र परम्परागत रूप में भी अधिक उग्र व निरकुश रूप में अंकित हुआ है। परम्परागत रूप में कंस आकाशवाणी के कारण अपनी मृत्यु के भय से भयभीत हो, देवकी पुत्रों का वध करता है। किन्तु "द्वापर" में कंस मानव-बलि का समर्थक है। वह अपनी योग-साधना के लिए ही अपनी बहन देवकी के बच्चों की भी बलि देता है। अपनी योग-साधना के सन्दर्भ में कंस कहता है-

श्रीफल फोड़-फोड़कर कितने बलि देते हैं लोग।
कुछ शिशुओं के सिर की बलि दे, साधा मैंने योग।-2

"द्वापर" में कंस का चरित्र मनोवैज्ञानिक रूप से भी प्रस्तुत हुआ है। निरंकुश व महाशक्तिशाली कंस में भी हृदयगत संवेदनायें व मानवीय दुर्बलताएँ होती हैं। योग के नाम पर बच्चों की बलि देने वाले कंस का हृदय इस बलि को नहीं स्वीकार कर पाता। फलतः उसके मन की संवेदनाएँ भय बनकर, शंका

1- द्वापर, पृ0 80

2- वही, पृ0 81

बनकर उसका पीछा करती हैं। समस्त जग को भयभीत करने वाला कंस एकाकी पड़ने पर दीपशिखाओं तक से भयभीत हो सिहर उठता है-

दीप-शिखा बढ़ बुझी अचानक, यह कैसा उत्पात
क्या सचमुच मैं सिहर उठा हूँ, यह लज्जा की बात।
× × ×
जाओ बच्चों तुम अनन्त में, विचरो, यही विवेक।-1

यही नहीं कंस को देवकी पुत्र कृष्ण से भी भय लगता है। उसे कृष्ण बड़े से जन्तु सदृश प्रतीत होते हैं। कृष्ण की कल्पना मात्र करके कंस का किरीट ढीला पड़ जाता है। यह उसके मानवीय दुर्बलता का ही द्योतक है।

"द्वापर" में कंस का चरित्र अतिरेक पूर्ण दृढ़-निश्चयी व आत्मविश्वासी के रूप में भी प्रस्तुत हुआ है। अपनी मानसिक दुर्बलता को देखकर वह कृष्ण को प्रत्यक्ष देखना चाहता है, ताकि अपने भ्रम व भय का विमर्दन कर सके। वह कृष्ण को मथुरा में निमन्त्रित करता है। वह कहता है-

भ्रम हो, भय हो, अप्रत्यय हो, संशय, अनृत, यथार्थ,
जो भी हो, आ जावे खुलकर, देखे फिर पुरुषार्थ।-2

"द्वापर" में कंस के परम्परागत चरित्र की नवीन युगानुरूप व्यंजना हुई है। किन्तु उसका खलरूप ही प्रस्तुत हुआ है।

"कृष्णायन" में कंस का चरित्रांकन परम्परागन धरातल पर ही प्रमुख रूप से वर्णित हुआ है किन्तु कहीं-2 नवीनता का समावेश भी दृष्टिगत होता है। परम्परागत रूप में कंस अत्याचारी शासक है, वह कृष्ण को मारने के लिए

1- द्वापर, पृ0- 85

2- वही, पृ0- 87

अनेकों राक्षसों को भेजता है। कृष्ण को मथुरा आमन्त्रित करता है, ताकि उनका वध कर सके।

"कृष्णायन" में कंस निरंकुश राजतन्त्र का प्रतीक बनकर प्रस्तुत हुआ है। "द्वापर" में भी कंस के इस रूप का अंकन हुआ है। "कृष्णायन" में कंस व उसके अनुचर विविध भोग-विलासों में डूबे रहते है, उन्हें जन-सामान्य की, प्रजा की आवश्यकताओं की किंचित चिन्ता नहीं होती। कंस के राज्य में उसके गाँव के लोग कंकाल सदृश घूमते हैं, उनकी मूलं आवश्यकतायें भी नहीं पूर्ण हो पातीं। वहीं कंस के धनी अनुचर ऐश्वर्य भोग करते हैं-

कंस धनी अनुचर धनी भोगहिं भोग विशाल।
क्षुधित अकिंचन ग्राम जन विचरत जनु कंकाल।-1

कंस का यह चरित्र आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था का भी द्योतक है। इस दृष्टिकोण से उसका यह रूप मौलिक है। कंस प्रजा से मनमाने ढंग से राजकर वसूल करता है। कमजोर व शक्तिहीन लोगों का धन-धान्य हड़पने के लिए विविध छल का सहारा लेता है। यही नहीं उसके राज्य में निम्नवर्ग के लिए कोई न्यायालय तक नहीं होता।

मिश्र जी ने कंस को कूटनीतिज्ञ चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया है। कंस अपनी बहन देवकी का विवाह अपने प्रतिपक्षी कुल के वसुदेव से इसलिए करना चाहता है, ताकि वह उसके पक्ष में आ जायें। उसके मतानुसार सभी के साथ विरोध उचित नहीं, छोटी पिपीलिका भी हाथी को मार सकती है। वह कहता है-

उचित विरोध न बहुजन संगा, लघु पिपीलिकहु बधहिं भुजंगा।
ब्याहि स्वकुल यह भगिनि किशोरी, यदुजन कछुक सकत मैं फोरी।
पै वसुदेव उदार-मति, रूढ़ न उर प्रतिशोध,
भगिनि नेह-बंधन बँधत, तजिहैं बैर-विरोध।-2

1- कृष्णायन-, द्वारिका प्रसाद मिश्र, पृ0-21

2- वही, पृ0 16

वसुदेव

भारतीय वाङ्‌मय में वसुदेव की महत्ता कृष्ण के पिता के रूप में ही महिमान्वित है। श्रीमद्भागवद् पुराण में वसुदेव का चित्रण यदुवशी व मथुरा के राजा शूरसेन के पुत्र के रूप में वर्णित है। वसुदेव की कई पत्नियाँ थी। उनकी सबसे छोटी रानी देवकी थी। इसी देवकी के साथ विवाहोपरान्त, वे कंस द्वारा बन्दीगृह में डाल दिये जाते हैं। वसुदेव व देवकी के आठवें पुत्र कृष्ण, विष्णु के अवतार होते हैं।-1 परम्परागत रूप में वसुदेव का चरित्र आदर्श पिता व पति का है।

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में वसुदेव के संक्षिप्त परम्परागत चरित्र का ही वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु युगीन चेतना के प्रभाव-स्वरूप कहीं-2 मौलिकता का भी समावेश हुआ है। वसुदेव का चरित्र बहुत ही कम रचनाओं में वर्णित हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "द्वापर" में वसुदेव का चरित्रांकन मौलिक रूप में साम्राज्यवाद के विरोधी के रूप में हुआ है, साथ ही उनके उदात्त व आदर्श पति रूप का भी चित्रण हुआ है। वसुदेव केवल अपनी पत्नी देवकी के प्रति उदात्त प्रेम के कारण ही, उनके साथ-2 वर्षों तक जेल की सलाखों के पीछे जीवन व्यतीत करते रहे। वसुदेव के इस चरित्र का वर्णन देवकी के शब्दों द्वारा हुआ है-

दासी के पीछे दुख पर दुख, सहना पड़ा तुम्हें है,
पुनऽपि रुद्ध गुहा से गृह में रहना पड़ा तुम्हें है।-2

"द्वापर" में वसुदेव का चरित्रांकन मौलिक रूप में साम्राज्यवाद के विरोधी स्वतन्त्रता प्रेमी व स्वाभिमानी मानव के रूप में हुआ है। वसुदेव का

1- श्रीमद्भागवद् पुराण - दशम स्कन्ध, प्रथम अध्याय

2- द्वापर- मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 70

यह चरित्र युगीन संवेदना से भी प्रभावित है। वसुदेव में स्वतन्त्रता के प्रति प्रखर चेतना निहित होती है। वे कंस के साम्राज्यवादी नीति के प्रति विद्रोहात्मक भाव-संयुक्त हैं, किन्तु बन्दी होने के कारण विवश होते हैं-

प्रखर चेतना, आह! आग सी, जिसमें जाग रही है,
फिर भी जड़ीभूत लक्कड़- सा, जकड़ा पड़ा वहीं है। — 1

द्वारका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" में वसुदेव के परम्परागत चरित्र का ही प्रमुख रूप से अंकन हुआ है, किन्तु कहीं-2 युगीन संवेदना के प्रभाव-स्वरूप मौलिकता का समावेश भी हुआ है। देवकी के विवाह प्रसंग में वसुदेव का मौलिक चरित्रांकन हुआ है। वसुदेव कंस के प्रति विरोध भाव के कारण देवकी के साथ विवाह के निमन्त्रण को अस्वीकृत कर देते हैं। किन्तु अक्रूर द्वारा समझाये जाने पर असुरों का संहार करने के लिए देवकी से कूटनीति के कारण विवाह करते हैं। वे अक्रूर के इस कथन का समर्थन करते हैं-

कंसहिं आजु जो हम अपनावहिं,
लहि सानिध्य प्रतीति बढ़ावहिं,
क्रम क्रम असुरन ते बिलगायी,
अंत विनाश सकत असहायी। -2 —2

"कृष्णायन" में वसुदेव को परम्परागत पिता रूप का नवीन रूप में चित्रण हुआ है। परम्परागत रूप में वसुदेव अपने वचन के अनुसार स्वपुत्रों को कंस को समर्पित करते जाते हैं। किन्तु "कृष्णायन" में वसुदेव के पितृ-हृदय की व्यथा का भी सहज निरूपण हुआ है। अपने पुत्रों की रक्षा न कर पाने की असमर्थता, उन्हें व्यथित कर देती है-

सोचत् धिक् पुरुषत्व! धिक् जन्महु नृप कुल विमल,
धिक् विद्या वर्चस्व! सकत रच्छि नहिं निज सुतहु।। -3

1- द्वापर मैथिलीशरण गुप्त पृ0- 62

2- कृष्णायन- अवतरण काण्ड, पृ0-17

3- कृष्णायन- " " पृ0-23

देवकी

देवकी कृष्ण की माता होने के कारण ही भारतीय वाङ्मय में वन्दनीय रही हैं। परम्परागत रूप में देवकी के मातृरूप का वर्णन कम प्राप्त होता है, वह भी संक्षिप्त रूप में। श्रीमद्भागवद् पुराण के अनुसार देवकी कंस की चचेरी बहन थीं। ये उग्रसेन के भाई देवक की सबसे छोटी पुत्री थीं। राजा देवक ने अपनी सभी कन्याओं का विवाह वसुदेव से किया था। अन्त में सबसे छोटी कन्या देवकी का भी विवाह वसुदेव से ही करते हैं। विदा के समय देवकी को उनका चचेरा भाई कंस छोड़ने जाता है। किन्तु आकाशवाणी सुनकर देवकी के भावी पुत्रों के भयवश, कंस देवकी को वसुदेव के साथ बन्दी बना देता है।-1 वन्दिनी देवकी के सभी छह पुत्रों को कंस द्वारा मार दिया जाता है। अन्ततः आठवाँ पुत्र कृष्ण ही वसुदेव द्वारा नन्द के पुत्री से गुप्त रूप से बदलकर बचाया जाता है। इस प्रकार परम्परागत रूप में देवकी का चरित्र संयमशील, त्यागी, आदर्श माता व भक्त के रूप में वर्णित हुआ है।

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में देवकी का चरित्रांकन बहुत ही कम हुआ है। जिन रचनाओं में वे वर्णित हुई हैं, उनमें भी उनके परम्परागत रूप की ही अवतारणा हुई है। उनका मौलिक चित्रण बहुत कम हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "द्वापर" में देवकी का चरित्रांकन मौलिक रूप में संवेदनशील नारी के रूप में हुआ है। वन्दिनी देवकी के मनोव्यथा का अंकन "द्वापर" में मौलिक रूप में हुआ है। छः पुत्रों को कंस के निर्ममता पर बलि चढ़ने के कारण देवकी विक्षुब्ध हो उठती है। उनकी इस आत्मव्यथा के साथ-2 उनके निरंकुश राजतंत्र के प्रति विद्रोही भाव का भी अंकन हुआ है।

1- श्रीमद्भागवद् पुराण-दशम स्कन्ध, अध्याय-प्रथम से चतुर्थ तक

"द्वापर" में देवकी संवेदनशील तथा आदर्श नारी के रूप में उस समय उभरती हैं, जब वे वसुदेव के बन्दी जीवन के कष्ट से दु:खी होती हैं। वे अपने पति की व्यथा से व्यथित हो, अपना कष्ट भूल जाती हैं। वे सोचती हैं कि - अगर कंस के द्वारा प्रथम विदाई के समय ही मार दी जातीं, तो उनके पति को इतना कष्ट न सहना पड़ता -

नाथ कंस के हाथ उसी दिन, यदि मैं मारी जाती,
यह मरने से अधिक आपदा, तो तुम पर क्यों आती?
दासी के पीछे दारुणपर दु:ख, सहना पड़ा तुम्हें है,
पुनरऽपि रुद्ध गुहा से गृह में, रहना पड़ा तुम्हें है।-1

आधुनिक नवीन बौद्धिक चेतना का प्रभाव भी "द्वापर" के देवकी के चरित्रांकन पर दृष्टिगत होता है। देवकी में निरंकुश राजतंत्र के प्रति विद्रोही भाव निहित है। निरंकुश राजतंत्र का विरोध करते हुए स्वेच्छाचारी राजा तथा उसके अत्याचार को चुपचाप सहन करने वाली प्रजा, दोनों की ही आलोचना करती हैं। देवकी कहती है-

धिक् तुमको, तेरे राजा को, वह है स्वेच्छाचारी,
अविचारी, अन्यायी, बर्बर, केवल पशुबल-धारी।
हाहाकार हमारा है सो, उसका बजता बाजा,
बोल सके तो बता, इसीने, तेरी सत्ता पाई।-2

"द्वापर" में देवकी के मातृ-हृदय के वेदना की मौलिक रूप मे सजीव व मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। उसके नवजात शिशुओं का कंस द्वारा निर्ममता पूर्वक वध कर दिया जाता है। यह व्यथा देवकी के मन में भीषण अन्तर्द्वन्द

1- द्वापर- मैथिलीशरण गुप्त, पृ0-60

2- द्वापर, पृ0-63

उत्पन्न करता है। वे अबोध बच्चों के वध का कोई औचित्य, कोई अर्थवत्ता नही समझ पाती। वे कहती हैं-

पर उनके अपराध बता दे, कोई झूठे-सच्चे?
दोष यही उन निर्दोषों का- वे थे मेरे बच्चे।
× × ×
रहे अपरिचित ही अनीह वे, इस भव के सुख-दुख से।
हा भगवान! हो गई व्यर्थ वह, प्रसव-वेदना सारी।-1

देवकी के मातृ-हृदय की वेदना इतनी प्रबल हो उठती है कि वे अर्द्धविक्षिप्त सी हो उठती हैं। वे अंधेरे में जलते हुए दीपकों के मद्धिम लौ को अपने बच्चों का प्रतिरूप मान बैठती है। वह आत्म-प्रलाप करती है कि उसके बच्चे कहीं नहीं गये, वे यहीं हैं। देवकी का यह चरित्र मौलिक रूप में वर्णित हुआ है। देवकी अपनी आत्मव्यथा प्रकट करती हुई, कहती है-

इस अँधियारे में दीपक-से, ये क्या दमक रहे हैं?
मुझे निरखते हुए नेत्र ये, कैसे चमक रहे हैं।
अब तो बड़े हो गये आहा! आओ मेरे हीरों।
× × ×
आओ, अब तो तुम्हें चूम लूं, और मुझे तुम चूमो।-2

"द्वापर" में देवकी क चरित्र का सर्वथा मौलिक व उदात्त पक्ष है, उनका स्वाभिमानी व स्वतन्त्रता प्रेमी रूप। देवकी अपने छः छः पुत्रों को कंस की निर्ममता की बलि चढ़ने के बाद भी, कंस के विनाश के लिए अपने पुत्रों को भी न्यौछावर करने का साहस रखती हैं। वे कहती है-

इसी कोख से जनती जाऊँ, उन्हें निरन्तर तब लौं
ध्वश न कर दे कंस-राज्य वे, मेरे जाये जब लौं।-3

1- द्वापर, पृ0-63

2- वही, पृ0-65

3- वही, पृ0-68

कृष्ण की माता होते हुए भी देवकी, कृष्ण का लालन-पालन न कर सकी थी। अपने इस विवशता की उन्हें गहरा वेदना होता है। द्वापर" में देवकी के इसी वेदना की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। देवकी भी यशोदा की भाँति कृष्ण के बाल लीलाओं का सुख उठाना चाहती हैं, उनके मुरली का स्वर सुनना चाहती हैं। देवकी कृष्ण के मोहन रूप को भी देखना चाहती है, केवल हरि रूप नहीं। अपनी इसी व्यथा को प्रकट करती हुई, वे कहती है:-

बोल कहाँ तू कुँवर कन्हैया, मेरे राजा भैया।
सुनूँ तनिक मैं भी वह मुरली, देखूँ, दोहन तेरा,
रहे न मुझको शंखनाद ही, मेरे मोहन, तेरा।-1

इस रचना में मौलिक रूप में देवकी विद्रोही नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है। परम्परागत रूप में श्रीमद्भागवद् पुराण के अनुसार देवकी के आठवें पुत्र के जन्म के बाद कस वसुदेव व देवकी से क्षमायाचना करके उन्हें कारागार से मुक्त करके उन्हें राजमहल में रखता है।-2 किन्तु "द्वापर" में देवकी स्वाभिमानी व विद्रोही है, वे कंस के द्वारा कारागार से मुक्ति को अपना अपमान मानती है। वे अपने पुत्र के हाथ से ही कारागार से मुक्ति चाहती है, अन्यथा आजीवन बन्दी जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार होती है। वे कहती है-

अब अपमान छूटने में भी
　　क्रूर कंस के द्वारा,
मेरा लाल छुड़ा न सके तो
　　भली मुझे चिरकारा।-3

1- द्वापर, पृ0-69

2 श्रीमद्भागवद् पुराण, दशम स्कन्ध, अध्याय-4

3- द्वापर, पृ0 70

द्वारका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" में देवकी के परम्परागत रूप का प्रमुख रूप से अकन हुआ है। प्रसगों में देवकी का चरित्र नवीन रूप में वर्णित हुआ है। आठवें पुत्र के जन्म के समय देवकी की आत्म-व्यथा व मातृ-हृदय की वेदना का मार्मिक व सजीव अंकन प्राप्त होता है। देवकी अपने पुत्र को बचाने के लिए व्यग्र हो उठती है। वे वसुदेव से कहती हैं कि वे छल बल किसी भी नीति का सहारा लें, लेकिन पुत्र को कहीं और पहुचा दें, अन्यथा कस उसे मार डालेगा :-

छल बल नाथ। अबहिं कछु कीजै,
सुत पहुँचाय अनत कहुँ दीजै।
नाहिंत निश्चय कस सँहारहि,
होत प्रभात वत्स मम मारहि।-1

"कृष्णायन" में देवकी के सवेदनशील मातृहृदय का सजीव चित्रण हुआ है। मथुरा में रहते कृष्ण को सान्दीपनि गुरु के आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने के लिए भेजा जाता है। कृष्ण को गुरु-आश्रम जाते देख देवकी का हृदय व्याकुल हो उठता है। दीर्घावधि के बाद मिले पुत्र का पुनर्वियोग उन्हें व्यथित कर देता है, किन्तु वे साहस करके पुत्र को शिक्षा-प्राप्ति हेतु भेज देती हैं। यहाँ उनके आदर्श चरित्र का निरूपण हुआ है —

धिक् धारब तनु सुवन-विहीना।
वृथा राज,धन, धाम-पसारा,
बिनु शशि-वदन हृदय अँधियारा
बिलपत दीन्ही अनुमति माता।-2

समग्रतः देवकी का चरित्र आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में कोई विशिष्ट विकास नहीं प्राप्त कर सका है।

1- कृष्णायन- अवतरण काण्ड, पृ0-23

2- वही, मधुराकाण्ड, पृ0 -171

सुदामा

कृष्ण-सखा सुदामा का चरित्र भारतीय वाङ्मय में रचनाकारों के आकर्षण का विशिष्ट केन्द्र बिन्दु रहा है। सुदामा का चरित्र कृष्ण के प्रति अपनी मित्रता व भक्ति के कारण वर्ण्य-विषय बनता रहा है। श्रीमद्भागवद् पुराण में वर्णित है कि सुदामा गरीब ब्राह्मण थे। वे गुरु आश्रम में कृष्ण के साथ अध्ययन करते हैं, और वहीं पर उनकी मित्रता कृष्ण से होती है। धीरे-2 यही मित्रता प्रगाढ़ स्नेह व भक्ति में परिवर्तित हो जाती है। अध्ययनोपरान्त सुदामा का गृहस्थ-जीवन आर्थिक रूप से दयनीय होता है। अन्ततः अपनी पत्नी के आग्रह पर वे अपने मित्र द्वारिकाधीश कृष्ण के पास जाते हैं। वहाँ कृष्ण से उन्हें सुख-समृद्धि प्राप्त होती है। सुदामा को श्रीमद्भागवद् पुराण में चारित्रिक रूप से महत उदात्तता प्राप्त है। वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, विरक्त, शान्त-चित्त, जितेन्द्रिय आदि शब्दों से महिमामंडित किये गये है।-1

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में भी सुदामा का महत चरित्र वर्ण्य-विषय बना है, यद्यपि सुदामा का चरित्र प्रबन्ध-कृतियों की अपेक्षा मुक्तक काव्यों में ही विशिष्ट रूप से वर्णित है। प्रबन्ध-कृतियों में सुदामा का चरित्रांकन बहुत कम हुआ है।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "द्वापर" में सुदामा का चरित्र-चित्रण परम्परागत धरातल पर होते हुए भी, मौलिक रूप से वर्णित हुआ है। इस रचना में सुदामा स्वाभिमानी आत्मसन्तोषी, भौतिकता के प्रति निर्मोही, त्यागी, बौद्धिक तथा आदर्श मानव के रूप में अंकित हुए हैं।

"द्वापर" में सुदामा का परम्परागत विप्र-रूप की मौलिक अभिव्यंजना हुई है। सुदामा को अपने विप्र-रूप पर गर्व है। वे धर्म-कर्म के शिक्षा के

1- श्रीमद्भागवद् पुराण दशम स्कन्ध, अध्याय-80

विनिमय स्वरूप प्राप्त आर्थिक सहयोग को भिक्षा नहीं मानते। इसे वे अपने श्रम का फल ही मानते हैं। वे कहते हैं-

लेता हूँ कुछ से मैं अपने, असन-वसन की भिक्षा,
देता हूँ कुछ को मैं उनके, धर्म-कर्म की शिक्षा।
है आदान-प्रदान यही तो, दोनों को हितकारी।-1

इस रचना में सुदामा का चरित्रांकन आधुनिक बौद्धिक चेतना से प्रभावित है। सुदामा भौतिक चकाचौंध को मानव की लालसा-वृद्धि का कारण मानते हैं। भौतिकता ही काम, क्रोध, मद, मोह का जड़ बनती है। मनुष्य जितना ही सुख-समृद्धि प्राप्त करता जाता है, उसकी लालसायें व इच्छायें उतनी ही बढ़ती जाती हैं। इसी सन्दर्भ में सुदामा अपनी पत्नी को आत्म सन्तोष की शिक्षा देते हुए, कहते हैं-

सोना पाकर भी क्या सुख से, तू सोने पायेगी?
बढ़ती हुई लालसा तुझको, कहाँ न ले जावेगी।
जो जिसको उपलब्ध उसी में असन्तोष है उसको।-2

"द्वापर" में सुदामा त्यागशील व स्वधर्म प्रेमी मानव के रूप में निरूपित हुए हैं। वे तप को अपना प्रमुख धर्म मानते हैं, तथा त्याग को इस धर्म की विशिष्टता के रूप में स्वीकार करते हैं। स्वधर्म के लिए वे मृत्यु तक को अंगीकार करना उचित मानते हैं। सुदामा का यह चरित्र उनकी उदात्तता का ही द्योतक है। वे कहते हैं-

तप ही परम धर्म है अपना, त्याग मर्म है जिसका,
मरना भी अच्छा स्वधर्म में, कहना ही क्या इसका?-3

1- द्वापर- मैथिलीशरण गुप्त, पृ0-151

2- द्वापर, पृ0-152-153

3- वही, पृ0-152

सुदामा को सवेदनशील व भावुक मानव के रूप में भी चरित्रांकिन किया गया है। कृष्ण से बचपन की मित्रता के कारण एक तरफ जहाँ मित्रता उन्हें कृष्ण के पास जाने के लिए प्रेरित करती हैं, वहीं कृष्ण का द्वारिकाधीश रूप उन्हें प्रश्नाकुल कर देता है। दोनों परिस्थितियों के मध्य अन्तर्द्वन्द ग्रस्त सुदामा कृष्ण के प्रति सशयग्रस्त हो उठते हैं। वे कहते हैं-

मुरली नहीं, आज शासन-चक्र हाथ में उसके,
तू ही बता निभूगा कैसे, वहाँ साथ में उसके।-1

इसके साथ ही सुदामा के आकुलता का कारण उनकी आर्थिक रूप से दयनीय स्थिति भी होती है। वे रिक्तपाणि होते हुए द्वारिकाधीश मित्र के पास जाने में लज्जा का अनुभव करते हैं। यह लज्जा उनकी मानवीय दुर्बलता व संवेदनशीलता का द्योतक है। गरीब होने के कारण अमीर मित्र की मित्रता को यथार्थ होते हुए भी, स्वीकृति नहीं दे पाते। उनका अन्तर्द्वन्द उन्हें विभिन्न शंकाओं से ग्रसित करता है।

"द्वापर" के पश्चात् "कृष्णायन" में सुदामा के परम्परागत चरित्र को वर्णित किया गया है। गुरू सदीपनि आश्रम में कृष्ण के साथ अध्ययनरत सुदामा का चरित्र,मित्र से अधिक अनुयायी व भक्त के रूप में अधिक मुखर हुआ है।

"कृष्णायन" में सुदामा विषय-विलास से विरक्त, सत्यव्रती धैर्यवान, शान्त, सुशील, सुबुद्धि तथा उदार व्यवहार वाले सौम्य ब्राह्मण पुत्र के रूप में वर्णित हुए हैं-

---

1- द्वापर, पृ0-155

Contd......333

विप्र सुवन इक वटु गुणधामा, निवसत आश्रम नाम सुदामा।

विषय-विलास, विभूति-उदासी, सत्यव्रती, धृति, धीरज-राशी।

शान्त, सुशील, सुबुद्धि उदारा, सरल स्वभाव सौम्य व्यवहारा। - 1

सुदामा के मन में कृष्ण के प्रति अपार प्रेम व भक्तिभाव निहित होता है। वे कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव के कारण ही उनसे मित्रता करते हैं। कृष्ण की सेवा करते हुए, उनके साथ-2 छाया की भाँति दिन-रात लगे रहते हैं-

करत यथा हरि गुरु-सेवकाई, द्विज तिमि हरिपद स्नेह बढ़ाई।

सेवत निशि दिन तन-मन-काया, रहत सदा लगि संग जिमि छाया। -2

"कृष्णायन" में सुदामा का चरित्रांकन परम्परागत रूप में ही कृष्ण के भक्त के रूप में हुआ है। सुदामा और कृष्ण का सम्बन्ध भक्त और भगवान का सम्बन्ध है। सुदामा के चरित्र-निरूपण में किसी विशिष्ट नवीनता का समावेश नहीं दृष्टिगत होता है।

1- कृष्णायन, पृ0-186

2- कृष्णायन, पृ0-186

अध्याय - चार

महाभारतीय कथा : पात्रों का चरित्र विकास

युधिष्ठिर

महाभारतीय चरित्रों में युधिष्ठिर का चरित्र सर्वाधिक उदात्त व आदर्श है। उनके चरित्र का उदात्त पक्ष है- सत्यवादिता, सहिष्णुता और वीरत्व। इसी कारण वे धर्मराज की संज्ञा से भी विभूषित किये गये। परम्परागत रूप में युधिष्ठिर के चरित्र का दुर्बल पक्ष द्रौपदी को दाँव पर लगाने वाले द्यूत व्यसनी तथा अश्वत्थामा की मृत्यु की झूठी खबर देने वाले चरित्र के रूप में प्राप्त होता है।

आधुनिक प्रबन्ध रचनाओं में युधिष्ठिर के परम्परागत रूप पर आधुनिक चेतना का व्यापक प्रभाव परिलक्षित होता है। आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में एक तरफ युधिष्ठिर के दुर्बल चारित्रिक पक्ष के परिष्कार की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है, वहीं दूसरी तरफ उनके इन कृत्यों के पुनर्मूल्यांकन की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है।

आलोच्य प्रबन्ध-कृतियों में "कृष्णायन"-1 का स्थान सर्वप्रथम आता है। इस रचना में युधिष्ठिर का चरित्र परम्परागत होते हुए भी आधुनिक मौलिक चेतना से अछूता नहीं है। इस रचना में युधिष्ठिर मानवतावादी समतावादी, विनम्र व वीर मानव के रूप में अंकित हुए हैं। "कृष्णायन" में युधिष्ठिर के द्यूत व्यसनी व अनृत भाषी दोनों रूपों का परिष्कार करते हुए, उन्हें सर्वथा मौलिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

"कृष्णायन" में युधिष्ठिर के चरित्र का उदात्त पक्ष है, उनका मानवतावादी व समतावादी चरित्र। यहाँ युधिष्ठिर का चरित्रांकन आधुनिक मानवतावादी चेतना से प्रभावित है। राजसूय यज्ञ में दिग्विजयी सम्राट युधिष्ठिर कौरव व पाण्डव दोनों को समान रूप से देखते हैं। समाज के समस्त वर्ण

1- कृष्णायन- द्वारका प्रसाद मिश्र (रचना-1945 ई0)

के लोगों, ग्रामीण व नागरिक सभी को बिना किसी भेदभाव, के यज्ञ में भाग लेने के लिए निमन्त्रित करते हैं-

चारिउ वर्ण निमंत्रि बोलाये

नगर ग्राम नहिं भारत मांही, आयेउ अतिथि जहाँ ते नाहीं।-1

"कृष्णायन" में युधिष्ठिर के परम्परागत द्यूत-प्रेमी के चरित्र का परिष्कार किया गया है। उनके इस कृत्य को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। युधिष्ठिर द्यूत-क्रीड़ा को निन्दनीय मानते हैं। किन्तु धृतराष्ट्र द्वारा भेजे गये द्यूत-क्रीड़ा के निमन्त्रण को विवशतः स्वीकार करते हैं, क्योंकि यह उनके पितृ-अग्रज व पूज्य का आदेश था –

पितु अग्रज वे पूज्य मम्, सकहुँ न टारि आदेश।-2

इस रचना में युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को दाँव पर लगाने के कृत्य का भी परिमार्जन कराने का प्रयास हुआ है। द्यूत-क्रीड़ा में अनभ्यस्त होने के कारण युधिष्ठिर को अपना सर्वस्व खोना पड़ता है। वे स्वयं को भी दाँव पर लगा देते हैं, किन्तु द्रौपदी के सन्दर्भ में वे अपनी असहायावस्था व्यक्त करते हुए धृतराष्ट्र से अप्रत्यक्ष सहायता की याचना करते हैं। वे "छमहु तात! मम् विस्मृति खोरी" कहकर धृतराष्ट्र से सहायता की अपेक्षा करते हैं, किन्तु उनके मौन रहने पर, अपने कुल की लाज द्रौपदी को दाँव पर लगाने हेतु विवश हो जाते हैं:-

बची अबहुँ पाञ्चाल कुमारी, सुनि कह धर्मपुत्र कर जोरी

"छमहु तात! मम् विस्मृति खोरी।"

मौन अंधलखि धर्मसुत, धरी दाँव कुलबाल।-3

1- कृष्णायन- पृ0 391

2- वही, पृ0 416

3- वही, पृ0 420

"कृष्णायन" में युधिष्ठिर के उस दम्भरान्त मिथ्याभाषी चरित्र का परिष्कार हुआ है, जो द्रोण के वध का कारण बना था। इस रचना में इस प्रसंग का ही निषेध किया गया है, तथा द्रोण के मृत्यु प्रसंग को नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। द्रोण के मन में युद्ध से विरक्ति भाव उत्पन्न हो जाती है। फलतः वे ध्यानयोग में लीन हो जाते हैं। धृष्टद्युम्न उन्हें घायल समझकर उनका वध कर डालता है।

द्वारका प्रसाद मिश्र ने युधिष्ठिर को नीतिज्ञ तथा बौद्धिक धीर पुरूष के रूप में प्रस्तुत किया है। युधिष्ठिर युद्ध के विध्वंशक ताण्डव नर्तन को रोकने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु उन्हें असफलता ही हाथ लगता है। अन्ततः वह युद्ध को भवितव्य समझकर स्वीकार कर लेते हैं-

वृत्ति संकुचित तजी नरेशा, उपजेउ हृदय क्षात्र आवेशा।-1

रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत "कुरूक्षेत्र" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन आधुनिक चेतना से व्यापक रूप में प्रभावित हुआ है। कुरूक्षेत्र में युधिष्ठिर बौद्धिक व यथार्थवादी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। युद्ध की विभीषिका से त्रस्त, जन-सामान्य की पीड़ा से अन्तर्व्यथित युधिष्ठिर युद्ध के औचित्य-अनौचित्य के मध्य त्रिशंकु की स्थिति में आ जाते हैं। युद्ध की भयंकर स्मृतियों के अन्तर्द्वन्द्व से ग्रसित युधिष्ठिर का चरित्रांकन "कुरूक्षेत्र" की मौलिकता है। युधिष्ठिर गाँधीवादी तथा मानवतावादी चेतना से प्रभावित है।

"कुरूक्षेत्र" के द्वितीय सर्ग में युद्ध के विध्वंशक ताण्डव नर्तन में भस्मीभूत निरीह तथा निर्दोष जनों, घायलों की करूण पुकार तथा उनके सगे-सम्बन्धियों की आहों का युधिष्ठिर पर गहरा प्रभाव पड़ता है। वे युद्ध के प्रति विरक्त हो उठते हैं। युधिष्ठिर आत्मव्यथित हो भीष्म से कहते हैं:-

---

1- कृष्णायन- पृ0-618

जानता कहीं जो परिणाम महाभारत का,

तन-बल छोड़ मैं मनोबल में लड़ता

तप से सहिष्णुता से, त्याग से सुयोधन को

जीत, नयी नींव इतिहास की मैं धरता।-1

"कुरुक्षेत्र" में युधिष्ठिर के चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है, युद्ध के विध्वंशक लीला के कारणों में अपने भूमिका की आत्म-स्वीकृति। युधिष्ठिर एक बौद्धिक मानव सदृश युद्ध के लिए अपनी भूमिका को स्वीकार करते हुए, अपने धन लोभ व सुख प्राप्ति की प्रवृत्ति को भी महाभारत युद्ध का कारण मानते हैं। वे कहते हैं:-

धन-लोभ उभारता था मुझको,

वह केवल क्रोध का घात न था,

× × ×

अपमान का शोध मृषा मिस था,

सच में, हम चाहते थे सुख पाना।-2

युधिष्ठिर युद्ध की भर्त्सना करते हुए उन मानवीय प्रवृत्तियों पर आक्षेप करते हैं, जिनमें शान्ति की तुलना में युद्धानल भड़काने की क्षमता अधिक होती है। मानव बिना सोचे समझे रण में रक्त बहा सकता है, किन्तु तटस्थ होकर युद्धानल पर शान्ति का पानी नहीं डाल सकता। यहाँ आधुनिक परिस्थितियों की ओर ही संकेत हुआ है। युधिष्ठिर स्वयं अपनी ही आलोचना करते हुए तथा मानव की निम्न प्रवृत्ति की ओर इंगित करते हुए, कहते हैं:-

कुछ सोचे- विचारे बिना रण में

निज रक्त बहा सकता नर मानी

पर, हाय, तटस्थ हो डाल नहीं

सकता वह युद्ध की आग में पानी।-3

1- कुरुक्षेत्र-रामधारी सिंह 'दिनकर' (प्र0सं0 1946 ई0) पृ0-12
2- कुरुक्षेत्र- पृ0-62-63
3- वही, पृ0 75

"कुरूक्षेत्र' में युधिष्ठिर के उदात्त चिन्तन का दृष्टिकोण मौलिक रूप में गांधीवाद से प्रभावित हैं। युधिष्ठिर मानते हैं कि दुर्योधन से निजी अपमान के प्रतिशोध में समस्त देश को युद्धानल में झोंकना अनुचित था। द्रौपदी के पराभव का बदला लेने के लिए समस्त देश को जितना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा, उसके प्रति युधिष्ठिर विषम अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त दृष्टिगत होते हैं। वे कहते हैं-

हठ पर दृढ़ देख सुयोधन को

मुझको व्रत से डिग जाना था क्या?

द्रौपदी के पराभव का बदला

कर देश का नाश चुकाना था क्या?-1

इस रचना में युधिष्ठिर का चरित्रांकन गांधीवाद से प्रभावित है। कुरूक्षेत्र में युद्ध के प्रति विरक्त में युधिष्ठिर मानवतावादी तथा विश्वकल्याण के प्रणेता के रूप में उभरे हैं। उनका यह चरित्र सर्वथा मौलिक है। युधिष्ठिर कुरूक्षेत्र के विध्वसंक युद्ध के पश्चात भी मानव को चरमोत्कर्ष तक ले जाने के लिए तत्पर हैं। वे विश्व में मंगलकारी शान्ति की स्थापना करके नवीन मानव धर्म की स्थापना करना चाहते हैं। वे कहते हैं-

नर-संस्कृति की रण-छिन्न लता पर,

शान्ति-सुधा फल दिव्य फलेगा,

कुरूक्षेत्र की धूल नहीं इति पन्थ की,

मानव ऊपर और चलेगा।

मनु का यह पुत्र निराश नहीं,

नव धर्म प्रदीप अवश्य जलेगा।-2

1- कुरूक्षेत्र- रामधारी सिंह, 'दिनकर , पृ0-74

2- वही, पृ0-76

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत "कर्ण" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है। इस रचना में युधिष्ठिर युद्ध के विरोधी शान्ति के समर्थक तथा संवेदनशील युवा के रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

"कर्ण" में युधिष्ठिर युद्ध के विरोधी मानव के रूप में अंकित हुए हैं। युधिष्ठिर युद्ध के विध्वंशक ताण्डव लीला से देश को बचाने के लिए कई प्रयत्न करते हैं, किन्तु असफलता ही उनके हाथ लगती है। अन्ततः रण की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। रण की तैयारी देख युधिष्ठिर अन्तर्व्यथित हो उठते हैं:-

यत्न हुए बेकार, लगी होने रण की तैयारी,
हुए युधिष्ठिर विकल लिए प्राणों में पीड़ा भारी।-1

युधिष्ठिर का चरित्रांकन गांधीवाद तथा मानवतावाद से प्रभावित है। रण की तैयारी देख युधिष्ठिर का मन विकल हो उठता है। वे किसी भी परिस्थिति में युद्ध के विध्वंशक ताण्डव नर्तन को रोकना चाहते हैं। देश की शान्ति को नष्ट होने से बचाना चाहते हैं। इसी कारण वे कृष्ण को शान्ति दूत बनाकर, दुर्योधन के पास संधि प्रस्ताव भेजते हैं। वे अपनी आत्मव्यथा को प्रकट करते हुए, कृष्ण से कहते हैः-

कहा कृष्ण से -"दयासिन्धु! तुम शान्ति दूत बन जाओ।
कौरव-पाण्डव कुल को अब, मिटने से हाय, बचाओ।
दुर्दिन की घिर रही घटायें, केशव जल्दी आओ।
शान्ति स्थापना करो, नाश का ध्वंशक अनल बुझाओ।-2

"कर्ण" में युधिष्ठिर संवेदनशील तथा अन्याय के विरोधी मानव के रूप में अंकित हुए हैं। युधिष्ठिर के चरित्र का यह पक्ष भी सर्वथा मौलिक

1- कर्ण-केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', (रचना-1950 ई0) पृ0-44
2- कर्ण- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ0-44

है। वे अपनी माँ कुन्ती से कर्ण के मृत्योपरान्त उसके जन्म का रहस्य जानकर करूणार्द्र हो उठते हैं। माँ कुन्ती का कर्ण के प्रति कठोर निष्ठुर, निर्मम व अमानवीय कृत्य उन्हें व्यथित कर देता है। वे कुन्ती की भर्त्सना करते हुए, कहते हैं:-

> माँ होकर भी किया पुत्र का अहित, अनिष्ट, अनर्थ।
> माँ के अकलुष मन में उतरा कैसे कलुष-कठोर
> क्यों कटवा दी निरपराध की, तुमने जीवन डोर।।-1

"अंगराज" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन परम्परागत रूप से परे निम्न चरित्र के रूप में हुआ है। कर्ण चरित्र पर केन्द्रित इस रचना में कौरव पक्ष के उत्कर्ष के लिए पांडवों का अपकर्ष दिखाया गया है। परम्परागत रूप में धर्मराज कहे जाने वाले युधिष्ठिर के बारे में कवि कहता है— "राम ने अपने भाई को अपना राज्य दे दिया, युधिष्ठिर ने अपने भाई से उसी का राज्य छीन लिया। राम का विशाल हृदय युधिष्ठिर के पास कहाँ था, वह तो स्वार्थान्ध था।"-2 "अंगराज" में युधिष्ठिर राज्य-विद्रोही, कामोन्मादी, ईर्ष्यालु, द्यूत-व्यसनी, मिथ्या भाषी व कायर पुरुष के रूप में चरित्रांकित किये गये हैं।

"अंगराज" में युधिष्ठिर द्यूत-व्यसनी के रूप में प्रस्तुत हुए है। "कर्ण" में युधिष्ठिर पितृ-अग्रज व पूज्य धृतराष्ट्र के आदेश के कारण द्यूत-क्रीड़ा स्वीकार करते हैं, किन्तु "अंगराज" में युधिष्ठिर अपने द्यूत-व्यसन तथा राज्यलोभ के कारण योजना बनाकर, को द्यूत के लिए निमन्त्रित करता है-

> राज्य-लोभवश यह आया था लिये प्रयोजन गूढ़।
> किन्तु स्वयं हो गया पदच्युत किंकर्त्तव्य विमूढ़।।-3

1- कर्ण-केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ0-101-102

2- अंगराज-आनन्दकुमार (रचना 1950 ई0), भूमिका में कवि

3- वही, पृ0-76

आनन्द कुमार ने युधिष्ठिर के चरित्र को गर्हित करने के लिए उन्हें राज्य-विद्रोही मानव के रूप में प्रस्तुत किया है। युधिष्ठिर जन समाज में अपनी ख्याति के लिए स्वयं को धर्मावतार व दुर्योधन को दनुज के रूप में प्रचारित करते हैं। वे द्यूत में हारने के बाद नियमानुसार वनवासी होते हैं, किन्तु जन-समाज में इसे दूसरे ही रूप में प्रचारित करते हैं। वे स्वयं को पैतृक राज्य से विहीन तथा दुर्योधन के अन्याय का शिकार बताकर समाज की कृपा दृष्टि प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें स्वपक्ष में करना चाहते हैं:-

प्रजाजनों से कहकर निज को पैतृक राज्य-विहीन।
अन्यायी कहकर कुरुपति को निज को सज्जन-दीन।
दुर्योधन को दनुज स्वयं को बता धर्म-अवतार।
धर्मराज ने किया लोक में राज्य-विरुद्ध-प्रचार।।-1

"अंगराज" में युधिष्ठिर के चरित्र का सर्वाधिक गर्हित व निम्न पक्ष है, उनका कामोन्मादी रूप। अर्जुन द्वारा द्रौपदी के वरण के पश्चात् युधिष्ठिर द्रौपदी पर मोहित हो जाते हैं। वे वंश सम्पदा के समान ही द्रौपदी पर भी सभी भाइयों का समान अधिकार मानते हैं। इसी कारण द्रौपदी को पंचपतित्व स्वीकार करना पड़ता है। यहाँ परम्परागत कथा का निषेध हुआ है, जिसमें माँ कुन्ती के आज्ञावश तथा पूर्वजन्म के विधान के कारण द्रौपदी का विवाह पंच-पाण्डवों से होता है। "अंगराज" में इस कृत्य के पीछे युधिष्ठिर का कामोन्माद ही दिखाया गया है। युधिष्ठिर कहते हैं:-

वंश सम्पदा पर हम सबका है समान अधिकार,
अतः प्राप्य है बन्धु-बन्धु को द्रुपदात्मजा वरत्व।-2

इस रचना में युधिष्ठिर परम्परागत रूप से परे कायर मानव के रूप में चरित्रांकित किये गये हैं। युद्ध में कर्ण द्वारा त्रस्त किये जाने पर वे

1- अंगराज- पृ0-63
2- वही, पृ0-67-68

अपनी क्लैवता का परिचय देते हुए, उनसे गिड़गिड़ाते हुए प्राण याचना करते हैं। युधिष्ठिर कर्ण से कहते हैंः-

> राजदण्ड को तो दण्ड रूप मानते हैं हम,
> कभी न उठा सकेंगे ऐसे गुरु भार को।
> होंगे वनवासी अब त्याग माया-मोह, हमें
> द्रोह त्याग कीजिए प्रदान प्राण-दक्षिणा।-1

समग्रतः "अंगराज" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन गर्हित व निम्न करने के पीछे कवि द्वारा कौरव पक्ष का चारित्रिक उत्थान करने का उद्देश्य ही दृष्टिगत होता है।

मैथिलीशरण गुप्त कृत "जयभारत" में युधिष्ठिर का चरित्र-चित्रण सर्वथा मौलिक रूप में हुआ है। युधिष्ठिर का चरित्रांकन आधुनिक गांधीवादी, बौद्धिक, मानवतावादी तथा आदर्शवादी चेतना से प्रभावित है।

"जयभारत" में युधिष्ठिर मौलिक रूप में मानवतावादी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। वे समस्त मानव को एक समान मानते हैं। एकलव्य के सन्दर्भ में प्रश्न उठने पर युधिष्ठिर कहते हैं-

> परमात्मा के अंश रूप हैं आत्मा सभी समान।
> एकलव्य तो मनुज मुझी सा ------ -2

इस रचना में द्रौपदी विवाह प्रसंग में युधिष्ठिर का मौलिक, उदात्त व नीतिज्ञ रूप परिलक्षित होता है। वे कुन्ती द्वारा दिये गये पाँचों भाइयों में भोगने के आदेश की बौद्धिक व नीतिसंगत व्याख्या करते हैं। वे द्रौपदी को अर्जुन की ही वधू मानते हैं। वे अर्जुन से बड़े दो भाइयों को द्रौपदी

1- अंगराज- पृ0-232

2- जयभारत - पृ0-58

का जेठ तथा दो को देवर के रूप में मानने का प्रस्ताव रखते हैं:-

वर पार्थ वधू है पांचाली, दो वर ज्येष्ठ का पद पावें,

दो देवरत्व पर बलि जावे, भोगें यों पाँचों सुख इसका।-1

गुप्त जी ने युधिष्ठिर का चरित्रांकन मौलिक रूप में समन्वयवादी मानव के रूप में किया है। राजसूय यज्ञ में युधिष्ठिर आर्यों व अनार्यों का समान रूप से सम्मान करते हुए, उन्हें निमंत्रित करते हैं:-

चतुर्वण क्या, आये मख में मित्र तुल्य ही मलेच्छ,

स्वागत पूर्वक पाया सबने उच्चातिथ्य यथेच्छ।

अतिथि मात्र सब देव रूप थे, जो हों आर्य-अनार्य।-2

द्यूत-क्रीड़ा प्रसंग में भी युधिष्ठिर का नवीन रूप में अंकन हुआ है। "कृष्णायन" में युधिष्ठिर धृतराष्ट्र की आज्ञा के कारण विवशनः द्यूत-क्रीड़ा हेतु आते हैं। "अंगराज" में उन्हें द्यूतव्यसनी ही दिखा दिया गया है। किन्तु "जयभारत" में युधिष्ठिर सर्वथा नवीन रूप में प्रस्तुत हुए हैं। वे न तो द्यूत-क्रीड़ा हेतु किसी आदेश से बाध्य हैं, न ही द्यूतव्यसनो ही हैं। वे द्यूत को पवित्र न मानते हुए भी किसी द्वारा आमन्त्रित किये जाने पर, उस आमन्त्रण को ठुकरा नहीं पाते:-

जैसे तुम पंचों की इच्छा, द्यूत न हो मेरा व्रत पूत।

आये बिना नहीं रहता हूँ, जब मैं होता हूँ आहूत।-3

"जयभारत" में युधिष्ठिर देश-प्रेमी रूप में चरित्रांकित हुए हैं। युधिष्ठिर अपने देश के घरेलू झगड़ों को, शत्रुओं के समक्ष प्रकट न करने

1- जयभारत - पृ0-69

2- वही, पृ0-142

3- वही, पृ0-145

की शिक्षा देते हैं। गन्धर्वों के बन्दी बने कौरवों को मुक्त कराने के लिए वे अर्जुन को भेजते हैं। वे कहते हैं कि कौरव भले अलग हैं, किन्तु बाहरी शत्रु के समक्ष हम अलग नहीं। हम लोग पूरे एक सौ पाँच हैं। यहाँ उनके देश-प्रेम व संगठन की इच्छा के साथ, उनके उदात्तता का भी प्रकटन होता है-

क्रूर कौरव अन्यायी हैं, हमारे फिर भी भाई हैं।
जहाँ तक आपस की आँच, वहाँ तक वे सौ हम पाँच।
किन्तु यदि करे दूसरा जाँच, गिने तो हमें एक सौ पाँच।-1

इस रचना में युधिष्ठिर युद्ध-विरोधी तथा शान्ति के समर्थक चरित्र के रूप में निरूपित किये गये हैं। युधिष्ठिर युद्ध के विध्वंसक दावानल में निर्दोष जन-समाज को भस्म करना नहीं चाहते। समाज को युद्ध के विनाश से बचाने के लिए ही वे पाँच गाँव लेकर भी संधि करने के लिए तैयार होते हैं। "युद्ध में मानवता के संहार की कल्पना कर उनका हृदय सिहर उठता है। वे समस्याओं का हल युद्ध में नहीं अपितु शान्ति में खोजते हैं।-2 युधिष्ठिर की यह कामना होती है कि युद्ध अपने कालरूपी पंजे में जन-समाज को न जकड़ सके-

गूँजे न निज नन्दन विपिन में घोर क्रन्दन नाद ही
छा जाय इस उन्माद के पीछे न हाय। विषाद ही।
निज दर्प से ही हत हुओं की गृहणियों की गर्हणा,
डस ले न शेष समाज को भी बन विषम विषधर फड़ी।-3

1- जयभारत- पृ0-208

2- हिन्दी के प्रथम काव्यों में चरित्र-चित्रण- डॉ0 प्रेमकली शर्मा, पृ0-226

3- जयभारत- पृ0-312

"जयभारत" में युधिष्ठिर मौलिक रूप में समाजसेवी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। यहाँ युधिष्ठिर का चरित्रांकन गाँधी के रामराज्य की कल्पना से प्रभावित है। युधिष्ठिर सभी को सुखी तथा रोग मुक्त देखना चाहते हैं। वे सबके कल्याण की कामना करते हैं, किसी को भी दुःखी नहीं देखना चाहते। इसी कारण स्वयं कष्ट का अनुभव प्राप्त कर चुके युधिष्ठिर, सबके कल्याण के लिए महत कदम उठाते हैं:-

सब सुख भोगें, सब रोग से रहित हो,
सब शुभ पावें न हो दुःखी कहीं कोई भी।-1
× × ×
आप दुःख अनुभवी उन्होंनें सबको सुखी बनाया।-2

"जयभारत" में युधिष्ठिर मानवतावादी उदात्त गुणों से सम्पन्न मानव के रूप में चरित्रांकित हुए हैं। "युधिष्ठिर का आत्म सुख पर कल्याण में निहित है, यही उनके चरित्र का महत्वपूर्ण अंश है। उनके जीवन का मूल ध्येय तो यही है। युधिष्ठिर के चरित्र का विकास शक्तियों के बीच होता है। विपत्तियों का वे धैर्यपूर्वक सामना करते हैं। ----निःस्वार्थ, निष्कपट, निरीह एवं निस्पृह होकर युधिष्ठिर अपने में मानवता के आदर्श की स्थापना करते हैं।"-3 "जयभारत" में गुप्त जी ने युधिष्ठिर का चरित्र मौलिक गुणों से युक्त अनुकरणीय व आदर्श रूप में निरूपित किया है।

"पांचाली" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन सर्वथा मौलिक रूप में हुआ है। इस रचना में युधिष्ठिर अहिंसा व सत्य का अस्त्र धारण किये हुए साक्षात् गाँधी सदृश प्रतीत होते हैं। इसके साथ ही वे बौद्धिक व तार्किक

1- जयभारत - पृ0-410

2- वही, पृ0-433

3- मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-एल0 सुनीता, पृ0-253

चेतना से युक्त, परम्परागत रूढ़ियों के प्रति विद्रोही तथा यथार्थवादी मानव के रूप में भी चरित्रांकित हुए हैं। कवि ने "पांचाली" की भूमिका में लिखा है- "युधिष्ठिर का चरित्र जहाँ तत्कालीन समाज व्यवस्था का खोखलापन दिखाता है, यह भी बताता है कि तैयार नहीं रहने पर भी युधिष्ठिर ने ही सबसे पहले तत्कालीन शासक वर्ग के नियम क्षत्रिय धर्म को क्रूर कर्म कहा। -- -- उन्होंने दासत्व को पराधीनता को स्वीकार करके दास प्रथा के प्रति होने वाले अमानुषिक अत्याचारों को खोलकर रख दिया । और उच्च वर्गों के शासन को हिला दिया।"-1 उच्चवर्गीय युधिष्ठिर द्वारा निम्न वर्ग के कल्याण के लिए उच्च वर्ग का ही विरोध.उनके उदात्तता का द्योतक है।

"पांचाली" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन गांधीवादी आदर्शों से प्रभावित है। इस रचना में वे धर्मराज के रूप में प्रस्तुत हुए हैं, जिसके समक्ष सभी राष्ट्रों के सूत्रधार कृष्ण भी मौन हो जाते हैं। क्षमा और सत्य के अस्त्र से सुसज्जित युधिष्ठिर, प्रत्येक तथ्य को तर्क की कसौटी पर कसने के पश्चात् ही स्वीकार करते हैं-

वह खड्ग वीर था नहीं, क्षमा थी, उसमें,
वह सत्यवीर था अप्रतिद्वन्दी निर्भय।
यह नहीं अंध-विश्वास किसी पर रखता,
निज तर्कों से ही यह सबको सदा परखता।-2

इस रचना में युधिष्ठिर मानवतावादी व बौद्धिक मानव के रूप में उभरे हैं। समाज के दलित वर्गों के प्रति उनमें उदात्त चेतना निहित होती है। पीड़ित व प्रताड़ित वर्ग के कष्टों का अनुभव वे स्वयं महसूस

1- पांचाली- रांगेय राघव (प्रं·सं·-1955 ई0) भूमिका में कवि पृ0-5

2- वही, पृ0 -31

करते हैं। दलित वर्ग के कटु जीवन के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए वे कहते हैं:-

जब देखा सबको शीश झुकाते मैंने

सोचा क्या यह भी प्रजा हेतु आवश्यक है?

यदि हमें झुकाना शीश पड़े अपना ये

अन्यों की खड्गों की धारों से नत हो

क्या हृदय कहेगा यह सहर्ष झुक जाओ?-1

युधिष्ठिर का यह प्रश्न निरंकुश राजतंत्र के द्वारा चलाये गये दास प्रथा के प्रति गहरे आक्रोश का द्योतक है। पूर्ववर्ती आलोच्य रचनाओं में उनका यह रूप नहीं प्राप्त होता।

"पांचाली" में युधिष्ठिर पूर्ववर्ती रचनाओं की तुलना में मौलिक रूप में परम्परागत बलि-प्रथा के विरोधी मानव के रूप में चरित्रांकित किये गये हैं। वे भगवान के नाम पर किये जाने वाले यज्ञों में निरीह पशुओं के बलि पर अपना तीव्र आक्रोश व्यक्त करते हैं। वे बलि-प्रथा को विप्रों के स्वार्थमयी प्रवृत्ति का ही द्योतक मानते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं-

जो नहीं निरंकुशता को देवे प्रश्रय,

इसलिए रचा था मैंने स्वर्ग यहाँ पर

फिर भी जब मैंने देखा पशु-बलियों को

सोचा मैंने क्या यह भी धर्म समन्वित ।-2

"पाँचाली" में द्रौपदी को दाँव लगाने के प्रसंग में युधिष्ठिर के चरित्र को मौलिक प्रस्तुति मिली है। द्यूत-क्रीड़ा में युधिष्ठिर स्वयं को हार

1- पांचाली- पृ0-36

2- वही, पृ0-36

जाने के बाद द्रौपदी को दाँव पर लगाते हैं। इसी सन्दर्भ में द्रौपदी ने यह प्रश्न उठाया था कि जब युधिष्ठिर स्वयं को ही हार गये तब उनके पास द्रौपदी को हारने का अधिकार कहाँ रहा? परम्परागत रूप में द्रौपदी का यह प्रश्न निरुत्तर ही रहा है। "पांचाली" में युधिष्ठिर राज्य के शीर्ष स्थान के अधिकारी तथा उनके अनुयायियों के मौन के पीछे उनकी स्वार्थमयी प्रवृत्तियों को प्रमुख कारण मानते हैं। वे कहते हैं कि यदि राज्याधिकारी द्रौपदी के प्रश्न का समर्थन करते तब दासों को नये अधिकार प्राप्त हो जाते और यदि ना करते तो स्त्रियों पर पुरुषों के परम्परागत अधिकार का नियम बदल जाता:-

> तुमने पूछा था स्त्री का पति स्वामी है
> यदि पति होता है दास, रहा क्या स्वामी।
> यदि वे कह देते 'हाँ' तो नियम् बदलते
> सब दासों को अधिकार नये मिल जाते।
> × × ×
> यदि वे कह देते 'नहीं' नियम यह मिटता,
> जीवन में स्त्री का पुरुष सदा स्वामी है।-1

"पांचाली" में युधिष्ठिर न्याय और सत्य के समर्थक् मानव के रूप में अंकित हुए हैं। "कृष्णायन" व "जयभारत" में भी युधिष्ठिर के इस रूप के दर्शन होते हैं। "पांचाली" में युधिष्ठिर न्याय को साथ में लेकर विजय पथ पर चलते हैं।वे छल, कपट तथा असत् प्रवृत्तियों की भर्त्सना करते हुए, कहते हैं:-

> हम न्याय साथ में लेकर विजयी होंगे
> × × ×
> जिससे मेरे वे शत्रु उठे हैं ऊपर
> उससे ही नीचे उन्हें गिराना चाहूँ?

1- पांचाली - पृ0-46

तो हममें उनमें भेद कहाँ है बोला
यह तो है श्वान-क्षुधा की छीना-झपटी।-1

नरेन्द्र शर्मा कृत "द्रौपदी" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में हुआ है। इस रचना में युधिष्ठिर के चरित्र की मौलिकता उनके प्रतीकात्मक रूप में है। प्रतीकात्मक रूप में युधिष्ठिर आकाश-पुरुष हैं, उनके प्राण पवन तत्व भीम हैं, अनल अर्जुन हैं। नकुल और सहदेव क्षिति और जल हैं। द्रौपदी उनकी जीवनी शक्ति के रूप में वर्णित की गई है। इस तरह क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरारूपी पाँच तत्वों से युधिष्ठिर का निर्माण होता है। चरित्र के दृष्टि से युधिष्ठिर का समान्य रूप ही प्रमुख है।

द्रौपदी में युधिष्ठिर बौद्धिक तथा नीतिज्ञ रूप में निरूपित हुए हैं। मानव विषय-वासनाओं का दास बनकर ही पतनोन्मुख होता है। भौतिकता के प्रति चरम व्यामोह उसे मानवतावादी चरित्र से नीचे गिराती है। इसी सन्दर्भ में अपना विचार व्यक्त करते हुए, युधिष्ठिर मानव की संकीर्ण मानसिकता पर आक्षेप करते हैं:-

मानव की सत्ता व्यर्थ, अर्थपति बनकर वह अविचारी।
क्यों मनुज वासना-दास? मनुज क्यों अहम्मन्य अतिचारी।-2

पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा इस रचना में प्रथम बार युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को, द्यूत-क्रीड़ा में दाँव पर लगाने के कृत्य, की मौलिक रूप में अवहेलना हुई है। युधिष्ठिर द्रौपदी को वस्तु समझकर दाँव पर लगा देते हैं, यहाँ उनके सत्यनिष्ठ स्वरूप का निषेध ही होता है-

---

1- पांचाली- पृ0-63
2- द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा {प्र0सं0 1960 ई0}, पृ0-29

सत्य खो बैठे युधिष्ठिर , लगाया जब दाँव पर।

देवदत्ता यज्ञजा को समझकर निज उपकरण। -1

"द्रोपदी" में युधिष्ठिर लोकप्रिय जननेता के रूप में निरूपित हुए हैं। युधिष्ठिर को उनके देश की जनता भावी राष्ट्रपति के रूप में देखती है। युधिष्ठिर के वनवास की भी इस रचना में मौलिक व्याख्या हुई है। युधिष्ठिर अपने भाइयों सहित वन के दुःख व क्लेश को इसलिए अंगीकार करते हैं, ताकि भविष्य में देश के प्रत्येक क्लेश को दूर कर सकें। देश के परेशानियों को नजदीक से ही अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है:-

देखने चले युधिष्ठिर अखिल भारत देश को,

देखता था देश भावी राष्ट्रपति के वेश को।

सहेंगे दुःख क्लेश वन में, धर्मनन्दन इसलिए,

दूर कर पाये कभी वह देश के हर क्लेश को। -2

उदयशंकर भट्ट कृत "कौन्तेय-कथा" में युधिष्ठिर मौलिक रूप में संवेदनशील, गांधीवादी तथा शिव-संस्कृति के समर्थक रूप में निरूपित हुए हैं । यहाँ युधिष्ठिर के परम्परागत चरित्र की मौलिक व्याख्या हुई है।

"कौन्तेय-कथा" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन मौलिक रूप में संवेदनशील युवा के रूप में हुआ है। युधिष्ठिर के द्यूत-क्रीड़ा में हारने के कारण ही उनके साथ उनके सभी बन्धुओं, माँ तथा पत्नी को भी विषम कष्ट भोगना पड़ता है। युधिष्ठिर के मन में इस बात की गहरी पीड़ा होती है। अपनी अन्तर्वेदना को व्यक्त करते हुए, युधिष्ठिर कहते हैं:-

जानता हूँ मेरे हित कष्ट तुम भोगते,

मेरे पापों का है फल अविवेक अन्ध का। -3

1- द्रोपदी - पृ0-51

2- वही_ पृ0-52

3- कौन्तेयकथा- उदयशंकर भट्ट §द्वितीय सं0 1[illegible]62 ई0§ पृ0-31

पूर्ववर्ती "जयभारत" की भाँति "कौन्तेयकथा" में भी युधिष्ठिर पाप का परिहार पाप से नहीं, अपितु धर्म द्वारा मानते हैं। यहाँ युधिष्ठिर का चरित्रांकन गांधीवाद से प्रभावित है। युधिष्ठिर मानव में क्षमा, धैर्य और धर्म तत्व के गुणों को महत्ता देते हुए कहते हैं:-

किन्तु परिहार होगा पाप से क्या पाप का?
धर्म आचरण से ही पाप ताप कटता,
पूर्व गुण मानव का क्षमा, धैर्य, धर्म है।-1

"कौन्तेय-कथा" में युधिष्ठिर मौलिक रूप में शिव-संस्कृति के समर्थक रूप में प्रस्तुत हुए हैं। युधिष्ठिर शिव-शक्ति को रक्षा और कल्याण भाव के लिए महत्ता देते हुए, अर्जुन को शिवाराधन कर शस्त्र प्राप्त करने के लिए प्रेरित करते हैं:-

"-----जाओ पार्थ, शिव आराधन मंत्र लो,
और करो कल्याण रक्षण हमारा तुम।।-2

"कौन्तेय-कथा" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन सहज व उदात्त रूप में हुआ है। डॉ० जया पाठक के शब्दों में--युधिष्ठिर का चरित्र "उत्कृष्ट रूप में व्यंजित हुआ है। ------युधिष्ठिर अपने बन्धुओं का, दुःख सन्ताप दूर करने हेतु चिंतनशील तथा आतुर दिखाई देते हैं।"3 इसे कार्यरूप देने के लिए ही वे शिव-शक्ति प्राप्त करना चाहते हैं।

नरेश मेहता कृत महाप्रस्थान में युधिष्ठिर का चरित्रांकन सर्वथा नवीन रूप में हुआ है। इस रचना में युधिष्ठिर का चरित्र आधुनिक युगीन सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में विकसित किया गया है। कवि ने युधिष्ठिर का चरित्रांकन

1- कौन्तेयकथा- पृ0-30

2- कौन्तेय कथा- उदयशंकर भट्ट, पृ0-31

3- आधुनिक हिन्दी प्रबन्धकाव्यों में पौराणिक चेतना का समाहार एवं आकलन- जया पाठक, पृ0-2

धर्मपरायण, मानवतावादी, बौद्धिक, कर्तव्यनिष्ठ तथा निष्काम रूप में किया है।

"महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर मानव मूल्यों को महत्ता देने वाले मानवतावादी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। युधिष्ठिर निरंकुशता की तुलना में मानवीयता को महत्व देते हैं। वे कहते हैं कि यदि राज्य प्राप्ति उनका लक्ष्य होता तो धृतराष्ट्र को सिंहासनाच्युत करना, उनके लिए कठिन नहीं था। किन्तु वे राज्य जैसी अपदार्थता के लिए अपने ही बन्धु कौरवों का रक्त नहीं बहाना चाहते थे। युधिष्ठिर कहते हैं:-

मैं राज्यान्वेषी नहीं, मूल्यान्वेषी रहा हूँ
राज्य जैसी अपदार्थता के लिए, अपने ही रक्त
कौरवों का नाश?? असम्भव था बन्धु -1

आधुनिक युग के बौद्धिक व मानवतावादी विचारधारा में, मानव के स्वत्व पर बल देने वाली व्यक्तिवादी चेतना बढ़ी है। युधिष्ठिर भी राज्य की तुलना में व्यक्ति को महत्ता देते हैं। वे साम्राज्य की तुलना में व्यक्ति सत्ता को महत्व देते हुए, कहते हैं:-

किसी भी साम्राज्य से बड़ा है
एक बन्धु, एक अनाम मनुष्य - 2

"महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन गांधीवाद से प्रभावित है। इस रचना में पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में द्रौपदी के चीरहरण के समय युधिष्ठिर के मौन स्थिति की मौलिक व्यंजना हुई है। युधिष्ठिर द्रौपदी के अपमान को क्लैवतावश नहीं सहन करते हैं। वे आवेश में पशु बने प्रतिपक्षी को मानव बनने का अवसर प्रदान करते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं:-

---

1- महाप्रस्थान- नरेश मेहता, पृ०-98

2- वही- पृ०-99

सामने वाला यदि आवेग में, पशु हो गया हो
तो विवेक के रहते, प्रतीक्षा करो,
उसके पुनः मनुष्य होने का।-1

"महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन बहुत कुछ 'चांदनी' के समान ही, समाज के दलित वर्ग के प्रति संवेदनशील मानव के रूप में हुआ है। एक उच्चवर्गीय, राज्य की कुलवधू नारी के स्वत्व के अपहरण का प्रतिफल महाभारत के विध्वंशक युद्ध रूप में परिणित हो गया। किन्तु निम्नवर्गीय मानवों के स्वत्व का अपहरण व अपमान हमेशा होता रहा है। उनका शोषण करके ही शासक वर्ग विलासिता व ऐश्वर्य का साधन जुटाते रहे हैं। अन्याय के अभ्यस्त निम्नवर्गीय यह भी नहीं जानते कि न्याय क्या होता है? इसी सन्दर्भ में युधिष्ठिर कहते हैं:-

कभी उन विचारहारा साधारण जनों के बारे में सोचो
जो सदा अपमानित होते रहे हैं,
जिनके स्वत्व का अपहरण ही
हमारे ये दीप्तिमान साम्राज्य है।
अन्याय के अभ्यस्त वे
X X X
नहीं जानते कि, न्याय भी कुछ होता है।-2

इस रचना में पूर्ववर्ती रचनाओं की तुलना में मौलिक रूप में युधिष्ठिर वैचारिक स्वातंत्र्य के समर्थक के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। प्रज्ञा और मानवतावादी चेतना को महत्ता देते हुए, वे निरंकुश सत्ता के समक्ष व्यक्ति के वैचारिक स्वातन्त्रय को महत्वपूर्ण मानते हैं। युधिष्ठिर कहते हैं कि किसी भी शासन के दबाव में आकर अपने वैचारिक स्वत्व का दमन नहीं करना चाहिए:-

---

1- महाप्रस्थान - पृ0-99

2- वही, पृ0-107

अपने वैचारिक स्वत्व को
किसी का भी दास नत होने दो
स्वयं का भी
यदि वैचारिकता की अग्नि
स्वयं तुम्हें झुलसाने लगे
तब भी उसे वहन करो।-1

"महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन द्रोणाचार्य के प्रसंग में मौलिक रूप में बौद्धिक व यथार्थवादी मानव के रूप में हुआ है। युधिष्ठिर के माध्यम से कवि ने तत्कालीन संवेदन स्थिति तो प्रस्तुत की है, आधुनिक सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों का भी बोध कराया है। द्रोणाचार्य जैसे महान गुरु के पास अपने बच्चे को दूध उपलब्ध कराने तक का सामर्थ्य नहीं था। अन्ततः कुरु राज्य में उन्हें अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व ज्ञान व विवेक तक का विनिमय करना पड़ता है, मात्र अर्थ प्राप्ति के लिए-। युधिष्ठिर द्रोणाचार्य के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं:-

समस्त शास्त्रज्ञता, पांडित्य और तेजस्विता के बाद भी
यशस्वी द्रोणाचार्य, अपनी एक मात्र सन्तान को
दूध तक न उपलब्ध करवा सके
X X X
क्या द्रोणाचार्य की इस विवशता के लिए
राज्य दोषी नहीं।-2

समग्रतः "महाप्रस्थान" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन विचार-शील, बौद्धिक तथा सामाजिक व राजनैतिक विषमता के प्रति चेतनशील मानव के

1- महाप्रस्थान- पृ0-114
2- वही, पृ0-121

रूप में प्रस्तुत हुआ है। डॉ0 उमाकान्त के शब्दों में "राज्य, राज्यव्यवस्था, युद्ध, व्यक्ति, समाज सम्बन्धी प्रगतिशील दृष्टिकोण आदि नव्य मानववादी चिन्तन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किये गये हैं। इन सभी विचारणाओं का संवाहक युधिष्ठिर का चरित्र बना है।"-1 युधिष्ठिर आधुनिक युगीन समस्याओं के विचारक व समाधान चिन्तक के रूप में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं।

जगदीश चतुर्वेदी कृत "सूर्यपुत्र" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में हुआ है। इस रचना में युधिष्ठिर मौलिक रूप में कर्ण के प्रति संवेदनशील भ्राता के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। केदारनाथ मिश्र "प्रभात" कृत "कर्ण" में भी युधिष्ठिर का कर्ण के प्रति संवेदनशील व्यक्तित्व अंकित हुआ है।

"सूर्यपुत्र" में युधिष्ठिर कुन्ती द्वारा कर्ण के जन्म का रहस्य ज्ञात होने पर, माता कुन्ती की कटु आलोचना करते हैं। वे कर्ण के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए कहते हैं, कर्ण का जन्म रहस्य न बनता तो वे परम शान्ति के सेतु बन सकते थे। वे कुन्ती से कहते हैं:-

तुमने रंगवा दिये हाथ अर्जुन के
भाई के खून से
कर्ण सेतु बन सकते थे, परम शान्त जीवन के।-2

नरेन्द्रशर्मा कृत "उत्तरजय" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन मौलिक रूप में युद्ध के विध्वंशक ताण्डव नर्तन के बाद प्राप्त राज्य के प्रति विरक्त, मानवतावादी तथा समष्टि कल्याण के इच्छुक मानव के रूप में प्रकट हुआ है। डॉ0 पुष्पपाल सिंह के शब्दों में -"आधुनिक युग में लगभग प्रत्येक काव्य में युधिष्ठिर के चरित्र में प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, राग एवं विराग का जो संघर्ष

1- नयी कविता के प्रबन्ध-काव्य शिल्प और जीवन दर्शन- डॉ0 उमाकान्त, पृ0 139

2- सूर्यपुत्र- जगदीश चतुर्वेदी, (रचना 1975 ई0), पृ0-147

दिखाया गया है, वह उत्तरजय में सर्वाधिक कौशल से चित्रित हुआ है। यहाँ अन्त में प्रवृत्ति की ही विजय होती है।"-1 उत्तरजय में युद्ध के प्रति युधिष्ठिर के अन्तर्द्वन्द्वों का सहज अंकन हुआ है।

महाभारत के विध्वंशक ताण्डव-नर्तन के पश्चात् युद्ध में आहत जनों की करुण पुकार, असंख्य जनों के बलिदान तथा स्वजनों की मृत्यु से युधिष्ठिर व्यथित हो उठते हैं। वे राज्य के प्रति विरक्त हो उठते हैं। युधिष्ठिर घायल मरणासन्न दुर्योधन से कहते हैं:-

सुनो, सुयोधन, प्रण करता हूँ, साक्षी हैं रविदेव क्षितिज पर,
तुम ले ले जीती वसुन्धरा, मुझे विजय पाने दो निज पर।-2

"उत्तरजय" में युधिष्ठिर के चरित्र का उदात्त पक्ष है उनके द्वारा अपने असत कृत्यों की आत्म-स्वीकृति। अपने ही गुरु द्रोण के मृत्यु के कारण बने युधिष्ठिर अपनी अन्तर्व्यथा प्रकट करते हुए, पश्चाताप करते हैं। वे कहते हैं:-

गुरुवर के कारण ही मानस की बलि दी था,
प्रेरक जब बने प्राण गुरुवर की बलि ली था।
× × ×
हारा मैं धर्म और कहलाया धर्मराज,
उठा विजय केतु और गाड़ गई मुझे लाज।-3

"उत्तरजय" में युधिष्ठिर युद्ध के प्रति जिस अन्तर्द्वन्द्व से ग्रस्त हैं, वह उनके मानवतावादी चरित्र को ही प्रस्तुत करता है, साथ ही आधुनिक युगीन संवेदना का द्योतक भी है। डॉ० प्रेमकली शर्मा के शब्दों में _ "युद्ध की विभीषिका उनका दिल-दहला देती है। रणभूमि में हुआ

1- आधुनिक हिन्दी कविता में महाभारत के कुछ पात्र- डॉ० पुष्पपाल सिंह, पृ0-50

2- उत्तरजय- नरेन्द्र शर्मा, पृ0-12

3- वही, पृ0-17-18

भीषण रक्तपात, नर संहार, नर-नारियों का विलाप, कराह आदि से उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा।------- ऐसा प्रतीत होता है मानों युधिष्ठिर के रूप में दो नर संहारकारी विश्व युद्धों के अननादि परिणामों से वर्तमान मानव जाति ही कराह उठी हो।"-1 युधिष्ठिर भी युद्ध की विभीषिका के पश्चात् पश्चाताप् करते हैं। इसी कारण वे कहते हैं:-

मानव बन जिऊँ, बन्धु देवों के करूँ काज,
यदि यह सम्भाव्य मुझे स्वीकृत पद धर्मराज।-2

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में "अंगराज" को छोड़कर, प्रायः सभी रचनाओं में युधिष्ठिर गाँधीवाद से प्रभावित, मानवतावादी समष्टिवादी तथा युद्ध के विरोधी चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

1- हिन्दी के प्रबन्ध-काव्यों में चरित्र-चित्रण- डॉ0 प्रेमकन्ती शर्मा, पृ0-154

2- उत्तरजय- नरेन्द्र शर्मा, पृ0-33

अर्जुन

महाभारतीय चरित्रों में अर्जुन के चरित्र का विशिष्ट महत्व है। परम्परागत रूप में अर्जुन कृष्ण के परम मित्र व भक्त तथा महान धनुर्धर के रूप में वर्णित हुए हैं। वे आदर्श, शौर्य व यश के साथ-साथ मानवीय नैतिक गुणों से ओत-प्रोत सर्वाधिक स्थिर चरित्र कहे जा सकते हैं,जो कठिनतम परिस्थितियों का सामना सहज भाव से करते हैं।

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में अर्जुन का चरित्र मौलिक रूप में निरूपित किया गया है। अर्जुन का चरित्रांकन आधुनिक नवीन मानवतावादी, आदर्शवादी, युद्ध के विरोधी तथा देश-प्रेमी मानव के रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त अर्जुन के चरित्र के दुर्बल पक्ष की मौलिक व्याख्या भी प्रस्तुत की गई है।

"कृष्णायन" में अर्जुन का चरित्रांकन परम्परागत् रूप के साथ-साथ मौलिक रूप में भी हुआ है। मौलिक रूप में अर्जुन आदर्शवादी, बौद्धिक तथा मानवतावादी चरित्र के रूप में निरूपित किये गये हैं।

"कृष्णायन" में अर्जुन का चरित्रांकन आदर्शवादी तथा वीर महामानव के रूप में हुआ है। द्रौपदी-स्वयंवर के समय अर्जुन के चरित्र का वीरोचित आदर्श गुण प्रकट होता है। द्रौपदी स्वयंवर के बाद अर्जुन द्रौपदी के रक्षा का भार अपने ऊपर लेते हुए कहते हैं:-

जेहि क्षण राज कुँवरि रंग शाला,
पहिरायी मम गर वर माला।
तेहि क्षणहिं तेहि रक्षण भारा,
पति स्वरूप मैं निज शिर धारा।-1

"कृष्णायन" में अर्जुन के चरित्र पर बौद्धिक व आदर्श व्यक्तित्व का आरोपण किया गया है। द्यूत-क्रीड़ा प्रसंग में उनका यही रूप

1- कृष्णायन- द्वारका प्रसाद मिश्र- पृ0-304

परिलक्षित होता है। अर्जुन द्यूत-क्रीड़ा को अनुचित व निन्दनीय मानते हैं। विदुर द्वारा लाये गये द्यूत-क्रीड़ा के प्रस्ताव पर, वे कहते हैं:-

सुजन शिरोमणि तुम यह देशू,
लाये कस असनिय संदेशू।-1

द्वारका प्रसाद मिश्र ने परम्परागत रूप में अर्जुन द्वारा सुभद्रा के हरण प्रसंग की मौलिक व्याख्या की है। कृष्णायन" में अर्जुन कृष्ण द्वारा निवेदन किये जाने पर ही सुभद्रा का हरण करते हैं। तत्कालीन विवाह की पद्धतियों में स्वयंवर की भाँति अपहरण भी एक पद्धति रहा है। अतः तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में अर्जुन द्वारा सुभद्रा का हरण औचित्यपूर्ण ही है।

"कृष्णायन" के पश्चात् अर्जुन का चरित्र "अंगराज" में वर्णित हुआ है। "अंगराज" में कवि ने कर्ण तथा कौरवों के चरित्रोत्कर्ष हेतु पाण्डवों का चरित्र गर्हित किया है। "अंगराज" में प्रस्तुत अर्जुन के चरित्र के कुछ पक्षों पर कवि की यही भावना दृष्टिगत होती है।

"अंगराज" में अर्जुन का चरित्र - निरूपण सर्वथा मौलिक रूप में द्रौपदी के पंचपतित्व के विरोधी पति के रूप में हुआ है। अर्जुन युधिष्ठिर द्वारा रखे गये द्रौपदी के पंचपतित्व के प्रस्ताव की कटु निन्दा करते हैं। वे इसे युधिष्ठिर का कामोन्माद कहते हैं:-

वीर पार्थ ने सुनकर सारा धर्मराज संवाद,
किया तिरस्कृत उसे बनाकर उसका कामोन्माद।-2

1- कृष्णायन - द्वारका प्रसाद मिश्र, पृ0-415

2- अंगराज - आनन्द कुमार, पृ0-68

आनन्द कुमार ने अर्जुन का चरित्रांकन मौलिक रूप में मित्र के साथ विश्वासघात करने वाले, उसकी बहन के अपहर्ता के रूप में किया है। "कृष्णायन" में अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण के पीछे स्वयं कृष्ण का निवेदन होता है, किन्तु "अंगराज" में अर्जुन का चरित्र गिराया गया है। अर्जुन कृष्ण के यहाँ एक वर्ष तक आतिथ्य ग्रहण करते हैं, तथा अन्त में उन्हीं की बहन सुभद्रा का अपहरण करते हैं:-

एक वर्ष तक होकर उसने मित्र अतिथि सानन्द।
किया सुभद्रा हरि-भगिनी का हरण वहाँ स्वच्छन्द।।-1

"अंगराज" में युद्ध के संदर्भ में अर्जुन का चरित्र परम्परागत रूप से भिन्न रूप में प्रस्तुत हुआ है। परम्परागत रूप में अर्जुन अपने सगे सम्बन्धियों को देखकर मोहग्रस्त होते हैं।-2 "अंगराज" में अर्जुन युद्ध का विरोध करते हुए उसे पृथ्वी को चिता में परिणत करने वाली तथा शान्ति को नष्ट करने वाली मानते हैं। वे कृष्ण से युद्ध के विध्वंशक रूप का विरोध करते हुए वे कहते हैं कि -

क्रान्ति अग्नि है शान्ति चिता की। जिसमें जलती भूति चिता की।।
रण से रक्तमयी विकला सी। कान्ता बन जाती अबला सी।।
सज्जन होते पर पुरवासी। जीवा तन जाती विधवा सी।।
उचित बन्धुजन-नाश नहीं। आत्म पतन का मूल यही है।।-3

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत "कर्ण" में युधिष्ठिर का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में हुआ है। कर्ण-वध प्रसंग में अर्जुन के परम्परागत रूप पर संवेदनशील व्यक्तित्व का भी आरोपण किया गया है। कर्ण को निःशस्त्र देखकर

1- अंगराज- पृ0-71

2- आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामः।मातुलः श्वशुराः पौत्राश्यालाः सम्बन्धिनस्तथा।।एतान्न हन्तुमिच्छामि घतोऽपि मधुसूदन।आर्य त्रैलोक्यराज्य हे नोः किं न महीकृते।। -श्रीमद्भगवद्गीता-पृ0-30

3- अंगराज, पृ0-188

वे प्रथमतः उन पर आक्रमण करने से हिचकते हैं। उन्हें यह प्रश्न व्याकुल कर देता है, कि क्या यह कृत्य उचित व धर्मसम्मत है। अर्जुन के इस संशयाकुल स्वरूप में नवीनता है:-

बाण संभाल लिया अर्जुन ने
पर संशय ने रोका।
आया, चला गया क्षण भर में,
एक प्रश्न का झोंका।
"क्या न पाप है किसी विरथ पर
चुप अस्त्र चलाना।-1

मैथिलीशरण गुप्त कृत "जयभारत" में अर्जुन का चरित्रांकन प्रमुख रूप से परम्परागत रूप में हुआ है। अर्जुन के चरित्र का कुछ पक्ष मौलिक रूप में भी प्रस्तुत हुआ है। डॉ० एल० सुनीता के अनुसार अर्जुन "महाभारत के सर्वप्रसिद्ध चरित्र हैं। वे ऐसे वीर हैं जो कठिनतम् परिस्थितियों को भी आसानी से पार कर जाते हैं। गुप्त जी ने महाभारत के समान अर्जुन के चरित्र को शौर्य-वीरत्व से युक्त दिखाया है। अनेक स्थानों पर उन्होंने महाभारत के आधार पर अर्जुन के मानसिक द्वन्द्व को भी चित्रित किया है।"-2 आधुनिक बौद्धिक व आदर्शवादी चेतना का प्रभाव भी अर्जुन के चरित्रांकन पर पड़ा है।

"जयभारत" में एकलव्य के प्रसंग में अर्जुन का चरित्रांकन परम्परागत रूप में ही वर्णित हुआ है। अर्जुन जहाँ एकनिष्ठ धनुर्धर्ता के गुण से युक्त हैं, वहीं उनके चरित्र में द्वेष व ईर्ष्या भी चरम सीमा तक व्याप्त होता

1- कर्ण- केदारनाथ मिश्र "प्रभात", पृ०-89

2- मैथिलीशरण गुप्त का काव्य- एल० सुनीता, पृ०-262

होती है। वे निषाद पुत्र एकलव्य द्वारा धनुर्विद्या में अर्जित विशेषज्ञता को सहन नहीं कर पाते। यह उनके चरित्र का धूमिल पक्ष है। अर्जुन कहते हैं:-

खीझ उठा धक्का-सा खाकर अर्जुन का अभिमान,

एक धनुर्धरता की मेरी पूरी हुई न साध,

शेष प्रतिद्वन्दी है अब भी, वह भी वन का व्याध।-1

गुप्त जी ने अर्जुन को मर्यादाशील व संयमी चरित्र के रूप में निरूपित किया है। "जयभारत" में अर्जुन के उत्कृष्ट संयम का परिचय उर्वशी प्रसंग में मिलता है। अर्जुन उर्वशी द्वारा रखे गये प्रणय-प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देते हैं। अर्जुन के उदात्त चारित्रिक दृढ़ता का परिचय इसी से प्राप्त होता है, कि वे उर्वशी के शाप को शिरोधार्य करते हैं, किन्तु अपने चरित्र से नहीं डिगते :-

स्वस्तिवाद-सा शिरोधार्य है यह अभिशाप,

किसी रूप में रहूँ किन्तु निर्भय-निष्पाप।-2

"जयभारत" में अर्जुन का चरित्रांकन मौलिक रूप में आदर्शवादी चरित्र के रूप में हुआ है। गुरू द्रोण के वध के पीछे प्रमुख कारण था युधिष्ठिर का मिथ्याभाषण। अर्जुन युधिष्ठिर के इस कृत्य का विरोध करते हुए, उनसे कहते हैं:-

"हाय आर्य, यह क्या किया है आज आपने?

आपके निकट भी क्या राज्य बड़ा सत्य से?-3

1- जयभारत- पृ0-55

2- वही, पृ0-164

3- वही, पृ0-387

'भीष्म-वध' प्रसंग में अर्जुन के कृत्य की मौलिक व्याख्या के विजय हेतु विवशतः शिखण्डी का ओट लेकर भीष्म का वध करते हैं। वे तीव्र अन्तर्व्यथा को सहन करते हुए, यह कृत्य करते हैं:-

अन्त में यही हुआ, प्रसन्न न थे मन में
अर्जुन, परन्तु अन्य कौन- सा उपाय था?
त्राण हित घूँट कड़ा पीना पड़ा उनको।-1

रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत "रश्मिरथी" में अर्जुन का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में हुआ है। इस रचना में अर्जुन को मौलिक रूप में संवेदनशील पिता तथा आदर्श मानव के रूप में निरूपित किया गया है।

"रश्मिरथी" में अभिमन्यु-वध के प्रसंग में अर्जुन संवेदनशील पिता के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। युद्धक्षेत्र में अपने पुत्र अभिमन्यु की वीरगति का समाचार सुनकर वे एक सामान्य मानव की भाँति शोकार्त हो उठते हैं। वे अपने हृदय का विक्षोभ सेना पर व्यक्त करते हुए, महाप्रलय का दृश्य उत्पन्न कर देते हैं। अर्जुन अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लेने के लिए जयद्रथ के वध की प्रतिज्ञा करते हैं। वे इस प्रतिज्ञा के पूर्ण न होने की स्थिति में, अग्नि में जलकर मृत्यु का वरण करने का कठोर संकल्प लेते हैं। यहाँ अर्जुन के हृदय की मर्माहत पीड़ा व एक पिता की गहरी अन्तर्व्यथा ही प्रकट हुई है:-

सुत के वध की सुनकथा पार्थ का, दहक उठा शोकार्त हृदय,
फिर किया क्रुद्ध होकर उसने, तब महालोम-हर्षक निश्चय,
"कल अस्तकाल के पूर्व जयद्रथ को न मार यदि पाऊँ मैं,
सौगन्ध धर्म की मुझे, आग में स्वयं कूद जल जाऊँ मैं।-2

1- जयभारत, पृ0 376
2- रश्मिरथी- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ0-79

"रश्मिरथी" में अर्जुन का चरित्रांकन कर्ण-वध प्रसंग में आदर्शवाद से भी प्रभावित है। कृष्ण द्वारा निहत्थे कर्ण के वध हेतु प्रेरित किये जाने पर, अर्जुन का हृदय इस अधर्म के प्रति अन्तर्द्वन्द ग्रस्त हो उठता है। अर्जुन विश्व गुरु माने जाने वाले कृष्ण के इस प्रेरणा के सन्दर्भ में प्रश्नाकुल हो उठते हैं:-

श्रवण कर विश्व गुरु की देशना यह,
विजय के हेतु आतुर एषणा यह,
सहम उट्ठा जरा कुछ पार्थ का मन,
विनय में ही, मगर बोला अकिञ्चन-
"नरोचित, किन्तु क्या यह कर्म होगा?
मलिन इससे नहीं क्या धर्म होगा?-1

अर्जुन निःशस्त्र कर्ण के वध को अनुचित तथा धर्म को मलिन करने वाला मानते हुए भी कृष्ण द्वारा प्रेरित किये जाने पर कर्ण का वध करते हैं। "रश्मिरथी" में अर्जुन के चरित्र का यह परम्परागत व मलिन पक्ष है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत "सेनापति-कर्ण" में अर्जुन का चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा सर्वथा नवीन रूप में हुआ है। अर्जुन के पौरुष पर द्रौपदी द्वारा आक्षेप करने पर, वह मर्माहत हो उठते हैं। अपने असहनीय आत्मव्यथा को व्यक्त करते हुए, वे कहते हैं:-

पर आज जो
टूटा वह धैर्य और टूटी वह निष्ठा है
× × ×
द्रौपदी ने वरण किया था मुझे भूल से
करके निवारण जो अधिरथ तनय का

1- रश्मिरथी- रामधारी 'दिनकर', पृ0-93

और जिस हेतु से न वीर रमणी बनी

करना मुझे है परिहार उस भूल का। -1

उदयशंकर भट्ट कृत "कौन्तेय-कथा" में अर्जुन सर्वथा नवीन रूप में निरूपित किये गये हैं। इस रचना में अर्जुन भाग्यवादी, युद्ध के विरोधी व वीर पुरुष के रूप में प्रस्तुत हुए हैं।

"कौन्तेय-कथा" में अर्जुन का चरित्रांकन मौलिक रूप में भाग्यवादी के रूप में हुआ है। अर्जुन अपने बड़े भाई युधिष्ठिर द्वारा द्यूत-व्यापार में निरत होने तथा उसमें सम्पूर्ण सम्पत्ति हारकर वन-वन भटकने के प्रति अप्रत्यक्ष आक्रोश व्यक्त करते हुए, इसे पाण्डवों का भाग्य मानकर स्वीकार करते हैं। अर्जुन द्रौपदी से कहते हैं:-

"यही था विधान पाण्डवों के भाग्य का प्रिये,

होना था वही जो हुआ दोष फिर किसका?

अन्यथा क्या धर्मराज द्यूत-व्यापार रत् .

होते और हारते सम्पत्ति सब अपनी?"-2

"कौन्तेय - कथा" में अर्जुन द्रौपदी के प्रति संवेदनशील आदर्श पति के रूप में निरूपित हुए है। उनका यह चरित्र मौलिक रूप में प्रस्तुत हुआ है। अर्जुन द्रौपदी के अपमान के प्रतिशोध के लिए ही युद्ध की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं। अर्जुन कहते हैं:-

हे सुरराज! हम है पुरुष, पौरुष पुत्र ही तो---

युद्ध करके विषमता से, दैन्य, कटुता, कपट से

जीत सकते हैं सभी मानव शत्रुओं को हृदय-बल से।

1- सेनापति कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0-365

2- कौन्तेय कथा- उदय शंकर भट्ट, पृ0-26

किन्तु वह नारी सुकोमल---------
सके कैसे भला अपमान सहकर।।-1

इस रचना में अर्जुन शक्ति का सामना शक्ति से करने के समर्थक हैं। "कौन्तेय कथा" की भूमिका में कवि ने लिखा है -"एकान्त अहिंसा या एक मात्र युद्धप्रियता इन दोनों में सन्तुलन बनाये रखना ही महाभारतीय नीति है।"-2 अर्जुन इसी महाभारतीय नीति के समर्थक हैं। रचनाधना प्रसंग में किरात बने शिव से अर्जुन कहते हैं:-

यह शूकर झपट रहा था मुझपर, फिर सम्भव कैसे?
मैं मौन देखता रहता था यही उचित पथ मेरा?-3

नरेश मेहता कृत "महाप्रस्थान" में भी अर्जुन का संक्षिप्त चारित्रांकन प्राप्त होता है। इस रचना में अर्जुन मौलिक रूप में आधुनिक सन्दर्भों से जुड़े संवेदना से प्रभावित हैं। "कवि ने जहाँ समस्याओं का समाधान युधिष्ठिर के माध्यम से किया है, वहीं प्रश्न अर्जुन ने उपस्थित किये हैं। महाभारत का तेजस्वी एवं शक्तिवान अर्जुन महाप्रस्थान में नहीं है।"-4 गांडीवधारी अर्जुन इस रचना में मौलिक रूप में सामान्य मानव सदृश तथा अन्तर्द्वन्द ग्रस्त मानव के रूप में प्रस्तुत हुआ है।

इस रचना में परिस्थितियों के समक्ष विवश मानव के अन्तर्द्वन्द का सहज अंकन अर्जुन के माध्यम से हुआ है। मानव समस्त शक्ति, संकल्प व पुरुषार्थ के रहते हुए भी कभी-कभी नियति के आगे विवश हो जाता है -

---

1- कौन्तेय कथा- उदयशंकर भट्ट, पृ0-44-45
2- कौन्तेय कथा, भूमिका में कवि
3- वही, पृ0-65
4- नयी कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन - उमाकान्त गुप्त, पृ0-139

यह कैसी विवशता है व्यक्ति की
समस्त शक्ति, संकल्प, और पुरुषार्थ के होते हुए भी
वह नगण्य हो जाता है
क्यों??-1

यहाँ अर्जुन के माध्यम से जन-सामान्य के अन्तर्द्वन्द्वों का ही अंकन हुआ है। अर्जुन के वीरता व शौर्य के समक्ष समस्त विश्व नत था। किन्तु महाप्रस्थान के समय हिमालय के हिमपाश में समाती द्रौपदी को अर्जुन नहीं बचा सके। द्रौपदी को न बचा सकने के सन्दर्भ में अपनी विवशता व अन्तर्वेदना प्रकट करते हुए, अर्जुन कहते हैं:-

जिस गाण्डीव के होते, समस्त मेदिनी में
यज्ञाश्व के अयाल तक को छू सकने का
कोई साहस न कर सका
x x x
वही, अपनी प्रिया की रक्षा न कर सका।-2

अर्जुन के माध्यम से कवि ने युग-युग के यथार्थ का बोध कराने का प्रयत्न किया है।

1- महाप्रस्थान - पृ0-103

2- वही, पृ0-103

द्रौपदी

"महाभारत" की कथा पर आधारित प्रबन्ध-काव्यों के नारी चरित्रों में द्रौपदी सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरित्रों मे से है । आधुनिक युग का नव्य बौद्धिक व मानवतावादी चेतना के फलस्वरूप द्रौपदी के महाभारतीय परम्परागत रूप मे परिवर्तन आया है। वह जागरूक, बौद्धिक, स्वाभिमानी तथा अपने स्वत्व के प्रति सचेत नारी के रूप मे उभरने लगी । यद्यपि भारत मे प्राचीनकाल से ही नारी महिमा व गौरव की अधिकारिणी रही है ।" यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता" की धारणा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है। किन्तु मध्यकाल में नारी की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी, वह विलास की प्रतीक, कमजोर व असहाय मानी जाने लगी । आधुनिक युग मे नवजागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न चेतना के प्रभाव के कारणनारी पुनः गौरव तथा महत्ता की अधिकारिणी बनी, उसके अस्तित्व को नवीन अभिव्यंजना प्राप्त हुई । परम्परागत् पौराणिक चरित्रों के प्रति भी नवीन मानवीय संवेदना का उन्मेष हुआ ।

द्रौपदी का चरित्रांकन "महाभारत में विशेष रूप से हुआ है । "महाभारत"के नारी-पात्रों में द्रौपदी का वही स्थान है, जो रामायण में सीता का है । सीता को हरण कर रावण ने अपनी मृत्यु को आमन्त्रण दिया था, तथा राक्षस जाति के विनाश का कारण बना था । उसी प्रकार द्रौपदी का चीर हरण कराकर दुर्योधन ने अपनी मृत्यु को निमन्त्रित किया था और समस्त कुरूवंशियों के विनाश का कारण बना था । सीता की तुलना में द्रौपदी के चरित्र में यह भिन्नता रही कि उसे स्वयं उसके धर्मराज कहलाने वाले पति द्यूत में, दाँव पर लगाकर हार गये थे और उसके अपमान के लिए कुरूवंशियों को दे दिया था । द्रौपदी का चरित्र यहाँ सर्वाधिक मार्मिक है । उसे अपने ही परिवार द्वारा अपमान सहने के लिए विवश किया गया और उसका परिवार ही महाभारत युद्ध की ज्वाला में भस्मीभूत हुआ ।

द्रौपदी महाराज द्रुपद की पुत्री थी जो यज्ञ कुण्ड से उत्पन्न हुई थीं । ज्वाला से उत्पन्न द्रौपदी जीवन-भर जीवन की विषमताओं की ज्वाला में झुलसती रही । प्रथमतः स्वयंवर में अर्जुन को वरण करने के बावजूद उसे आज्ञापालन की नैतिकता के नाम पर चार अन्य पाण्डवों को भी पति के रूप मे स्वीकार करने की विवशता सहनी पड़ी । भले ही लोग कुछ भी तर्क-वितर्क करें, किन्तु नारी का मन एक ही होता है । वह इस मन को विखंडित नहीं कर सकती

और बलात् विखंडित होने पर उस विखंडन के दर्द की अनुभूति वही कर सकती है, बौद्धिक तर्क नहीं। युधिष्ठिर द्वारा जुए में द्रौपदी को दाँव पर लगाकर उसे वस्तु बना दिया गया, जिसका मोल उसके ही परिवार के सदस्य लगाते है। चीरहरण के समय जिस मानसिक पीड़ा व तीखे अपमान के जहर को वह पीती है, वह असहनीय ही नहीं, अक्षम्य भी है। इस अपमान का प्रतिशोध, महाभारत युद्ध के रूप में प्रतिफलित हुआ। इस युद्ध में उसके पिता,पुत्र,भाई,बन्धु गुरु सभी स्वाहा हो गये। इन भीषण विषम-परिस्थितियों को झेलता हुआ द्रौपदी का चरित्र कभी भी अपनी उदात्ता व गरिमा से नीचे नहीं गिरा, दृढ़ चट्टान सा अडिग रहा।

परम्परागत् रूप में द्रौपदी का चरित्र साध्वी,पतिव्रता और कर्तव्यपराण स्त्री के रूप में प्राप्त होता है। उसके चरित्र में सहिष्णुता धैर्य तथा तेजस्विता है। वह कृष्ण की उपासिका भी है। वह पाँचों पाण्डव की पत्नी,पूर्वजन्म की नियति के कारण ही बनती है। महाभारत के आदि पर्व के वैवाहिक पर्व में इसका उल्लेख है कि शंकर के वरदान के कारण द्रौपदी रूपी स्वर्ग की लक्ष्मी, इन्द्र के ही पाँचों रूप पंच पाण्डवों की पत्नी बनी।-1 महाभारत में द्रौपदी स्वजाति प्रेमी तथा तत्कालीन वर्ण-वैषम्य की समर्थिका के रूप में उस समय वर्णित हुई हैं,जब वे सूत-पुत्र कर्ण को मत्स्य-वेधन से रोकते हुए उससे विवाह करने से इन्कार कर देती हैं।-2

आधुनिक पौराणिक प्रबन्धकाव्यों में द्रौपदी का चरित्र बौद्धिक एवं मानवीय दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में नवीन दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। उसके चरित्र का मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया गया है।

---

1. एवमेते पाण्डवाः सम्बभूवुर्ये तें राजन् पूर्व मिन्द्रा बभूवः।
   लक्ष्मीश्चैषां पूर्वमेवोपदिष्टा भार्या यैषा द्रौपदी दिव्यरूपा। महाभारत,आदिपर्व अध्याय- 196
2. दृष्ट्वा तु तं द्रौपदी वाक्य मुच्चैर्जगादू नाहं वारयामि सूतम् /23/, पृ0-1208

नारी-जागरण के प्रभाव-स्वरूप उसमें नवीन जागृति और बौद्धिक चेतना का आरोपण किया गया । उसके चरित्र में स्वत्व का भाव उभार कर उसके स्वाभिमान व अहं को जाग्रत किया गया । आधुनिक मनोविज्ञान के आलोक में द्रौपदी की अन्तर्पीड़ा को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया गया है

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में द्रौपदी का चरित्रांकन कृष्णायन-1,जयभारत-2,अंगराज-3, सेनापति - कर्ण-4, व कौन्तेय - कथा-5 में संक्षिप्त रूप से तथा पांचाली- 6, द्रौपदी- 7 व सत्य की जीत - 8 में नायिका रूप में निरूपित हुआ है. महाभारत के कथा की विशिष्ट नारी-पात्र होने के कारण द्रौपदी का उल्लेख न्यूनाधिक उन सभी रचनाओं में प्राप्त होता है - जो कि महाभारत की कथा से जुड़ी हैं कृष्णायन को छोड़कर शेष सभी रचनायें स्वातंत्र्योत्तर है । इन रचनाओं में यद्यपि द्रौपदी के चरित्र-निरूपण में परम्परा का प्रभाव भी है, फिर भी नारी-जागरण आन्दोलन, गाँधीवाद के साथ-2 साम्यवादी चेतना, समन्वयवादी चेतना व मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रभाव अधिक है । उसके चरित्र की महत् विशिष्टता है, उसका अन्याय के प्रति विद्रोह, स्वत्व की भावना, स्वाभिमान व वीरत्व ।

1· कृष्णायन-द्वारका प्रसाद मिश्र-रचनाकाल-1945 ई0
2· जयभारत-मैथिलीशरण गुप्त-रचना 1952 ई0
3· अंगराज-आनन्द कुमार-रचना-1950 ई0
4· सेनापति कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र,
5· कौन्तेय कथा- उदयशंकर भट्ट
6· पांचाली- रांगेय राघव- रचना 1955 ई0
7· द्रौपदी- नरेन्द्र शर्मा, प्रकाशन का काल 1960 ई0
8· सत्य की जीत- द्वारिका प्रसाद महेश्वरी

द्रौपदी के चरित्र-निरूपण की प्रथम कड़ी कृष्णायन है । द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने अपनी इस सम्पूर्ण-कृष्णकथा पर आधारित कृति में द्रौपदी का चरित्रांकन परम्परागत् रूप में ही, प्रमुख रूप से वर्णित किया है । इस रचना में द्रौपदी के पंचपतित्व का कारण पूर्वजन्म की घटना होना, द्रौपदी द्वारा सूतपुत्र कर्ण से विवाह से इन्कार व द्यूतसभा में युधिष्ठिर द्वारा द्रौपदी को हारने पर, उस कृत्य की द्रौपदी द्वारा भर्त्सना आदि की घटना महाभारत के आधार पर वर्णित है ।

"कृष्णायन" में द्रौपदी स्वयंवर के समय कर्ण से विवाह करने से इन्कार कर देती है, क्योंकि वह क्षत्रिय नहीं सूतपुत्र था । द्रौपदी का यह चरित्र महाभारत के अनुसार निरूपित हुआ है । -1

द्रौपदी के स्वाभिमानी व स्वत्व के प्रति जागरूक नारी का रूप कृष्णायन में निरूपित हुआ है । वह महाभारत की द्रौपदी के समान ही इस रचना में भी यह प्रश्न उठाती है कि उसके धर्मराज पति द्वारा उसे किस प्रकार हारा गया । वह समस्त गुरूजनों, अग्रज व श्रेष्ठ जनों को सम्बोधित करती हुई, यह प्रश्न उठाती है कि युधिष्ठिर द्यूत में प्रथमतः किसे हारे थे ? यदि अपने से पहले वे द्रौपदी को नहीं हारे, तब फिर स्वयं को हारने के बाद, वे किस तरह द्रौपदी को दाँव पर लगा सकते थे —

> हारे प्रथम मोहि जो स्वामी, मैं दासी कुरूपति अनुगामी
> पै जो पहिलेहिं आपुहिं हारा, नष्ट मोहि हारन अधिकारा
> भयी कवन विधि मैं पर चेरी ?---------2

1· महाभारत-आदि पर्व का वैवाहिक पर्व- पृष्ठ 1208

2· कृष्णायन- पृ 423-424

महाभारत में भी द्रौपदी द्वारा इसी प्रश्न को उठाया गया है । वह दूत को राजसभा में भेजकर युधिष्ठिर के समक्ष यह प्रश्न रखती है कि, किसके स्वामी बनकर तुम हमें चौपड़ में हारे हो ? तुम पहले स्वयं को हारे हो अथवा पहले मुझे हारे हो ?

कस्येशो नः पराजैषीरिति त्वामाह द्रौपदी ।
किं नु पूर्व पराजैषीरात्मानमथ वापि माम् ।।-1

कृष्णायन में महाभारत की भाँति ही-2 द्रौपदी न केवल शासक वर्ग की स्वार्थमयी नीतियों को स्वीकार करने से इन्कार कर देती हैं, अपितु धर्म पर भी आक्षेप करती हैं । वह भीष्म विदुर सहित सभी धर्म के धुरन्धरों को ललकारते हुए कहती हैं कि अधर्म के इस अवसर पर धर्म और शास्त्र के ज्ञाता चुप क्यों हैं ? द्रौपदी के ये प्रश्न, एक तरफ जहाँ शासन की कूटनीति की पोल खोलते नजर आते हैं, वहीं धर्म के ठेकेदारों पर भी आक्षेप करते हैं जो कि शासन के हाथों की कठपुतली बन गये हैं । अन्यथा एक नारी का अपमान हो, वह कातर हो दया की याचना करे और धर्म-धुरन्धर चुप रहें, यह कैसे हो सकता है? वह कहती है-

भीष्म, विदुर, कृप, द्रोण, नृप सबहिं धर्म अभिमान
बैठे कस अब मौन गहि, कहां शास्त्र श्रुति ज्ञान -3

1· महाभारन-द्यूतपर्व, अध्याय 60, पृ0-290

2· द्रोणस्य भीमस्य च नास्ति सत्वं ध्रुव तथैवास्य महात्मनोऽपि ।
राज्ञस्तथा हीममधर्ममुग्रं न लक्षयन्ते कुरु वृद्ध मुख्याः ।।34।।
महाभारत-द्यूतपर्व, अध्याय-60,पृ0- 294

3· कृष्णायन- पृ0- 424

इस रचना में द्रौपदी के चीरहरण की घटना महाभारत के आधार पर ही निरूपित की गई है । द्रौपदी का चीर जब दुःशासन खींचने लगता है, तब वह आराध्य भाव से कृष्ण को पुकारती है और कृष्ण की अनुकम्पा से द्रौपदी का चीर दिव्य ढंग से असीम हो जाता है ।

"द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने द्रौपदी का चरित्रांकन वीर-नारी के उदात्त गुणों से युक्त स्वाभिमानी नारी के रूप में भी किया है । चीरहरण की घटना के बाद वह अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए, भीषण प्रतिज्ञा करती है कि जब तक दुःशासन के बाहु के रक्त से अपने बाल न भिगो लेगी, वह अपने बाल नहीं बाँधेगी —

द्रुपद कुमारि केश छिटकाइ,
कीन्ह महाप्रण सबहिं सुनाई,
"थल,भुज,भंजन,रक्त बिनु बंधिहौं नहिं ये बार"
जेहि पति राखि आज मम सोई प्रण राखन बार -1

कृष्णायन में द्रौपदी स्वतंत्रता प्रेमी नारी के रूप में अंकित की गई है । पांडवों का स्वतंत्र करने के बाद धृतराष्ट्र जब द्रौपदी से और कुछ मांगने का आग्रह करते हैं, तब द्रौपदी कहती हैं कि -उसे मांगने की आदत नहीं है । वह कहती हैं कि माँगने की भावना तभी तक रही, जब तक उसके पति पराधीन थे । अप्रत्यक्ष रूप से यहाँ वह पराधीनता पर ही एक प्रकार से आक्षेप ही करती है -

मोहिं न तात माँगन अभ्यासा,
माँगेऊ रहे स्वामि जब दासा । -2

1· कृष्णायन, पृ0-429

2· वही, पृ0 -430

इस प्रबन्ध रचना में द्रौपदी का चरित्रांकन मानवतावादी चेतना से प्रभावित है । स्वाभिमान, स्वत्व की भावना तथा स्वतंत्रता प्रेम के साथ-साथ वह मानवतावादी भावुक नारी भी है । धृष्टद्युम्न के प्राणों को वह इसीलिए बचाती है, क्योंकि वह उस गुरु के प्रति कृतज्ञ थीं, जिसने पांडवों के उत्थान के लिए ही अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया । उसी गुरु के शिक्षा व सहयोग से ही पांडव इतने सुयोग्य हो सके । और विजयश्री अर्जित करने में समर्थ हुए द्रौपदी कहती हैं -

छमहुं नाथ! यह दासि अभागी,
याचीत प्राण दान दिज लागी ।
× × ×
ये तौ गुरु सुत पावन नाता
पूज्य गुरुहि सम गुरु अंग जाता । -1

इस प्रबन्ध-कृति में द्रौपदी का चरित्रांकन आधुनिक नव-चेतना और गांधीवाद से प्रभावित है । वह बैर-भावना को रोकने के लिए क्षमा भाव की महत्ता को स्वीकार करती हैं । उसके अनुसार क्रोध का परिशमन कभी भी क्रोध से नही किया जा सकता । उसके लिए दूसरों के हृदय में करुणा की जागृति करना, उसके मन पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है । वह कहती है-

बिनसेउ दोष न करि प्रति दोषा,
भयेऊ रोष ते शान्त न रोषा ।
दिजहु हृदय करुणा नहिं जागी,
कीन्ही क्षमा जल शान्त न आगी ।-2

1· कृष्णायन , जयकाण्ड, पृ0 666

2· कृष्णायन, जयकाण्ड, पृ0 666

इस रचना में द्रौपदी का चरित्र-निरूपण आधुनिक मानवतावादी बौद्धिक तथा यथार्थवादी चेतना से प्रभावित है । द्रौपदी कहती हैं कि, उसके जो स्वजन युद्ध में मृत्यु का वरण कर चुके हैं, उन्हें दुबारा नहीं प्राप्त किया जा सकता । उसके लिए गुरु पत्नी को, पुत्र वियोग का कष्ट देना सर्वथा अनुचित है । यहाँ द्रौपदी की गुरुपत्नी के प्रति संवेदना व सहृदयता स्वाभाविक रूप मे व्यंजित हुई है-

बधेउ इनहिं निज सुत,पितु भाई,सकति न नाथ बहुरि मैं पाई ।
दैव विहित यह दुःख मम लागीं करहु न अब गुरु तियहि अभागी ।
हत-पति आर्या कृपी दुखारी,जीवित इक सुत वदन निहारी ।-1

अपने ही पुत्रों के बधिक अश्वत्थामा को द्रौपदी जिस सहनशीलता से क्षमा प्रदान करती है, वह उसके चरित्रिक उत्कर्ष का उदात्त पक्ष है । समग्रतः कृष्णायन में द्रौपदी के परंपरागत रूप के साथ-2 उसके मौलिक स्वरूप का अंकन भी किया गया है ।

कृष्णायन के बाद द्रौपदी का चरित्र-निरूपण करने वाली अगली कड़ी सियाराम शरण गुप्त जी की नकुल प्रबन्ध कृति है । इस रचना में द्रौपदी के संक्षिप्त चरित्रांकन में आधुनिक बोध और नवीन चेतना की अनुप्रेरणा है । कृष्णायन की द्रौपदी की अपेक्षाकृत नकुल मे द्रौपदी का चरित्रांकन अधिक तेजस्वी एवं स्वाभिमानी नारी के रूप मे हुआ है । आधुनिक नारी जागरण के प्रभाव व बौद्धिक चेतना से नारी में स्वत्व के प्रति जागरूकता और स्वाभिमान की संचेतना बढ़ी । द्रौपदी के चरित्र-निरूपण पर भी इसी चेतना का प्रभाव है । द्रौपदी नारियों की सबसे बड़ी कमजोरी उनकी रुदनशीलता मानती हैं । द्रौपदी चीर-हरण के समय की अपनी दयनीय दशा की याद करती हुई कहती हैं कि,उसने उसी दिन जितना रोना था,रो लिया ।उसे अपने दयनीय स्थिति के प्रति ग्लानि होती है । वह मानवीय दुर्बलता की जगह क्रान्ति को महत्ता देती हुई,कहती हैं-

---

1· कृष्णायन,जयकाण्ड-पृ0 778

उस दिन वह हो गया, हुआ जो कुछ था होना
रो बैठी थी लिए हुए थी जितना रोना ।
उस रोदन से निखिल नारियाँ हैं नित लज्जित ।
अपनों में पा रही निरन्तर ग्लानि अपरिमित ।-1

'नकुल' की द्रौपदी के चरित्रांकन में मौलिक पक्ष है उसका उग्र और विद्रोही रूप। नकुल में द्रौपदी अपने अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए ही, कभी भी अपनी दुर्बलता का का स्मरण तक नहीं करती, वह केवल प्रतिशोध की अग्नि को ही अपने मन में जलाये रखती है। वह कहती है-

इन नयनों में रह न जाय, उस दिन का जलकण,
भीतर भीतर आग जगाये थी मैं प्रतिक्षण । -2

इस रचना में मौलिक रूप में द्रौपदी के मानसिक अन्तर्दन्दों तथा भाग्यवादी दृष्टिकोण का अंकन हुआ है । मानव अपने कर्म के प्रति प्रयासरत रहते हुए भी, कभी-2 हार जाता है । नकुल में द्रौपदी महाकाल को सम्बोधित करके कहती है कि, क्या वे इस पृथ्वी पर उसे किसी क्षण भी सुस्थिर न रहने देंगे । यहाँ उसकी अन्तर्व्यथा व जीवन के झंझावातो में उलझे जीवन के प्रति, अन्तर्दन्दशील व्यक्तित्व का ही निरूपण हुआ है -

"महाकाल ! हे महाकाल ! इस अवनी तल पर,
रहने दोगे क्या न कभी सुस्थिर कुछ पल भर। -3

1· नकुल-सियारामशरण गुप्त- पृ030
2· नकुल - पृ0 30
3· वही- पृ0 38

सियाराम शरण गुप्त जी ने द्रौपदी का चरित्रांकन नवीन रूप में मानवतावादी नारी के रूप में किया है । वह आश्रम के निकट आये पथिक के मार्ग-श्रम को दूर करने के लिए प्रयत्न करती हैं । वह समभाव से उसके विश्राम हेतु सन्नद्ध होती है । नकुल में वह पथिक से कहती है -

चलिये मेरे आश्रम, निकट है अपना आश्रम,
ग्रहण करें आतिथ्य, करें परिहार अन्तिश्रम । -1

"कृष्णायन" में द्रौपदी के परम्परागत् रूप पर ही कवि का विशेष ध्यान रहा है । किन्तु "नकुल" तक आते-2 वह समसामयिक आधुनिक चेतना के प्रभाव स्वरूप परम्परागत रूप से परे नव्य रूप में सामान्य मानवीय रूप धारण करने लगी । "नकुल" प्रबन्धकृति का यही विशिष्ट पक्ष है, यद्यपि इसमें द्रौपदी का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में ही हुआ है ।

"नकुल" प्रबन्ध-कृति के पश्चात् श्री केदारनाथ मिश्र प्रभात की रचना "कर्ण" में द्रौपदी के चरित्र का निरूपण हुआ है । "कर्ण" मे द्रौपदी के परम्परागत् रूप के साथ-साथ उसके चरित्र में मौलिक तत्वों का भी आरोपण हुआ है ।

"कृष्णायन" की ही भाँति "कर्ण" में भी द्रौपदी कर्ण से विवाह करने से इन्कार कर देती है । इसके मूल में वही परम्परागत् कारण है -कर्ण का सूत पुत्र होना । लक्ष्यवेध हेतु कर्ण को रोकती हुई वह कहती है-

---

1- नकुल - पृ039

"सावधान मत आगे बढ़ना, होनी थी सो होना
सूतपुत्र के साथ न मेरा, गठबन्धन हो सकता -1

कर्ण में द्यूत सभा में हारने के बाद युधिष्ठिर द्रौपदी को भी दाँव पर लगाकर हार जाते हैं । उस समय द्रौपदी कृष्णायन की द्रौपदी की भाँति परम्परागत् रूप में ही युधिष्ठिर के समक्ष वह प्रश्न रखती हैं कि वे प्रथमतः किसे हारे थे । यदि वे स्वयं को ही पहले हार गये थे तब उनके पास वह कौन सा अधिकार था जिसके कारण वे द्रौपदी को दाँव पर लगा सके ? स्वयं को हारने के बाद युधिष्ठिर की स्थिति गुलाम सदृश थी और गुलाम अथवा दास के पास तत्कालीन नियमानुसार कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं था । इस परिस्थिति में युधिष्ठिर द्रौपदी को दाँव पर लगा ही नहीं सकते थे । इस सन्दर्भ में द्रौपदी के ये विचार उल्लेखनीय है -

तनिक विचारें, धर्मराज ने, लाई नीति कहाँ की ।
अपने को ही हार गये, अधिकार कौन फिर बाकी।
शेष न जब अधिकार, मुझे कैसे हारे वे बोले ।- 2

"कर्ण" प्रबन्धरचना का प्रणयन कर्ण के चरित्रोत्कर्ष के दृष्टि से किया गया है । अतः इसमें द्रौपदी के चरित्र के कमजोर पक्ष की मौलिक अभिव्यंजना करके, कवि द्वारा दुर्योधन पक्ष को, निष्कलुष निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है । कर्ण दुर्योधन पक्ष का ही अनुगामी था । महाभारत में राजसूय यज्ञ में आये दुर्योधन राजसभा के विचित्र बनावट पर भ्रमित हो, जल में थल व थल में जल के भ्रम से अजीब स्थिति में पड़ जाते हैं । दुर्योधन के इस भ्रमित रूप

1· कर्ण -केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'-पृ0 11

2· कर्ण-पृ0 18

पर पाण्डव व द्रौपदी सहित सभी दास-दासी हंस पड़ते हैं । -1 कृष्णायन में भी इसी परम्परागत् घटना का वर्णन है । किन्तु कर्ण में इस तथ्य को नवीन रूप में व्यंजित किया गया है -

राजसभा में दुर्योधन को लगा कि जल ही स्थल है
और कहीं भ्रम है कि स्थल ही,श्याम कज्जल जल
व्यंग्यकिया जब द्रुपद सुताने,भ्रम यह लगा गरल सा ।
दुर्योधन का हृदय सुलगने,जलने लगा अनल सा । - 2

कर्ण में द्रौपदी का चरित्र-निरूपण मौलिक रूप में अन्याय की विरोधी तथा स्वाभिमानी व साहसी नारी के रूप में हुआ है । चीरहरण की घटना के समय वह दुःशासन को चेतावनी देती हुई उसे उसके कृत्य के प्रति सावधान करती हैं । दुःशासन की भर्त्सना करती हुई, वह कहती हैं -

पति-परायणा अबला हूँ मैं,छू मत मेरे तन को,
मुझे लगा मत हाथ, बुलामत, अपने लिए मरण को- 3

"कर्ण" की ही समकालीन रचना "अंगराज" है । "अंगराज" रचना कर्ण के चरित्रोत्कर्ष के दृष्टिकोण से हुई है । इसमें कौरव-पक्ष को पाण्डव-पक्ष से अधिक महत्ता दी गई है । अतः इस रचना में द्रौपदी का चरित्र-निरूपण पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा नवीन-रूप में हुआ है ।

1· तथागतं तु तं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः
अर्जुनश्च यमौचोभौ सर्वे ते प्राहंसस्तदा ।7।। महाभारत,सभापर्व,अध्याय - 43,पृ0-[illegible]

2· कर्ण , पृ0-14

3· वही, पृ0-17

"अंगराज" में द्रौपदी का चरित्रांकन प्रथम बार परम्परागत् रूप से परे निम्न व विलासी नारी के रूप में हुआ है। "कृष्णायन" में द्रौपदी के पंचपतित्व को पूर्वजन्म निर्धारित परम्परागत में ही वर्णित किया गया है। "अंगराज" में इसे युधिष्ठिर की भोग-लिप्सा की कामना के रूप में वर्णन किया गया है। इस भोग लिप्सा का अनुमोदन द्रौपदी दारा होता है। द्रौपदी पंचपतित्व की स्वीकृति, अपनी विलासी व भोग प्रिय स्वभाव के कारण ही प्रदान करती है-

किन्तु द्रौपदी को प्रियकर थी धर्मराज की नीति,
थी अभीष्ट उसको पंचामृत तुल्य पंचतय प्रीति।-1

"अंगराज" में द्रौपदी का चरित्रांकन प्रथम बार निम्न रूप में विलासी नारी के रूप में हुआ है। इस रचना में द्रौपदी के चरित्र को गिराकर दुर्योधन के चीरहरण को औचित्य प्रदान किया गया है। परम्परागत् रूप मे राजसभा में आये दुर्योधन की विचित्र दशा पर पांडव सहित द्रौपदी सहज भाव से ही हंस पड़ती है, उसके मन में उसके उपहास का कोई भाव नहीं होता। "कर्ण" में द्रौपदी ही दुर्योधन की विचित्र दशा व्यंग्य करती है, किन्तु "अंगराज" में द्रौपदी का यह रूप निम्न हो गया है। द्रौपदी भीम के साथ मदिरा पान करके, दुर्योधन को अंध पिता का अंध-पुत्र कहकर तिरस्कृत व अपमानित करती है-

भीम संग मुखरा भामा ने करके मदिरा पान,
भरी सभा में किया अकारण कुरुपति का अपमान,
× × ×
राज सर्वदा रहा, रहेगा सुपथ भ्रष्ट यह दीन,
अंध-पिता का आत्म जात भी होता चक्षु विहीन।-2

इस रचना में कौरव पक्ष को निर्दोष सिद करने के लिए ही द्रौपदी के चीरहरण की घटना को मौलिक रूप में वर्णित किया गया है। द्रौपदी दुःशासन

1- अंगराज - आनन्दकुमार - पृ0 68

2- वही, पृ0 63

द्वारा भयभीत करने के उद्देश्य से द्रौपदी का वस्त्र मात्र स्पर्श किया जाता है। इससे भयभीत होकर द्रौपदी को लगता है कि उसका चीर खींचा जा रहा है।-अन्ततः अपनी गल्तियों को स्वीकार करती हुई वह धृतराष्ट्र से क्षमा याचना करती है-

अब भविष्य में नहीं करेंगी, हम अनुचित अत्युक्ति,
पुत्रवधूवत् याचित करती, हम पतिबन्धन मुक्ति।-2

परम्परागत् रूप में द्रौपदी कृष्ण की उपासिका रूप में वर्णित हुई है। "कृष्णायन" में भी उनके इसी "कृष्ण - भक्त" रूप का अंकन है किन्तु "अंगराज" में वह सामान्य रूप से ईश्वर को मानने वाली नारी है। पाण्डवों को धृतराष्ट्र द्वारा स्वतन्त्र कर दिये जाने के बाद, वह सामान्य भाव से ईश्वर को धन्यवाद देती है—

कहा द्रौपदी ने- हरि की है लीला अपरम्पार।
स्मरण मात्र से किया हमारा उसने ही उद्धार।-3

"अंगराज" में द्रौपदी द्वारा ही द्यूत-क्रीड़ा हेतु पाण्डवों को उत्प्रेरित किया जाता है। इस नवीन कल्पना के पीछे द्रौपदी के चरित्र को कलुषपूर्ण दिखाने तथा दुर्योधन पक्ष को निर्दोष सिद्ध करने का उद्देश्य है। राजद्यूत में विफलता पर, एक वर्ष के अज्ञातवास व 12 वर्ष के वनवास का प्रावधान भी द्रौपदी द्वारा ही बनाया जाता है। पूर्ववर्ती किसी भी रचना में द्रौपदी का यह चरित्र नहीं प्राप्त होता। "अंगराज" में द्रौपदी युधिष्ठिर से कहती है-

---

1- अंगराज- आनन्द कुमार पृ0 66

2- वही, पृ0 79

3- वही, पृ0 79

इन्द्रप्रस्थ में कृष्णा बोली - करो न प्राणायाम।
द्यूत दमित कर रिपु को स्वामी तभी करो विश्राम।
× × ×
राजद्यूत में आज विफल हो जिसका विजय-प्रयास।
राजत्याग द्वादश वर्षों तक करे वही वनवास।।
एक वर्ष तक करे और भी वह अज्ञात निवास।-1

यहाँ द्रौपदी के चरित्र मे मौलिक रूप में राजलिप्सा, धन-ऐश्वर्य और वैभव लोलुपता का समावेश किया गया है। द्रौपदी के लिए यह द्यूत उसकी कूटनीति का ही एक दाँव था। इस दाँव में असफल होने के बाद बनवास काटती हुई भी वह अपनी राज्यलोलुपता को नहीं छोड़ पाती। परम्परागत रूप में तथा पूर्ववर्ती रचनाओं में द्रौपदी महाभारत युद्ध हेतु चीरहरण के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए ही कटिबद्ध रहती है, किन्तु इस रचना में यह परिस्थिति बिल्कुल बदल गई है। दुर्योधन द्वारा राजरूप में पांडवों के आमन्त्रण तथा शान्ति प्रस्ताव का निषेध करती हुई, द्रौपदी के राजलोलुपता का ही प्रकटन हुआ है। द्रौपदी कहती है-

पुनः सचिव से यो बोली पंचमी कर्कशा। हम चण्डा हैं कर देंगी कुरुराज॥
कहो दूत जाकर दुर्योधन महापाप से। घृत समान दूर रहे मम् कोप ताप से।-2

समग्रतः "अंगराज" में महाभारत युद्ध का उत्तरदायित्व द्रौपदी के ऊपर ही आरोपित किया गया है। उसके परम्परागत् उदात्त स्वरूप को युद्ध प्रेमी, राज्यलोलुप विलासी नारी के रूप में निरूपित किया गया है।

1- अंगराज - पृ0-80

2- वही, पृ0- 94

"अंगराज" के बाद "जयभारत" में द्रौपदी का चरित्रांकन हुआ है। इसमें द्रौपदी का चरित्र मौलिक तथा नव्य चेतना से प्रभावित नारी के रूप में निरूपित हुआ है। "जयभारत" में मैथिलीशरण गुप्त जी ने द्रौपदी के परम्परागत् रूप के साथ-साथ उसके नवीन बौद्धिक, नारी जागरण से प्रभावित, संवेदनशील, कर्मवादी तथा अन्याय के विरोधी रूप का चरित्रांकन किया है।

परम्परागत् रूप में द्रौपदी का चरित्र जातिवादी नारी का है। महाभारत तथा पूर्ववर्ती आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों की भाँति ही इस रचना में भी वह कर्ण से विवाह करने से इसलिए इन्कार कर देती है, क्योंकि वह सूत-पुत्र था। "जयभारत" की द्रौपदी का मौलिक पक्ष यह है, कि वह सूत-पुत्र को वरण करने की अपेक्षा स्वजातीय भिक्षुक को भी वरण करने को ज्यादा महत्ता प्रदान करती है। यहाँ उसकी जातिवादी रूढ़िवादिता का ही प्रकटन होता है-

मैं वरूं भले भिक्षुक वर को, वर नहीं सकूँगी इस नर को।
मैं राज सुता यह सूत-तनय।-1

"जयभारत" में द्रौपदी के परम्परागत् चरित्र की नवीन व्याख्या हुई है। "अंगराज" की द्रौपदी युधिष्ठिर द्वारा रखे पंचपतित्व के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लेती है। किन्तु "जयभारत" में उसके मानवीय संवेदना और उदात्त चरित्र का निरूपण हुआ है। कुन्ती द्वारा अज्ञानतावश यह आज्ञा दी जाती है कि, वे प्राप्त वस्तु को आपस में बाँट लें। इस प्रकार उनके द्वारा अज्ञानतावश ही द्रौपदी के पंचपतित्व की आज्ञा दी जाती है। इसे सुनकर सामान्य संवेदनशील नारी की भाँति द्रौपदी भी सिहर उठती है। उसका शरीर पीला पड़ जाता है। द्रौपदी की मनोदशा व पीड़ा की अभिव्यंजना "जयभारत" की मौलिक उद्भावना है-

पीली - सी पड़ी वधू विकला, तनु रक्त धर्म बन वह निकला।
वह सँभल गई गिरती गिरती, तब भी अथाह में थी तिरती।-2

1- जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 114

2- वही पृ0-120

गुप्त जी ने द्रौपदी के चारित्रिक उत्कर्ष के लिए उसके परम्परागत् स्वरूप की मौलिक उद्भावना की है। "महाभारत" में पाण्डव सहित द्रौपदी राजसभा की विचित्रता के कारण दुर्योधन के असमंजस में पड़े रूप पर हंस पड़ती है। किन्तु "कर्ण" और "अंगराज" में कवियों ने कर्ण के चारित्रिक उत्कर्ष हेतु द्रौपदी के चरित्र को नीचे गिराया है। "कर्ण" में वह दुर्योधन का उपहास ही करती है किन्तु "अंगराज" में उसे मद्यप नारी के रूप में निरूपित किया गया है जो मदिरा पान करके दुर्योधन को अंध पिता का अंध पुत्र तक कह डालती है। "जयभारत" में द्रौपदी को सर्वथा निर्दोष दिखलाया गया है। दुर्योधन की विचित्र अवस्था को देखकर द्रौपदी सहित सभी दास-दासी भी सहज भाव से हंस पड़ते हैं-

जल में थल का, थल में जल का देख उसे भ्रमाभास,
रोक न सके दास-दासी भी आकस्मिक उपहास।-1

इस प्रबन्ध-कृति में नारी - जागरण तथा आधुनिक बौद्धिक चेतना के प्रभाव-स्वरूप द्रौपदी के चरित्र-निरूपण में नवीनता एवं आधुनिकता का समावेश हुआ है। द्रौपदी द्यूत-सभा में युधिष्ठिर द्वारा उसे दाँव पर लगाने के कृत्य की भर्त्सना हुई है। वह मानव होते हुए भी वस्तु समझ कर जिस प्रकार धर्मराज पति द्वारा दाँव पर लगा दी जाती है, वह कभी भी धर्म सम्मत व नीतिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। द्रौपदी कहती है-

मैं पण योग्य न थी अथवा थी, यह विवाद की बात रहे।
पर न सहेगा कभी धर्म यह अनाचार सो ज्ञात रहे।-2

आधुनिक नव्य चेतना व नारी-जागरण के प्रभावस्वरूप द्रौपदी का चरित्रांकन स्वाभिमानी नारी के रूप में हुआ है। द्रौपदी पौरुष का आदर करती है। वह

1- जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 144

2- वही, पृ0 146

दयाभाव तथा भिक्षा से प्राप्त वस्तु को स्वीकार नहीं करती। उसके अन्दर किसी भी प्रकार की तृष्णा नही होती। धृतराष्ट्र से अपने पतियों को दासत्व से मुक्त कराने के बाद वह उनसे और किसी भी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखती। यह उनके स्वाभिमान का ही घोतक है-

कहना नही और कुछ मुझको, अच्छी नहीं अधिक तृष्णा।
यदि पुरूषों में पौरूष होगा, तो सब कुछ हो जायेगा।-1

आधुनिक युग में श्रम की महत्ता स्थापित हुई। मैथिलीशरण गुप्त जी की "जयभारत" की द्रौपदी के चरित्र पर आधुनिक कर्मठ नारी के रूप का आरोपण है। द्रौपदी श्रमशील नारी है। वह अपने कार्यो को स्वयं करने में गौरान्वित होती है। बनवासी जीवन व्यतीत करते समय अपने कार्यो को वह स्वयं करती है-

मेरी तुच्छ कुटी जो तुमको सहज स्वच्छ सी सूझी,
इसके लिए स्वकटि कसकर मैं झाड़ू लेकर जूझी।-2

इस रचना में द्रौपदी का चरित्रांकन सवाभिमानी, स्वत्व के प्रति जागरूक तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत नारी के रूप में हुआ है। वह पाण्डवों की प्रेरणा स्रोत बनकर उन्हें उनके कर्तव्य और स्वाभिमान के प्रति जाग्रत करती है। "महाभारत" में द्रौपदी अपनी व्यथा सुनाकर पाण्डवों को कौरवों के प्रति प्रतिशोध हेतु प्रेरित करती है। किन्तु गुप्त जी की द्रौपदी अपने पतियों की सहनशीलता पर उनकी भर्त्सना करती हुई, उनका स्वाभिमान व शौर्य जाग्रत करती है; ताकि वे अपने अपमान का कौरवों से प्रतिशोध लें। कीचक-प्रसंग में भी उसका यही रूप निरूपित हुआ है। सैरन्ध्री बनी द्रौपदी का कामी कीचक द्वारा अपमान किया जाता है। द्रौपदी भीम को इस अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए उत्तेजित करती

1- जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त - पृ0 150
2- वही, पृ0 189

हुई कहती है-

आज आत्म सम्मान तुम्हारा जाग रहा क्या?
अब भी तन्द्रा शौर्य-वीर्य वह त्याग रहा क्या?-1

"जयभारत" में द्रौपदी का चरित्र - निरूपण नारी जागरण व आधुनिक बौद्धिक चेतना से प्रभावित है। वह स्वत्व के प्रति सचेत, अन्याय के प्रति विद्रोही भाव से युक्त है। कीचक द्वारा अपमानित किये जाने के बाद वह कीचक की भर्त्सना करती हुई, नारी को सताने वाले पुरूषों को पशुओं से भी निम्न मानती है। यहाँ द्रौपदी का चरित्र पूर्ववर्ती प्रबन्ध - कृतियों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी है। वह कहती है-

नर होकर भी हाय सताता है नारी को?
यों तो पशु-महिष-वराह भी, रखते साहस सत्व हैं,
होते परन्तु कुछ और ही मनुष्यत्व के तत्व हैं।-2

"जयभारत" में द्रौपदी का चरित्रांकन राजतंत्र के प्रति विद्रोही नारी के रूप में हुआ है। कीचक द्वारा अपमान के प्रसंग में मत्स्यराज द्वारा मौन ग्रहण करने पर वह भरे दरबार में विद्रोहात्मक ढंग से उनकी भर्त्सना करती है। वह कहती है कि जिस शासक में शासन करने की समुचित योग्यता न हो, उसे राज्यासन का त्याग कर देना चाहिए। यहाँ एक तरफ स्वाभिमानी नारी का आहत मान विद्रोह करता है, तो दूसरी तरफ प्रजा की रक्षा में असमर्थ राजतंत्र पर आघात भी किया गया है-

---

1- जयभारत, पृ0-272

2- वही, पृ0-259

न्यायासन पर मौन रहे तुम बनकर न्यायी
तुममें यदि सामर्थ्य नहीं है अब शासन का,
तो क्यों करते नहीं त्याग तुम राजासन का,
करने में यदि दमन दुर्जनों का डरते हो
तो छूकर क्यों राजदंड दूषित करते हो।-1

इस रचना में द्रौपदी का चरित्रांकन आधुनिक बौद्दिक व यथार्थवादी चेतना से प्रेरित है। वह मानवीय दुर्बलता को दुर्नीति के रूप में देखती है। गाधीवादी सिद्धान्त में जहाँ पापी से नहीं, पाप से घृणा करने का संदेश है, वहीं द्रौपदी का चरित्रांकन पापी को क्षमा करने में नहीं अपितु उन्हें उनके पाप का प्रतिफल देने वाले व्यक्तित्व के रूप में हुआ है। "जयभारत" की द्रौपदी कहती है-

पापी प्रकट निज पाप का प्रतिफल न पावेगा यहाँ,
तो कष्ट करके पुण्य पथ से कौन जावेगा यहाँ?
इन दुष्कृतों की प्रकृति फल ही जायेगी ऐसे कहीं,
जो कर चुके हैं वे, करेंगे फिर उसे कैसे नहीं।-2

समग्रतः द्रौपदी का चरित्रांकन नवीन चेतना तथा नारी जागरण का प्रभाव उसके परम्परागत चरित्र को आधुनिक धरातल पर लाकर खड़ा कर देता है। गुप्त जी ने "जयभारत" में द्रौपदी एक ऐसी नारी के रूप में उभारा है जो जीवन की विषम विसंगतियों को साहसपूर्ण ढंग से झेलती हुई एक नये आदर्श की स्थापना करती है।

---

1 जयभारत- पृ0 268

2- जयभारत- पृ0-315

"जयभारत" के पश्चात् द्रौपदी के चरित्र को उजागर करने वाली रचनाओं में "रांगेय राघव" रचित "पांचाली" का स्थान महत्वपूर्ण है। इस रचना में द्रौपदी नायिका रूप में वर्णित की गई है। इसमें द्रौपदी के स्वरूप व चरित्र चित्रण में पर्याप्त मौलिक विचारधारा का अवलंबन लिया गया है। रांगेय राघव प्रगतिवादी धारा के रचनाकार है। "पाँचाली" में उन्होंने द्रौपदी को भी शोषित वर्ग के रूप में देखा है। इसके अलावा आधुनिक कर्मवादी बौदिक व गाँधीवादी चेतना का प्रभाव भी द्रौपदी के चरित्रांकन पर पड़ा है। "कवि का लक्ष्य दुष्ट प्रकृति के व्यक्तियों को दंड दिये जाने तथा न्याय प्राप्ति के लिए हिंसा और युद्ध के मार्ग को अपनाने का औचित्य सिद्ध करना प्रतीत होता है।"-1

"पांचाली" की द्रौपदी का चरित्रांकन आधुनिक कर्मवादी चेतना से प्रभावित है। वन में दास-दासियों के रहते हुए भी द्रौपदी स्वयं अपना कार्य करती है। वह राजमहल की महारानी होते हुए भी विपत्ति काल में अपने कर्मठ व्यक्तित्व का और सहज स्वभाव का परिचय देती हुई दासियों के रहते हुए भी स्वयं तालाब से पानी भरकर लाती है-

दासी थी करती काम चपल गति चलकर
× × ×
पांचाली लाई घट भर वन के सर से।-2

इस रचना में पहली बार द्रौपदी के संवेदनशील रूप तथा अर्न्तद्वन्दों का चित्रण हुआ है। यह केवल कर्मठ नारी ही नहीं है, अपितु बौद्धिक चेतनाशील नारी भी है। द्रौपदी मानवीय दुर्बलता के विषय में चिंतन करती हुई सोचती है कि मन की कमजोरी के कारण ही क्रोधानल जागृत होता है। मन के कारण ही मानव स्वयं में विवश सा हो जाता है। मन की अंतहीन उड़ान ही अशान्ति, निष्ठुरता व अहंकार का कारण वन जाता है-

---

1- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास भाग-2, पृ0 201

2- पांचाली, पृ0-3

यह क्रोध इसी ज्वाला सा जितना बढ़ता
मन को ही खाया करता है रह-रहकर
ओ मन! तुझमें कितनी होती विह्वलता
कितनों की शान्ति बिखेरा करता निष्ठुर
कितनों में भरता अहंकार मदमाता।-1

"पांचाली" मे द्रौपदी का चरित्रांकन शोषित वर्ग के रूप में भी हुआ है। परंपरागत तथा पूर्ववर्ती रचनाओं में द्रौपदी का इस रूप में चरित्रांकन प्रथम बार "पांचाली" का कथावस्तु बना है। इस रचना में कवि ने कृष्ण द्वारा कहलाया है कि द्रौपदी ने शताब्दियों के इस अज्ञान रूपी अंधकार को तोड़ा है। जिस घोर तम में नारी के अस्तित्व को नकारते हुए, उसे वस्तु समझा जाता था। नारी को दास-दासियों की तरह ही बेचने का साहस तथा द्यूत पर दाँव पर लगाने तक साहस पुरूष वर्ग में था। "पांचाली" में द्रौपदी को उसके धर्मराज पति युधिष्ठिर द्वारा जब दाँव पर लगाया जाता है, उस समय द्रौपदी अपने आक्रोश को प्रकट करती हुई, राज सभा में प्रबुद्ध कहे जाने वाले गुरू - जनों, अग्रजों तथा पितृतुल्य विज्ञ लोगों को ललकारती हुई कहती है-

नारी बिक कैसे - सकती है?
"-----------नारी क्या संपदा नर की?
वह है मानवी या कि केवल सामग्री?
    नारी का क्या सम्मान कहो जीवन में?
    जो ब्रह्मा सी है सृष्टि कर रही जग में।
वह पराधीन क्यों है बलि पशु सी दीना?-2

1- पांचाली - रांगेय राघव, पृ0 6-7

2- वही- पृ0- 8

आधुनिक नवचेतना तथा नारी जागरण के प्रभाव स्वरूप नारी में स्वाभिमान तथा स्वत्व के प्रति जागरूकता की भावना जगी है। वह अब आदर्श के नाम पर परम्परा का अनुकरण करने वाली दुर्बल मानवी न होकर, अपने स्वतंत्र अस्तित्व के प्रति सचेत तथा महत्वपूर्ण निर्णय करने में सक्षम है। "पांचाली" में द्रौपदी का चरित्रांकन इसी रूप में हुआ है। जयद्रथ जब एकांत क्षेत्र में द्रौपदी को एकाकी पाकर उसे भौतिक चकाचौंध का लालच देकर सत्य से डिगाना चाहता है, उस समय द्रौपदी की साहस और आत्म-विश्वास की भावना प्रबल रूप में दृष्टिगत होती है। वह जयद्रथ की भर्त्सना करती हुई कहती है कि नारी अबला नहीं होती, न ही वह कोई वस्तु है। समय पड़ने पर नारी प्रतिहिंसा की विकराल ज्वाला बन जाती है-

तू मुझे समझता अबला कैसे कह तू
मै हूँ प्रतिहिंसा की कराल मर्यादा
× × ×
यह जीवन है संग्राम न इसमें भय है
तूमुझे समझता है कोई सामग्री।-1

रांगेय राघव जी ने द्रौपदी को वीर तथा साहसी नारी के रूप में निरूपित किया है। उसके साहस का परिचय उस समय मिलता है, जब वह अपहरण के लिए बढ़े जयद्रथ के हाथों को रोकती हुई; स्वयं जयद्रथ के रथ पर चढ़ जाती है। वह उसके कुकृत्य की भर्त्सना करती हुई उसे चेतावनी देती है कि पांडवों द्वारा उसका विध्वंस निश्चित है। यह क्षमता किसी सामान्य नारी के वश से बाहर है। यह तो द्रौपदी की वीरता की गरिमा और उसकी महत्ता ही है-

पांचाली चीखी "सावधान मत छूना"
चल मैं चढ़ती हूँ तेरे रथ पर पापी,

1- पांचाली, पृ0- 64-65

विध्वंस करेंगे तेरा पांडव निश्चय।

मैं मृत्यु बनूगी तेरी आप चलूँगी।-1

इस रचना में द्रौपदी चरित्र की महत्वपूर्ण विशिष्टता है, उसकी क्षमाशीलता। यद्यपि द्रौपदी प्रतिशोध की वह ज्वाला है, जिसमें संपूर्ण कुरुदल भस्म हो जाता है। लेकिन जयद्रथ को मृत्युदण्ड देने के बारे में पांडव जब द्रौपदी से सलाह मांगते हैं, तब वह जयद्रथ को मात्र इसलिए क्षमा कर देती है, क्योंकि वह कौरवों की बहन सुःशला का पति था। यहाँ उसकी नारी के प्रति संवेदना तथा भावुकता का भी निरूपण हुआ है। वह कहती है-

मैं वही करूँगी जिसमें धर्म विजय हो,

अपराधी को दो छोड़ क्षमा करती हूँ।-2

"पाचालो" में द्रौपदी का चरित्र पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक व उदात्त है।"पांचाली" के बाद की रचना लक्ष्मीनारायण मिश्र रचित 'सेनापति -कर्ण" में द्रौपदी का चरित्राकन मौलिक रूप में हुआ है। मुख्य रूप से कर्ण पर केन्द्रित इस रचना में द्रौपदी के चरित्र को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया गया है। द्रौपदी के ऊपर चीर-हरण की घटना का इतना गहरा प्रभाव पड़ता है कि वह स्वयं को हमेशा विधवा सा महसूस करती है। वास्तव में पांच-पाच पतियों के समक्ष भरे दरबार में उसकी लज्जा को जिस तरह से समस्त गुरुजनों बन्धुओं तथा अन्य श्रेष्ठजनों के समक्ष उछाला गया उसे अपमानित किया गया, वह उसके लिए असहनीय ही था। उसके पति ही उसे वस्तु समझकर द्यूत क्रीड़ा में दांव पर लगा देते हैं। द्रौपदी इस अंतर्व्यथा को जीवनपर्यन्त झेलती रही। "सेनापति-कर्ण" में द्रौपदी के इस रूप का चित्रण सर्वथा मौलिक रूप में प्रथमतः किया गया है। वह कहती है-

---

1- पांचाली, पृ0-67

2- वही, पृ0-68

विधवा बनी थी मैं
द्यूत की सभा में जहा पाच पति मेरे थे
अचल बने थे शिलाखंड से, पकड़ के,
केश जब पापी मुझे खींचे लिए आता था,
बेड़ी जो उस दिन जो खुली थी, एक वस्त्रा की
अब तक बंधी है नहीं, विधवा की बेड़ी में
और इस बेड़ी में विभेद कहां पाते हो। -1

द्रौपदी की यह मानसिक व्यथा ही, उसे प्रतिहिंसा के लिए विवश करता है। वह अपने अपमान का बदला लेने के लिए हमेशा दन्दग्रस्त रहती है। यहा पर उसके मन में कर्ण के वीरत्व के प्रति सम्मान भाव जागता है। वह यह अनुभव करती है कि यदि कर्ण उसका पति होता तो उसे कभी भी अपमान का इतना भयानक रूप नही देखना पड़ता। यहां भारतीय पतिव्रता नारी के परंपरागत बिम्ब को कवि ने तोड़ा है। परंपरागत आदर्शों की दृष्टि से द्रौपदी की यह कामना अनैतिक है, किन्तु आधुनिक मनोविज्ञान व नारी के स्वातंत्र्य चेतना के परिप्रेक्ष्य में यह स्वाभाविक प्रतीत होता है। द्रौपदी जातीय वैषम्य से ग्रसित हो स्वयंवर में जिस कर्ण का वरण करने से इंकार कर देती है, उसी के वीरता पर मोहित हो वह कहती है-

"जानती जो दुर्जय धनुर्धर जगत में,
कालपृष्ठधारी हैं अकेला सुत राधा का,
तब तो स्वयंवर में बरती उसी को मैं।

1- सेनापति कर्ण- पृ0-162

धरती धारण किया था ज्यों वराहने
दन्त के वलय पर उठाता वीर वैसे ही
रमणी का भार। कामना भी यही नारी की
सर्वदा रही है वीर रमणी बनी रहे।-1

इस रचना में द्रौपदी संवेदनशील मानवतावादी तथा भावुक नारी के रूप में चित्रित हुई है। युद्ध के समय हिडिंबा[2] के पुत्र घटोत्कच से वह भाव विह्वल सवेदनशील माँ की तरह मिलती है तथा हिडिंबा से विषय में इस प्रकार पूछती है मानों वह उसकी बहन ही हो। यहा उसके चरित्र में दया प्रेम वात्सल्य तथा सपत्नी के प्रति प्रेम की भावना की अभिव्यक्ति तो मिलती है, साथ ही उसमें उदात्तता भी निहित है। एक दानवी के प्रति उसकी अपार प्रेम भावना इसी तथ्य का द्योतक है। वह घटोत्कच से माँ के समान तो कहती है-

"वत्स तुमको, पाकर बनी मैं आज पुत्रवती" फिर भी
किस अपराध से तुम्हारी उन माता ने
मुझको भुलाया और आप नहीं आई क्यों?-3

यही नहीं वह हिडिम्बा के पुत्र को अपने पुत्र के समान ही मानती है। घटोत्कच को भेजते समय हिडिम्बा किन मानसिक द्वन्दों से गुजरी होगी, इसका अनुभव द्रौपदी स्वयं महसूस करती है। उसके त्याग की महत्ता का गुणगान करती हुई वह उसके पुत्र घटोत्कच को प्राणों से भी बढ़कर रक्षणीय मानती है। वह कहती है-

दानवी ने मानवी को धर्म की
महिमा दिखाई वत्स! मेरा अब धर्म है
उनके धरोहर की रक्षा करूँ प्राण से।-4

=--

1- सेनापति कर्ण- पृ0- 172

2- "यावत् कालेन् भवति पुत्रस्योत्पादनं शुभे।
तावत कालं गमिष्यामि त्वया सह सुमध्यमे।"
- आदि पर्वान्तर्गत्, भीम-हिडिम्ब वधपर्व, पृ0-1046

3- सेनापति कर्ण- पृ0- 172

4- वही - पृ0-175

"सेनापति-कर्ण" के पश्चात् द्रौपदी के चरित्र पर आधारित प्रबन्ध रचना नरेन्द्र शर्मा कृत "द्रौपदी"है। इस रचना में द्रौपदी के परंपरागत चरित्र का मौलिक रूप में निरूपण हुआ है। इस रचना में द्रौपदी कर्मवादी, स्वातन्त्र्यप्रेमी, जागरूक, वीर, तेजस्वी तथा संवेदनशीलवभावुक नारी के रूप में चरित्रांकित की गई है।

आधुनिक नव्य-चेतना तथा नारी जागरण के प्रभावस्वरूप द्रौपदी का चरित्रांकन स्वत्व-सम्पन्नव स्वतंत्र-व्यक्तित्व से युक्त नारी के रूप में हुआ है। द्रौपदी पाण्डवों के स्वाभिमान व साहस को जाग्रत करने वाली प्रेरणा शक्ति है।वे युधिष्ठिर को पुरूषार्थ हेतु उत्तेजित करती है। यहां उसका प्रेरक रूप प्रकट होता है। वह कहती है-

पुरूषार्थ करो युगपुरूष कह रही याज्ञसेमि पांचाली
लाक्षागृह के संग गयी भस्म हो गई निशा भय वाली।-1

द्रौपदी के इस रूप में वीरता तथा साहसी रूप की गरिमा झलकती है। जीवन के परिस्थितियों के प्रति उसमें अपूर्व साहस व धैर्य रहता है, वह जीवन की विषम परिस्थितियों से हारकर कभी कमजोर नहीं पड़ी। अपितु पांडवों की प्रेरणा बनकर उनके साथ जीवन के प्रत्येक विषमताओं को सहन करती हुई,लक्ष्य की ओर बढ़ती ही रही।

इस रचना में द्रौपदी का चरित्रांकन स्वाधीनता प्रेमी नारी के रूप में हुआ है, वह दूसरों के वश में होना या पराधीन होना क्षत्रियों के लिए अपमान की बात मानती है। पराधीनता से मुक्ति के लिए वह सर्वस्व समर्पित करने की भावना रखती है-

क्षत्रिय के हित अपराध की हो वह पराधीन या परवश,
हो भूमि योग से विमुख, भला वह क्या पायेगा अपयश।-2

1- द्रौपदी-नरेन्द्र शर्मा - पृ0-27
2- वही, पृ0-27

यहाँ द्रौपदी पांडवों के पौरुष को, उनके स्वाभिमान को जागृत करने वाली चेतना शक्ति है। पुरुष की विजय के पीछे नारी की ही शक्ति क्रियाशील होती है, वह अपने पुत्र भाई, पति एवं पिता को युद्ध के लिए प्रेरित करती है। इस रचना में द्रौपदी के चरित्र का विशिष्ट पक्ष है, उसकी प्रबल आत्म शक्ति। दुःशासन जब द्रौपदी को रनिवास से खींचकर लाने लगता है, उस समय द्रौपदी का रूप इतना तेजोमय होता है, कि कौरव पक्ष उससे भयभीत हो जाते हैं। राजमहल से राजभवन में प्रविष्ट होती हुई द्रौपदी, अपमान के कारण रौद्ररूपा दुर्गा सी हो जाती है। उसके तेज से धृतराष्ट्र का सिंहासन डगमगा जाता है। अर्थात् उनके शासन के अंतिम दिन नजर आने लगते हैं-

> शत हस्ति द्वार कर पार, सुन पड़ा पांचाली का गर्जन
> कर रही नियति हुंकार, डोलता धार्तराष्ट्र राजासन।
> धृतराष्ट्र हुए भयभीत पीत मुख पड़ा सुनी सब बातें।-1

यहां पर द्रौपदी के चरित्र में नारी का वह स्वरूप दृष्टिगत होता है, जो कि अन्याय को पाप को, अपने तेज से नष्ट करने की शक्ति रखती है। नारी दुर्बल, असहाय, कामिनी मात्र न रहकर ऐसी शक्ति है, जो संसार की सृष्टि करने वाली भी है, और अपमानित होने पर हिंसा की प्रज्वलित चिता भी बन जाती है। जो अपने शत्रु को क्षण भर में भस्मीभूत कर सकती है। वह जगत कल्याणी भी है, और प्रतिशोध की ज्वाला में पड़ने पर जगत की विनाशकर्त्री भी बन जाती है। द्रौपदी के चरित्रांकन में नारी का यही रूप है। द्रौपदी कुरु वर्ग द्वारा हुए अपमान से प्रताड़ित, उनके प्रति प्रतिशोध की भयंकर ज्वाला में जलती हुई, उनके लिए साक्षात् काल बन जाती है-

---

1- द्रौपदी-नरेन्द्र शर्मा, पृ0- 36

नदी वैतरिणी यथा वेणी खुली लहरा रही,

धार्त राष्ट्रों को डुबाने हर भंवर गहरा रही,

द्रौपदी के केश काले धरा को छूते चले

शत्रु होंगे धराशायी मरण वेला आ रही।-1

द्रौपदी के इस रूप में तेजस्वी नारी का रूप परिलक्षित होता है। नरेन्द्र शर्मा की द्रौपदी में सहनशक्ति भी है, और दहनशक्ति भी। द्रौपदी के बिना पांडव कभी भी अपने अधिकार नहीं प्राप्त कर सकते थे और न सत्य की विजय ही हो सकती थी। उस द्रौपदी के क्रोध की, उसके प्रतिशोध की अग्नि ही पांडवों की शक्ति का मूल बनती है-

उठ रही थी यज्ञ ज्वाला द्रौपदी के क्रोध की

आ रही थी निकट हर क्षण प्रतिशोध की।

पंचशोषित सरोवर की भूमि का आह्वान था

शक्ति थी किसमें भला अब शक्ति प्रतिरोध की?-2

अपने इस प्रतिशोध की ज्वाला में द्रौपदी को बहुत कुछ होम करना पड़ता है। इस रचना में द्रौपदी के चरित्र की महत्वपूर्ण विशिष्टता है उसकी सहनशक्ति। कौरवों के अनेक अत्याचार सहकर भी अपने धर्म पथ से विचलित नहीं हुई, वह अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर बढ़ती रही। राजमहलों में निवास करने वाली द्रौपदी पांडवों के साथ वन-वन भटकती रही। द्रौपदी अपने पांच पुत्रों के निर्मम हत्या की गहरी पीड़ा को भी सहन करती है। इस प्रकार द्रौपदी जीवन भर जीवन संग्राम से संघर्षरत रही-

नर की हार जीत में जग में मूल्य चुकाती नारी।-3

1- द्रौपदी नरेन्द्र शर्मा- पृ0 53

2- वही, पृ0. 56

3- वही, पृ0.60

पांडवों की जीत का मूल्य द्रौपदी अपने भाइयों और बेटों की बलि चढ़ाकर चुकाना है। नरेन्द्र शर्मा जी ने द्रौपदी के चरित्र में अलौकिक व दिव्य तत्वों की अवतारणा करके उसके शक्ति के रूप में ही प्रस्तुत किया है। रीतिकाल की भाँति आज का नारी पुरूष वर्ग के लिए विलास का साधन और कामिनी नही है। अपितु उसके सुख-दुःख में समान रूप से सहभागी, जीवन पथ की पथिक साथी, शिक्षिका और प्रेरणा भी है। द्रौपदी पांडवों का साथ हर सुख-दुःख में निभाती है, वह उनके कमजोर मनोबल को ऊँचा उठाने मे शिक्षिका भी बनती है। वे धर्म विजय के लिए तथा सत्यानुकरण की भावना प्रज्वलित करने के लिए उनकी प्रेरणा भी बनती हैं।

"द्रौपदी" प्रबंधकाव्य के बाद द्वारिका प्रसाद महेश्वरी की "सत्य की जीत" में द्रौपदी का चरित्रांकन केन्द्रिय पात्र के रूप में हुआ है। इस रचना का आधार परम्परागत द्रौपदी चीरहरण की घटना है, किन्तु कवि ने इसके वर्णन में मौलिक विचार व भाव का समावेश किया है। इस प्रबन्धकृति मे द्रौपदी महाभारत तथा पूर्ववर्ती रचनाओं की भाँति दुर्बल हृदया नारी न होकर, गाँधीवादी विचारधारा से अनुप्रेरित, सत्य व अहिंसा के मार्ग पर चलने वाली साहसी व आत्मविश्वासी नारी के रूप में अंकित हुई है। द्रौपदी के सत्य के प्रति अटूट निष्ठा व दृढ़ आत्म-विश्वास के समक्ष दुःशासन का पौरूष क्षीण पड़ जाता है, और वह द्रौपदी का स्पर्श तक करने में असमर्थ हो जाता है। अन्ततः द्रौपदी केवल अहिंसा व सत्यनिष्ठा के सिद्धान्त द्वारा अपना राज्य भी प्राप्त कर लेती है, पाण्डवों को कौरवों के दासत्व से मुक्ति भी दिलाती है। द्रौपदी के चरित्र के इस पक्ष पर गाँधी के अहिंसावाद का गहरा प्रभाव है।

"सत्य की जीत" में द्रौपदी के चरित्रांकन पर आधुनिक नारी जागरण का प्रभाव है। इसमें वह वीर, साहसी तथा संयमशील नारी है। दुःशासन द्वारा जब द्रौपदी बलात् रंगमहल में लायी जाती है, उस समय वह अपना आक्रोश

प्रकट करती हुई कहती है कि वह दुःशासन की इस घृष्टता का उत्तर तत्काल दे सकती थी, किन्तु एकान्त में वह उसको अपनी शक्ति का परिचय नहीं देना चाहती थी। इसी कारण वह चुपचाप राजसभा तक चली आती है, और अपने क्रोध पर सयम् का अंकुश लगा देती है—

समझकर एकाकी निःशंक, लिया मेरे केशों को खींच।
रक्त का घूँट पिये मैं मौन, आ गई भरी सभा के बीच।
इसलिए नही कि थी असहाय, एक अबला, रमणी का रूप।
किंन्तु था नहीं राजदरबार, देखने मेरा भैरव रूप।-1

'चीरहरण' के समय "महाभारत" में जहाँ द्रौपदी केले के पत्ते सदृश काँप जाती है, वहीं पूर्ववर्ती प्रबन्ध काव्यों यथा- "कृष्णायन", "कर्ण", "जयभारत" में वह अपना रोष भी प्रकट करती है। "पांचाली" में द्रौपदी युधिष्ठिर के प्रति ही अपना आक्रोश प्रकट करती है, किन्तु "द्रौपदी" तक आते-2 उसका रूप उग्र हो गया है। "सत्य की जीत" में द्रौपदी का चरित्रांकन "द्रौपदी" की अपेक्षा अधिक उग्र व तेजस्वी है। इस रचना में वह क्रान्ति की अग्रदूत बनकर हमारे समक्ष आती है। विप्लव मचाने में समर्थ द्रौपदी राजमहल में सिंहिनी की भाँति प्रवेश करती है-

ध्वंश-विध्वंश, प्रलय का दृश्य, भयंकर, भीषण हाहाकार।
मचाने आयी हूँ रे आज, खोल दे राजमहल का द्वार।।-2

आधुनिक बौदिक व यथार्थवादी चेतना के साथ ही नई कविता की विद्रोहात्मक चेतना का प्रभाव द्रौपदी के चरित्रांकन पर है। आधुनिक समय में नारी के अस्तित्व, उसके स्वत्व तथा उसमें सन्निहित शक्तियों की महत्ता स्थापित

1- सत्य की जीत - द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, पृ0-2

2- वही, पृ0-1

हुई। "सत्य की जीत" में द्रौपदी स्वयं को अबला नहीं मानती। वह स्वयं का असभव से असंभव कृत्यों को करने में भी सक्षम मानती है। द्रौपदी कहती है-

नहीं नारी के बल का अभी, लगा पाये हो तुम अनुमान।
शक्ति उसमें है वह सन्निहित, कि जिससे हिल जाये चट्टान।।-1

इस रचना में द्रौपदी के चरित्र पर आधुनिक बौद्धिक एवं अधिकारों के प्रति जाग्रत नारी के रूप का आरोपण है। द्रौपदी पुरुष वर्ग के उस मान्यता पर आक्षेप करती है जो कि उसे प्राकृतिक रूप से निर्बल व कमजोर मानते हैं। आज समस्त विश्व में पुरुषों का ही आधिपत्य है, नारी प्रत्येक क्षेत्र में सक्षम होते हुए भी,अभी वह स्थान नहीं प्राप्त कर पायी है, जो कि पुरुष वर्ग को प्राप्त है। द्रौपदी इसे पुरुष वर्ग की भूल और अहं ही नहीं, उसका अत्याचार भी मानती। वह प्रश्न करती है कि प्रकृति ने कब व किस रूप में बतलाया है कि नारी कमजोर है, निकृष्ट है, दीन है-

भूल ही नहीं, अहं ही नहीं, पुरुष का है यह अत्याचार।
समझ बैठा है वह इस अखिल, विश्व पर ही अपना अधिकार।
प्रकृति ने बतलाया कब पुरुष बली है, नारी है बलहीन।
कहाँ अंकित उसमें रे पुरुष, श्रेष्ठ, नारी निकृष्ट, अतिदीन।-2

नारी - जागरण के प्रभाव स्वरूप नारी जहाँ अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुई, वहीं उसे अपने अस्तित्व, स्वत्व व महत्ता का भी बोध हुआ। नारी की महत्ता पुरुषों के सदृश ही सृष्टिकल्याण में विशिष्ट है। द्रौपदी के चरित्रांकन में इसी स्वत्वबोध की भावना का आरोपण हुआ है। द्रौपदी दुःशासन से उसके कृत्य की भर्त्सना करती हुई कहती है कि जिस नारी को वह निकृष्ट समझता है, जिसके चीरहरण तक का साहस वह कर रहा है, वही नारी पुरुष वर्ग की

1- सत्य की जीत- पृ0 6

2- वही, पृ0 8-11

जननी है, पुरूषों को जन्म देने वाली, उनका पोषण करने वाली है। पुरुष नारी के सहयोग से ही धरती का उचित विकास कर सकता है। नारी को तिरस्कृत कर पृथ्वी कभी स्वर्ग नहीं बन सकती-

पुरूष उस नारी की ही देन, उसी के हाथों का निर्माण
उसी के मृदुल अक में निहित, पुरूष के जीवन का कल्याण।
× × ×
पुरूष के पौरूष से ही सिर्फ बनेगी धरा नहीं यह स्वर्ग
चाहिए नारी का नारीत्व, तभी होगा पूरा वह सर्ग।-1

द्रौपदी का यह रूप जनमानस को आन्दोलित कर देने में सक्षम है। उसके इस सन्देश में विश्व-कल्याण की प्रबल भावना निहित है। विश्व में नारी के समुचित सम्बल को पाकर ही नर विश्व-कल्याण कर सकता है। दोनों के सम्मिलित महत्व की महत्ता ही विश्व की विशिष्टता बन सकती है। द्रौपदी यद्यपि पौराणिक पात्र है, किन्तु वह आधुनिक युग के समस्त नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती हुई उनके अधिकारों के प्रति, उनके स्वत्व के प्रति, उनकी मान-मर्यादा के प्रति सचेत, आधुनिक बौद्धिक नारी परिलक्षित होती है। द्रौपदी नारी-जागरण की नायिका की तरह प्रतीत होती है।

"सत्य की जीत" में द्रौपदी का चरित्रांकन अन्याय व अधर्म के प्रति विद्रोही के रूप में अंकित हुआ है। युधिष्ठिर द्वारा उसे दाँव पर लगाने व हारने के कृत्य को अधर्म मानती हुई, वह उसे मानने से इन्कार कर देती है। वह इसे धर्म विरूद्ध होने के कारण असम्भव मानती है-

असम्भव है यह धर्म-विरूद्ध, कह रही हूँ मैं यह ललकार।-2

1- सत्य की जीत- पृ0- 14-15

2- वही, पृ0-23

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी जी ने द्रौपदी का चरित्रांकन मौलिक रूप में स्वाभिमानी, आत्मविश्वासी तथा वीर नारी के रूप में किया है। परम्परागत् रूप में द्रौपदी जिस अपमान को निरीह नारी के रूप में सह जाती है, उसे ईश्वर को पुकारने तथा पाण्डवों व सभा में बैठे अग्रजों को कातर व दया भाव से देखने के अलावा कोई रास्ता नहीं दिखलायी देता। वही द्रौपदी इस रचना में अपनी रक्षा करने में स्वयं ही समर्थ है। द्रौपदी के चीरहरण के लिए जब दुःशासन उसकी ओर बढ़ता है, उस समय वह एक वीर, साहसी व आत्मशक्ति से सम्पन्न नारी की भाँति, सिंहनी की तरह गरजती हुई कहती है-

देख यह गरजी वह सिंहनी- "न छूना पापी, मेरा गात।
न उतरेगा तन से यह वस्त्र, भले ही देह चली यह जाय।
सहन मैं कर सकती हूँ नहीं, हो रहा है जो यह अन्याय।-1

द्रौपदी अन्याय और अधर्म का जिस आत्म-विश्वास के साथ सामना करती है, उस आत्मशक्ति के समक्ष दुःशासन की शक्ति कब टिक सकती थी। द्रौपदी के चरित्र में आत्मशक्ति की प्रबलता के साथ ही साथ, सत्य और धर्म के प्रति एक महत् निष्ठा भी है; जो कि उसके आत्मशक्ति को और भी ओज प्रदान करता है। द्रौपदी के चरित्र की यह मौलिकता प्रथम बार "सत्य की जीत" में ही दृष्टिगत् होती है। वह चीरहरण के लिए बढ़ते हुए दुःशासन को अपनी साड़ी को छोर पकड़ाते हुए उसे ललकारती है, उसकी शक्ति को चुनौती देती है कि यदि उसमें शक्ति हो तो वह उसका अपमान करे-

खींच दुःशासन, यदि हो शक्ति, चुनौती मेरी तुझको आज।
देखले युद्ध धर्म का औ, अधर्म का सारा विश्व समाज,
तुम्हीं क्या जग की कोई शक्ति, न कर सकती मेरा अपमान।-2

1- सत्य की जीत - पृ0 60

2- वहीं, पृ0-64

द्रौपदी के चरित्र में एक तरफ अदम्य साहस तथा आत्मशक्ति से परिपूर्ण क्रान्तिकारी नारी का स्वर है, तो दूसरी तरफ सत्य और धर्म को अपना अस्त्र मानने वाले, गाँधीवादी दृष्टिकोण की छाप दिखायी देती है। द्रौपदी की आत्मशक्ति ही उसका दिव्य स्वरूप बनकर दुःशासन के समक्ष घूम जाता है। उसे द्रौपदी साधारण नारी नहीं बल्कि दुर्गा सदृश दृष्टिगत होती है। उसका रौद्र रूप देखकर दुःशासन आवाक् रह जाता है, उसे द्रौपदी का चीर असीम नजर आता है, वह अन्ततः हारकर बैठ जाता है-

देखकर नारी की आन्तरिक शक्ति का बाह्य प्रज्वलित वेश
कॉप गई दुःशासन की देह, रह गया वह अवाक् अनिमेष।
× × ×
------------वस्त्र ज्यों का त्यों ही रह गया।-1

"सत्य की जीत" में आधुनिक बौद्धिकयथार्थवादी तथा प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण के प्रभाव-स्वरूप द्रौपदी का चरित्रांकन निरंकुश राजतंत्र के विरोधी के रूप में हुआ है। द्रौपदी का यह चरित्र-चित्रण इस रचना में प्रथम बार हुआ है। वह शक्ति पर आधारित न्याय-व्यवस्था का विरोध करती हुई, निरंकुश शासन के विरुद्ध विद्रोहात्मक रुख अपनाती है। द्रौपदी का विद्रोह नवीन जागृति का सन्देश वहन करता है। निरंकुश शासन प्रथा तथा शक्ति पर आधारित न्याय व्यवस्था के विरोध की चेतना जाग्रत करता है। द्रौपदी कहती है-

किन्तु मैं देख रही हूँ आज, शक्ति पर ही आधारित न्याय।
इसी से बढ़ता जाता सतत्, विश्व में असन्तोष, अन्याय।-2

"सत्य की जीत" में द्रौपदी का सर्वाधिक उदात्त व मौलिक रूप है उनका बौद्धिक व मानवतावादी रूप। द्रौपदी के इस रूप का चरित्रांकन आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में सर्वप्रथम द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी जी ने किया है। द्रौपदी दुर्योधन

1- सत्य की जीत- पृ0 71

2- वही, पृ0- 61

को मानवता, समता, सहयोग और न्याय भावना का महत्व बतलाती है। यहाँ वह आज के भौतिक चकाचौंध में फँसे मानव को सन्देश देती हुई प्रतीत होती है। द्रोपदी कहती है कि पाप और कपट की विजय क्षणिक होती है, केवल धर्म और सत्य की जीत ही शाश्वत् है। वह कहती है-

> अन्याय झूठ पर टिका, यहाँ कब तक किसका अस्तित्व।
> वन रहा है समता सहयोग, न्याय पर आज विश्व-व्यक्तित्व
> भूलकर जो यह प्रगति, प्रवृत्ति, चाहते हैं अपना उत्कर्ष
> अभी जीते हैं वे उस आदि-काल के ही लेकर आदर्श।-1

इस रचना में द्रोपदी के चरित्रांकन की मौलिकता है उसका समष्टिवादी दृष्टिकोण। वह वर्तमान में बढ़ती हुई नास्तिकता, अनाचार व अत्याचार पर प्रकाश डालने वाली तथा भारत के आध्यात्मिक पतन व उसके भीषण परिणाम की ओर संकेत देती हुई प्रतीत होती है। "सत्य की जीत" में द्रोपदी कहती है कि भले ही कुछ पल के लिए विश्व की मानवता दब जाय और दानवना-जाग्रत हो जाय,किन्तु उस दानवता का विनाश अवश्य होता है; तथा नवीन मंगलमयी, कल्याणमयी विहान अवतरित होता है। वह कहती है-

> भले ही कुछ पलक्षण के लिए, विश्व की मानवता दब जाय।
> और उन काले पहरों बीच, विश्व की दानवता जग जाय।
> किन्तु उन पहरों का भी शीघ्र, शून्य में होता है अवसान।
> धार नव-नूतन मंगलवेश, अवतरित होता स्वर्ण विहान।-2

1- सत्य की जीत- पृ0 78

2- वही, पृ0-82

"महाप्रस्थान" में द्रौपदी का चरित्र संक्षिप्त है, किन्तु उसकी अभिव्यंजना महत् है। उसके चरित्र में मानवीय बोध का उद्‌बोधन हुआ है। "उसका व्यक्तित्व बहुमुखी एवं खण्डित है क्योंकि वह पाँचों पाण्डवों के साथ है। कौरवों से अपमानित होने की उसे अन्त तक वेदना है। दाम्पत्य जीवन में वह विश्वास को महत्वपूर्ण मानती है।"-1 द्रौपदी के मन में अर्जुन के प्रति सर्वाधिक आकर्षण है। "महाप्रस्थान" के समय हिमालय की कठोर हिमानी वातावरण में वह अशक्त हो जाती है। उस समय वह अर्जुन से सहायता की अपेक्षा करती है कि, वे उसे उस निर्मम हिम की जकड़न से मुक्त करायेंगे| किन्तु वे उसे पीछे ही छोड़ देते हैं। वह अर्जुन से कहती है-

मेरी यह हिम - परीक्षा
तुम क्यों लेना चाहते हो?
सीता की अग्नि परीक्षा से
राम को ही क्या प्राप्त हुआ
× × ×
प्रत्येक ऐसी परीक्षा
पत्नी के प्रति अविश्वास ही है,
और ऐसी परीक्षा के बाद
नारी पुरुष के लिए अप्राप्य हो जाती है।-2

द्रौपदी के इस कथन में आधुनिक नारी की परिस्थितियाँ भी उतनी ही मुखर हैं, जितनी कि उसकी आधुनिक परिवेश में नारी की स्थिति इस बौद्धिक और चेतनाशील महत् परिस्थितियों में भी उसी पुरातन ताल पर अलाप कर रही है। आज भी नारी पुरुषों की दृष्टि में अविश्वास की शिकार होती है।

1- नयी कविता के प्रबंध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन- उमाकान्त गुप्त, पृ0-141

2- महाप्रस्थान, पृ0-85

मनुष्य सासारिकता के व्यामोह में इतना जकड़ा रहता है कि वह अगर उदात्तता की प्राप्ति की चेष्टा करे, तब भी सांसारिकता से नहीं बच पाता। हिमालय क्षेत्र में पाण्डव द्रौपदी के साथ, सांसारिकता से मुक्त हो रागात्मकता से दूर, वैराग्य अपनाकर महापथ के अनुगामी होते हैं। द्रौपदी इस महापथ की अनुगामिनी होने के बाद भी, वैभव के आकर्षण से निर्लिप्त नही रह पाती।वे युधिष्ठिर से कहती हैं:-

देह से मैं तुम्हारे साथ चली आयी थी
परन्तु मन
उन्ही हत्याओं, चीत्कारों, षडयन्त्रों
और कूटनीतिज्ञों के बीच
वैभव के जूठन बीनने में लगा रहा।
स्त्री
इस सांसारिकता से
क्यों नहीं कभी ऊपर उठ पाती महाराज।-1

यहाँ द्रौपदी के चरित्र को अपेक्षाकृत निम्नतर रूप से व्यंजित किया गया है। सांसारिकता के व्यामोह में नारी ही नहीं पुरूष भी समभाव में जकड़ा रहता है। "कवि ने द्रौपदी के माध्यम से नारी के जीवन की करूणा की सूक्ष्म रेखाएँ उभारी है। उसके माध्यम् से आधुनिक नारी के बहुआयामी व्यक्तित्व एवं अन्तस में व्याप्त भय, भ्रम, प्रेम एवं समर्पण भाव को चित्रित किया है।"-2 द्रौपदी व्यक्ति के उस मार्मिक परिस्थिति की ओर संकेत करती हुई अशक्त एकाकीपन को अभिशाप मानती हुई, सन्दर्भयुक्तता को महत्वपूर्ण अभिव्यंजना प्रदान करती है। अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिकता से कटे व्यक्ति के व्यक्तित्व का निदर्शन भी प्राप्त होता है-

---

1- महाप्रस्थान पृ० 86

2- नयी कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवनदर्शन - उमाकान्त गुप्त पृ0 141

सन्दर्भ से कट जाने के बाद

कैसा हो मेधावी

घास की अनाम पत्ती की भाँति

कैसा निरीह हो जाता है।-1

यहाँ द्रौपदी का चरित्र बौद्धिक चेतना से अनुप्रेरित एक चिन्तनशील नारी के रूप में परिलक्षित होता है। समग्रतः द्रौपदी के चरित्र में नव्यता के प्रति आग्रह का निदर्शन प्राप्त होता है।

कुन्ती

महाभारतीय नारी-चरित्रों में कुन्ती का चरित्र महत्वपूर्ण रहा है। पाण्डव जननी कुन्ती का चरित्र कौमार्यावस्था के मातृत्व के कारण विशेष रूप से आकर्षण का केन्द्र बना। कुन्ती राजा शूरसेन की पुत्री थीं, किन्तु इनका लालन-पालन राजा कुन्तिभोज ने किया। इसी कारण इनका नाम कुन्ती पड़ा। बचपन की अज्ञानता के कारण कुन्ती को अनचाहे मातृत्व को ढोना पड़ता है। महाभारत में वर्णित है कि दुर्वासा ऋषि द्वारा प्राप्त 'मालमन्त्र' की

1- महाप्रस्थान- पृ0 89

परीक्षा हेतु कौतूहलवश कुन्ती रवि का आह्वान करती है ।-1 फलत सूर्य के आगमन के कारण उन्हें कर्ण की प्राप्ति होती है। लोकलाज व सामाजिक मर्यादावश वे इस पुत्र का परित्याग कर देती है।

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में कुन्ती के परम्परागत चरित्र का मौलिक व मनोवैज्ञानिक निरूपण हुआ है। कुन्ती के मातृहृदय के अन्तर्द्वन्द्व को आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में विशेष रूप उभारा गया है। महाभारत में उनके इस अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण इसलिए भी नहीं हुआ है, क्योंकि कुन्ती अपने पुत्रों के दिव्य बल से परिचित थीं। आधुनिक सन्दर्भों में दिव्यता का निषेध होने के कारण कुन्ती का सहज अन्तर्द्वन्द्व स्वाभाविक ही है।

"कृष्णायन" में द्वारका प्रसाद मिश्र जी ने कुन्ती के परम्परागत् चरित्र को ही प्रमुख रूप से वर्णित किया है। आधुनिक युगीन चेतना के प्रभाव-स्वरूप किंचित मौलिकता का समावेश भी दृष्टिगत होता है। आधुनिक आदर्शवादी चेतना के प्रभाव-स्वरूप कुन्ती के अवैध मातृत्व को नवीन अभिव्यंजना हुई है। कुन्ती द्वारा सूर्यमन्त्र की परीक्षा लेने पर प्रकृति के अनुकूल सूर्य उन्हें पुत्र प्रदान करते हैं, किन्तु उनके कौमार्यत्व को जानकर उन्हें 'कानीन' पुत्र प्राप्त होने का वरदान भी देते हैं। 'कानीन' अर्थात् कान से उत्पन्न पुत्र का कुन्ती लोकलाज व कुलीन तथा सामाजिक मर्यादावश परित्याग करती है। मिश्र जी ने कुन्ती के मातृ-हृदय की वेदना का सहज अंकन किया है। रंगशाला में जातीय-वैषम्य के कारण कर्ण का भीषण अपमान होता है। कुन्ती कर्ण के अपमान को सहन नहीं कर पातीं, किन्तु सामाजिक बन्धन, कुलीन मर्यादा व लोकलाज के कारण वे इसका प्रतिकार भी नहीं कर पाती। इस विषम अन्तर्द्वन्द्व में फंसी कुन्ती अपनी चेतना ही खो बैठती है-

---

1- तथोक्ता सा तु विप्रेण कुन्ती कौतुहलान्विता। कन्या सती देवमर्कमाजुहाव यशस्विनी ।।8।। - महाभारत, आदि पर्व का सम्भव पर्व, 110वाँ अध्याय, पृ0-774

लखी पृथा निज सुत दशा, त्यागत जनु तनु प्राण,
कहि न सकी, यह मम सुवन सहि न सकी अपमान।
गिरी धरणि अकुलाय धाय सँभारेउ कुल तियन।-1

कुन्ती सवेदनशील नारी के रूप में निरूपित हुई है। अनजाने में पाण्डवों द्वारा लायी गयी द्रौपदी के प्रति वे "लेहु बाँटि तुम मिलि सकल" की आज्ञा दे देती है। किन्तु द्रौपदी को देखकर उनका नारी हृदय ग्लानि से भर जाता है। एक विवेकशील नारी की भाँति वे अपनी आज्ञा पर लज्जित हो उठती हैं—

सहसा निज निदेश मन आनी,
लज्जित जननि विषम उर ग्लानी।-2

"कृष्णायन" में कुन्ती के चरित्र का उदात्त पक्ष है, उनका वीर नारी का रूप। कुन्ती अपने पुत्रों के पास सन्देश भेजती हुई, उन्हें अपने स्वाधिकारों के प्राप्ति के लिए सचेत करती है। वीर पुरुषों के गुणों का वर्णन करती हुई, अपने पुत्रों को उनके अनुपालन का संदेश देती है। वीर पुरुष कभी भी अपना साहस नहीं छोड़ता, भले ही यत्न-कृत्य में उसे प्राणार्पण क्यों न करना पड़े। अपने शौर्य का प्रदर्शन करते हुए स्वप्राणों का न्यौछावर करना अधिक श्रेयस्कर है, जीवन भर पराधीन रहने की अपेक्षा। वे कहती हैं:-

हस्त सिंह विषधर मुख डारी,
लेत शूर हठि दाँत उपारी।
तजत प्राण वरु यत्नहिं मांही,
साहस तजत मानि जन नाहीं।
उचित भभकि क्षण जाब बुझाई,
उचित जियब नहिं चिर धुधुआयी।-3

1- कृष्णायन, पृ0-268
2- कृष्णायन, पृ0-307
3- वही, पृ0-505

समग्रतः "कृष्णायन" में कुन्ती आदर्श माँ वीर नारी के साथ-साथ कोमल हृदया संवेदनशील नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है "उसकी कष्ट सहिष्णुता, उसका धैर्य, उसकी वात्सल्य जनित आकुलता, विकलता सभी उसके गरिमामय मातृत्व के परिचायक हैं। संक्षेप में कुन्ती का व्यक्तित्व "कृष्णायन" में एक पुण्य स्वरूपा, स्नेहशील माता के व्यक्तित्व के रूप में ही व्यक्त हुआ है।" कुन्ती के चरित्र में नारीजन्य दुर्बलता, सहजता व उदात्तता है, किन्तु चारित्रिक दौर्बल्य का अंकन उनके कठोर जननीत्व की अभिव्यक्ति में है, जो एक अबोध व निरीह बालक का त्याग करती है।

"अंगराज" कर्ण चरित्र पर केन्द्रित प्रबन्ध कृति है। इस रचना में कुन्ती द्वारा सूर्य के आह्वान को नवीन अर्थवत्ता प्रदान की गया है। परम्परागत् रूप में कुन्ती अपनी अज्ञानता व अबोधता के कारण सूर्य का आह्वान करती है। किन्तु "अंगराज" मे कुन्ती देव सन्तति प्राप्त करने की अभिलाषा से सूर्य का आह्वान करती है। सूर्य उनको कर्ण के रूप में दिव्य-शक्तियों से सम्पन्न पुत्र प्रदान करते हैं। किन्तु किशोरावस्था की यह उत्सुकता यथार्थ बोध होने पर, भयानक अन्तर्व्यथा बन जाती है। सामाजिक व कुलीन मर्यादाओं की दीवार पार करने की शक्ति उसमें नहीं होती। प्रतिफल होता है - एक अबोध, असहाय बालक का परित्यागः-

करके वारि प्रवाहित उसने मंजूषा को,
कहा साश्रु अवलोक जगत्स्वामी पूषा को।
x x x
रखना अपने इस बालक पर नित्य कृपा कर।-1

आधुनिक नवीन मानवतावादी तथा अहिंसावादी चेतना का प्रभाव भी कुन्ती के चरित्रांकन पर पड़ा है। महाभारत युद्ध की विकराल व विध्वंशक

1- अंगराज - पृ0 20

ताण्डव-नर्तन से वे पूर्व परिचित होती हैं। कृष्ण के द्वारा दुर्योधन के समक्ष रखे गये सन्धि-प्रस्ताव के विफल हो जाने के बाद, कुन्ती अपने देश तथा पुत्रों के प्रति चिन्तित हो उठती है:-

कृष्ण प्रयाण अनन्तर पाण्डव मातृ हुई अति शोकवती थी।
भारत के भवनीय महारण का कर ध्यान अधैर्यवती थी।-1

कुन्ती एक संवेदनशील माँ भी है। परम्परागतरूप से परे "अंगराज" में कुन्ती अपने पुत्र कर्ण को केवल स्वीकार ही नहीं करती अपितु उनसे क्षमा याचना भी करती है। किन्तु इसके पीछे कुछ नितान्त निजी स्वार्थ भी छिपे होते हैं। कुन्ती अपने कुल को विनाश के गर्त में गिरने से बचाने के लिए भी कर्ण की सहायता चाहती है। वे कर्ण से कहती है:-

वीर क्षमापति होकर पुत्र, क्षमाकर दो मम् दुष्कृति भारी।
बन्धुजनों को प्रीति दिखाकर, हो उनके प्रति भी हितकारी।
कर्ण बनो रण में न कदापि, स्ववंश विनाशक के सहकारी।
प्राप्त करो निज राज्य स्वयं जिससे कि बढ़े कुल-कीर्ति तुम्हारी। 2

"अंगराज" में कुन्ती के चरित्र का सर्वाधिक उदात्त पक्ष है उसके द्वारा सबके समक्ष कर्ण को स्वीकार करना। कर्ण की मृत्यु के बाद कुन्ती अपने मातृहृदय पर अंकुश नहीं रख पाती। वे सारे सामाजिक बन्धनों व कुलीन मर्यादाओं को तोड़ते हुए कर्ण को सबके समक्ष अपना पुत्र स्वीकार करती है, तथा उसके अन्त्येष्टि के लिए युधिष्ठिर को आदेश देती है। यहाँ कुन्ती का उदात्त मातृत्व व चारित्रिक दृढ़ता परिलक्षित होती है। वह कौमार्यावस्था के सामाजिक-बन्धन से बंधी किशोरी से लेकर कुलीन-मर्यादाओं की बेड़ी में जकड़ी कुलवधू के स्वरूप को पार करती हुई, केवल आदर्श माता के रूप

1- अंगराज- पृ0-155
2- वही, पृ0-162

में स्थिर दृष्टिगत होती है। वे समस्त जटिलताओं को तोड़कर अपने जननीत्व को सगर्व स्वीकार करती है। किन्तु इन सीमाओं के अतिक्रमण की गति इतनी मन्द होती है कि वे कर्ण के मातृत्व को उस समय स्वीकार करती है, जब वह मृत्यु को अंगीकार कर चुका होता है।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत "कर्ण" में कुन्ती के परम्परागत चरित्र को किंचित नव्य रूप में चित्रित किया है। कर्ण के जन्म प्रसंग में कुन्ती का चरित्र परम्परागत रूप में ही वर्णित है, किन्तु उनका युद्ध की विभीषिका से त्रस्त, स्वदेश प्रेमी नारी का चरित्र आधुनिक संवेदना से प्रभावित है।

परम्परागत रूप में ही इस रचना में भी कुन्ती सूर्य का आह्वान केवल उत्सुकतावश करती है। उसे यथार्थ का किंचित मात्र भी बोध नहीं होता और इसी अज्ञानता का प्रतिफलन कर्ण के रूप में प्रतिबिम्बित होता है-

एक निमिष में ही अक्षत्, कौमार्य बना झंकार।
बनी चपलता एक निमिष में, माता का मृदु-प्यार।-1

कुन्ती का यह अकस्मात् मातृत्व उसे गहरे अन्तर्द्वन्द में धकेल देता है। एक तरफ अबोध शिशु का स्नेह होता है तो दूसरी तरफ कुल की लाज और समाज का भय उसके मार्ग की विषम बाधा के रूप में उपस्थित होती है।सामाजिक बन्धन और कुलीन मर्यादा के जंजीरों में बंधी कुन्ती की अन्तर्व्यथा अत्यधिक दारूण होती है। किन्तु वे इससे बाहर भी नहीं निकल पाती और अबोध शिशु का दारूण निष्कासन अनिवार्य हो जाता है-

अविरल आँसू की बूँदों से, कर अन्तिम अभिषेक,
माता ने अपने ही हाथों, दिया लाल वह फेंक।-2

1- कर्ण - केदारनाथ मिश्र "प्रभात", पृ0-1
2- वही, पृ0 -5

"कर्ण" में कुन्ती के चरित्रांकन पर आधुनिक देश-प्रेम की चेतना का प्रभाव दृष्टिगत होता है। कुन्ती का यह चरित्र "कर्ण" में मौलिक रूप से चित्रित हुआ है। वे महाभारत युद्ध के विध्वंशकारी ताण्डव नर्तन से देश को बचाना चाहती है। कुन्ती युद्ध के विभीषिका तथा उसके भावी परिणामों के प्रति चिन्तित होती है। वे कहती हैं:-

पाँच दिनों के बाद छिड़ेगा, वह ध्वंसक संग्राम।
जिसमें स्वाहा होगा सर्वस, धरा, धान्य, धन, धाम।
जिसकी लपटों में जल जायेगा, उज्जवल उत्कर्ष।
भस्मसात होगा, सोने का प्यारा भारत-वर्ष।-1

यही नहीं वे युगीन-परिस्थितियों से भी त्रस्त होती है। भाई-भाई के मध्य उठने वाली विदेष व नफरत की चिंगारी भयंकर दावानल का रूप ले लेती है। आदर्शों का यह विखंडन कुन्ती के मन को व्यथित कर देता है। एक बौद्धिक नारी की भाँति कुन्ती कहती है-

खोद रहा भाई-भाई के लिए, मृत्यु-तम कूप।
देख रही हूँ मैं हिंसा का, अति भयावना रूप।-2

"कर्ण" में कुन्ती संवेदनशील आदर्श माता के रूप में अंकित हुई है। कुन्ती सामाजिक बन्धन व कुलीन मर्यादा के भयवश जिस कर्ण को अबोध शिशु के अवस्था में ही छोड़ देती है, उसी कर्ण को अपने पुत्रों के मोहवश अंगीकार करने का साहस करती है। वे भाई के दारा भाई के वध व विनाश की लीला नहीं देखना चाहती -

---

1- कर्ण - केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ0-60

2- कर्ण - पृ0-60

भाई के द्वारा भाई का, वध, विनाश, अवसान।
ऐसा कभी न होने दूँगी, जब तक ये प्रान।-1

कुन्ती के चरित्र का उदात्त पक्ष उसका युद्ध-विरोधी रूप है। युद्ध रोकने के लिए ही वह कर्ण को अंगीकार करना चाहती है। कुन्ती को यह ज्ञात होता है कि कर्ण ही दुर्योधन का प्रमुख अस्त्र है। इसी कारण वह कर्ण से दुर्योधन के कपट जाल को विछिन्न करके अपने अनुजों से मिलने की याचना करती है। कुन्ती कर्ण को उसके जन्म की वास्तविकता से परिचित कराती हुई कहती है-

रूँधे कण्ठ से कुन्ती बोली ------- तुम हो तो कौन्तेय।
दुर्योधन के कपट जाल को अब कर दो विच्छिन्न।
चलो, मिलो अपने अनुजों से, रहो युग तक भिन्न।-2

"कर्ण" के पश्चात् कुन्ती का चरित्र मैथिलीशरण गुप्त कृत "जयभारत" में वर्णित हुआ है। कर्ण के जन्म के प्रसंग में कुन्ती का परम्परागत रूप ही अंकित हुआ है, किन्तु "वक-संहार" प्रसंग में उनका मौलिक रूप दृष्टिगत होता है। मौलिक रूप में कुन्ती बौद्धिक, प्रजातंत्र की समर्थिका, मानवतावादी त्यागी, समन्वयवादी, स्वाभिमानी व देश-प्रेमी नारी के रूप में चरित्रांकित हुई है।

"वकसंहार" प्रसंग में कुन्ती मौलिक रूप में बौद्धिक तथा जनवादी नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है। कुन्ती उस राज्य व्यवस्था की आलोचना करती है जिसमें प्रजा के रक्षा व कल्याण करने की शक्ति न हो। वह प्रजा का समर्थन करती हुई यह प्रश्न उठाती है कि वक के समक्ष केवल प्रजा ही

1- कर्ण- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ0 61

2- कर्ण - पृ0-64-65

क्यों जाय? राजा भी प्रजा की भाँति बलि का भागी क्यों नही होता है-

राजा यहाँ का कौन? कुछ यत्न वह करना नहीं
सबके सदृश उस भूप की, पाप के प्रतिरूप की
वक के लिए बारी कभी पड़ती नहीं।-1

"जयभारत" में कुन्ती निरंकुश राजतंत्र के प्रति विद्रोही तो हैं ही साथ ही ऐसे अकर्मण्य व निष्क्रिय प्रजा की भी आलोचना करती है, जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं है। यहाँ कुन्ती का चरित्राकन सर्वथा मौलिक रूप में हुआ है। कुन्ती प्रजा को उनके शक्ति से अवगत कराती हुई, कहती है-

न्यायार्थ क्यों उससे प्रजा लड़ती नहीं?
× × ×
पर है यहाँ की जो प्रजा, वह तो बनी बलि की अजा
वह भीरू है, फिर ठीक ही यह कष्ट है
डालें नहीं तो यदि अभी, भर धूल मुट्ठी भर सभी
तो धूल में मिल जाय वक, सौ स्पष्ट है।-2

गुप्त जी ने कुन्ती का चरित्रांकन त्यागी, साहसी व आदर्श नारी के रूप में किया है। वह जन-सामान्य् की रक्षा के लिए एक वीर नारी की भाँति अपने पुत्र का बलिदान करने से भी नहीं हिचकती। ब्राह्मण परिवार के एक पुत्र की रक्षा हेतु वे अपने पाँच पुत्रों में एक को वक के समक्ष अर्पित कर देती है। वे अपने उदात्त साहस का परिचय देती हुई ब्राह्मणी से कहती है-

जब है तुम्हारे एक सुत, तब पाँच हैं मेरे अयुत,
दूँगी तुम्हें मैं एक उनमें से अहो।-3

1- जयभारत - मैथिलीशरण गुप्त, पृ0-96
2- जयभारत - पृ0-97
3- जयभारत - पृ0-98

हिडिम्बा-प्रसंग में कुन्ती समन्वयवादी नारी के रूप में निरूपित हुई है। अनार्य हिडिम्बा के प्रति अपने पुत्र भीम का प्रेम देखकर, वे हिडिम्बा को सहज भाव से स्वीकार करती हैं। कुन्ती मानव के गुणों को ही उसके कुल व जाति का द्योतक मानती है। वे हिडिम्बा से कहती हैं-

स्त्री का गुण रूप में है और कुल शील में,
पद्मनी की पंकजता डूबे किसी झील में।
तुझ-सी बहू भी मुझे सहज मिली अहा।
पूर्ण काम हो तू!" यों उन्होंने उससे कहा।-1

"जयभारत" में कुन्ती के चरित्र पर स्वदेश-प्रेमी व युद्ध-विरोधी व्यक्तित्त्व का आरोपण हुआ है। "कर्ण" की भाँति इस रचना में भी कुन्ती महाभारत युद्ध की विभीषिका से देश को त्रस्त होने से बचाना चाहती है। वे कर्ण को वास्तविकता का ज्ञान देकर उसे युद्ध-विरत करना चाहती है। वे दुर्योधन के क्षुधित स्वार्थ के प्रति कर्ण को सचेत करते हुए कहती है-

तेरे ही बल पर ही दुर्योधन ठान रहा है, यह गृह-युद्ध
कुल ही नहीं देश भी सारा हो जायेगा इसमें नष्ट,
वीर-हीन होकर यह वसुधा होगी अपने पद से भ्रष्ट।-2

इस रचना में कुन्ती मौलिक रूप में संवेदनशील नारी व आदर्श माता के रूप में भी अंकित हुई है। कर्ण का पालन-पोषण राधा के द्वारा हुआ था, जो सूत-पत्नी थी। कुन्ती राधा के प्रति अप्रतिम कृतज्ञता व्यक्त करती हुई, उसे यशोदा की संज्ञा प्रदान करती हैं। वे कर्ण से कहती हैं-

जैसे तू जाने, राधा पर प्रीति प्रकट करना मेरी,
मैं दुःखिनी देवकी-सी हूँ, वही यशोदा माँ तेरी।-3

1- जयभारत, पृ0-84
2- जयभारत - पृ0-343
3- जयभारत - पृ0-344

रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत "रश्मिरथी" में कुन्ती के परम्परागत चरित्र को मौलिक अभिव्यंजना प्राप्त हुई है। वह कौमार्यावस्था में अपनी अज्ञानता व अबोधता के कारण प्राप्त मातृत्व को, लोक-लज्जा, सामाजिक मर्यादा व कुलीन गरिमा के कारण स्वीकार नहीं पाती। उन्हें अपने नवजात अबोध शिशु का त्याग करना पड़ता है। कुन्ती की इस दयनीय दशा व आत्मव्यथा को "रश्मिरथी" में सहज रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही कुन्ती को स्वदेश प्रेमी, युद्ध-विरोधी तथा समतावादी नारी के रूप में चरित्रांकित किया गया है।

"रश्मिरथी" में कुन्ती संवेदनशील नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है। कर्ण के समक्ष अपने आत्मव्यथा व मानसिक अन्तर्द्वन्दों को प्रकट करती हुई वे उसे अपने निर्दोष स्थिति से अवगत कराती हैं। कौमार्यावस्था के मातृत्व के विषम स्थिति की ओर संकेत करते हुए, कर्ण से कहती है-

बेटा धरती पर बड़ी दीन है नारी,
अबला होती सचमुच योषिता कुमारी।
है कठिन बन्द करना समाज के मुख को।
सिर उठा न पा सकती पतिता निज सुख को।-1

इस रचना में कुन्ती एक विद्रोही नारी के रूप में प्रस्तुत हुई है। सामाजिक बन्धन व लोक मर्यादा के कारण जिस कर्ण को वे अबोध शिशु की अवस्था में त्याग देती हैं, उसे समस्त सामाजिक बन्धनों व कुलीन-मर्यादा, लोकलज्जा को तोड़कर पुनः अपनाना चाहती हैं। यहाँ उनकी विद्रोहात्मक चेतना का ही प्रकटन होता है। वे कर्ण से कहती हैं-

---

1- रश्मिरथी, पृ0-61

भागी थी तुझको छोड़ कभी जिस भय से,

फिर कभी न हेरा तुझको जिस संशय से

उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूंगी

डर चुकी, बहुत, अब और न अधिक डरूंगी।-1

"कर्ण" तथा "जयभारत" की भाँति "रश्मिरथी" में भी कुन्ती युद्ध विरोधी नारी के रूप में अंकित हुई है, किन्तु पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा "रश्मिरथी" में वे अधिक उदात्त हैं। कुन्ती "महाभारत" के भीषण गृह युद्ध तथा उसके विध्वंसक परिणामों के प्रति चिन्तित होती है। वे केवल अपने परिवार को ही नहीं प्रत्युत समस्त समाज व देश को युद्ध के विभीषिका से बचाना चाहती है। युद्ध के विषम परिस्थितियों के बारे में वे कहती है-

संहार मचेगा, तिमिर घोर छायेगा

सारा समाज दृगवञ्चित हो जायेगा।

जन-जन स्वजनों के लिए कुटिल यम होगा।

परिजन, परिजन के हित कृतान्त सम होगा

कल से भाई के भाई प्राण हरेंगे।

नर ही नर के शोणित में स्नान करेंगे।-2

कुन्ती एक ऐसी माँ होती है, जिनके पुत्र पक्ष व विपक्ष दोनों तरफ होते हैं। दुर्योधन की तरफ कर्ण, तथा दूसरी तरफ उसी के पाँच पुत्र पाण्डव थे। कुन्ती इस विषम परिस्थिति को नहीं सह पातीं। अपने ही भाई द्वारा भाई का रक्त बहाया जाना, वह स्वीकार नहीं कर पाती। वे कहती हैं-

---

1- रश्मिरथी, पृ0-61

2- रश्मिरथ, पृ0 -58

मेरे ही सुत मेरे सुत को ही मारें,
हो क्रुद्ध परस्पर ही प्रतिशोध उतारे।
यह विकट दृश्य मुझसे न सहा जायेगा,
अब और न मुझसे मूक रहा जायेगा। -1

"रश्मिरथी" में कुन्ती का चरित्रांकन आधुनिक मानवतावादी चेतना से प्रभावित है। "जयभारत" की भाँति "रश्मिरथी" में भी कुन्ती सूत पत्नी के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती है, किन्तु यहाँ वे अधिक उदात्त है। कुन्ती अपने पुत्र कर्ण के पालनकर्ता सूतदम्पति के अप्रतिम मानवीय गुणों की मुक्त कण्ठ से सराहना करती हुई, उनके समक्ष श्रद्धावनत् हो जाती है। "जयभारत" में कुन्ती राधा को 'यशोदा' की संज्ञा देती हैं, किन्तु "रश्मिरथी" की कुन्ती सूतदम्पति के प्रति श्रद्धावनत् हो उनका चरण स्पर्श करने व अग्रजा मानने के लिए व्यग्र दृष्टिगत होती है। वे कर्ण से अपने हृदय के उद्‌गारों को व्यक्त करती हुई कहती हैः-

संयोग सूत पत्नी ने तुझको पाला,
उन दयामयी पर तनिक न मुझे कसाला,
ले चल, मैं उनके दोनों पाँव धरूँगी
अग्रजा मानकर सादर अङ्क भरूँगी। -2

लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत "सेनापति-कर्ण" में कुन्ती के परम्परागत चरित्र की मौलिक व्याख्या हुई है। इस रचना में कुन्ती द्वारा भीष्म के समक्ष कर्ण को अपना पुत्र स्वीकार करना, कवि की स्वतन्त्र दृष्टि है। कुन्ती भीष्म के सामने कर्ण के जन्म की गोपन-कथा प्रस्तुत करते हुए, अपनी भूल को

==

1- रश्मिरथी, पृ0-61

2- रश्मिरथी, पृ0-61

स्वीकार करती है। इसके अतिरिक्त वे पांडवों को युद्ध हेतु उकसाने में कृष्ण व कृष्णा को दोषी मानती हैं। कुन्ती का यह चरित्र भी सर्वथा मौलिक है।

"सेनापति - कर्ण" में कुन्ती मौलिक रूप में एक ऐसी नारी के रूप में निरूपित हुई है, जो कर्ण के मातृत्व को साहसपूर्ण ढंग से स्वीकार करती है। वे अपने कुल के अग्रज भीष्म के समक्ष कर्ण के जन्म का रहस्य बताकर, अपनी साहसिकता का ही परिचय देती है। वे भीष्म से कहती हैं:-

हाय दैव कैसे मैं कहूँगी, किन्तु अब तो
चाहती क्षमा हूँ कुरू- केतु पुत्र मेरा है।
पार्थ से विशेष, यदि माने सच आप जो,
तब तो कहूँगी, प्रेम मेरा कर्ण पर है।-1

यहाँ कुन्ती के संवेदनशील मातृहृदय का भी सहज अंकन हुआ है। प्रायः सभी माँ को अपने प्रथम सन्तान से अकूत प्रेम होता है। कुन्ती भी अपने पुत्रों में कर्ण के प्रति सर्वाधिक प्रेम को स्वीकार करती है।

इस रचना में कुन्ती के चरित्र का मौलिक पक्ष है- पाण्डवों को युद्धोन्मुख करने में कृष्ण व कृष्णा को दोषी मानना। कुन्ती भीष्म द्वारा इस तथ्य से परिचित होती है, कि कृष्ण तथा द्रौपदी युद्ध के गहन समर्थक हैं। कुन्ती इस तथ्य से आन्तरिक रूप से टूट जाती है। वह इसे नियति का विधान मानकर स्वीकार करने को विवश होती हैं-

"---------- पुत्र मेरे परवश हो
मन्त्र में पड़े हैं, जब कृष्ण और कृष्णा के
तब तो नियति अवलम्ब अब मेरी है।-2

1- सेनापति कर्ण, लक्ष्मी नारायण मिश्र, पृ0-118-119

2- सेनापति कर्ण, पृ0-126

पूर्ववर्ती रचनाओं में कुन्ती कर्ण को युद्ध विरत करना चाहती है तथा उन्हें पाण्डव पक्ष में मिलाना चाहती है। किन्तु सेनापति कर्ण में उनका यह चरित्र मौलिक रूप में अंकित हुआ है। वे कर्ण को युद्ध धर्म का निर्भय होकर निर्वाह करने तथा नीति पर चलकर विजय प्राप्त करने का आग्रह करती है। वे कर्ण से कहती है-

"धन्य पुत्र, धन्य जन्म से
तुमने किया है जो मुझे, आज पुत्र-फल भी,
पा गई मैं वत्स! तुम राधा के बने रहो,
युद्ध धर्म निर्भय हो पूरा करो जिसमें
नीति की विजय हो।"-1

1- सेनापति-कर्ण, पृ0-131

सूर्यपुत्र-1 में कुन्ती का चरित्र सर्वथा मौलिक दृष्टिकोण से समान्वत एक विवेकी, धैर्यशालिनी तथा सामाजिक विसगतियों के विरुद्ध विद्रोहिणी के रूप में व्यंजित किया गया है। प्रारम्भ के कौमार्यावस्था में कुन्ती सूर्य के तेज पर मोहित हो उनका प्रेमी के रूप में आह्वाहन करती है। यहाँ उनके साहस का परिचय तो प्राप्त ही होता है, साथ ही नव्यता का बोध भी। यद्यपि इससे पूर्व की प्रबन्ध-कृतियों में वे मात्र मंत्र की परीक्षा लेती हुई अनजान, भोली बालिका ही चित्रित की गई है। "महाभारत" में भी उनका यही स्वरूप है, वहाँ सूर्य उनके भोलेपन को देखकर उन्हें कानीन् पुत्र प्राप्त करने का आशीर्वाद देते हैं। "सूर्यपुत्र" की कुन्ती सूर्य को सशरीर वरण हेतु आमंत्रित करती हुई, एक प्रेमिका के चरित्र का वहन करती है:-

मैं अपने कौमार्य का समस्त स्नेह तुम पर उड़ेलती हूँ देव।

तुम मुझे अंगीकार करो

वरो

मुझे अपनी विशाल बाहु और सुदीर्घ वक्ष में समेटो।-2

और उनके इस वरण का प्रतिफल सामने आता है, कर्ण रूपी नवजात् शिशु। कुन्ती प्रेम के इस प्रतिरूप को समाजिक मर्यादाओं, उसके नियमों के विरुद्ध जाकर स्वीकार करने का साहस भी रखती है। किन्तु उसे इस निमित्त सूर्य के सहारे की आवश्यकता होती है। यहाँ कुन्ती का चरित्र [illegible] विसंगतियों, उसके नियमों को ठोकर मारने की क्षमता से युक्त एक साहसी नारी के रूप में दृष्टिगत होती है, किन्तु दुर्बल चरित्र भी समन्वित है, उसके द्वारा सूर्य के सहारे की अपेक्षा में। कुन्ती की सूर्य से आश्रय-याचना कवि की मौलिक कल्पना है। कुन्ती कहती है-

---

1- सूर्यपुत्र -जगदीश चतुर्वेदी, प्र0सं0-सन् 1975 ई0

2- सूर्यपुत्र - पृ0-3

सुख के विरोध में बनाये गये थे सामाजिक नियम

ये संहितायें

यह प्राणघातक प्रणाली

इनको मैं ठोकर मार सकती हूँ दिनेश

यदि तुम सहारा दो।-1

मौलिक रूप में कुन्ती का चरित्र एक विद्रोही नारी के रूप में भी प्रस्तुत हुआ है। कुन्ती का चरित्र एक ममतामयी माँ के गुणों से ओत-प्रोत दयालुता का प्रतिमान है। उसे अपने पुत्र को नामहीन होने की भीषण अन्तर्व्यथा शूल की भाँति सालती है इसी कारण वह विद्रोहात्मक स्वरूप ग्रहण कर लेती है, वह एक विद्रोहिणी की भाँति चीख पड़ती है:-

मैं नहीं मिटा सकती इस शिशु को नामहीन,

मेरे और सूर्य के प्रचण्ड तेज से

पोषित यह बालक

सभ्यता के इतिहास में एक नया प्रतिमान बनकर जियेगा। 2

× × ×

नहीं होने दूँगी मैं इस शिशु का विनाश

यदि इस नन्हे सूर्य को मैं तमाम विपदाओं और लांछनों के बीच भी साथ रख पाऊँ

तो मैं पिता का विशाल राज्य और काका का राजमहल त्यागकर

अरण्य में रह सकती हूँ।-3

1- सूर्य पुत्र- पृ0-16

2- वही, पृ0-17

3- वही, पृ0-19

सूर्य से प्राप्त कौमार्य के प्रथम भेंट कर्ण के विलग होने की कल्पना भी असह्य थी। माँ अपने बालक के प्रति ममत्व भाव के प्रति किसी भी प्रकार का आघात् सहन नहीं करती। कुन्ती की अन्तर्व्यथा, उसकी मानसिक पीड़ा कर्ण को छोड़ने के प्रश्न पर इतनी गहरी हो उठती है, कि वह सूर्य को भी परित्यक्त कर देती है। वह सूर्य के लिए ही नहीं पिता, अभिभावक सभी के प्रति गहरे आक्रोश से व्यथित एक घायल सिंहनी की भाँति तड़प उठती है। अपने पुत्र को परित्यक्त कर वह जिन भीषण अन्तर्द्वन्द्वों से गुजरती है, वह उसके मातृहृदय की विवशता को अभिव्यक्त करता है, सामाजिक नियमों के विरोध के भावना को व्यंजित करता है। कुन्ती के द्वारा सूर्य को कहे गये वचन युगीन नारी की विवशता को उजागर करते हैं:-

पागल सी पृथा कोसती रही सूर्य को
पिता और अभिभावक पर फेंकती रही
क्रोध के विष बुझे बाण
आँखों से निकलती रही बिजलियाँ
हाँफती रही
विफरती रही घायल सिंहनी
श्लथ और
निष्प्राण। -1

"महाभारत" के युद्ध के समय कुन्ती युद्ध के भीषण-विभीषिका तथा उसके करूणान्त का बोध उसे पूर्वा पर ही हो जाता है। कुन्ती का चरित्र यहाँ और भी मुखर हो उठता है। जिस सामाजिक नियमों के बन्धन की बाध्यता के कारणभूत रूप में वह कर्ण के जननीत्व से विलग होती है, पुत्रों के मध्य होने वाले भयानक रण-संग्राम व उसके दुष्परिणाम का बोध होने पर, वह

1- सूर्यपुत्र - 20-21

उस सामाजिक मर्यादा को भी तोड़ देती है। वह कर्ण के समक्ष अपने मातृत्व को स्वीकार करने से भी नहीं हिचकती। यहाँ उसके चरित्र में एक तरफ जहाँ मातृत्व का उदात्त स्वरूप प्रकटित होता है, वहीं युद्ध के तांडव लीला को समाप्त करने की महत् आकांक्षा वाली, शांतिप्रिय नारी का स्वरूप भी प्रतिबिम्बित होता है। वे कहती हैं:-

मैं नहीं होने दूँगी विनष्ट पुत्रों को
मैं नहीं होने दूँगी युद्ध यह विकराल
मैं नहीं देख सकती पुत्रों का करुण अन्त
स्वयं एक दूसरे के हाथों
रणांगन में।

× × ×

पुत्र मैं हूँ तुम्हारी माँ
मैंने ही शैशव में दिया तुम्हें निर्वासन्

× × ×

मैं चाहती हूँ तुम युद्ध से हो पराङ्मुख।-1

केवल कर्ण के समक्ष ही नहीं वह कर्ण की मृत्यु होने के बाद समस्त समाज के समक्ष कर्ण को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार करती हैं। जिस सामाजिक बन्धन की जटिलता में, उलझन में वह कौमार्यावस्था में फँसी रही, उसे वह तोड़कर समस्त समाज के समक्ष कर्ण की जननीत्व की गरिमा अंगीकार करती हैं। किन्तु अंगीकृत होने वाला उसके अधिकार क्षेत्र के बाहर, मृत्यु के आगोश में आबद्ध हो चुका होता है। कुन्ती की अन्तर्व्यथा और भी विकराल हो जाती है। वह समस्त महाभारत के महासंग्राम का दोष केवल स्वयं के ऊपर आरोपित करती है। वे युधिष्ठिर से अपनी अन्तर्व्यथा का प्रकटन करती हुई कहती हैं:-

---

1- सूर्यपुत्र - पृ0 72

करो तुम तर्पण महारथी कर्ण का

× × ×

वे थे तुम्हारे बन्धु

× × ×

बतला न पाई कभी अपना यह अवैध राज

किन्तु आज लगता है

थी मेरी कायरता

मेरी ही चुप्पी से हुआ यह महायुद्ध

मेरी ही चुप्पी से रंग गया कुरुक्षेत्र।-1

कर्ण

अद्भुत शौर्य, दृढ़ - निष्ठा, सर्वस्व उत्सर्ग कर देने की सीमा तक की दानशीलता, तितिक्षा तथा कृतज्ञता जैसे गुणों का पुंजीभूत रूप कर्ण, वर्ण-व्यवस्था तथा नियति के दुष्चक्र के बीच पड़ा हुआ महाभारत का सबसे करूण चरित्र है। महाभारत के चरित्रों में कर्ण का चरित्र ही ऐसा रहा जो कि विभिन्न विपरीत परिस्थितियों के कठोर थपेड़ों को सहते हुए भी सत्य, धर्म व विवेक के मार्ग से विचलित नहीं होता है। कर्ण के साथ [illegible] यह रही कि वह दुर्योधन के पक्ष में रहा तो उसके एहसानों और मित्रता से आबद्ध रहा। यह ज्ञात होने पर भी कि पाण्डव उसके भाई हैं, उनसे युद्ध करने के लिए विवश था। जन्म से क्षत्रिय होते हुए भी, माँ के द्वारा परित्यक्त किये जाने के कारण उसे सूत-पुत्र होने की पीड़ा सहनी पड़ी। अन्ततः तमाम विपरीत व विरोधी परिस्थितियों के मध्य संघर्षरत कर्ण दूसरों के लिए ही जीवन-संग्राम से विदा लेता है। महाभारत में कर्ण का चरित्र सर्वाधिक सशक्त है।

1- सूर्यपुत्र- पृ0 146-47

परम्परागत् रूप में कर्ण का व्यक्तित्व आत्मविश्वास, पौरुष, शौर्य दानशीलता तथा अटूट प्रेम का पूँजीभूत रूप है। आत्म-विश्वास के कारण ही वह सूत-पुत्र होते हुए भी उच्च कुलीन तथा राजकुलीन अर्जुन के साथ द्वन्द हेतु रंगभूमि में प्रस्तुत होता है। यही नहीं वह जीवन में अनेक बार अर्जुन के समक्ष केवल जातीय वैषम्य के कारण पराजित होता है, किन्तु वह अपने आत्म-विश्वास व पौरुष से पीछे नहीं हटता। द्रौपदी स्वयंवर में जातीय वैषम्य के कारण ही समर्थ होते हुए भी मत्स्य-वेधन के अयोग्य ठहरा दिया जाता है। कर्ण का सर्वोत्कृष्ट रूप उसके महादानी रूप में निहित है। कर्ण इन्द्र द्वारा विप्रवेश में कवच-कुण्डल माँगने पर, सहर्ष उतारकर दे देता है।-1 कर्ण के चरित्र का महत्वपूर्ण पक्ष उसका मित्र के प्रति प्रेम व निष्ठा। सूतपुत्र होने के कारण पीड़ित व प्रताड़ित कर्ण को, दुर्योधन द्वारा मित्रता व अंगदेश का राज्य दोनों ही महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त हुई थी। इसी कारण कर्ण दुर्योधन की मित्रता को, पूर्ण निष्ठा से; जीवन की अन्तिम घड़ी तक निभाता है। यह ज्ञात होने पर भी कि पाण्डव उसी के भाई हैं, वह दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ता।

आधुनिक युग की मानवतावादी दृष्टि, समानता व बौद्धिकता के कारण पौराणिक पात्रों के चरित्र की की पुनर्व्याख्या की प्रवृत्ति के अन्तर्गत कर्ण का चरित्र प्रमुख है। वर्तमान युग में व्यक्ति के गुणों को, पुरुषार्थ व उद्यम को प्रतिष्ठा देने की प्रवृत्ति प्राप्त होती है। आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध-काव्यों में कर्ण का चरित्रांकन उसके विलुप्त गौरव के पुनःप्रतिष्ठा का माध्यम् बना। आधुनिक बौद्धिक दृष्टि से कर्ण के चरित्र की त्रासदी के मूल में जाति व्यवस्था की विडम्बना को नई तार्किक व्याख्या प्राप्त हुई। आधुनिक युग की गाँधीवादी विचारधारा के प्रभाव स्वरूप जातीय वैषम्य का विरोध हुआ

1- स्वशरीरात् समुत्कृत्यकवचं स्व निसर्गजम्।
कर्णस्तु कुण्डले छित्वा प्रायच्छत् कृताञ्जलिः।।28।।- आदि पर्व का सम्भव पर्व, पृ० 778

तथा मानव को जातीय आधार पर नहीं अपितु उसके गुण व कर्मों के आधार पर आंका जाने लगा। फलतः आधुनिक प्रबन्ध रचनाओं में कर्ण का चरित्रांकन स्वाधिकारों के प्रति जागरूक, जातीय वैषम्यता के विरोधी, मानवतावादी तथा जननायक के रूप में हुआ है।

आधुनिक युग के प्रबन्ध-काव्यों में कर्ण का चरित्रांकन मैथिलीशरण गुप्त के "जयभारत" में संक्षिप्त रूप मेंहै|इसमें परम्परागत् लीक से हटकर नवीन रूप में कर्ण को निरूपित किया गया है। आधुनिक युग में अपेक्षाकृत गौण पात्र कर्ण को नायक बनाकर पृथक प्रबन्ध-काव्यों की रचना की गई। इन रचनाओं में- "अंगराज"-1, "रश्मिरथी"-2, "कर्ण"-3, "सेनापतिकर्ण"-4 व "सूर्यपुत्र"-5 प्रबन्ध कृतियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में "जयभारत" में कर्ण का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में हुआ है। नव्य-चेतना के प्रभाव स्वरूप इसमें परम्परागत् कर्ण चरित्र को नवीन दृष्टि मिली। इस रचना में कर्ण जातिवाद के विरोधी, मानवतावादी तथा आदर्शवादी के रूप में निरूपित हुए हैं।

"जयभारत" के कर्ण के चरित्रांकन का मौलिक पक्ष है उनका जातिवाद के विरोधी का रूप। रंगशाला में अर्जुन की प्रतिद्वन्दिता हेतु जातीय-विषमता के कारण अयोग्य सिद्ध किये जाने पर कर्ण का यह रूप उभरता है। कृपाचार्य के जातिवादी रूप की भर्त्सना करता हुआ कर्ण मानव को जाति-पाँति व वर्णभेद के कारण नहीं अपितु उनकी मानवीयता के कारण महत्ता प्रदान

1- अंगराज-आनन्द कुमार, रचना-1950 ई0
2- कर्ण-केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', रचना- 1950 ई0
3- रश्मिरथी- रामधारी सिंह 'दिनकर' रचना- सन् 1952 ई0
4- सेनापति कर्ण-लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्रकाशन-समय-1958 ई0
5- सूर्यपुत्र-जगदीश चतुर्वेदी- रचना-1975 ई0

करते हुए, अपनी जाति मानव' स्वीकार करता हैं। "महाभारत" में मौन रह जाने वाले कर्ण "जयभारत" में अपने स्वत्व के प्रति जागरूक हैं। वे कहते हैं:-

में मनुष्य हूँ और वर्ण सब देख रहे हैं,
पूछो उनसे लोग मुझे क्या लेख रहे है।-1

"जयभारत" में कर्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में आदर्श मित्र के रूप में हुआ है। वह यह जानते हुए भी कि पाण्डवों का पक्ष सत्य व न्याय का है, दुर्योधन का साथ नहीं छोड़ता, क्योंकि वही उसे स्वत्व तथा स्वाभिमान पूर्ण जीवन की ओर बढ़ने का सम्बल प्रदान करता है। दुर्योधन की इस उदारता व मानवीयता का उत्तर वह कृतघ्नता से नहीं दे सकता था। कृतज्ञता व न्याय के मध्य कर्ण हमेशा अन्तर्द्वन्द झेलता रहा। उसका यह रूप उसके उदात्त चरित्र का द्योतक है।

"अंगराज" में कर्ण को नायकत्व प्रदान किया गया है। इस रचना में दुर्योधन के पक्ष को पाण्डव पक्ष की तुलना में अधिक महत्ता दी गई है। अतः कर्ण का चरित्रांकन दुर्योधन पक्ष को विशेष उत्कर्ष प्रदान करने की दृष्टि से किया गया है।

इस रचना में कर्ण को नायकत्व प्रदान करने के साथ ही कवि ने युगीन चेतना के अनुरूप कर्ण के चरित्र में नवीनता का समावेश भी किया है। वह मानवतावादी , जन-नायक, समतावादी, कर्मवादी, अन्याय के विरोधी, बौद्धिक तथा आदर्शवादी के रूप में चरित्रांकित हुआ है। इस रचना में उसके परम्परागत महादानी तथा आदर्श मित्रता के साथ ही मानवीय दुर्बलता का भी अंकन हुआ है। फलतः वे अन्तर्द्वन्द ग्रस्त सामान्य मानव, संवेदनशील तथा विद्रोही मानव के रूप में चरित्रांकित हुए।

पौराणिक पात्रों के व्यक्तित्व पर तत्कालीन देशनायक, राष्ट्रनायक या जननायक के व्यक्तित्व का आरोपण द्विवेदीकाल से आरम्भ हो गया था

1- जयभारत - पृ0 55

"अंगराज" में भी कर्ण को जननायक के रूप में चरित्रांकित किया गया है। अंगपति बनने के बाद कर्ण समाज के दीन-दुखियों की सहायता करता है। वह 'दीनों पर प्रभुता' को 'सबलों का शव-साधन' मानता है। कर्ण जनोत्थान चाहता है/जनता पर शोषण करने वाले निरंकुश राजतन्त्र की भर्त्सना करते हुए वह जनता के हृदय पर शासन करने को महत्व देता है-

खोल दिया दीनार्थ नृपति ने राजद्वार को।
कहा खोलकर हृदय और निज धनागार को।।
जनता का दारिद्रय राजता का कलंक है।
रंग प्रजा का जननायक तो महारंक है।।
x x x
जनोत्थान हित सुलभ राज्य का अवलम्बन है।
नाम मात्र को राजकोष दीनों का धन है।।-1

कर्ण जननायकत्व के साथ प्रजातंत्र के समर्थक रूप में भी चरित्रांकित हुआ है। वह प्रजा का केवल आर्थिक-विकास ही नहीं करता अपितु समाज को संगठित करके, उनकी शक्ति में भी वृद्धि करता है। वह प्रजाशक्ति का संगठन करता है। वह प्रजा का बहुमुखी विकास चाहता है:-

अल्पकाल में हुआ संगठन प्रजा-शक्ति का।
सर्वोदय से हुआ भाव दृढ़ राज-भक्ति का।।
अंग युवक प्रत्येक बना सैनिक स्वराज्य का।
एक-एक गृह बना दुर्ग अंगाधिराज का।।-2

इस रचना में कर्ण के चरित्र का कालिमापूर्ण पक्ष द्रौपदी चीरहरण प्रसंग में प्रकट हुआ है। स्वयंवर में द्रौपदी द्वारा कर्ण को इस कारण मत्स्यवेध

1- अंगराज- पृ0-36-37

2- वही, पृ0-37

करने से रोक दिया जाता है, क्योंकि वह सूत पुत्र था। इसी अपमान का प्रतिशोध कर्ण द्यूत-सभा में पाण्डवों के हारने के बाद, द्रौपदी से लेता है। वह द्रौपदी की तीव्र भर्त्सना करते हुए उसे चारित्रिक रूप से निम्न व हेय कहता है। वह उसे वेश्या तक की संज्ञा दे डालता है। कर्ण का यह चरित्र "महाभारत" से प्रभावित है।-1 "अंगराज" में भी कर्ण द्रौपदी के चीरहरण का समर्थन करते हुए उसे वेश्या की संज्ञा देता है-

किया भोगिनी बनकर जिसने सदाचार को भग्न
प्रकट महानग्ना वह होगी और अधिक क्या नग्न
×　　×　　×
पंच भोगिनी तू वेश्या है, कुल मर्यादा भ्रष्ट।।-2

"अंगराज" में कर्ण के इस मर्यादारहित चरित्र के प्रक्षालन व परिष्कार हेतु उसे चारित्रिक नैतिकता व शुद्ध चरित्र को महत्व देने वाले तथा सत्य पथ की अनुगामी नारियों का आदर करने वाला निरूपित किया गया है।-3 किन्तु ये तर्क द्रौपदी के सतीत्व व उदात्त को निम्नतर करने के बजाय कर्ण के चरित्र को ही कालिमापूर्ण बताते हैं। "आधुनिक युग का काव्य-पाठक- --------- पंचपतियों में प्रतिष्ठित द्रौपदी को व्यभिचारिणी आदि स्वीकार करने के लिए कदापि प्रस्तुत नहीं हो सकता।"-4

इस रचना में कर्ण का विद्रोही रूप में चरित्रांकन हुआ है। जातीय वैषम्य के कारण कदम-कदम पर प्रताड़ित होने के कारण वह संवेदनहीन सा हो जाता है। कुन्ती जब उससे प्रथम बार मिलकर उसे बताती है कि वह उसकी माँ है, उस समय कर्ण के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह उग्र हो उठता है। अपनी ही माँ का अपमान करता हुआ वह कहता है-

---

1- एको भार्ता स्त्रिया वेवैर्विहिता कुरुनन्दन। इयं त्वन्नेकवशणा वन्ध कीर्ति विनिश्रिता।।35।। आस्थाः समामान्यनं न चित्रमिति में मतिः एकाम्बरं धरत्वं वारपथ वापि विवस्त्रता।।36।। महाभारन, द्यूतपर्व, अध्याय 61, पृ0 302

2- अंगराज - पृ0 77-78

3- वही, पृ0 78

ज्ञात सभी अनरीति तथा सुतघातक क्षुद्र प्रवृत्ति तुम्हारी।
पाप कहो अपना न यहाँ, अविलम्ब कहो किस हेतु पधारी।
× × ×
वंचक होकर हो तुम निकली ठगने धन कीर्ति धनी का
कर्म नहीं, तुम केवल हो व्यवसाय यहाँ करती जननी का।।-1

कर्ण को विद्रोही सिद्ध करने के प्रयत्न में लेखक मर्यादा की सीमा का अतिक्रमण कर गया है, इस तरह कर्ण के चरित्र को महिमामंडित करने की अपेक्षा कमजोर ही बनाता है।

कर्ण के अन्तर्दन्दों का प्रकटन सर्वप्रथम "अंगराज" में ही दृष्टिगत होता है। कृष्ण के दारा पाण्डवों को भाई के रूप में स्वीकार करने का आग्रह वे ठुकरा देते हैं। माता कुन्ती के प्रति भी उसे कोई अनुरक्ति नही होती, इस विरक्ति के पीछे अपनी मनोव्यथा को प्रकट करते हुए, वह कृष्ण से कहता है कि उसे वंश गौरव का कोई लोभ नहीं है। पृथा दारा मृत्वत् त्याग दिये जाने के बाद वह कौन्तेय नहीं रहा, दुबारा जीवन राधा ने प्रदान किया था, अतः वह राधेय रूप में ही गर्व करता है—

हमको न है कुछ लोभ, मिथ्या वंश गौरव प्राप्ति का
होकर पृथा से त्यक्त मृतवत् अब न हम कौन्तेय हैं।
हम तो पुनर्जीवित यहाँ पर इस रूप में राधेय हैं।-2

"अंगराज" में कर्ण के संवेदनशील व्यक्तित्व का भी नवीन रूप में निरूपण हुआ है। माँ की भर्त्सना व कृष्ण के समक्ष अपना विद्रोह प्रकट करने के बाद, कर्ण का मन शान्त हो जाता है। वह रूक्षता का कवच तोड़कर यथार्थ के धरातल पर आ खड़ा होता है। उसकी भावुकता व संवेदनशीलता प्रत्यक्ष हो उठती है। वह माँ कुन्ती के चरणों में वात्सल्य भाव की सम्पूर्णता के साथ झुक जाता है-

---

1- अंगराज- पृ0-162
2- अंगराज, पृ0-139

मानस में उसके जननी प्रति भाव-स्वभाव जगे शिशुता के।
आनत मस्तक बद्ध कर द्वय व्यंजक थे उसकी लघुता के।-1

कर्ण की त्यागशीलता व उदात्त मातृप्रेम का प्रकटन उस समय प्रकट होता है, जब वह माँ कुन्ती को अर्जुन को छोड़कर शेष पाण्डवों के प्राणदान का वचन देता है।-2 कुन्ती के लौटते समय वह उन्हें अपूर्व स्वाभाविक स्नेह-दृष्टि से देखता ही रह जाता है। उसका यह रूप उसकी समस्त रूक्षता को पिघलाकर उसे सहज , संवेदनशील व आदर्श पुत्रों की श्रेणी में ला खड़ा करता है-

अपूर्व स्वाभाविक स्नेह-दृष्टि से रहा उसे मोहित पुत्र देखता।-3

इस प्रबन्ध-काव्य में कर्ण चरित्र का विशिष्ट पक्ष है उसका मित्र प्रेम व दृढ़ मैत्री। इस मित्रता के लिए वह अपने ही सगे भाइयों, माता तथा राज्य के सर्वोच्च आसन तक को छोड़ देता है। वह निरुपाय परिस्थिति तथा दुःख के दिनों में साथ देने वाले दुर्योधन की मैत्री को ही महत्ता प्रदान करता है। यहाँ कर्ण के परम्परागत् रूप की मौलिक व्याख्या हुई है। कर्ण कृष्ण से कहता है-

जब दुःख के दिन थे हमारे और हम निरुपाय थे।
उस काल कुरुपति ही हमारे एक मात्र सहाय थे।
अब त्याग उनको लोभवश लेकर स्वराज्य प्रधानता।
क्या हम करेंगे मित्र प्रति विश्वासघात् कृतघ्नता।-4

1- अंगराज, पृ0-165

2- वही, पृ0-165

3- वही, पृ0-166

4- वही, पृ0-140

भारतीय वाङ्मय में कर्ण- चरित्र का सर्वोत्कृष्ट व उदात्त पक्ष रहा है उसका 'महादानी कर्ण' का रूप। सर्वस्व उत्सर्ग कर देने की सीमा तक की दानशीलता के कारण वह 'महादानी' कहा गया। "अंगराज" में भी उसके परम्परागत दानी चरित्र को निरूपित किया गया है, किन्तु यहाँ उसके इस परम्परागत् रूप को समसामयिक व युगानुकूल दृष्टिकोण से भी अभिव्यंजित किया गया है। इस रचना में वह प्रजा-सहायक है। वह दीन जनों की सहायता हेतु मुक्तकर से दान देने वाले महान पुरुष के रूप में वर्णित हुआ है। इसी कारण वह लोकग्राम में 'विवुध जीव' अर्थात् वृहस्पति कहलाया। कर्ण के चरित्र का यह नवीन पक्ष है-

सुजन अकिंचन गण का वन अभिमत् वरदायक।
राजसहायक कर्ण हो गया, प्रजा-सहायक।
x x x
कर्ण नित्यप्रति रविवन्दन कर गंगा तट पर।
दीन जनों को लगा मुक्त कर से देने वर।-1

कर्ण के महादानी स्वरूप की उदात्तता उस समय प्रकट होती है, जब वह याचक बने कृष्ण द्वारा कर्ण-पुत्र के मांस भक्षण की याचना कर्ण के सम्मुख प्रकट किया जाता है। कर्ण कृष्ण की इस याचना की पूर्ति सहर्ष ही कर देता है।-2 वचन की प्रतिबद्धता को देख कृष्ण अपने वास्तविक स्वरूप में आ जाते हैं, और उन्हें उनका पुत्र लौटा देते हैं। कर्ण की यह दानशीलता जहाँ परम्परागत व अलौकिक है, वहीं लौकिक धरातल से भी जुड़ा हुआ है। वह निःस्वार्थ भाव से दान देता है। कृष्ण द्वारा कोई भी वरदान माँगने के आग्रह पर वह निर्धन और सुपात्र व्यक्ति की सेवा की क्षमता ही माँगते हैं-

यदि हैं प्रसन्न हे देव! आप, तो यह आशिष दें सप्रताप।
निर्धन-सुपात्र-सेवा प्रसंग, हो सुलभ हमें इस विधि अभंग।-3

1- अंगराज - पृ0 95
2- वही, पृ0-99
3- वही, पृ0-101

इन्द्र द्वारा विप्रवेश में कवच-कुण्डल माँगने पर कर्ण इन्द्र को पहचानते हुए भी उनकी याचना की सम्पूर्ति करता है। कर्ण का यह रूप "महाभारत" से प्रभावित है।-1

"अंगराज" में कर्ण के चरित्र की मौलिक व्यंजना उनके अन्याय-विरोधी रूप के द्वारा हुई है। कृष्ण द्वारा पाण्डवों को विजय दिलाने के लिए विभिन्न प्रकार से छल व कपट का सहारा लिया गया था। परम्परागत रूप से उनके इस रूप को ईश्वरीय इच्छा मानकर श्रद्धादृष्टि मिलती रही। किन्तु आधुनिक युग की बौद्धिक चेतना, मानवतावाद व तार्किक दृष्टिकोण के प्रभाव स्वरूप यथार्थ को यथार्थ रूप में ही देखने परखने की भावना जाग्रत हुई। कर्ण द्वारा कृष्ण के अन्यायी व कपटपूर्ण नीति की भर्त्सना करने के पीछे इसी नव्य दृष्टि की प्रेरणा रही है। कर्ण कहता है-

हरि आप विदित हैं ज्ञानवृद्ध। हैं मुख्य धर्मरक्षक प्रसिद्ध।
पर स्वयं नित्य कर कपट कर्म। सकलंक बनाते युद्ध धर्म।
× × ×
है कुरूक्षेत्र का यह महत्व। हरि यहाँ भूलते ईश्वरत्व।-2

इस रचना में कर्ण का मौलिक रूप से अंकन उसके मानवतावादी व शान्ति प्रेमी के रूप में प्राप्त होता है। दुर्योधन पक्ष से युद्ध करते हुए भी वह क्रूर युद्ध का समर्थक नहीं है—

करके दूषित शर का प्रयोग हम नहीं चाहते विषय-भोग।-3

समग्रतः द्रौपदी के अपमान व माँ की कटु निन्दा के प्रसंग को छोड़कर शेष रूपों में कर्ण के उदात्त, आधुनिक युगानुकूल व नव्यचेतना से युक्त चरित्र की व्यंजना मौलिक है।

1- महाभारत-आदि पर्व का सम्भव पर्व, श्लोक 28, पृ0-778
2- अंगराज, पृ0-259
3- वही, पृ0-237

"अंगराज" की ही समकालीन रचना "कर्ण" में केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने कर्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में किया है। इस रचना में कर्ण परम्परागत् रूप का भी चित्रण हुआ है, किन्तु विशिष्ट रूप से मौलिकता संयुक्त चरित्राकन ही हुआ है। आधुनिक युग मे पौराणिक पात्रों के चरित्र परिष्कार हेतु तथा युगीन-सन्दर्भ से जोड़ने के लिए, उनके संवेदनात्मक व भावुक स्वरूप की व्यंजना हुई। आदर्श के साथ ही यथार्थ स्वरूप का भी निरूपण हुआ है।

"कर्ण" में कर्ण परम्परागत् रूप में ही जातीय वैषम्य के कारण रंगशाला व द्रौपदी स्वयंवर में अपमानित होता है, किन्तु वह अपनी परिस्थिति पर मानसिक व्यथा को झेलते हुए मौन ही रह जाता है, विरोध नहीं कर पाता। द्यूत सभा में पाण्डवों के हार के बाद द्रौपदी को अपमानित करते हुए, चीरहरण का आदेश देने वालेकर्ण का चरित्र भी "महाभारत" के आधार पर ही वर्णित हुआ है। इन्द्र को कवच-कुण्डल प्रदान करने वाले कर्ण की व्यंजना भी महाभारत के आधार पर ही हुई है।

मौलिक रूप में कर्ण चरित्र का निरूपण प्रतिज्ञा के कारण दानी चरित्र, राधा के प्रति निष्ठावान, स्वाभिमानी व वीर, न्याय का पक्षधर, संवेदनशील तथा भावुक व अन्याय के विरोधी के रूप में हुआ है।

"कर्ण" में कर्ण के दानी स्वरूप की नवीन व्याख्या हुई है। "कर्ण" के 'तृतीय' सर्ग में वह प्रण करता है कि जब तक अर्जुन का वध नहीं करेगा तब तक, जो भी व्यक्ति कुछ माँगेगा वह दान दे देगा। "अंगराज" में कर्ण प्रजा के उत्थान व दीनों का सहायक है, किन्तु इस रचना में वह प्रतिज्ञा-वश दानी है-

जब तक वध न करूँ जब तक, अर्जुन के हरूँ न प्रान।
तब तक जो भी जो कुछ माँगे, दे दूँगा वह दान।-1

1- कर्ण- पृ0 25

"अंगराज" के समान ही इस रचना में भी कर्ण में अधिरथ व राधा के प्रति गहरी निष्ठा है। वह उनको छोड़कर पुनः अपनी माँ कुन्ती के पास जाने से इन्कार कर देता है। यहाँ उसके संवेदनशीलता के साथ ही यथार्थवादी स्वरूप का भी अंकन हुआ है। कृष्ण द्वारा पाण्डव-पक्ष में मिलने के आग्रह को ठुकराते हुए, कर्ण कहता है-

> आज पुत्र हूँ मैं अधिरथ का, राधा मेरी माता।
> कैसे इनका साथ छोड़कर पाण्डव कुल मे जाऊँ।
> कैसे क्रूर बनूँ, इनकी दुनिया में आग लगाऊँ। -1

इस रचना में कर्ण चरित्र का मौलिक व नवीन पक्ष यह है कि वह पाण्डव-पक्ष को न्यायसंगत् मानते हुए भी दुर्योधन की कृतज्ञता में बंधा हुआ होने के कारण दुर्योधन का पक्ष नहीं छोड़ पाता। 'चतुर्थ' सर्ग में वह कृष्ण से कहता है कि वह दुर्योधन का कृतज्ञ है, उसके उपकारों का ऋणी है अतः राजपाट प्राप्त होने पर वह उसे दुर्योधन को ही दे देगा। दुर्योधन नीच, कपटी व विलासी है, वह पुनः पाण्डवों को वनवासी बना देगा। किन्तु उसकी कामना है कि धर्मराज ही सम्राट हों —

> मैं कृतज्ञ हूँ दुर्योधन का, उपकारों से हारा।
> राजपाट उसके चरणों में चुप धर दूँगा सारा।
> प्रभो! पड़ेगा पुनः पाण्डवों को बनना बनवासी।
> क्योंकि नीच दुर्योधन है, अति कपटी और विलासी,
> धर्मराज सम्राट अमर हों यही कामना मेरी।। -2

1- कर्ण- पृ0-50-51

2- वही, पृ0 55-56

यहाँ कर्ण के चरित्र का उदात्त पक्ष ही प्रकट हुआ है। वह दुर्योधन की दुर्नीतियों से अवगत् होते हुए भी उसके उपकारों का ऋणी होता है। पाण्डव पक्ष के उत्थान तथा धर्मराज युद्धिष्ठिर को सम्राट रूप में भी देखने का इच्छुक है। इसी कारण वह पाण्डव पक्ष में सम्मिलित नहीं होता।

इस रचना में परम्परागत् कालिमा पूर्ण पक्ष का परिमार्जन व मौलिक परिष्कार हुआ है। "कर्ण" में कर्ण के संवेदनशीलता व अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण चतुर्थ-सर्ग में हुआ है। द्यूत-सभा में द्रौपदी का अपमान करने के कारण वह आजीवन पश्चाताप् की अग्नि में जलता रहता है। कर्ण अपने इस कालिमापूर्ण चरित्र के कारण स्वयं को धिक्कारता है, अपनी उस कृतज्ञता को धिक्कारता है, जिसके कारण वह ऐसे दुष्कर्म की ओर उन्मुख हुआ। यहाँ कर्ण की दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता के नाम पर किये गये कृत्य की नवीन तार्किक दृष्टिकोण से व्याख्या हुई है। "कर्ण" में प्रथमबार उसके इस स्वरूप पर प्रश्न-चिह्न लगा है। कर्ण कृष्ण से अपनी अन्तर्व्यथा व ग्लानि को अभिव्यक्त करते हुए, कहता है-

लांक्षित पीड़ित हुई हाय, मेरे द्वारा पाँचाली,
अपमानित की है मैंने उसके सुहाग की लाली।
x x x
धिक कृतज्ञता को जिसने, ऐसा दुष्कर्म कराया।
प्रायश्चित करूँगा केशव, छोड़ नीच यह काया।-1

'प्रभात' जी ने कर्ण के अन्तर्द्वन्द्वों व आत्मव्यथा का अति सहज रूप में निरूपण किया है। कुन्ती द्वारा यह स्वीकृत होने पर कि वही उसकी माँ है, कर्ण का हृदय व्यथित हो उठता है, वह अपनी विद्रोह भावना को अभिव्यक्त करते हुए कहता है कि वह उसे कौन्तेय न कहे, राधेय ही रहने दे। वह कुन्ती से अपना विद्रोह प्रकट करता हुआ, कहता है-

---

1- कर्ण - चतुर्थ सर्ग, पृ0-58

कहाँ तुम्हारा पुत्र-प्रेम था, यह वात्सल्य महान।
जब उस भरी सभा में मेरा हुआ घोर अपमान।
क्यों तुमने उस दिन न कहा सबके सम्मुख ललकार।
कर्ण नहीं है सुत पुत्र वह भी है राजकुमार।-1

"कर्ण" की समकालीन रचना "अंगराज" में भी कर्ण के विद्रोहात्मतक व्यक्तित्व का निरूपण हुआ है। उसमें वह "कर्ण" की अपेक्षा अधिक उग्र व कठोर है किन्तु "कर्ण" में प्रभात जी ने कर्ण के विद्रोह भावना का निरूपण करते हुए उसकी अन्तर्व्यथा का प्रकटन ही विशेष रूप से किया है। "अंगराज" की भाँति इस रचना में भी कर्ण माँ कुन्ती को चार पाण्डवों के प्राण-दान का वचन देता है।-2

"कर्ण" में परम्परागत् रूप से विलग यथार्थवादी रूप में कर्ण का चरित्र निरूपण हुआ है। "अंगराज" की ही भाँति इस रचना में भी कर्ण ने कृष्ण के कपट और छल की निन्दा की है, किन्तु इस रचना में वे "अंगराज" की भाँति मुखर न होकर केवल इतना कहकर मौन हो गये हैं-

यह सम्पूर्ण महाभारत तो
वासुदेव का छल है।-3

"कर्ण" के पश्चात् "रश्मिरथी" में रामधारी सिंह "दिनकर" द्वारा कर्ण चरित्र का निरूपण मौलिक रूप में हुआ है। आधुनिक नव्य चेतना व गाँधीवादी आदर्शों के साथ ही 'नयी कविता' की विद्रोह चेतना का भी प्रभाव कर्ण के चरित्रांकन पर परिलक्षित होता है। इस रचना में कर्ण सर्वप्रथम दलितवर्ग के नेता के रूप में निरूपित हुआ है। "रश्मिरथी" में उसे जातिवाद

1- कर्ण, चतुर्थ सर्ग, पृ0-66

2- वही, पंचम सर्ग, पृ0-72

3- वही, वही, पृ0-88

के विरोधी, स्वत्व के प्रति जागरूक, कर्मवादी, दलितोद्धारक जैसे उदात्त गुणों से युक्त निरूपित किया गया है, साथ ही उसकी संवेदना व भावना को भी मौलिकता प्राप्त हुई है। "रश्मिरथी" में कर्ण के चरित्र का उद्धार एक तरह से नयी मानवता की स्थापना का प्रयास है।"-1

"रश्मिरथी" में कर्ण का चरित्रांकन प्रथम बार जातिवाद तथा वर्ण वैषम्य के विरोधी के रूप में हुआ है। आधुनिक युग के मानवतावादी चेतना व गाँधीवादी अछूतोद्धार आन्दोलन के प्रभाव-स्वरूप निम्न व दलित वर्गों के प्रति नवीन मानवीय संवेदना का उन्मेष हुआ। "रश्मिरथी" के कर्ण के चरित्र-निरूपण पर इसी नव्य-चेतना का प्रभाव है। रंगशाला में कृपाचार्य द्वारा जाति पूछने पर तथा जातीय आधार पर ही अर्जुन के प्रतिद्वन्दिता की योग्यता निश्चित करने पर, कर्ण का आक्रोश प्रबल हो उठता है। वह जाति-भेद की भर्त्सना करता हुआ कहता है कि जाति नहीं व्यक्ति के कर्म महत्वपूर्ण होते हैं। वर्ण व्यवस्था पर प्रहार करता हुआ वह कहता है-

जाति, जाति रटते, जिनकी पूँजी केवल पाखण्ड,
मैं क्या जानूँ जाति? जाति है ये मेरे भुजदण्ड।
x x x
बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्जवल चरित्र है, नहीं वंश धन धाम।-2

इस रचना में आधुनिक नव्य चेतना के प्रभाव-स्वरूप कर्ण का चरित्र चित्रण दलित वर्ग के विद्रोही नेता तथा उपेक्षित वर्ग के प्रतिनिधि के रूप में हुआ है। कर्ण का यह स्वरूप सर्वथा मौलिक है। वह जातीय तथा वर्ण व्यवस्था के वैषम्य के कारण समाज में तिरस्कृत व उपेक्षित व्यक्तियों के आदर्श बनकर उभरते हैं। सूत पुत्र होने के कारण समाज में पग-पग पर उपेक्षा

1-- रश्मिरथी- रामधारी सिंह 'दिनकर', भूमिका- पृ0 घ
2- वही, पृ0 4-7

के शिकार कर्ण, मानसिक अन्तर्व्यथा को झेलते हुए भी जीवन के जिस उच्च शिखर तक पहुँचता है, वह आदर्श ही है। कर्ण कहता है-

मैं उनका आदर्श जिन्हें कुल का गौरव तोड़ेगा,
नीच वंश जन्मा कहकर जिनको जन धिक्कारेगा,
जो समाज की विषम अग्नि में चारों ओर जलेगा,
पग-पग पर झेलते हुए बाधा निःसीम चलेगा।-1

'दिनकर' जी ने कर्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में नियति को ठोकर मारकर कर्मपथ पर बढ़ने वाले कर्मवादी मानव के रूप में किया है। आधुनिक युग में यथार्थवादी दृष्टिकोण व बौद्धिक चेतना के कारण भाग्यवाद का निषेध व कर्मवाद की प्रतिष्ठा बढ़ी। कर्ण का चरित्र-निरूपण भी इसी कर्मवादी चेतना से प्रभावित, नियतिवाद के विरोधी के रूप में हुआ है। वह अपने शौर्य तथा कर्मशीलता पर दृढ़ पौरुष से सम्पन्न युवा है। वह कहता है-

चरण का भार लो, सिर पर सम्भालो,
नियति की दूतियों! मस्तक झुका लो।
चलो जिस भाँति चलने को कहूँ मैं,
ढलो जिस भाँति ढलने को कहूँ मैं।-2

"रश्मिरथी" में कर्ण द्वारा प्रथम बार प्राचीन 'नियोग-प्रथा' की रूढ़ियों का विखंडन व भर्त्सना करते हुए पाण्डवों के समकक्ष अपने स्वत्व की प्रतिष्ठा हुई है। यहाँ वह जातीय वैषम्य के कारण समाज में तिरस्कृत किये जाने के कारण अपनी तथा नियोग प्रथा के नाम पर जन्म लेने वाले

1- रश्मिरथी- चतुर्थ सर्ग, पृ0- 73

2- वही, चतुर्थ सर्ग- पृ0 77

सम्मान के पात्र पाण्डवों की तुलनात्मक व तार्किक व्याख्या करता है। यहाँ पर उसके विद्रोही रूप का ही अंकन हुआ है। कुमारी कुन्ती द्वारा सूर्य के आह्वान पर कर्ण का जन्म हुआ था। इस कारण वह परित्यक्त किया गया था। विभिन्न देवताओं के आह्वान पर नियोग प्रथा द्वारा पाँचों पाण्डवों का जन्म हुआ था, फिर भी उन्हें सामाजिक मान्यता व सम्मान प्राप्त हुआ। इसी सन्दर्भ में अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए वह कहता है-

सूतपुत्र हूँ मैं, लेकिन थे पिता पार्थ के कौन?
साहस हो तो कहो, ग्लानि से रह जाओ मत मौन।-1

"अंगराज" व "कर्ण" की ही भाँति इस रचना में भी कर्ण के दृढ़ मैत्री का अंकन हुआ है। कर्ण अपने सगे भाइयों तथा माता की तुलना में दुर्योधन की मित्रता को ही महत्ता देता है, क्योंकि वह दुर्योधन के उदात्त उपकार के प्रति कृतज्ञ था। जातीय विसंगति व राज्य हीन होने के कारण कर्ण को समाज में जिस तिरस्कार व अपमान का सामना करना पड़ता है उससे वह टूट सा जाता है। ऐसी परिस्थिति में दुर्योधन ही उसे सम्बल प्रदान करता है। इसी कारण कर्ण सुरपुर की तुलना में भी दुर्योधन की मैत्री को ही महत्ता प्रदान करते हैं-

है ऋणी कर्ण का रोम-रोम, जानते सत्य यह सूर्य-सोम।
तन,मन,धन दुर्योधन का है, यह जीवन दुर्योधन का है।
सुरपुर से भी मुख मोड़ूँगा,
केशव मैं उसे न छोड़ूँगा।-2

1- रश्मिरथी- पृ0-38

2- रश्मिरथी- पृ0 38

"अंगराज" व "कर्ण" की ही भाँति इस रचना में भी कर्ण माता कुन्ती के प्रति अपनी विद्रोह भावना व्यक्त करता है। किन्तु इस रचना में वह मौलिक रूप से संवेदनशील तथा उग्र रूप में निरूपित हुआ है। वह मातृत्व के उदात्त स्वरूप का चित्रण करते हुए कुन्ती को नागिन की संज्ञा तक दे डालता है। अपनी अन्तर्व्यथा को प्रकट करते हुए कर्ण कुन्ती की कटु भर्त्सना करता है-

सेवती मात दस तक जिसको, पालती उदर में रख जिसको।
जीवन का अंश खिलाती हैं, अन्तर का रुधिर पिलाती हैं।
आती फिर उसको फेंक कहीं, नागिन होगी, वह नारि नहीं।-1

कुन्ती के समक्ष भी वह अपना आक्रोश प्रकट करता है, उनकी निन्दा करता है, किन्तु माता के समक्ष उसकी उग्रता व रूक्षता स्थायी नहीं रह पाती। उसकी संवेदना उसे माता के समक्ष शिशुवत् बना देती है-

माँ ने बढ़कर जैसे ही कण्ठ लगाया,
हो उठी कण्टकित पुलक कर्ण की काया।
सञ्जीवन सी छू गयी चीज कुछ तन में,
वह चला स्निग्ध प्रस्रवण कहीं से मन में।-2

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के "कर्ण" की भाँति "रश्मिरथी" में भी कर्ण द्रौपदी के प्रति संवेदनशील है। 'द्यूत-सभा' में द्रौपदी के चीरहरण का समर्थन करने के कारण वह आजीवन आत्मव्यथित रहा। "कर्ण" की भाँति वह द्रौपदी को अपमानित तो नहीं करता किन्तु उसके अपमान का समर्थन करने के कारण तथा द्रौपदी की रक्षा न सकने की पीड़ा ही उसे त्रस्त करती है। "रश्मिरथी" के कर्ण का यह रूप पूर्ववर्ती रचना "कर्ण" की अपेक्षा मौलिक है। वह कहता है-

---

1- रश्मिरथी, तृतीय सर्ग, पृ०-36

2- वही, पृ0-67

वधूजन को नहीं रक्षण किया क्यों? समर्थन पाप का उस दिन किया क्यों?
न कोई योग्य निष्कृति पा रहा हूँ, लिये यह दाह मन में जा रहा हूँ।-1

"रश्मिरथी" के कर्ण का मौलिक स्वरूप है उसका यथार्थवादी व अन्याय विरोधी चरित्र। आधुनिक युग की बौद्धिकता, तार्किकता व यथार्थवादी प्रवृत्ति ने ईश्वरीय चरित्रों के उन कृत्यों की भी आलोचना हेतु प्रेरित किया, जिन कृत्यों को परम्परागत रूप में ईश्वरेच्छा मानकर आदर्श माना जाता रहा। "रश्मिरथी" के कर्ण पर इसी यथार्थवादी चेतना का प्रभाव है। पूर्ववर्ती रचना "अंगराज" में भी कर्ण द्वारा कृष्ण के कपटनीति की आलोचना हुई है, किन्तु "रश्मिरथी" में कर्ण "अंगराज" की अपेक्षा अधिक उग्र व यथार्थवादी है। वह अपना आक्रोश प्रकट करते हुए कहता है-

समझ में कुछ न आता, कृष्ण क्या सिखला रहे हैं,
जगत को कौन नूतन पुण्य पथ दिखला रहे हैं।
हुआ वध द्रोण का कल जिस तरह वह धर्म था क्या?
समर्थन-योग्य केशव के लिए वह कर्म था क्या?
x x x
करें भगवान जो चाहें, उन्हें सब कुछ क्षमा है।-2

आधुनिक युग में बीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में युद्ध के विभीषिका के मानव जाति पर पड़ने वाले भयंकर प्रभावों को विशेष रूप से कथावस्तु बनाने की प्रवृत्ति बढ़ी। दो-दो विश्व युद्धों की भयानकता का सामना करने के बाद मानव शान्ति की ओर विशेष रूप से उन्मुख हुआ। "रश्मिरथी" में भी कर्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में युद्ध-विरोधी तथा शान्ति के समर्थक के रूप में हुआ है। युद्ध की विभीषिका से त्रस्त मानवता के प्रति अपनी संवेदना व्यक्त करता हुआ, कर्ण कहता है-

---

1- रश्मिरथी- सप्तम् सर्ग, पृ0-99

2- वही, पृ0-146

चलेगी यह जहर की क्रान्ति कब तक, रहेगी शक्ति वंचित शान्ति कब तक?

मनुज मनुजत्व से कब तक लड़ेगा? अनल वीरत्व से कब तक झड़ेगा?

X X X

विकृति जो प्राण में अंगार भरती, हमें रण के लिए लाचार करती,

घटेगी तीव्र उसका दाह कब तक? मिलेगी अन्य उसको राह कब तक?-1

समग्रतः "रश्मिरथी" में कर्ण का चरित्रांकन आधुनिक युगानुरूप तथा समकालीन परिस्थितियों तथा नव्य चेतना के अनुरूप हुआ है। "आधुनिक युग के बौद्धिक एवं मानवतावादी कवि दिनकर ने निष्पक्ष न्याय के सहारे सूर्यपुत्र कर्ण के रश्मि मंडित चरित्र की प्रखरता एवं तेजस्विता को न केवल पहचाना अपितु पूर्ण प्रतिष्ठा भी प्रदान की है।"-2 इस रचना में उसके परम्परागत् चरित्र को नवीन व्यंजना प्रदान कर उसका चारित्रिक उत्कर्ष किया गया है। उसके माध्यम से रूढ़िग्रस्त जीवन पद्धति की आलोचना प्रस्तुत करके उसे समकालीन समाजोद्धारक व मानवतावादी के रूप में चरित्रांकित किया गया है।

"रश्मिरथी" के बाद लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत "सेनापति-कर्ण" कर्ण को नायकत्व प्रदान करने वाली अगली कड़ी है। इस रचना में कर्ण का चरित्रांकन जातिवाद के विरोधी, मानवतावादी, नारी के सम्मानकर्ता तथा संवेदनशील भावुक के रूप में हुआ है। इस रचना की सम्पादकीय में संकेत है- "मिश्र जी ने बड़ी निर्भयता तथा निष्पक्षता से कर्ण के चरित्र को वास्तविक पृष्ठभूमि के साथ प्रस्तुत किया है।-3

"सेनापति-कर्ण" में कर्ण का चरित्रांकन जातिवाद के विरोधी व मानवतावादी मानव के रूप में हुआ है। "रश्मिरथी" में भी कर्ण के जातिवाद

1- रश्मिरथी- पृ0-160-161

2- आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा- डॉ0 मालती सिंह, पृ0 92

3- सेनापति कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्र0प्र0- 1958 ई0, सम्पादक-

के विरोधी रूप का चरित्रांकन हुआ है, किन्तु इस रचना में वह समतावादी समाज की परिकल्पना करता है। जातीय विसंगति की पीड़ा को आजीवन सहन करने वाला कर्ण समाज में सभी मानवों को समरूप से विकास व उत्थान पथ पर अग्रसित होते देखना चाहता है। वह कहता है-

इस भव-भूमि में मनुज कुलवंश की, चलती विडम्बना रही है अब तकजो। मिटकर रहेगी, पुण्यपर्व वह आयेगा, मानव समान सुख भोगी दुख भोग से। छूटकर सहज बनेगा अधिकारी जो देवपद का भी।---- 1

इस रचना में "कर्ण" के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उसका नारी जाति का सम्मान करने वाला रूप। आधुनिक बौद्धिक तथा मानवतावादी चेतना के प्रभाव स्वरूप नारी के प्रति नवीन उदात्त दृष्टि का उन्मेष हुआ। कर्ण नारी जाति का सम्मान करता है, वह सभी नारियों को महिमा की निधि मानता है तथा सभी में माँ की छवि देखता है। वह कुन्ती से अपनी इसी उदात्त भावना को प्रकट करता हुआ कहता है-

-------- तुम माँहो कि अन्य हो
पूज्यनीया मेरी हो सदैव, जाति नारी की
मातृभाव से ही पूजता मैं रहा, श्वांस है
जब तक शरीर में, सदैव मातृभाव से
पूजता रहूँगा महिमा की निधि नारी को।-2

पूर्ववर्ती रचनाओं में कर्ण द्वारा द्रौपदी का अपमान व माँ कुन्ती की निन्दा हुई है। अतः वहाँ उसका यह उदात्त रूप नहीं प्राप्त होता

1- सेनापति-कर्ण, पृ0- 129

2- वही, पृ0- 128

किन्तु आधुनिक समाजवादी व्यवस्था के आदर्श से उत्पन्न नवीन दृष्टिकोण का प्रभाव "सेनापति-कर्ण" के कर्ण के चरित्र पर विशेष रूप से पड़ा है। नारी के प्रति समान व उदात्त दृष्टिकोण इसी तथ्य का परिचायक है।

"सेनापति-कर्ण" में कर्ण का पाण्डवों के प्रति प्रेम भाव सर्वप्रथम प्रकट हुआ है। "कर्ण" में वह पाण्डवों, विशेषकर धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति अपनी संवेदना प्रकट करता है। "रश्मिरथी" में भी वह पाण्डवों का अप्रत्यक्ष समर्थन प्रकट करता है, किन्तु "सेनापति-कर्ण" में वह अपने ही भाइयों के समक्ष युद्ध क्षेत्र में ठहर सकने में स्वयं को असमर्थ मानता है। उन्हें अपना शत्रु नहीं मान पाता, किन्तु दुर्योधन के उपकारों का ऋणी होने के कारण पाण्डवों के विपक्ष से युद्ध करने की विवशता भी है। अपने इसी अन्तर्द्वन्द व विवशता को प्रकट करते हुए अपनी मृत्यु की पूर्व घोषणा ही एक तरह से कर देता है। वह कहता है-

"परन्तु किस भाँति से"
बोला बली, सोचो अब शत्रु समझूँगा मैं
माता के सुतों को इस हेतु अब जान लो
विधि का विधान है कि पाऊँ वीरगति मैं।-1

इस प्रबन्ध काव्य का सर्वथा नव्य पक्ष है कर्ण का द्रौपदी के प्रति अव्यक्त प्रेम। पूर्ववर्ती किसी भी रचना में कर्ण का यह रूप नहीं मिलता। "अंगराज" व "कर्ण" में वह द्रौपदी का अपमान करता है, किन्तु "रश्मिरथी" में कर्ण का द्रौपदी के प्रति कुछ सम्मान भाव बढ़ा है। "सेनापति-कर्ण" में उसकी संवेदना व भावुकता द्रौपदी के प्रति उन्मुख है। किन्तु वह इसे कभी व्यक्त नहीं कर पाया। "सूतपुत्र" होने के कारण ही वह द्रौपदी स्वयंवर में सर्वाधिक योग्य होते हुए भी भाग नहीं ले पाता। युद्ध के समय जब

1- सेनापति-कर्ण, पृ0- 131

यह समाचार मिलता है कि द्रौपदी स्वयं उस संघर्ष हेतु आयेगी, यदि पाण्डव नहीं आये तब। कर्ण यह सुनकर अनायास ही अपनी भावनाओं को व्यक्त कर देता है-

----------------- बोला सुधावाणी में
अंगराज, "कृष्णा से पराजित सदा हूँ मैं।
सत्य ही जो आये कहीं कृष्णा आज रण में।
तब तो उतार मैं धरूँगा शस्त्र भूमि में ।।-1

समग्रतः इस रचना में कर्ण का चरित्रांकन आदर्श, संवेदनशील व भावुक मानव के रूप में हुआ है, जो विभिन्न अन्तर्द्वन्द्वों से ग्रस्त हो आत्मव्यथा को सहता हुआ, सम्पूर्ण जीवन ही व्यतीत कर देता है।

जगदीश चतुर्वेदी कृत "सूर्यपूत्र" "सेनापति- कर्ण" के बाद की वह कड़ी है जिसमें कर्ण को नायकत्व प्रदान करते हुए उसके समस्त जीवन की अन्तर्व्यथा को वाणी दी गई है। इस प्रबन्ध रचना में कर्ण के अन्तर्द्वन्द्वों की मार्मिक अभिव्यंजना की गई है। इस रचना की भूमिका में जगदीश चतुर्वेदी लिखते हैं_ "कर्ण का जीवन अनन्त संघर्षों को भोगने वाले निरासक्त योद्धा का यातनामय किन्तु अत्यन्त विनयी और त्यागमय जीवन है। शैशव की कड़ुवाहट तथा वितृष्णा ने उसे एक अडिग और अजेय व्यक्तित्व प्रदान किया है। वह अवैध सन्तान और भारतीय जीवन के उस सामंत कालीन परिवेश में एक आत्म निर्वासित जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। तमाम विश्व विश्रुत योद्धाओं और बुद्धिजीवियों की तरह एक नितान्त अकेलेपन का एहसास उसे सदैव कचोटता है, और उसका व्यक्तित्व और अधिक प्रखर कर्मठ और दुर्दर्ष बनता जाता है। अनायास कर्ण मेरे लिए आधुनिक मानव मन की दुश्चिंताओं का वहन करने वाले अधिनायक बन गये हैं।"-2 इस रचना में आधुनिक संदर्भों में संघर्षशील

1- सेनापति-कर्ण - पृ0-185

2- सूर्यपुत्र - डा0 जगदीश चतुर्वेदी -रचना सन् 1975 ई0, भूमिका में कवि, पृ0-8

मानव का आरोपण कर्ण के चरित्रांकन पर हुआ है। कर्ण के चरित्र को नवीन पृष्ठभूमि में रखकर देखा गया है। जनसामान्य् के अन्तर्द्वन्द तथा उससे होने वाली पीड़ा को कर्ण के चरित्र के माध्यम् से व्यक्त किया गया है।

इस रचना में कर्ण के चरित्र का परम्परागत रूप है कि वह सूतपुत्र होते हुए भी अपनी अदम्य इच्छा व महत्वाकांक्षा के कारण शस्त्र-संचालन मे नैपुण्य-अर्जन हेतु सन्नद्ध होता है। एकलब्य की भाँति वह एकाकी ही इस उदात्त लक्ष्य की ओर अग्रसित होता है। उसकी लगन व निष्ठा से प्रभावित होकर ही परशुराम उसे यह जानते हुए भी कि वह ब्राह्मण नहीं सूर्यांश कर्ण है, जो माता के अज्ञानता के ताप से विदग्ध हो रहा है, शस्त्र-विद्या की शिक्षा प्रदान करते हैं।-1 इसी कारण वे कर्ण को अपना शिष्यत्व गुप्त रखने की सलाह भी देते हैं।-2 सूतपुत्र होने के कारण कर्ण द्रोण से भी शिक्षा नहीं प्राप्त कर सकते थे, अतः वे छिप-छिपकर राजपुत्रों को सिखाये जाने वाले अस्त्र-शस्त्र संचालन की प्रक्रिया को देखते तथा रात्रि के गहन अन्धकार में जब समस्त जग निद्रा के आगोश में अपना दुःख, दर्द भूलकर शान्ति से सोता था, उस समय कर्ण एकाकी अस्त्र-शस्त्र विद्या के अभ्यास में निरत होते-

रात भर सोता नहीं था कर्ण,
करता शर संधान अँधेरे वन में।-3

"सूर्यपुत्र" में भी पूर्ववर्ती रचनाओं की ही भाँति जातिगत् वैषम्य की पीड़ा से त्रस्त मानव के रूप में कर्ण का चरित्रांकन हुआ है। "जयभारत" "रश्मिरथी" तथा "सेनापति-कर्ण" में कर्ण द्वारा जाति वर्ण-वैषम्य पर विद्रोह

1- सूर्यपुत्र, पृ0-39-40

2- वही, पृ0-41

3- सूर्यपुत्र- पृ0 42

प्रकट हुआ है, किन्तु इस रचना में उसकी अन्तर्व्यथा व विद्रोह भावना दोनों का ही सहज व सम्यक् रूप में अंकन हुआ है। "अंगराज" बनने के बाद भी कर्ण समाज द्वारा प्राप्त उपेक्षा व तिरस्कार को भूल नहीं पाता —

सूतपुत्र कर्ण को मिल गया विशाल राज्य,
किन्तु कर्ण रहता था उन्मन और खोया सा
मानों सुलझाता हो कोई अन्तस रहस्य
या कोई ऐसी पहेली अनबूझ, रखती थी उद्विग्न सदा उसके तन,
मन को।-1

इस काव्यकृति में कर्ण का चरित्रांकन मौलिक रूप में तत्कालीन समाज की जाति प्रथा व वर्णभेद के प्रति विद्रोही, सामन्ती मान्यताओं व छद्म व्यवहार के प्रति आक्रोश भाव संयुक्त घृणा, राग, द्वेष आदि मानवीय दुष्प्रवृत्तियों के प्रति व्यथित मानव के रूप में हुआ है। कर्ण इन सामाजिक, राजनीतिक व मानवीय दुष्प्रवृत्तियों का पूर्णतः विध्वंश का इच्छुक है।यहाँ उसमें निहित समाजोद्धार की भावना का भी प्रकटन हुआ है। आधुनिक युग की नव्य-चेतना के प्रभाव-स्वरूप आधुनिक युग में सामाजिक दुष्प्रवृत्तियों का विखंडन हुआ है। परम्परागत रूढ़ियों को ध्वस्त करते हुए मानवतावादी चेतना सर्वत्र व्याप्त हुई। "सूर्यपुत्र" के कर्ण के चरित्र निरूपण पर इस नव्य चेतना का प्रभाव है। "सूर्यपुत्र" में उसके मनोद्गारों को प्रकटन उसकी उदात्तता का परिचायक है-

लगते थे उसे व्यर्थ जाति-पाँति, वर्ण-भेद
थोथी लगती थीं ये मान्यतायें, सामन्ती
X X
चाहता था ध्वंश इन रुग्ण परम्पराओं का
दूषित मनोकामना और घृणा, राग-द्वेष का।-2

1- सूर्यपुत्र, पृ0-54

2- वही, पृ0-57-58

जगदीश चतुर्वेदी ने कर्ण के दानी रूप को नवीन अभिव्यक्ति दिया है। "सूर्यपुत्र" में कर्ण जननायक के रूप में चरित्रांकित हुए हैं, जो समाज के निर्धन व कमजोर वर्ग की मुक्तहस्त सहायता करता है, रूग्ण लोगों को औषधि प्रदान करता है। वह अपने शरीर का वस्त्र तक समाज के निर्धन लोगों में बाँट देता है। ऐतिहासिक रूप में ऐसा उदाहरण केवल "हर्षवर्धन" जैसे महान सम्राट का ही रहा है। कर्ण का यह जननायक-रूप उसके उदारता, संवेदनशीलता व दयालु व्यक्तित्व का ही निरूपण करता है -

पूजा के बाद लुटा देते थे सम्पूर्ण धन
शिशुओं को बाँटते थे औषधियाँ
कर्ण की यह प्रतिज्ञा थी कि
रोज हो जाऊँगा निर्धन वस्त्र-हीन
उन तमाम निर्धनों में से एक
पहनूँगा वस्त्र माँगकर माता से।-1

आधुनिक युग में राजतन्त्रीय व्यवस्था की तुलना में प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के महत्ता की स्थापना हुई। प्रजा के अधिकारों व स्वत्व के प्रति नवीन चेतना का उन्मेष हुआ। "सूर्यपुत्र" में कर्ण का चरित्रांकन प्रजातंत्र के समर्थक प्रजापालक राजा के रूप में ही हुआ है। वह प्रजा से प्राप्त धन को पुनः प्रजा तक पहुँचाना चाहते हैं। इसे व्यावहारिक रूप देते हुए वे प्रजा में उनसे प्राप्त धन का वितरण कर देते हैं। वे कहते हैं-

उतना ही आ जाता है राजमहल में
जहाँ से आता है
मैं उन्हीं को बाँट देता हूँ।-2

1- सूर्यपुत्र, पृ0-60-61

2- वही, पृ0-62

"सूर्यपुत्र" में महादानी, समाज-सेवक, प्रजा-पालक कर्ण के चरित्र का एक अन्तरंग पक्ष है- अर्जुन तथा द्रौपदी के अपमानों व आत्मताप से विदग्ध मानव का रूप, जिसे कवि ने मार्मिकता से चित्रित किया है। उसके इस अनुताप की "सूर्यपुत्र" में मौलिक अभिव्यंजना हुई है। कर्ण अर्जुन द्वारा 'सूत-पुत्र' कहकर किये गये अपमान व मत्स्य -वेधन के अवसर पर द्रौपदी द्वारा 'सारथी-पुत्र' कहकर की गई भर्त्सना के कारण आजीवन इसकी पीड़ा को अपने मन से न निकाल सकाः-

नहीं भूल पाता था कर्ण
वह आग जो प्रज्वलित की थी अर्जुन ने
वर्षों पूर्व बार-बार 'सूतपुत्र' कहकर
X X X
नहीं भूल पाता था कर्ण आत्मताप जो दिया था,
उसे द्रुपद सुता कृष्णा ने 'सारथी-पुत्र' कहकर।-1

जगदीश चतुर्वेदी ने इस रचना में कर्ण का चरित्रांकन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा अधिक मनोवैज्ञानिक व मानवीय रूप में किया है। पूर्ववर्ती रचनाओं की भाँति वह माँ कुन्ती के समक्ष कठोर व रूक्ष रूप में नहीं आता, अपितु यह ज्ञात होने पर कि वह कुन्ती का पुत्र है, सामान्य संवेदनशील व भावुक मानव सदृश अपरिमित प्रसन्नता से ओत-प्रोत हो उठता है। कर्ण शिशुभाव से समन्वित हो सहज भाव से माँ कुन्ती से पूछता हैः-

हूँ मैं क्षत्रिय और सभी मुझे सूत-पुत्र कहते हैं।
उतना ही शौर्यवान क्षत्रिय पुत्र हूँ न माँ।
जितने हैं धर्मराज, अर्जुन या सहदेव।-2

1- सूर्यपुत्र, पृ0 68

2- वही, पृ0 66

कर्ण केवल अपनी आत्मव्यथा का प्रकटन ही माँ कुन्ती के समक्ष कर पाता है। वह सामान्य भाव से अपनी व्यथा को माँ के समक्ष रखता हुआ, माँ द्वारा मिले निर्वासन् व पिता द्वारा प्राप्त अवहेलना की पीड़ा को व्यक्त करता है। यहाँ कर्ण की संवेदनशीलता का भी प्रकटन् हुआ है। वह कहते हैं:-

कितना कठोर निर्वासन् दिया गया माँ द्वारा
कितनी अवहेलना मिली है वीर पिता से,
ये न तुम समझ सकोगी कभी
और न आज इस समय तुम्हें मैं समझा पाऊँगा।-1

"सूर्यपुत्र" में परम्परागत कर्ण की तरह ही उसके दृढ़ मैत्री व दुर्योधन के प्रति कृतज्ञता का अंकन हुआ है। पूर्ववर्ती रचनाओं में भी उसके इस रूप की व्यंजना हुई है। कर्ण अपने सगे भाइयों व माता की तुलना में दुर्योधन का पक्ष लेने के लिए विवश होता है, क्योंकि दुर्योधन ही उसे सूतपुत्रत्व की अपमान जनित स्थिति से मुक्ति प्रदान करके बन्धुत्व तथा राजकीय प्रतिष्ठा से अभिमंडित करते हैं। इस कृतज्ञता के फलस्वरूप वह अविचलित भाव से दुर्योधन के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त करता है:-

युद्ध तो निश्चित है और पक्ष भी है सुनिश्चित
दुर्योधन के हितार्थ।
कम से कम दिया उसने मुझे बन्धु का स्नेह
दी मुझे प्रतिष्ठा, एक राजकुल पोषित सा।-2

इस रचना में कर्ण की संवेदनशीलता तथा स्वत्व के प्रति अदम्य इच्छा का मार्मिक प्रकटन उस समय परिलक्षित होता है, जब वे माँ कुन्ती

1- सूर्यपुत्र, पृ0 79

2- वही, पृ0 81

से स्वयं को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करने का आग्रह करते हैं। उनका यह रूप "सूर्यपुत्र" की मौलिकता है। पूर्ववर्ती रचनाओं में "रश्मिरथी" में ही उनके इस रूप की किंचित अभिव्यंजना प्राप्त होती है। "सूर्यपुत्र" में माँ कुन्ती से कहता है:-

और जीवित रह जाऊँ, मैं
तो आना तुम मिलने वीर माँ की तरह
इस तरह गोपनीय, निर्जन तट पर नहीं
करना अभ्यर्थना सार्वजनिक रूप से
देना मुझे मातृ-स्नेह।-1

कर्ण के चरित्र के अन्तर्द्वन्द व उसके मन में चल रहे महाभारत की नवीन अभिव्यंजना इस प्रबन्ध-कृति में हुई है। "रश्मिरथी" में कर्ण द्वारा युद्ध के औचित्य-अनौचित्य पर प्रश्न चिह्न लगा है, किन्तु "सूर्यपुत्र" में कर्ण अपने ही स्वरूप के प्रति प्रश्नाकुल है। कर्ण अपने ही भाइयों के साथ युद्ध करने के प्रश्न पर उदिग्न हो उठता है। उसे लगता है कि वह स्वयं में महाभारत लड़ रहा है। कर्ण अपनी घृणा, द्वेष आदि मानवीय दुर्बलता तथा पांडु-पुत्रों के विनाश की इच्छा के प्रति प्रश्नाकुल हो, आत्म-चिन्तन करता है:-

कर्ण का चेहरा था मौन विचारों में लीन,
चुप सा दिखता था पर भीतर तक उदिग्न।-2
× × ×
घृणा से सरोबार क्यों घूमता विपन्न बना,
क्यों मैं चाहता हूँ पाण्डु पुत्रों का विनाश।-3

1- सूर्यपुत्र, पृ0-79

2- वही, पृ0-81

3 वही, पृ0-90

एकलव्य

भारतीय वाङ्‌मय में एकलव्य का चरित्र उदात्त होते हुए भी उपेक्षित रहा। वीर तथा महत्वाकांक्षी होने के बावजूद वर्ण-व्यवस्था, जाति-भेद की रूढ़ियों ने उस धनुर्धर के महान त्याग को वर्णित होने से रोके रखा, क्योंकि वह निषाद पुत्र था। महाभारत काल में यह वर्णव्यवस्था अपने चरम सीमा पर रही होगी, तभी तो एकलव्य जैसे वीर धनुर्धर का सम्मान करने के बजाय उसका अँगूठा ही कटवा लिया गया, वह भी न दिये गये शिक्षा के गुरुदक्षिणा के रूप में। एक तरफ तो गुरु द्रोण एकलव्य को अनार्य होने के कारण, धनुर्विद्या की शिक्षा देना अस्वीकार कर देते हैं। "महाभारत" के संभव पर्व में एकलव्य की इस कथा का संक्षिप्त अंकन हुआ है। संभव पर्व के 131वें अध्याय में वर्णित है कि- आचार्य द्रोण के पास अस्त्र-विज्ञान सीखने का इच्छुक नरपति निषाद धन्वा हिरण्य का पुत्र एकलव्य आया। धर्मज्ञ द्रोण ने निषाद समझकर उसका प्रतिकार किया। कुरु पुत्रों का ध्यान रखकर उसे शिष्य नहीं बनाया। एकलव्य वन में गुरु की मृण्मयी मूर्ति रचकर परमोच्च भावना से अस्त्र कला सीखने लगा।------- वह गुरु द्रोण द्वारा दायाँ अँगूठा माँगने पर निर्विकार भाव से काटकर उन्हें समर्पित कर देता है।-1 समग्रतः परम्परागत रूप में एकलव्य के उदात्त चरित्र का अंकन नहीं हो सका है। एकलव्य जैसे महान कर्मनिष्ठ, अद्वितीय धनुर्धर व महान त्यागी के चरित्र की परम्परागत रूप में उपेक्षा ही होती रही।

आधुनिक युग की मानवतावादी विचारधारा तथा बौद्धिक चेतना के फलस्वरूप परम्परागत सामाजिक व धार्मिक रूढ़ियाँ विखंडित हुई, छुआछूत,

---

1- ततो निषादराजस्य हिरण्य धनुषः सुतः। एकलव्यो महाराज द्रोणमभ्याजगाम् ह।।31।। न स ते प्रति जग्राह नौषादि रिति चिन्तयत्। शिष्यं धनुषि धर्मज्ञ स्तेषामेवान्ववेक्षया।।32।। स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परंतपः। अरण्य मनु सम्प्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम्×।।33।। तास्मेन्नाचार्यवृत्तिं च परमामास्थितस्तदा। इण्वस्त्रे योग मातस्थे परं नियममास्थितः।।34।। छित्वा विचार्य ते प्रादाद् द्रोणयाड·गुष्ठमात्मनः।।58।। - महाभारत, आदि पर्व का सम्भवपर्व, अध्याय-131, पृ0- 912-916

जाति-प्रथा व वर्ण वैषम्य जैसे मिथ्याडम्बरों के प्रति मानवीय संवेदना का उन्मेष हुआ। आर्य - अनार्य, ब्राह्मण शूद्र तथा उच्च- निम्न वर्ग के पुरातन द्वन्द के प्रति मानवतावादी व बौद्धिक चेतना के कारण नवीन दृष्टिकोण जाग्रत हुई। मानव को मानव होने के कारण, उसके कर्मों के आधार पर महत्ता प्राप्त हुई। नव-चेतना के कारण आधुनिक काव्य के छायावादोत्तर युग में एकलव्य के उपेक्षित चरित्र को समुचित स्थान व महत्ता प्राप्त हुई। छायावादोत्तर "नयी कविता" में उसे उपेक्षित प्रतिभा, एकनिष्ठ दृढ़ उद्देश्य व महान त्याग के प्रतीक रूप में निरूपित किया गया है। एकलव्य के चरित्रोद्धार के लिए उसे प्रथमतः नायक के रूप में वर्णित किया गया। आधुनिक काल से पूर्व निम्नवर्ण के चरित्रों को नायकत्व नहीं प्राप्त हुआ था, वह अधिकार उच्च वर्ग के पात्रों तक सीमित रहा। किन्तु "आज के युग में महाकाव्य के नायक की महानता का मानदंड बदल गया है। इसलिए वर्मा जी का एकलव्य जैसे निषाद-पुत्र को महाकाव्य में नायक का पद देना अनुचित नहीं है।"-1

रामकुमार वर्मा द्वारा 'एकलव्य' को नायक रूप में लेकर "एकलव्य"-२ प्रबन्ध-कृति की रचना हुई। इसके पश्चात् विनोदचन्द्र पाण्डेय कृत "गुरुदक्षिणा"-३ तथा "एकलव्य"-५,५ शीर्षक राजेश्वर मिश्र व शोभानाथ पाठक की रचना प्राप्त होती है। इन सबमें एकलव्य नायक रूप में चरित्रांकित हुआ है। इन प्रबन्ध-कृतियों के अतिरिक्त एकलव्य का छिटपुट रूप में यत्र-तत्र चित्रण हुआ है।

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डॉ0 गोविन्द राम शर्मा, पृ0435

2- एकलव्य - रामकुमार वर्मा, रचना-1958 ई0

3- गुरुदक्षिणा- विनोदचन्द्र पाण्डेय, प्रकाशन-1962 ई0

4- एकलव्य- राजेश्वर मिश्र प्रकाशन 1962 ई0

5- एकलव्य- शोभा नाथ पाठक प्रकाशन, 1983 ई0

रामकुमार वर्मा जी ने एकलव्य के परम्परागत् चरित्र का नवीन बौद्धिक व तर्कसंगत दृष्टिकोण से निरूपण किया है। इस रचना में एकलव्य के विद्रोह, स्वाभिमान, चिन्तन तथा अन्तर्दन्द में चिन्तन की आधुनिक दृष्टि है। इस रचना में एकलव्य आधुनिक जाग्रत युवा प्रतीत होता है। वर्मा जी ने एकलव्य को संघर्षशील युवा, स्वत्व बोध युक्त विद्रोही, निरंकुश राजतन्त्र का विरोध करने वाले, अहिंसावादी, मानवतावादी तथा जातिगत वैषम्य का विरोध करने वाले युवक के रूप में चरित्रांकित किया है। "महाभारत" में एकलव्य के चरित्र में केवल गुरुभक्ति का ही परमोज्ज्वल प्रकाश देखने में आता है, किन्तु "एकलव्य" में गुरुभक्ति के साथ-साथ उसकी मातृभक्ति और दीन-दुखियों के प्रति सहानुभूति आदि की सुन्दर व्यंजना हुई है।"-1 आधुनिक नव-चेतना का स्पष्ट प्रभाव एकलव्य के चरित्रांकन पर है।

"एकलव्य" में परम्परागत रूप में एकलव्य के गुरुभक्ति का निरूपण हुआ है। वह द्रोण दारा धनुर्वेद की शिक्षा देना अस्वीकृत कर दिये जाने पर उनके मृण्मयी मूर्ति का निर्माण कर, उस मूर्ति की आराधना कर धनुर्विद्या की साधना करता है। अर्जुन दारा द्रोण पर पक्षपात का आरोप लगाने पर, वह अर्जुन की कड़ी भर्त्सना करता है। यहाँ उसकी परम्परागत् गुरुभक्ति ही मुखर हुई है। वह गुरु-प्रण-पूर्ति हेतु ही अन्ततः अंगुष्ठदान तक कर देता है—

गुरु का हृदय खंड-खंड हो, असंभव। दक्षिणांगुष्ठ ही ही हो खंड-2 मेरा जो कि।
पार्थ को बना दे अदितीय धन्वी विश्व में, गुरु-प्रण-पूर्ति करे सब काल के लिए।-

वर्मा जी ने एकलव्य का चरित्रांकन मौलिक रूप में संघर्षशील युवक के रूप में किया है। एकलव्य के मन में धनुर्विद्या के प्रति तीव्र लगन होता है। वह द्रोण के सम्मुख जाकर सीधे-2 उनका शिष्यत्व माँगता है। प्रथमतः द्रोण उसे

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डाॅ0 गोविन्दराम शर्मा, पृ0-429

2- एकलव्य- डाॅ0 रामकुमार वर्मा- पृ0 181

धर्नुविद्या में आने वाली अड़चनों तथा कठिनाइयों का बोध कराते हैं, किन्तु एकलव्य प्रत्येक कठिनाइयों का सामना करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ रहता है। यहाँ उसके आत्म विश्वास, लगन तथा निष्ठा के साथ-2 संघर्षशील व्यक्तित्व का ही प्रकटन होता है। एकलव्य कहता है-

सेवा में समिधा लाया हूँ मैं निज अस्थि की।
ब्रह्मचर्य -साधना को स्तम्भ बना लूँगा मैं।
धन्वा के समान देव! पद में झुका हूँ मैं,
ग्रन्थिहीन धारणा ही, खिंचेगी प्रत्यंचा -सी।
यदि लक्ष्य - वेध में न सफल बनूँ मैं तो,
काट के समर्पित करूँगा करांगुष्ठ मैं।-1

आधुनिक बौद्धिक व तार्किक चेतना के फलस्वरूप एकलव्य के परम्परागत् रूप की मौलिक व्याख्या हुई। इस रचना में एकलव्य के चरित्र-निरूपण का नवीन पक्ष है,उसका शिक्षा के क्षेत्र में पक्षपात के प्रति विद्रोह-भावना। गुरुद्रोण जब एकलव्य को इस कारण धनुर्विद्या की शिक्षा देना अस्वीकृत करते हैं, क्योंकि उस समय शिक्षा का अधिकार केवल भूमिपति सवर्णों को ही था। शिक्षा के क्षेत्र में भूमिपति व भूमि पुत्रों के मध्य वैषम्य भावना एकलव्य के विद्रोह को जाग्रत करता है। भूमिपुत्र होने के कारण एकलव्य को शिक्षा से वंचित कर दिया जाता है। इसकी भर्त्सना करते हुए एकलव्य कहता है-

भूमिपति वे सही प्रशासक हों भूमि के,
किन्तु क्या सरस्वती का शासन करेंगे वे?
राजदंड तो विधान करता है राज्य का,
किन्तु है सरस्वती निवासिनी हृदय की।-2

1- एकलव्य -रामकुमार वर्मा, पृ0- 181

2- वही, पृ0-102

यही नहीं मूल-देशवासी होते हुए भी जातीय वैषम्य के प्रति एकलव्य के विद्रोहात्मकता का प्रकटन रामकुमार वर्मा जी ने नवीन रूप में किया है। जातिगत् वैषम्य के कारण शिक्षा से वंचित किये जाने के कारण गहरी आत्मव्यथा व अन्तर्द्वन्द को सहन करता है। उसके अन्दर जातीय-वैषम्य के प्रति तीव्र आक्रोश प्रस्फुटित होता है। वह कहता है-

हमने सहन की है वर्ग की विगर्हणा,
शूद्र कहलाते रहे सेवा भाव मान के।
किन्तु जब मानव को विद्या का निषेध हो,
बात क्या नहीं है क्रान्तिकारी बन जाने की। -1

एकलव्य ऐसे राज्य व्यवस्था का विनाश चाहता है। आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में एकलव्य के इस स्वरूप का अंकन प्रथमतः हुआ है। आधुनिक बौद्धिक तथा यथार्थवादी चेतना का स्पष्ट प्रभाव एकलव्य के चरित्र-निरूपण पर है। निषाद पुत्र एकलव्य की जागरूकता तथा स्वत्वबोध ही उसे वर्ण-वैषम्य तथा शिक्षा में विभेद करने वाले राजनीति के विनाश का साहस प्रदान करती है। एकलव्य कहता है कि शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति का स्वार्थमय हस्तक्षेप उसी का विनाश कर देता है—

ऐसी राजधानी का विनाश होगा शीघ्र ही,
जो महर्षियों को राजनीति से चलाती हैं।
जिसने किया है भेद मानव के पुत्रों में,
भूमिपति, भूमिपुत्र वर्ग हो गये हैं दो। -2

आधुनिक नव-जागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न मानवतावादी तथा बौद्धिक चेतना के फलस्वरूप समाज के जातीय तथा वर्गगत् वैषम्य का विखंडन

1- एकलव्य- रामकुमार वर्मा, पृ0 121

2- वही, पृ0 109

हुआ तथा मानव के प्रति समानतावादी भावना का उन्मेष हुआ। "एकलव्य" में भी एकलव्य द्वारा अपने स्वत्व के प्रति अधिकार बोध तथा भूमिपतियों के प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है। एकलव्य कहता है-उसमें भी अर्थात् निम्नवर्ग में भी शक्ति होती है, और यह शक्ति है उनके आत्मबल की शक्ति; जिसके समक्ष भूमिपतियों का पशुबल नगण्य व तुच्छ है —

सावधान! भूमिपति! हममें भी शक्ति है,
भूमिपुत्र सर्वदा है भूमिबल- जानते।
पशुबल कौशल तो सीमित तुम्हारा है,
आत्मबल की हमारे पास सीमा है नहीं।-1

इस रचना में एकलव्य के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उसका स्वाभिमान व स्वजाति के प्रति गर्व की भावना। एकलव्य 'भूमिपुत्र' होने के कारण व्यथित नहीं होता, प्रत्युत स्वयं पर गर्व करता है। वह भूमिपुत्र होना अपना सौभाग्य मानता है। भूमिपतियों की तुलना में भूमिपुत्रों की श्रेष्ठता को सिद्ध करते हुए वह कहता है-

भूमिपुत्र होना, मेरे भाग्य का सुयोग है,
भूमिपति में तो मुक्त मानव विकृत है।
मूल्य नहीं जानते वे जीवन की गति का,
सुख है निषेध जैसा, दुःख लम्बी दृष्टि है।
अरे, यह जीवन विभूति ही है, भूमाकी,
सुख तो छिपा है यहाँ सृष्टि के विविर में।-2

1- एकलव्य-डॉ० राम कुमार वर्मा- पृ० 109

2- वही, पृ०- 115

वर्मा जी ने एकलव्य का चरित्रांकन गाँधीवादी अहिंसावाद से प्रभावित जीव प्रेमी मानव के रूप में किया है। एकलव्य एक तरफ जहाँ अस्त्र विद्या की उपयोगिता दस्युवर्ग, नीचों व दुष्टों के उन्मूलन हेतु आवश्यक मानते हैं, वहीं वन के निरीह पशुओं को हिंस्त्र पशुओं की हिंसा से बचाने तथा उनकी सुरक्षा हेतु सन्नद्ध रहते हैं। एकलव्य का यह चरित्र उसके उदात्तता का ही द्योतक है। वह कहता है-

हिंस्त्र पशुओं से प्रताड़ित हुए जीव जो,
इस वन में महान कष्ट नित्य पाते हैं।
उनकी सुरक्षा सदा करता रहूँगा मैं,
शिक्षा का प्रयोग इस भाँति होगा नित्य ही।।-1

इस रचना में एकलव्य के चरित्रांकन का मौलिक पक्ष है- उसका मानवतावादी रूप। वह मानव जाति की श्रेष्ठता उसके मानवतावादी स्वरूप में मानता है। जो दानव को भी मानव बनाने में सक्षम हो। मानवों में समानता की स्थापना कर सके। एकलव्य मानव के निरंकुश शक्ति की अपेक्षा उसके मानवतावादी चरित्र की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए कहता है-

सेवक बनाया हमें किस अधिकार से?
इसलिए कि शक्ति में उन्हें यश प्राप्त है।
किन्तु शक्ति मानव की, देव! दानवी नहीं,
मानव की शक्ति तो महान तब होती है,
जब वह दानव को मानव बना सके,
और सब मानवों में साम्य की हो स्थापना।-2

"एकलव्य" में सर्वप्रथम अनार्यों के लिए शिक्षा के निषेध के कृत्य की मौलिक व तार्किक दृष्टिकोण से आलोचना हुई है। एकलव्य सोचता है

1- एकलव्य - रामकुमार वर्मा, पृ0-111

2- वही, पृ0- 121

कि अछूत वर्ग के स्पर्श से क्या सवर्णों के अंग, कुअंग बन जाते हैं। जब सम्पूर्ण अंग एक ही समान होते हैं तब ब्राह्मण व शूद्र के मध्य विभेद क्यों? यही नहीं वह अनार्यों के लिए शिक्षा के निषेध के सन्दर्भ में नवीन प्रश्न उठाता है। एकलव्य कहता है कि राजनीति के खिलाड़ियों को भय रहता है कि यदि शूद्र धनुर्वेद के अधिकारी हो गये तो भारत के आदिम निवासी नवोदित आर्य वर्ग पर भारी पड़ जायेंगे। यहाँ एकलव्य के अधिकार-बोध की नवीन दृष्टि भी परिलक्षित होती है। वह कहता है-

शूद्र धनुर्वेद अधिकारी यदि हो गये,
तो करेंगे क्षत्रियों को रण में पराजित।
क्योंकि अभी क्षत्रियों का मात्र नवोदय है,
और शूद्र भारत के आदिम निवासी है।-1

इस प्रबन्ध-रचना में आर्यों तथा अनार्यों के प्रति नवीन दृष्टिकोण की व्यंजना हुई है। परम्परागत रूप से निम्न माने जाने वाले समाज के अशपृश्य तथा शूद्र वर्ग के प्रति नवीन बौद्धिक व तार्किक चेतना का उन्मेष हुआ। परम्परा से हटकर उन्हें यथार्थवादी दृष्टिकोण से जाँचा-परखा गया। एकलव्य के चरित्रांकन पर इसी नव-चेतना का प्रभाव है। जागरूक तथा दलित वर्ग के प्रतिनिधि सदृश एकलव्य आर्य कहे जाने वाले भूमिपतियों की भर्त्सना करता है, जोकि बाहर से आकर यहाँ के मूल-देशवासियों को रंगभेद के कारण दबाते रहे। अपनी हिंसक प्रवृत्ति से शान्ति-प्रिय लोगों को निम्न श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया -

शूद्र कहा हम मूल देशवासियों को क्यों,
इसलिए कि ये आर्य गौर वर्ण वाले हैं।

1- एकलव्य- रामकुमार वर्मा, पृ0-121

और हम श्याम वर्ण, वन्यवेश धारी हैं।

अत्याचार सहते हैं, इसलिए शूद्र हैं?

आक्रमणकारी कौन? आर्य! वे क्या आर्य हैं?

जोकि शान्ति प्रेमी जनों के लिए कृतान्त हैं?

अपने को आर्य कहा और हमें हिंसा से-शूद्र कहा,

पैरों तले मर्दित किया सदा।-1

यही नहीं एकलव्य आर्यों के स्वार्थपरता के प्रति अपनी विद्रोह भावना प्रकट करते हुए कहता है कि आततायियों को शूद्र मानकर हमें स्वयं को आर्य कहना चाहिए था —

चाहिए तो यह था कि आततायियों को ही,

शूद्रमान, हम आर्य अपने को कहते ।-2

गुरुदक्षिणा के नाम पर एकलव्य के चरित्र में एक नयी विद्रोहात्मकता व जागरूकता है। एकलव्य यदि अंगुष्ठ दान के जाल में न फँसता तो वह समाज का नया दिशा-निर्देशक बन सकता था। एकलव्य में वर्ग-संघर्ष के धरातल पर उभरने वाली एक क्रान्तिकारी चेतना है, जो निम्नवर्गों व दलित वर्गों में क्रान्ति का मन्त्र फूँकने में सक्षम है। ऐसे महान चारित्रिक गुणों से सम्पन्न एकलव्य के शौर्य, पराक्रम व कौशल को राजनीति के दाँव-पेंच में फँसाकर नष्ट कर दिया गया, उसकी प्रतिभा को कुचल दिया गया। डॉ0 मोहन अवस्थी के शब्दों में_ "गुरुद्रोण एकलव्य को मात्र इसलिए ही विद्यादान नही करते कि वे शूद्र है, अपितु इसका कारण है आर्यों की अनार्य जातियों पर शासन की लालसा।"-3 और जब एकलव्य ने अपनी साधना से एकाकी

1- एकलव्य- रामकुमार वर्मा- पृ0 121 2- वही पृ0 121

3- वीणा पत्रिका अंक-4 §सम्पादक-कमला शंकर मिश्र§ जीवन्त महाकाव्य "एकलव्य"-मोहन अवस्थी, पृ0 172

ही संघर्षरत् हो, धनुर्विद्या में महत् कौशल अर्जित करने मे समर्थ हो गया तब उसे राजनीति के कूटनीति ने 'गुरुदक्षिणा' के रूप में अँगुष्ठदान माँगने वाला गुरु बनकर निगल लिया। एकलव्य आर्य जाति के कूटनीति का शिकार हो अपने ही हाथों अपना अस्तित्व मिटा डालता है। "एकलव्य" में एकलव्य द्रोण के अन्तर्द्वन्द्व को देखकर, स्वयं ही अंगुष्ठदान कर देता है-

गुरुमूर्ति के समीप हाथ रख दाहिना
एक ही आघात् में अंगुष्ठ काटा मूल से।-1

आदर्शवादी दृष्टिकोण से एकलव्य के चरित्र का यह उदात्त पक्ष है, किन्तु यथार्थवादी व तार्किक दृष्टिकोण से यह उसके मानवीय दुर्बलता का द्योतक है। डॉ0 मोहन अवस्थी के अनुसार-"गुरु द्रोण के मुख से कवि ने अँगुष्ठ की याचना न करवाकर उनकी वाणी में ऐसा रूपक उपस्थित किया है कि एकलव्य उसकी व्यंजना पर कार्य करता है।"-2 किन्तु डॉ0 गोविन्द राम शर्मा इसके पीछे दूसरा ही तर्क देते हैं। वे कहते हैं-"अछूतों तथा दलित वर्ग को विशेष सहानुभूति प्रदान करने वाला आज का समाज एक योग्य गुरु से शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्सुक निषाद बालक के प्रति गुरु के इस अन्याय को कदापि सहन नहीं कर सकता।"-3 इस कारण भी "एकलव्य" में एकलव्य द्वारा स्वयं 'अंगुष्ठदान' की घटना का निरूपण हुआ है। नैतिकता व आदर्श के नाम पर गुरु-भक्ति का सहारा लेकर भले ही इस कृत्य के औचित्य को सिद्ध किया जाय, किन्तु यथार्थ के धरातल पर रखकर यदि इसे देखा जाय तो एकलव्य ने झूठे भावना के समुद्र में स्वयं को डुबो दिया। जब जीवित द्रोण ने शिक्षा ही नहीं दी तो वे गुरुदक्षिणा के अधिकारी भी नहीं हो सकते थे। मृण्मयी द्रोण को एकलव्य ने गुरु मानकर धनुर्विद्या की साधना की थी, और मृण्मयी द्रोण ही गुरुदक्षिणा के अधिकारी हो सकते थे।

1- एकलव्य, पृ0-181
2- वीणा पत्रिका-जीवन्त महाकाव्य "एकलव्य"- मोहन अवस्थी, पृ0173
3- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डॉ0 गोविन्दराम शर्मा, पृ0428

समग्रतः "एकलव्य" में रामकुमार वर्मा जी ने एकलव्य का चरित्रांकन आधुनिक विद्रोही, जागरूक, स्वत्व के प्रति सचेत, बौद्धिक तथा मानवतावादी मानव के रूप में किया है। उसमें चारित्रिक उदात्तता के साथ-2, मानवीय संवेदनशीलता व भावुकता भी है। एकलव्य के चरित्रोत्कर्ष के दृष्टि से वर्मा जी की यह काव्य-कृति विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है।

"एकलव्य" के पश्चात् एकलव्य के चरित्र पर आधारित दूसरी प्रबन्ध-कृति विनोद चन्द्र पाण्डेय कृत "गुरु-दक्षिणा" है। एकलव्य के चरित्र पर केन्द्रित इस रचना में एकलव्य का चरित्रांकन आधुनिक बौद्धिक, तार्किक व मानवतावादी दृष्टिकोण से हुआ है। पाण्डेय जी ने उसे लोकनायक, जातिगत् वैषम्य के विरोधी, कर्मवादी, मानवतावादी, अहिंसावादी तथा संवेदनशील मानव के साथ-2 संघर्षरत् विद्रोही मानव के रूप में भी निरूपित किया है। रामकुमार वर्मा जी ने "एकलव्य" में भूमिपति व भूमिपुत्र के संघर्ष को उभारा है, किन्तु "गुरुदक्षिणा" में पाण्डेय जी ने दलित व उपेक्षित वर्ग व उच्च वर्ग के मध्य सघर्ष को केन्द्र बिन्दु बनाया है। विनोदचन्द्र पाण्डेय "गुरुदक्षिणा" की भूमिका में लिखते हैं- "दलितों तथा उपेक्षितों के आदर्श! तुमने निम्नवर्ग में जन्म लेकर भी निरन्तर सघर्ष करते हुए अपनी योग्यता के आधार पर जिस उन्नत पथ की प्राप्ति की, निश्चय ही उच्च वर्ग वालों के हेतु ईर्ष्या की वस्तु हो सकती है।"-1 "गुरुदक्षिणा" का एकलव्य जन्म से ही कौशल-युक्त होता है। एकलव्य की मानवतावादी भावनायें अपने कल्याणमयी, मंगलमयी किरणों को दलितों व उपेक्षितों के पीड़ा को हरने के लिए बिखेरती रहती थीं।

"गुरुदक्षिणा" में एकलव्यकाचरित्रांकन मौलिक रूप में उपेक्षित व दलित वर्ग के नायक के रूप में हुआ है। एकलव्य दीन-दुखियों व असहाय

1- गुरुदक्षिणा- विनोदचन्द्र पाण्डेय, भूमिका में कवि - पृ0-4

व्यक्तियों की सहायता करता है, उनकी पीड़ा व वेदना दूर करने का प्रयत्न करता है। यही नही वह पशु-पक्षियों तक के अहित को नही देख सकता। वर्माजी ने भी एकलव्य के जीव-प्रेमी चरित्र का निरूपण किया है, किन्तु इस रचना में एकलव्य जन-जन के प्रति समर्पित उपेक्षित वर्ग के नायक हैं-

दीनों, दुखियों, असहायों पर, सदा दया करता था,
उनकी पीड़ा और वेदना, यथाशक्ति हरता था।
अपने से पशु-पक्षी का भी, अहित न होने देता।-1

इस रचना में "एकलव्य" के चरित्र का नव्य पक्ष है, उसकी जन्मजात प्रतिभा। द्रोण को गुरु बनाने के लिए जब वह हस्तिनापुर जाता है, उस समय वहाँ पर हो रहे राजकुमारों के 'शस्त्र-परीक्षा' में वह भी भाग लेता है। एकलव्य जन्मजात प्रतिभावान होता है, इसी कारण राजकुमारों के शौर्य-परीक्षण के समय अर्जुन के साथ वह पक्षी का अक्ष-वेधन करने में सफल होता है।

"गुरुदक्षिणा" में एकलव्य जाति-वैषम्य के विरोधी के रूप में चित्रित किये गये हैं। वर्मा जी के "एकलव्य" में एकलव्य भूमिपुत्र होने के कारण द्रोण द्वारा धनुर्वेद की शिक्षा से वंचित किया जाता है। "गुरुदक्षिणा" में वह सीधे-2 निम्न जाति का होने के कारण द्रोण का शिष्यत्व नहीं प्राप्त कर पाता। एकलव्य समाज की इस विभेदकारी नीति की भर्त्सना करता हुआ कहता है कि उच्चवर्ण के सदृश ही निम्नवर्ण के मानव भी सुख-दुःख का अनुभव करते हैं, उन्ही की तरह सोचते-समझते हैं, उन्हीं की तरह निम्नवर्गीय लोगों की भी इच्छा, आशा व अभिलाषा होती है, फिर मानव-मानव के मध्य विभेद क्यों होता है? एकलव्य की यह प्रश्नाकुलता व अन्तर्द्वन्द आधुनिक

1- गुरुदक्षिणा - विनोदचन्द्र पाण्डेय, पृ0-7

बौद्धिक व तार्किक चेतना से प्रभावित है। वह कहता है-

तन मन-अन्तःकरण रुधिर है, सबके सदृश हमारा।
अन्तर फिर किसलिए अकारण, गुरु ने वृथा विचारा।
सुख-दुख का अनुभव सब करते, मैं भी तो करता हूँ।
एक सदृश मस्तिष्क - भावना, बुद्धि सुधृति धरता हूँ।-1

नव-जागरण आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप आधुनिक युग में मानव की महत्ता का प्रतिपादन उसके कर्मों के आधार पर स्थापित हुआ। "गुरुदक्षिणा" में एकलव्य का चरित्रांकन कर्मवादी मानव के रूप तथा बौद्धिक वर्ण-व्यवस्था के समर्थक के रूप में हुआ है। यहाँ पर एकलव्य का चरित्र निरूपण आर्य समाज से प्रभावित है। एकलव्य कर्म प्रधान जाति व्यवस्था के समर्थक हैं। वे जन्मगत् जाति व्यवस्था का विरोध करते हुए वैदिक वर्ण-व्यवस्था को समाजोत्थान हेतु आवश्यक मानते हैं। एकलव्य कहता है-

जब तक जाति जन्मगत् होगी, कर्म प्रधान न होगा।
वैदिक वर्ण-व्यवस्था का, जग में सम्मान न होगा।
तब तक पतित समाज हमारा भी होता जायेगा।
हिन्दू-धर्म शक्ति चिर संञ्चित निज खोता जायेगा।-2

आधुनिक युग में नवीन मानवतावादी चेतना तथा गाँधीवादी आदर्शों के प्रभावस्वरूप अछूतों व दलितों के उत्थान हेतु मानवीय साम्यता की स्थापना हुई। मानव-मानव के मध्य विभेद की समाप्ति होने लगी। स्वातन्त्रोत्तर काल तक जातीय-वैषम्य समाज से काफी हद तक समाप्त हुई। "गुरुदक्षिणा"

1- गुरुदक्षिणा- विनोदचन्द्र पाण्डेय, पृ0-30

2- वही, पृ0 30-31

में एकलव्य का चरित्राकन जातीय भेदभाव के विरोधी तथा मानवतावाद के समर्थक के रूप में हुआ है। वर्मा जी के "एकलव्य" में एकलव्य-चरित्र भूमिपुत्रों व भूमिपतियों के मध्य वैषम्य के विरोधी व मानवतावाद के समर्थक के रूप में प्राप्त होता है। "गुरुदक्षिणा" में एकलव्य का मानवतावादी स्वरूप अधिक उदात्त है। वह छूत की भावना को 'पाप' की संज्ञा देते हुए, उसके दुष्परिणामों से सचेत करते हुए, मानवता की सच्ची स्थापना हेतु समता व प्रेम को आवश्यक मानता है -

छुआछूत की भेद-भावना, पाप एक है भारी।
इसका दुष्परिणाम भोगते सब हिन्दू नर-नारी।।
मानवता कहती समानता में ही सुख मिलता है।
होती प्रगति हृदय-सर में जब प्रेम-पुष्प खिलता है।।-1

"गुरुदक्षिणा" में एकलव्य का चरित्रांकन मौलिक रूप में विश्व-प्रेमी मानव के रूप में हुआ है। एकलव्य में विश्व-बन्धुत्व की उदात्त भावना निहित है। उसे मानव में ऐसे परिवर्तन की आकांक्षा होती है जो समाज व देश तक सीमित न होकर समस्त विश्व को एक सूत्र में आबद्ध करे। 'वसुधैव कुटुम्बकम' के सिद्धान्त का उन्मेष हो। एकलव्य कहता है-

वह दिन दूर नही जब जग में, उदय हमारा होगा।
बने कुटुम्ब समान विश्व यह सबका नारा होगा।-2

इस रचना में एकलव्य का चरित्राकन मौलिक रूप में गाँधीवाद से प्रभावित है। गाँधी जी ने अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करके अछूतोद्धार का महत् प्रयत्न किया था। "गुरुदक्षिणा" मे भी एकलव्य

1- गुरुदक्षिणा- विनोदचन्द्र पाण्डेय, पृ0-33

2- वही, पृ0 33

निम्न वर्गीय अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करता है तथा उन्हें समाज में उन्नत पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहता है। एकलव्य का यह चरित्र उसके उदात्तता का द्योतक है-

> जो अछूत समझे जाते हैं, हरिजन कहलायेंगे।
> यत्र तत्र सर्वत्र सफलता, उन्नत पद पायेंगे।-1

पाण्डेय जी के एकलव्य भी वर्मा जी के एकलव्य की भाँति अहिंसावादी तो हैं ही साथ ही गाँधीवादी रामराज्य की संकल्पना से भी प्रभावित हैं। "गुरुदक्षिणा" का एकलव्य स्वतन्त्रता, समानता व विश्वबन्धुत्व का समर्थक होने के साथ होने के साथ ही अहिंसा का महान पुजारी है। एकलव्य वन के वन-जीवों के प्रति कोमल भावों को तथा दयार्द्र दृष्टिकोण के कारण कभी भी उन्हें अपने बाण का निशाना नहीं बनाता। उसके इस अहिंसावादी रूप का प्रभाव वन्य-जीवों पर भी पड़ता है। वन के हिंसक जीवों का भी हृदय-परिवर्तन हो जाता है। रामराज्य की भाँति ही एकलव्य के वन में भी हिंसक व अहिसक जीव एक साथ निर्भय भ्रमण करते हैं-

> वन जीवों पर, किन्तु न उसने बाण कदापि चलाया।
> सुन्दर सा शुभ ध्येय अहिंसा का सदैव अपनाया।।
> × × ×
> उसका पड़ा प्रभाव सभी ने बैर भावना त्यागी।
> अहि, मयूर, केहरि कुरंग के हृदय प्रीति बन जागी।
> शशक, श्रृगाल, गवद, कपि लोमश निर्भय मस्त विचरते।।-2

समग्रतः "गुरुदक्षिणा" के एकलव्य का चरित्र परम्परागत् धरातल पर वर्णित होते हुए भी सर्वथा मौलिक तथा आधुनिक नव-चेतना से समन्वित है। इस रचना में एकलव्य रामकुमार वर्मा के "एकलव्य" की अपेक्षा सम-

---

1- गुरुदक्षिणा- पृ0 33

2- वही, पृ0-46-47

सामयिक जीवन-सन्दर्भो से अधिक गहराई से जुड़े हैं।

"गुरुदक्षिणा" के बाद राजेश्वर मिश्र विरचित "एकलव्य" प्रबन्ध-कृति प्रकाश में आती है। इस रचना में एकलव्य का चरित्रांकन पूर्ववर्ती प्रबन्ध-कृतियों की अपेक्षा मौलिक व उदात्त रूप में हुआ है। एकलव्य के चरित्र-निरूपण की आधुनिकता, मौलिकता तथा आधुनिक स्थितियों से जुड़ी उसकी प्रासंगिकता महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि रचनाकार स्वयं स्वीकार करता है- "आज के समाज के विभिन्न स्तरों पर दृष्टव्य असमानता की समस्या की ओर एकलव्य के ब्याज से संकेत करना मेरा उद्देश्य है- जिसके निदान के लिए मैंने ईशा, बुद्ध और गांधी की शांति और मार्क्स, लेनिन तथा सुभाष की क्रान्ति का मिश्रण कर नव्य आदर्शवाद का अर्द्धनारीश्वर प्रस्तुत किया है।"-1 इस रचना में एकलव्य का चरित्रांकन मौलिक रूप में देश प्रेमी, देशभक्त व जागरूक युवक, तथा विद्रोही जाग्रत चेतना से युक्त मानव के रूप में हुआ है, साथ ही एकलव्य के समस्या को आधुनिक भारत की चिंता से जोड़ा गया है। कवि ने एकलव्य की अन्तर्वेदना का भी मौलिक रूप में अंकन किया है।

"एकलव्य" में मिश्र जी ने एकलव्य का चरित्र-चित्रण मौलिक रूप में देश-प्रेमी मानव के रूप में किया है। एकलव्य के चरित्र में पूर्ववर्ती प्रबन्ध-कृतियों की अपेक्षा नवीन पक्ष है, उसके द्वारा अखंड भारत का सपना देखना। एकलव्य अपना आदर्श अर्जुन, भीष्म व विदुर को मानता है। वह भारत के अलग-2 भागों में बँटे राज्य को जोड़कर उसे नवीन गरिमा प्रदान करना चाहता है। आधुनिक सम-सामयिक दृष्टिकोण से एकलव्य का यह चरित्र विशिष्ट अर्थवत्ता का द्योतक है। एकलव्य कहता है-

> मैं अखड भारत का सपना, भीष्म, द्रोण का पूर्ण करूँगा,
> -ले कोदंड देश-सेवा का, अरियों का दल चूर्ण करूँगा।

1- एकलव्य- राजेश्वर मिश्र, अपनी बात में कवि

मॉ-अगों को जोड़-जोड़कर, गौरव की गरिमा रख लूँगा,

शस्य-श्यामला भारत मॉ का घाव सकल पल में भर दूँगा-1

इस रचना में एकलव्य के व्यक्तित्व पर मौलिक रूप में आधुनिक देशभक्त, जागरूक व कर्मवादी युवक के व्यक्तित्व का आरोपण है। मानव की जाति की अपेक्षा उसके कर्म को महत्ता देता है। उसे यह विश्वास है कि कर्मवीर मानव संसार के असम्भावित कृत्य को भी सम्भावित करने में सक्षम है। वह रूढ़िवादिता, जाति तथा वर्ण भेद का विरोध करता हुआ, कर्म की उपयोगिता को ही स्वीकार करता है।-2 वह सामाजिक व राजनीतिक मिथ्याडम्बरों को तोड़कर नवीन आदर्श की स्थापना करना चाहता है-

निविड़ तिमिर की घनी छाँह में, जीवन कब तक पड़ा रहेगा?

लोकवाद के महापंक में मानव कब तक सड़ा करेगा?

तोड़ किसी दिन बंधन सारा दन्द द्वेष का दमन करेगा।

राजवाद के प्रौढ़ पौर पर प्रीति-वाद का वरण करेगा।-3

रामकुमार वर्मा तथा विनोद चन्द्र पाण्डेय के एकलव्य की ही भाँति इस रचना में मिश्र जी ने एकलव्य का चरित्रांकन विद्रोही व जाग्रत चेतना युक्त मानव के रूप में किया है। वह समाज में व्याप्त छुआ-छूत, जाति व वर्णभेद आदि का तीव्र विरोध करता है। द्रोण द्वारा एकलव्य को धनुर्वेद की शिक्षा देना इसलिए अस्वीकृत कर दिया जाता है क्योंकि वह निम्नवर्गीय शूद्र जाति का था। एकलव्य इस प्रथा की भर्त्सना करते हुए कहता है कि जहाँ मानव के शिक्षण में भी जातिप्रथा अड़चन बनती है, वह देश कभी उन्नति नहीं कर सकता। वह कहता है-

---

1- एकलव्य- राजेश्वर मिश्र, पृ0 25-26

2- वही, पृ0-25

3- वही, पृ0-38

जहाँ मनुष्य के शिक्षण में भी अड़चन प्रथा बनी है,
हो सकता वह देश कभी क्या जग में भला धनी है?
भेदभाव की जंजीरों में जब तक पड़ा रहेगा,
तब तक जन के नव्योदय का पथ भी जड़ा रहेगा।-1

आधुनिक युग में नवीन बौद्धिक व तार्किक चेतना के उन्मेष स्वरूप मानवीय वैषम्यता का खंडन हुआ तथा सभी मानव को समभाव से महत्ता प्राप्त होने लगी। स्वातंत्र्योत्तर काल तक जातीय व वर्ण विभेद काफी हद तक समाप्त हुए। राजतंत्रात्मक राज्यव्यवस्था के स्थान पर लोकतन्त्रात्मक राज्यव्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ। इन सबका प्रभाव आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों के चरित्रों पर भी पड़ा। पूर्ववर्ती रचनाओं के सदृश मिश्र जी का एकलव्य भी समतावादी युवा है। वह धरती पर सभी मानव का समान अधिकार मानता है, तथा ज्ञान के क्षेत्र में सभी को समान रूप से सहभागी मानता है-

भू पर है अधिकार मनुज का सबका सदा बराबर।
ज्ञान भोग करने का साधन सबको मिला बराबर।।-2

मिश्र जी ने एकलव्य का चरित्रांकन बौद्धिक तथा मानवतावादी युवा के रूप में किया है। एकलव्य वर्णभेद तथा जातिप्रथा के समर्थकों की आलोचना कर करते हुए कहता है कि क्या एक ही पिता के दो पुत्रों का गोत्र पृथक-पृथक होता है? रूपरंग के साथ-साथ क्या उनका रक्त भी अलग-अलग रंगों का होता है? यदि नहीं तो फिर ये वैषम्य क्यों, ये भेद क्यों?-3 एकलव्य समस्त संसार में मानवतावाद का प्रसार करने का इच्छुक है। वह कहता है कि यदि मानवता को लेकर दुनिया आगे बढ़े तो समस्त संसार

1- एकलव्य- राजेश्वर मिश्र, पृ0 39

2- वही, पृ0-39

3- वही, पृ0-39

में कहीं भी अन्धकार नहीं रहेगा सर्वत्र मंगलमयी प्रकाश होगा। यहाँ एकलव्य के उदात्त मानवतावादी स्वरूप का प्रकटन हुआ है-

केवल मानवता को लेकर यदि दुनिया बढ़ जाती,
दीपक तले कभी रजनी-सी नहीं अँधेरी छाती।-1

"एकलव्य" में मिश्र जी ने प्रथमबार 'अंगुष्ठदान' माँगने वाले गुरुद्रोण के प्रति एकलव्य के आक्रोश का अंकन किया है। कवि ने एकलव्य की इस वेदना को आधुनिक भारतीय समाज में दलित वर्ग की पीड़ा से तादात्म्य स्थापित किया है। परम्परागत् रूप में गुरु के प्रति भक्ति-भावना के कारण चुपचाप अंगुष्ठदान करने वाले एकलव्य के चरित्र को कवि ने नई अभिव्यक्ति दी है। अपने अदम्य आकांक्षा के कारण द्रोण दारा तिरस्कृत होने के बावजूद एकलव्य द्रोण की मृण्मयी मूर्ति को ही सम्बल बनाकर धनुर्विद्या का अर्जन करता है। उसके इस रूप से अवगत् होने पर द्रोण के मन में कालुष्य उत्पन्न हो जाता है और वे 'गुरुदक्षिणा' के नाम पर एकलव्य से उसका अँगूठा ही माँग लेते हैं। द्रोण के इस माँग को सुनकर वह सिहर जाता है। अपनी अन्तर्व्यथा को प्रकट करते हुए वह कहता है-

क्या लुटा दूँ शाँति को ही दान के उपहार में?
कल्पना संसार को मैं पुण्य के मंझधार में,
दीन मेरे बन्धु रोते आँख में आँसू लिये,
विश्व की चिर यातना का घूँट जीवन में पिये।-2

किन्तु वह एक महान त्यागी व गुरुभक्त भी है। गुरु याचना करें और वह ठुकरा दें, यह कैसे सम्भव था। एकलव्य अपने जीवन के सम्पूर्ण उपलब्धि, आशाओं व आकांक्षाओं की बलि चढ़ा देता है, अपना अँगूठा ही

1- एकलव्य- राजेश्वर मिश्र, पृ039

2- वही, पृ0- 97

गुरुदक्षिणा में दे देता है। उस गुरु पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर देता है, जिसने शिक्षा के नाम पर केवल प्रताड़ना दी और गुरु की गरिमा को जाति-भेद, वर्ण-भेद के कठोर मिथ्याडम्बर में छिपा लिया।

समग्रतः इस रचना में एकलव्य के चरित्रोत्कर्ष के लिए कवि ने मौलिक-दृष्टिकोण का आश्रय लिया है। एकलव्य में एक तरफ क्रान्तिकारी भावनाओं का पुट है, वहीं उसमें त्याग व अहिंसावादी व्यक्तित्व का निरूपण भी श्लाघनीय है। वह मानव मात्र का ही नहीं प्रत्युत समस्त विश्व में मानवतावाद के प्रसार व विश्व-कल्याण हेतु सन्नद्ध होता है। उसके अन्दर पीड़ित प्रताड़ित मानव जाति के उद्धार व उत्थान की नवीन चेतना है।

एकलव्य के चरित्र पर आधारित प्रबन्ध-कृतियों के अनुक्रम में शोभानाथ पाठक की रचना "एकलव्य" का स्थान महत्वपूर्ण है। इस रचना में एकलव्य का चरित्रांकन नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से हुआ है। "एकलव्य" की भूमिका में शोभानाथ पाठक जी ने अपने रचना के उद्देश्य के बारे में अपने विचार को व्यक्त किया है- "छुआछूत की समस्या समाज के लिये एक अभिशाप है। इस सामाजिक संकीर्णता का शमन आवश्यक है। -----मनुष्य का मनुष्य के साथ कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।"-1 इस रचना में एकलव्य के चरित्र के परम्परागत् पक्षों को कवि ने नई अभिव्यक्ति दी है। इसमें एकलव्य का चरित्र-निरूपण जाति-पाँति के विरोधी, सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक युवा, विश्व-प्रेमी, कर्म को महत्ता देने वाले व संघर्षशील युवा के रूप में हुआ है।

1- एकलव्य- शोभानाथ पाठक, भूमिका में कवि, पृ0-7

पाठक जी ने एकलव्य के व्यक्तित्व में बौद्धिक संघर्षशील महत्वाकांक्षी युवा के चरित्र का आरोपण किया है। परम्परागत् रूप से परे एकलव्य द्रोण के अपमान से त्रस्त हो स्वयं अपनी लगन व निष्ठा से धनुर्विद्या प्राप्त करने का संकल्प लेता है। वह गुरुता को केवल श्रद्धा भावना ही मानता है, विद्यार्जन हेतु सकल्प-साधना को अनिवार्य मानता है—

गुरुता तो श्रद्धा की बात, विद्या है संकल्प साधना-1
x x x
ज्ञान प्राप्ति में लगन चाहिए, जाति-पाँति का भेद नहीं।-2

शोभानाथ पाठक ने एकलव्य का चरित्रांकन मौलिक रूप में जातीय-वैषम्य तथा उसके दुष्परिणामों के प्रति चिन्तित युवा के रूप में किया है। एकलव्य की यह चिन्ता जाति-पाँति के बंधन में पड़े आधुनिक युवा की है। इस कृति में वह स्वार्थमयी दुनिया के उन ठेकेदारों पर कठोर आक्षेप करता है, जोकि समाज में जाति-भेद, वर्ण-भेद के मिथ्या प्रथा दारा समाज में विषमता की विष बोलि बोते हैं। यही वैषम्य समाज को अवनति की ओर उन्मुख करती है। एकलव्य कहता है-

स्वार्थ-साधना में मानव ने, जाति-पाँति विष बोया
इसी विषमता के बंजर में अपना सबकुछ खोया।-3

पूर्ववर्ती रचनाओं की ही भाँति शोभानाथ पाठक ने भी एकलव्य का चरित्राकन मानवतावादी व बौद्धिक मानव के रूप में किया है। इस रचना में एकलव्य में सामाजिक- अधिकारों के प्रति जागरूकता है। आधुनिक युग में बौद्धिक व तार्किक चेतना के प्रभावस्वरूप निम्नवर्गीय जन समाज में नयी

1- एकलव्य- राजेश्वर मिश्र, पृ0 3।

2- एकलव्य- शोभानाथ पाठक, पृ0-33

3- वही, पृ0-23

जागरूकता की लहर आयी, उनमें स्वत्व-बोध की भावना का उन्मेष हुआ। एकलव्य के चरित्रांकन पर भी इस नवीन-चेतना का प्रभाव है। एकलव्य उन समस्त मानव-जाति के लोगों के सामाजिक-अधिकारों के प्रति जागरूक है, जिन्हें उनके स्वत्व व अधिकार से चिरवचित रखा गया। वह दृढ़ शब्दों में कहता है-

सबको है अधिकार धरा पर, उन्नति और अभय का।
कहीं कोई व्यवधान नहीं हो प्रश्न स्वयं निर्णय का।-1

आधुनिक युग में समाज व देश की सीमा लांघते हुए समस्त विश्व के प्रति चिन्तन दृष्टि का उन्मेष हुआ। व्यक्तिगत् समस्याओं के स्थान पर देश व विश्व की समस्याओं को उठाया गया। पाठक जी ने भी जातिगत् वैषम्य के आधार पर एकलव्य को द्रोण द्वारा शिष्यत्व प्रदान करने से इन्कार कर देने की समस्या को, देश व विश्व की समस्या से जोड़ते हुए निरूपित किया है। एकलव्य की समस्या व्यक्तिगत नहीं रह जाती, वरन् राष्ट्र व विश्व की चिन्ता बन जाती है। एकलव्य गुरु और शिष्य के सम्बन्ध को किसी भी राष्ट्र की रीढ़ मानता है। शिक्षा से ही देश का प्रबुद्ध नागरिक वर्ग तैयार होता है और शिक्षित समाज पर देश की उन्नति टिकी होती है। यदि गुरु के अन्दर ही कलुषता आ जाय तो वह देश के लिए घातक सिद्ध होता है। गुरु को समस्त देश को ध्यान में रखकर शिक्षा का प्रसार करना चाहिए न कि वर्ग-वैषम्य जाति-पाँति के मिथ्याडम्बरों में घिरकर। एकलव्य गुरु-शिष्य के सम्यक् व उदात्त सम्बन्ध को विश्व-विकास में महत्वपूर्ण मानता है—

एक गुरु शिष्य सम्बन्ध, राष्ट्र की रम्य रीढ़ है।
इस पर विश्व-विकास वज्र से भी यह दृढ़ है।-2

1- एकलव्य-शोभानाथ पाठक, पृ0-25

2- वही पृ0-25

इस रचना में एकलव्य के चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है नियतिवादी प्रवृत्ति का खडन करने वाला कर्मवादी रूप। रामकुमार वर्मा जी ने भी एकलव्य का चरित्रांकन कर्मवादी रूप में किया है. किन्तु इस रचना में एकलव्य नियतिवाद के विरोधी तथा संघर्षशील युवा के रूप में अंकित हुआ है। नियति को ही सब कुछ मानकर हताश बैठ जाना, नियति पर दोष लगाकर कर्म रहित होने की कोई अर्थवत्ता नहीं होती। कंटकाकीर्ण पथ पर चलते हुए लक्ष्य की प्राप्ति करना ही जीवन का महत् उद्देश्य होना चाहिए। एकलव्य कहता है कि वैभव-विलास के चकाचौंध में फँसकर मानव कोई लक्ष्य नही प्राप्त कर सकता, जीवन के उच्च लक्ष्यों को प्राप्त करने में कर्म का योगदान महत्वपूर्ण होता है-

> साधन पथ तो, सदा कंटकाकीर्ण रहा है।
> कर्मयोग से वही सुखद विस्तीर्ण रहा है।
> सब सपने साकार हुए हैं, कर्मयोग से।
> शक्ति अपरिमित क्षीण हुई है विभव-भोग से।-1

समग्रतः एकलव्य के परम्परागत् रूप से उपेक्षित चरित्र का मौलिक रूप में उत्कर्ष प्रदान किया गया है।

1- एकलव्य-शोभानाथ पाठक, पृ0-26

दुर्योधन

"महाभारत" की कथा पर आधृत पूर्ववर्ती प्रबन्ध-रचनाओं में दुर्योधन को खलनायक और प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परम्परागत् रूप में दुर्योधन का चरित्र राज्य लोभी, अयोग्य शासक, बड़े बुजुर्गों व गुरूओं की आज्ञा का भी उल्लघन करने वाले, पांडवों के विदेषी के रूप में प्राप्त होता है। "महाभारत" के सभापर्व में पांडवों के वैभव को देखकर वह ईर्ष्या व जलन की आग में जलने लगता हैः-

> श्रिय तयाविधां दृष्ट्वा ज्वलन्तीमिव पाण्डवे।
> अमर्षवशमापलो दहयोऽस्मत तथोचितः।।
> वाहिमेव प्रवेक्ष्यामि भक्षयिष्यामि वा विषम्।
> अपोवापि प्रवेक्ष्यामि न हि शक्ष्यामि जीवि तुम।।-1

(पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर का उस प्रकार प्रदीप्त वैभव देखकर क्रोध के वश में होकर मैं जला जा रहा हूँ, यद्यपि मैं इस प्रकार जलने के योग्य नहीं हूँ। मैं या तो आग में घुसकर जल मरूँगा अथवा जहर खा लूँगा, नहीं तो जल में ही डूबकर मर जाऊँगा, पर इस हालत में किसी तरह भी जिन्दा नहीं रह सकता।)

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में "कृष्णायन्" से लेकर "सूर्यपुत्र" तक की यात्रा में दुर्योधन के इस परम्परागत् असत् चरित्र में नव्यता व मौलिकता का समावेश भी हुआ है। उसके परम्परागत् चरित्र को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा परखा गया है, तथा बौद्धिक दृष्टिकोण से व्याख्यायित किया गया है। दुर्योधन का चरित्र विशिष्ट रूप से "रश्मिरथी", "सेनापति-कर्ण" व "अंगराज" में नवीन दृष्टिकोण से चित्रित किया गया है। "कृष्णायन" में

1- महाभारत- सभापर्व, अध्याय-43, श्लोक-26-27, पृ0-211

दुर्योधन के परम्परागत् चरित्र को भी निम्नतर बना दिया गया है। "जयभारत" में भी यही दृष्टिकोण अपनाया गया है, किन्तु मनोवैज्ञानिक परिस्थितियों का समावेश कर उसके चरित्र का परिमार्जन भी किया गया है। दुर्योधन का चरित्र "महाभारत" से परम्परागत् रूप में गृहीत हुआ है। "महाभारत" में उसका चरित्र प्रधानतया राजसी व तामसी प्रवृत्तियों से परिपूर्ण है।

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में दुर्योधन का चरित्र सर्वप्रथम् "कृष्णायन" में द्वारका प्रसाद मिश्र द्वारा चित्रित किया गया। "कृष्णायन" में दुर्योधन राजमद में लिप्त निरकुश शासक, स्वार्थी तथा पाण्डवों के प्रतिद्वन्दी के रूप में प्रस्तुत हैं। दुर्योधन अपने अंधे पिता के शासन - काल में भी अप्रत्यक्षतः पृथ्वी का भोग करता है। उस पर किसी भी बड़े-बुजुर्ग का कोई अनुशासन नही रहता। वह धन,यौवन,प्रभुता के मद में मदान्ध अविवेकी व निरंकुश चरित्र है -

बसत अध धृतराष्ट्र सिंहासन, दुर्योधनहि करत महि शासन।
धन, यौवन, प्रभुता अविवेकू, जुरे सकल, नहिं अंकुश एकू।-1

"कृष्णायन" में दुर्योधन के चरित्र में कवि ने नवीन तत्व का अन्वेषण करते हुए राजमद में चूर, राज्यद्रोही के रूप में चित्रित किया है। जिस भरतवश की स्वाधीनता, भीष्म ने अपने भुज-बल से अक्क्षुण्ण रखा, दुर्योधन ने उसे ही जरासंध के शरण में जाकर कमजोर किया। इस तथ्य के पीछे उसका अपना निजी स्वार्थ निहित रहता है। पाण्डवों के स्वत्व को अपना अधिकार बनाने के लिए, वह अपने ही राज्य से गद्दारी करता है। रावण के राज्य पर अधिकार प्राप्ति की लिप्सा ने विभीषण को भी देशद्रोही बनाया था। दुर्योधन का राज्यद्रोही रूप उसके चरित्र का निम्न पक्ष है-

---

1- कृष्णायन- द्वारका प्रसाद मिश्र, पृ0-243

करि अधीन अब कुरु जन-जनपद, चहत मगधपति सार्वभौम पद्।
दुर्योधनहु स्वार्थ निज लागी, जात जरासंध-शरण अभागी।
पाय मगधपति शक्ति सहारा, हरन चहत पाण्डव अधिकारा।-1

"कृष्णायन" में दुर्योधन का चरित्र परम्परागत् रूप में ही पाण्डव विदेषी के रूप में वर्णित है। दुर्योधन की छल व धूर्तता विशेष रूप से उस समय प्रकट होती है, जब वह कर्ण के शौर्य व वीरता पर मुग्ध हो उसे निजी स्वार्थवश अपने पक्ष में करना चाहता है। कर्ण के माध्यम् से वह अर्जुन का जबाब प्राप्त कर लेता है। पांडवों तथा विशेषतः अर्जुन के पराजय के लिए ही वह कर्ण को अंगदेश का राज्य-पद प्रदान करता है-

बैरी वीर पाण्डु-सुत जानी, कर्णहिं मन तिन ते बढ़ि मानी।
करन हेतु तेहि निज अनुकूला, भाषी गिरा अनर्थन-मूला-
ये अब अंग देश अवनीशा। करहिं पार्थ रण नृप सँग आयी।-2

दुर्योधन के चरित्र का परम्परागत् निम्न पक्ष है उसका नैतिक-पतन। द्यूत-क्रीड़ा में पाण्डवों के हार के बाद उसका यह कालिमायुक्त रूप प्रकट होता है। वह अपने ही कुल की वधू को माता सदृश बड़ी भाभी को जो कि समस्त राज्यकुल के गौरव व मर्यादा की प्रतीक होती है, अनैतिक ढंग से अपमानित करता है। वह समस्त राज्यसभा के बीच, बुजुर्गों, गुरूजनों तथा समस्त पारिवारिक सदस्यों के समक्ष, द्रौपदी को अपनी जाँघ पर बैठने का हेय आदेश देता है-

देहुँ निदेश याहि क्षण यहि थल-बसहि बसन तजि मम् जघन स्थल।
अस कहि अट्टहास करि भारी, जघन जघन्य मदान्ध उघारी।- 3

1- कृष्णायन- द्वारका प्रसाद मिश्र, पृ0 243

2- वहीं, पृ0-268

3- वही, पृ0-425

यही नही वह द्रौपदी के चीर-हरण का आदेश देने से भी नहीं हिचकता। वह अपने भाइयों को द्रौपदी का चीर-हरण करने का आदेश देता हुआ, कहता है-

कहे गरजि अनुजहिं बहुरि, वचन अधम, अधमूल-
"भरी सभा बरबस हरहु, पाण्डव नारि दुकूल।"-1

"कृष्णायन" में दुर्योधन का चरित्र परम्परागत् रुप में हठी तथा राज्यलोभी का है। पांडव केवल पाँच ग्राम ही चाहते हैं, क्योंकि उनके स्वत्व का प्रश्न होता है, अन्यथा उनके क्षत्रियत्व को क्लीवता की संज्ञा प्राप्त होती। किन्तु दुर्योधन अपने लोभ व हठ के कारण पांडवों को बिना युद्ध किये, सुई की नोक भर जमीन देने के लिए तैयार नहीं होता। वह शान्ति-प्रस्ताव लेकर आये कृष्ण जैसे महापुरूष का भी अपमान करने से नहीं हिचकता। वस्तुतः वह भी कंस और जरासध जैसे असुरों के नीति का समर्थक ही दृष्टिगत् होता है। दुर्योधन कहता है-

वणिक वृत्ति नहिं मोहिं सुहाती, सुनहु कहहुँ जो मन मांहीं-
स्वप्ने-सूचिका अग्र पै, आवत् जो महि-लेश,
देहौं सोउ न बिनु समर, कहाँ ग्राम! कहँ देश!"-2

दुर्योधन के चरित्र का नवीन पक्ष है उसका अनीश्वरवादी रुप। "कृष्णायन" में दुर्योधन का यह पक्ष मौलिक रुप में वर्णित हुआ है। वह चार्वाक् जैसे अनीश्वरवादी, परिव्राजक, आनन्द-भोगवादी व मगधपति जरासंघ

1- कृष्णायन- पृ0- 425
2- वही, पृ0-502

के गुरु को, अपने गुरु के रूप में चुनता है। वह चार्वाक् के शिष्य कणिक और अपने मामा शकुनि के जाल में फँसकर और भी पतनोन्मुख होता है। लाक्षागृह का निर्माण वह इन्हीं दोनों के परामर्श से करवाता है। चार्वाक् मत् घोर भौतिकता व ऐहिकता पर आधारित है, जिसका अनुकरण दुर्योधन अपने जीवन में करता है-

> शकुनि सुयोधन-मातुल आवा। सँग चार्वाक् अनीश्वरवादी,
> परिव्राजक, श्रुति-पथ-प्रतिवादी। आनँद-भोग-वाद व्याख्याता,
> मगध-महीपति- गुरु प्रख्याता। सहजहिं विषयासक्त सुयोधन,
> प्रमुदित पाय तर्क अनुमोदन। चार्वाकहिं निज गुरु करि माना। - 1

"कृष्णायन" में दुर्योधन का चरित्र अतुलनीय वीरता व आत्म विश्वास से समन्वित है। दुष्प्रवृत्तियों के गहरे पंक में धँसे, दुर्योधन के पंकिल चरित्र का यह किंचित उदात्त पक्ष है। युद्ध क्षेत्र से भागकर वह सरोवर में इस कारण छिपता है, ताकि कुछ विश्राम करके पुनः युद्ध में सन्नद्ध हो सके-

> भीत न मैं, नहिं प्राणन मोहू, अब लगि रोम-रोम विद्रोहू।
> आयेउ लहन स्वल्प विश्रामा, करत प्रभात् बहुरि संग्रामा। -2

दुर्योधन अपने अन्तिम समय तक चार्वाक् मत का अनुयायी बना रहा। वह अपने अभिमान और पांडवों के प्रति विद्वेष भावना को जीवन के अन्तिम क्षणों में भी नहीं छोड़ पाता। दुर्योधन कृष्ण से कहता है कि, उसने सुर-दुर्लभ विलास किये हैं, अतः उसके मन में कोई इच्छा निःशेष नहीं है, अतः अन्तिम समय में भी उसका गर्व पूर्णरूपेण बना हुआ है, किन्तु ये पाण्डव अपनी पत्नी के अपमान को आजीवन नहीं भुला सकेंगें। यह उनकी हार है-

---

1- कृष्णायन- पृ0- 271

2- वही, पृ0- 641

सुर-दुर्लभ मैं कीन्ह विलास, एकहु शेष न उर अभिलाषा।

जदपि कण्ठगत् अब मम प्राणा, न्यून न मम महिमा, अभिलाषा।

सकिहै कबहुँ न शत्रु ये-तिय अपमान बिसारि,

सोइ अनश्वर मम विजय , यह मम हारि, न हारि।-1

अन्ततः दुर्योधन अपने ही कुकृत्यों के परिणाम-स्वरूप काल के भयानक शिकंजे से बच नहीं पाता। डॉ0 मालती सिंह के शब्दों में- "आत्मिक-शक्तियों के समक्ष चार्वाक् §चार्वाक्वादी दुर्योधन§ की भौतिकता समाप्त हो जाती है।"-2

दुर्योधन के चरित्र की व्यंजना करने वाली कृष्णायन के बाद की अगली कड़ी केदार नाथ मिश्र 'प्रभात' कृत "कर्ण" प्रबन्ध काव्य है। इस रचना में दुर्योधन का चरित्र सर्वथा मौलिक व उदात्त रूप में वर्णित हुआ है। उसमें आधुनिक नवजागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न मानवतावादी चेतना का आरोपण हुआ है। पांडव-विदेषी दुर्योधन मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से चरित्रांकित हुआ है।

आधुनिक नवीन चेतना के प्रभाव स्वरूप दुर्योधन का चरित्र मानवतावादी मानव के रूप में चित्रित हुआ है। वह कर्ण के शौर्य व पराक्रम को जातिवाद की तुलना में अधिक महत्ता देता है। यह दुर्योधन के चरित्र के सत् पक्ष का द्योतक है-

दुर्योधन था सोच रहा यह कर्ण नीच या नेता।

सूत पुरुष यह सिंह पुरुष या निर्भय युद्ध विजेता।-3

1- कृष्णायन, पृ0-762 .

2- आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा- डॉ0 मालती सिंह, पृ0121

3- कर्ण-केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ0- 9

दुर्योधन कर्ण के व्यक्तित्व को स्वाभिमान प्रदान करने के लिए उसे "अंगराज" बनाता है, ताकि वह सूत-पुत्र से ऊपर शासक की पदवी पाकर, समाज में सम्मान का पात्र बन सके। दुर्योधन कर्ण से कहता है-

अंगराज मैं तुम्हें बनाता, कर्ण! यहाँ पल भर में
सूत-पुत्र अब तुम्हें कहे जो उससे युद्ध करूँगा।-1

"कर्ण" में दुर्योधन के पांडव विद्वेष की मनोवैज्ञानिक व्याख्या हुई है। इसमें दुर्योधन, द्रौपदी द्वारा राजसूय यज्ञ में किये गये अपमान के कारण विक्षुब्ध होता है। द्रौपदी द्वारा किये गये अपमान के कारण उसका ह्रदय जलने लगता है-

व्यंग्य किया जब द्रुपद सुता ने, भ्रम यह लगा गरल-सा
दुर्योधन का ह्रदय सुलगने, जलने लगा अनल सा।-2

यही अपमान दुर्योधन के मन में द्रौपदी से प्रतिशोध लेने की भावना जाग्रत करती है। इसी प्रतिशोध भावना के कारण दुर्योधन "द्यूत-सभा" का कपटपूर्ण आयोजन करता है। द्यूत-क्रीड़ा में पांडवों के हार के बाद दुर्योधन की यह प्रतिशोध-भावना प्रत्यक्ष हो उठती है-

पांसे फेंके, धर्मराज की, हार हुई फिर भारी।
कपट जाल से निकल न पाई, द्रुपद सुता बेचारी।
दुर्योधन ने आज्ञा दी, "दु:शासन! जल्दी जाओ।
पांचाली को जिस प्रकार हो, सभाभवन में लाओ।-3

"कर्ण" में दुर्योधन के चरित्र की नवीन व्यंजना हुई है। वह द्रौपदी के चीरहरण का आदेश स्वयं नहीं देता है। "कृष्णायन" में दुर्योधन अपने

1- कर्ण, पृ0- 9

2- वही, पृ0-14

3- वही, पृ0-16

भाइयों को द्रौपदी के चीरहरण का आदेश देता है, किन्तु इस रचना में वह मौन रहता है। द्रौपदी के चीरहरण का आदेश 'कर्ण' द्वारा दिया जाता है। यहाँ यह कहना असंगत् न होगा कि कर्ण को इतना बड़ा अधिकार दुर्योधन के ही समर्थन पर प्राप्त हुआ होगा।

आधुनिक नवीन चेतना तथा छायावादी भावसंकुलता का प्रभाव "कर्ण" के दुर्योधन पर भी है। कर्ण की मृत्योपरांत दुर्योधन की मानसिक, दयनीय स्थिति उसके भावुक व संवेदनशीलता, आदर्श मैत्री तथा मानवीय दुर्बलता के प्रतीक है। कर्ण की मृत्यु के उपरान्त उसे सर्वत्र अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है, वह कर्त्तव्यविमूढ़ सा हो जाता है। दुर्योधन कर्ण के आलम्बन के छिन जाने के बाद, स्वयं में गहरी रिक्तता का अनुभव करता है-

लगा कि दीपक बुझा अचानक, फैला तम् सर्वत्र,
लगा कि पथ वीरान हो गया, टूटे नभ नक्षत्र।
लगा कि हारा नहीं ह्रदय, फिर भी वह छिन्नाधार।
लगा कि रोके रूक न सके, अब अदृष्ट का ज्वार।-1

अन्ततः वह युद्ध के भीषण ज्वाला में अपनी राज्य लिप्सा व प्रतिशोधी प्रवृत्ति तथा मिथ्या हठ के कारण भस्मीभूत हो जाता है।

"कर्ण" के बाद आनन्द कुमार कृत "अंगराज" में दुर्योधन के चरित्र की मौलिक अभिव्यंजना हुई है। "अंगराज" में दुर्योधन के परम्परागत् असत् चरित्र का परिमार्जन व परिष्कार हुआ है। आधुनिक युग की मानवतावादी चेतना तथा बौद्धिकता की प्रवृत्ति के कारण प्रतिपक्षी चरित्रों के प्रति भी मानवीय संवेदना व्यक्त करते हुए आधुनिक कवियों ने उन्हें मौलिक रूप में चरित्रांकित किया गया। डॉ0 बनवारी लाल शर्मा के शब्दों में _ "दुर्योधन के चरित्र को चित्रित करने में प्रत्येक कवि का अपना-अपना पृथक दृष्टिकोण

1- कर्ण, पृ0-93

रहा है। यह दृष्टिकोण उनके आधुनिक विचारों पर आधारित है, किन्तु इससे उन्हें पुराने दुर्योधन को नये प्रकाश में लाने तथा दुर्योधन को पर्याप्त रूप से सुयोधन बनाने का अवसर मिला है।"-1

"अंगराज" में दुर्योधन का चरित्र मानवतावादी, जातीय-विषमता के विरोधी नैतिक, शान्ति - प्रस्तावक, वीरता का सम्मान करने वाले, तथा अन्त में भौतिकता से विरक्त विरागी के रूप में व्यंजित हुआ है। दुर्योधन के परम्परागत् पाडव विदेषी रूप को भी नई मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रित किया गया है।

"अंगराज" में मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रभाव स्वरूप दुर्योधन का चरित्र जातीय विषमता के विरोधी तथा समतावादी के रूप में व्यंजित हुआ है। कृपाचार्य द्वारा कर्ण का जातीय भेदभाव के कारण अपमान होते देख, दुर्योधन जाति की तुलना में वीरता का महत्ता स्थापित करते हुए कहता है-

आर्य वीर प्रति आपका यह अनुचित व्यवहार।
कभी न आर्य समाज में होता जाति विचार।।-2

दुर्योधन जातिवाद का विरोधी ही नहीं, त्याग की भावना से भी सम्पन्न है। उसका सम्पूर्ण कुल जातीय वैषम्य के कारण कर्ण को अपमानित व प्रताड़ित करता है, लेकिन वह उसे बन्धु रूप में स्वीकार करते हुए, अंगदेश का सम्राट बनाकर उसके गिरते मनोबल को सम्बल प्रदान करता है-

हम कुरु नरपति के प्रतिनिधि रूप इसी क्षण।
सूत पुत्र को करते अंग-स्वराज्य समर्पण।

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध-काव्य-बनवारी लाल शर्मा-पृ0-213

2- अंगराज- आनन्द कुमार, पृ0- 29

यह कहकर नृप सुत ने वहीं कर्ण मान वर्द्धन किया।
दूरदर्शिता गुण-ग्रहण क्षमता का परिचय दिया।-1

"कृष्णायन" में दुर्योधन के इस त्यागपूर्ण चरित्र को स्वार्थमयी रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन "अंगराज" में दुर्योधन "कर्ण" के दुर्योधन की भाँति निःस्वार्थी हैं। "अंगराज" में दुर्योधन स्वयं स्वीकार करता है कि उसे कर्ण से किसी प्रत्युपकार की कामना नहीं है। दुर्योधन के चरित्र का यह नवीन पक्ष है —

हमें न है कुछ कामना तुमसे प्रत्युपकार की।
चिर दृढ़ता वर चाहिए इस मैत्री व्यवहार की।-2

"अंगराज" के दुर्योधन के पांडव-विद्वेष के पीछे राजसूय यज्ञ में भीम व द्रौपदी द्वारा किये गये अपमान की प्रमुख भूमिका है। यह उसके चरित्र का सर्वथा नवीन पक्ष है। राजसूय यज्ञ से पूर्व उसके मन में पांडवों के प्रति कोई द्वेष भावना नहीं रहती है। वह सामान्य रूप से घर के सदस्यों के समान यज्ञ-आयोजन की गतिविधियों में सहभागी बनता है। किन्तु द्रौपदी तथा भीम द्वारा असहनीय उपहास किये जाने पर, वह सभा त्याग कर चला जाता है-

दुर्योधन को था असह्य यह निन्दनीय उपहास।
शकुनि सहित वह सभा त्याग कर चला गया सोच्छ्वास।-3

"अंगराज" में दुर्योधन के प्रतिशोधी चरित्र की भी नवीन दृष्टिकोण से व्यंजना हुई है। "कृष्णायन" में दुर्योधन द्वारा द्रौपदी को अपने जांघ पर बैठने तथा भाइयों को द्रौपदी के चीरहरण का आदेश दिया जाता है।

1- अंगराज- आनन्दकुमार, पृ0 30

2- वही, पृ0-29

3- वही, पृ0-74

"कर्ण" में दुर्योधन के समर्थन पर कर्ण द्वारा चीरहरण का आदेश दिया जाता है। किन्तु "अंगराज" में दुर्योधन द्रौपदी को केवल भयभीत मात्र करता है, तथा दासी बनाने का भय दिखलाता है। इस प्रकार इस रचना में दुर्योधन पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा अधिक नैतिक है। वह द्रौपदी से कहता है-

हास्तिनेश तब आत्म मूर्ति से बोला वहाँ अभग्न।
मौन न हो तो इसी सभा में इसे बना दो नग्न।।-1

दुर्योधन के चरित्र का मौलिक तथा नवीन पक्ष है उसका शान्ति प्रेमी रूप। द्यूत-क्रीड़ा में हार के कारण वनवास काट रहे पाण्डवों को दुर्योधन सम्पूर्ण सम्मान के साथ राज रूप में निमन्त्रित करता है। यहाँ दुर्योधन के परम्परागत् बन्धु विद्वेषी व राज्य लोभी चरित्र का परिमार्जन व परिष्कार हुआ है। दुर्योधन शान्तियज्ञ में पाण्डवों को सर्वप्रथम निमन्त्रित करता है-

सर्वप्रथम पाण्डव अपकृति को करके विस्मृत।
राजरूप में उसने उनको किया निमन्त्रित।।-2

इस रचना में शान्ति-प्रस्तावक दुर्योधन स्वाभिमानी तथा वीरता का सम्मानकर्ता भी है। पाण्डवों द्वारा सम्पूर्ण राज्याधिकार की माँग उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँचाती है। इसे वह अपने स्वत्व व स्वतन्त्रता के हननकर्ता के रूप में देखकर वह पाण्डवों के 'सम्पूर्ण राज्याधिकार' की माँग अस्वीकृत कर देता है। वह पाण्डवों के कर्मभीरू व युद्धभीरू स्वरूप की निन्दा करता हुआ, कृष्ण से कहता है-

---

1- अंगराज- पृ0-77

2- वही, पृ0-94

सुनाइएगा उस कर्मभीरु को, प्रयाचना से मिलता न राज्य है।
सदैव से वीर-विलासिनी रही, विभूतिशाली वरदा वसुन्धरा।-1

दुर्योधन के चरित्र का नवीन पक्ष है उनकी राज्य-भक्ति। "अंगराज" में वह राज्य के स्वतन्त्रता व अस्तित्व के प्रति भी जागरूक है। जो पाण्डव अकर्मण्य बने सम्पूर्ण राज्यसभा के समक्ष अपनी पत्नी का अपमान देखते रहे, वे वसुधा के सतीत्व की रक्षा किस प्रकार कर सकेंगे? दुर्योधन इस कारण भी पाण्डवों के 'सम्पूर्ण राज्याधिकार' की माँग को ठुकरा देता है-

महा अकर्मण्य बने समक्ष जो, रहे स्वपत्नी अपमान देखते।
वही महानिर्मद शक्ति-हीन क्या, बचा सकेंगे वसुधा सतीत्व को।-2

इस रचना में दुर्योधन के विद्रोही रूप का चरित्रांकन हुआ है। भीष्म द्वारा कर्ण का अपमान उसके आत्मबल तथा शौर्य को क्षीण करने के उद्देश्यवश ही किया जाता है। भीष्म का यह रूप दुर्योधन को उद्विग्न कर देता है, वह उनके बल भेदक तथा राजदल को हताश करने वाले कृत्य की निन्दा करता हुआ कहता है-

आर्य न होगा सहन हमें, अब बल भेदक व्यवहार यहाँ,
आप प्रमाणित कर विरोधियों के अविजेय श्रेष्ठ बल को
करते हैं सर्वाभिसार के पूर्व हताश राजदल को।-3

"अंगराज" में दुर्योधन का यह विरोधी रूप कृष्ण के प्रति भी है। दोनों दलों ‌‌(पाण्डव और कुरु दल) में सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले, नीति पुरुष कृष्ण के दुर्नीतिज्ञ पक्षपाती रूप की भी दुर्योधन भर्त्सना करता है -

---

1- अंगराज- पृ0-130

2- वही, पृ0 132

3- वही, पृ0 175

इस रचना में दुर्योधन-चरित्र का नवीन व उदात्त पक्ष है उसकी अप्रतिम वीरता। "कर्ण" में उसकी यह वीरता पांडव-विद्वेष युक्त है। किन्तु "अंगराज" में वह राज्यधर्म के कारण युद्ध करता है। युद्ध में गम्भीर रूप से घायल दुर्योधन सरोवर में इस कारण छिपता है, ताकि वह कुछ विश्राम कर प्रातः युद्ध हेतु सन्नद्ध हो सके। वह कहता है-

आहत और श्रमात् यहाँ है हम करते- विश्राम।
नव प्रभात् में पुनः करेंगे प्राणान्तक-संग्राम।
सत्य मान तू हमें न है अब राज्य-भोग का स्वार्थ।
युद्ध करेंगे हम केवल निज राजधर्म रक्षार्थ।-1

"अंगराज" में दुर्योधन के चरित्र में मौलिक व नवीन तत्व का आरोपण हुआ है। दुर्योधन में अपने बन्धुओं से रहित राज्य के प्रति कोई लोभ नहीं होता। भौतिकता के प्रति उसे विरक्ति सी हो जाती है। राज्य धर्मवश ही, वह अन्त में युद्धरत होता है। राज्य व शासन के प्रति उसमें निर्विकार भाव परिलक्षित होता है-

पाकर भी जयलाभ स्वयं हम अब न करेंगे राज्य।
सज्ज-सुहृद-विहीन लोक यह है सुजनों से त्याज्य।-2

अन्ततः दुर्योधन जैसे वीर पुरूष का, कृष्ण के संकेत पर भीम द्वारा अनीतिपूर्ण ढंग से वध किया जाता है। दुर्योधन अपने शौर्य व वीरता से भीम पर विजय प्राप्त कर लेता है, किन्तु भीम उसके वर्जित स्थल जाँघ पर प्रहार कर उसे धराशायी कर देता है।-3

1- अंगराज- पृ0-282

2- वही, पृ0-282

3- वही, पृ0-282

दुर्योधन के चरित्र का नवीन पक्ष है उसका आत्मिक-सन्तोष व गौरवान्वित रूप। उसे इस बात पर गर्व है कि उसने किसी पुण्य के नाम पर व किसी महान-पुरूष के नाम पर किसी असत्य और छल का सहारा नहीं लिया। वह कहता है—

किया नहीं छल हमने लेकर किसी पुण्य का नाम।
बाह्य्य जगत वैसा ही था मम् जैसा अन्तर्धाम्।।-1

समग्रतः "अंगराज" में दुर्योधन का चरित्र उदात्त व नवीन स्वरूप का वहन करता है। उसके परम्परागत् असत् पक्ष को सत् पक्ष में परिवर्तित कर दिया गया है।

"जयभारत" में मैथिलीशरण गुप्त जी ने दुर्योधन के चरित्र में उसके परम्परागत् स्वरूप की व्यंञ्जना प्रमुख रूप से की है। आधुनिक नव्य-चेतना के प्रभाव-स्वरूप उसके मानवतावादी चरित्र का आरोपण भी हुआ है। परम्परागत रूप में दुर्योधन का चरित्रांकन पांडवों के प्रति विद्वेषी रूप में हुआ है किन्तु इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारणों को जोड़कर इसकी नवीन व्याख्या की गई है। दुर्योधन का चरित्रांकन परम्परागत रूप से राज्यलोभी तथा अहंकारी का है। किन्तु मौलिक अभिव्यंजना के कारण दुर्योधन द्वारा द्रौपदी के अपमान को, दुर्योधन की प्रतिकार भावना का रूप दिया जाय। साथ ही दुर्योधन-चरित्र का उदात्त पक्ष है उसका वीरता का सम्मान करने वाला चरित्र। "जयभारत" में दुर्योधन के परम्परागत स्वरूप के बारे में डॉ0 एल0 सुनीता ने विचार दिया है— "अपनी तामसिक वृत्ति के लिए दुर्योधन का चरित्र महाभारत में अत्यन्त प्रसिद्ध है। गुप्त जी ने भी उसके चरित्र को महाभारत के अनुसार राज्य लोभी, अन्यायी एवं दम्भी शासक चित्रित किया है।"-2

1- अंगराज, पृ0-286

2- मैथिलीशरण गुप्त का काव्य - डॉ0 एल0 सुनीता पृ0-269

परम्परागत रूप में दुर्योधन का चरित्रांकन द्रौपदी का अपमान करने वाले अनैतिक मानव के रूप में हुआ है। वह सम्पूर्ण राजसभा के समक्ष अपने ही कुल की वधू तथा अग्रज-वधू का चीरहरण करवाने का दुस्साहसी कृत्य करता है। किन्तु उसके इस पतित कृत्य के पीछे राजसूय-यज्ञ के समय द्रौपदी दारा किये गये उपहास का भी प्रमुख हाथ है। राजसूय यज्ञ में दुर्योधन पूर्व के द्वेषभाव को भुलाकर सामान्य रूप से सहभागी होता है। किन्तु महल की विलक्षणता पर चकित तथा भ्रमित दुर्योधन पर द्रौपदी सहित दास-दासी तक हंस पड़ते हैं। दुर्योधन इसे अपना अपमान मानकर, इसी अपमान के प्रतिकार स्वरूप द्यूत-क्रीड़ा में पांडवों के हार के समय द्रौपदी का चीरहरण करवाता है। किन्तु "कर्ण" प्रबन्ध-कृति के समान ही यहाँ भी वह स्वयं द्रौपदी के चीरहरण का आदेश नहीं देता, अपितु कर्ण दारा यह आदेश दिया जाता है।-1 दुर्योधन द्रौपदी को देखकर अपनी जाँघ ठोकता है —

थाप मारकर दुर्योधन ने इसी समय जंघा ठोकी।-2

"जयभारत" में दुर्योधन के परम्परागत् राज्यलोभी तथा हठी चरित्र का निरूपण हुआ है। शान्ति प्रस्ताव लेकर आये कृष्ण के समक्ष उसका राज्यलोभी दम्भी तथा हठी चरित्र ज्यादा ही उग्र हो उठता है। वह गृहकलह के समाधान तथा वास्तविक विजय हेतु युद्ध की अनिवार्यता को महत्व देता है -

किन्तु कलह का मुख्य एक निर्णायक रण ही,
विजय हेतु अनिवार्य सदा प्राणों का पण ही।-3

दुर्योधन शान्ति-प्रस्ताव लेकर आये कृष्ण का भी अपमान करने से नहीं चूकता। यहाँ उसके दम्भी चरित्र का ही प्रकटन हुआ है। वह कृष्ण

1- जयभारत- पृ0 147

2- जयभारत- पृ0 147

3- वही- पृ0 327

को चेतावनी देता हुआ उनके 'दूत-रूप' को ही महत्व देता है।

दूत बने तुम आज कहोगे सो सुन लूँगा,
सबका उत्तर समर भूमि में ही मैं दूँगा।-1

यही नहीं वह कृष्ण द्वारा पाँच गाँव पर किये जाने वाले संधि-प्रस्ताव को भी ठुकरा देता है। दुर्योधन का क्रूरता पूर्ण अन्यायी व्यक्तित्व इसी समय उत्कर्ष प्राप्त करता है। वह अपने राज्य लोभ को व्यक्त करता हुआ राज्य को अपने तन का प्राण कहता है। वह बिना रण किये सुई की नोक पर जमीन देने के लिए तैयार नहीं होता।-2

"जयभारत" में दुर्योधन के परम्परागत स्वरूप के चरित्रांकन के साथ ही आधुनिक नव्य-चेतना का भी आरोपण हुआ है। नवीन रूप में दुर्योधन का चरित्रांकन मानवतावादी, समानतावादी व बौद्धिक चरित्र के रूप हुआ है। दुर्योधन पाण्डवों के प्रति जितना ईर्ष्यालु और विद्वेषी तथा अहितकर है, दूसरों के प्रति उसके चरित्र में उतनी अमानवीयता नहीं होती। एकलव्य और कर्ण के प्रति दुर्योधन को संवेदनशीलता व मानवीय दृष्टिकोण इसी तथ्य का द्योतक है।

"जयभारत" में दुर्योधन का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है। एकलव्य प्रसंग में दुर्योधन का चरित्र अर्जुन की अपेक्षा उदात्त है। वह एकलव्य के धनुर्विद्या के क्षेत्र में प्राप्त कौशल का खुले दिल से महत्व देता हुआ, उसे पूर्ण समादर देता है, जबकि अर्जुन के मन में एकलव्य के प्रति विद्वेष भाव जाग्रत हो उठता है—

"ऐसा धन्वी कौन? पार्थ ने कहा खींचकर आह,
दुर्योधन के मुख से निकली वही आह बन वाह।-3

1- जयभारत- पृ0 326
2- वही, पृ0 54.
3- वही, पृ0 56

यही नहीं द्रोण द्वारा छल पूर्वक गुरुदक्षिणा के रूप में एकलव्य का अँगूठा माँग लेने के बाद, अंगुष्ठ-रहित एकलव्य के गिरते मनोबल को दुर्योधन अपने बन्धुत्व व सौहार्द भाव का सम्बल प्रदान करता है। यहाँ उसका समतावादी, मानवतावादी और नैतिकता से समन्वित चरित्र ही प्रमुख है, साथ ही उसकी संवेदनशीलता भी। वह आहत् एकलव्य से कहता है-

बोला- "अर्जुन के कारण ही तुम पर हुई अनीति,
तुमको अपना बन्धु मानकर करता हूँ मैं प्रीति।-1

कर्ण के सन्दर्भ में भी उसके इसी मानवतावादी दृष्टिकोण की व्यंजना हुई है। वह जातिवाद के विरोधी रूप में भी चित्रित हुआ है। वह मानव की जाति, उसके वर्ण और कुल की अपेक्षा उसके कर्म और गुण को महत्वपूर्ण मानता है। कर्ण को सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी मात्र सूतपुत्र होने के कारण अर्जुनादि पाण्डवों द्वारा दुत्कारा जाता है, अपमानित किया जाता है। किन्तु दुर्योधन समस्त जातिवादी गुरुओं, बुजुर्गों तथा बन्धुओं के क्रोधानल को पीता हुआ, कर्ण के मनोबल को ऊपर उठाने का प्रयास करता है। वह कर्ण को अंगदेश का राज्यासन प्रदान करके उसे शासक वर्ग के समकक्ष खड़ा कर देता है। एल0 सुनीता ने इसे वीरता जन्य आक्रोश कहा है "दुर्योधन की वीरता जन्य आक्रोश तभी प्रकट होता है जब वे अंगराज कर्ण को देने के लिए तैयार हो जाते हैं।"-2 किन्तु यह केवल वीरताजन्य आक्रोश मात्र न होकर उसकी मानवतावादी व बौद्धिक चेतना तथा समतावादी दृष्टिकोण का परिचायक है। दुर्योधन कहता है-

---

1- जयभारत- पृ0-57

2- मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-एल0 सुनीता, पृ0-269

कितने राजा रक, रंक राजा होते हैं,

पद पाते हैं योग्य, अयोग्य उसे खोते हैं,

फिर भी पीतल कहा जाय सच्चे सुवर्ण को,

तो देता हूँ अंगराज्य मैं अभी कर्ण को।-1

"जयभारत" में दुर्योधन के परम्परागत पाण्डव-विद्वेषी रूप की मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से नवीन रूप में चरित्रांकन हुआ है। "महाभारत" के समान ही -2 "जयभारत" में भी दुर्योधन द्वारा भीम को विष दिया जाता है।-3 किन्तु इसके पीछे भीम का ही प्रमुख उत्तरदायित्व होता है। भीम अपने अतुलनीय शक्ति के मद में चूर होकर, शारीरिक दृष्टि से कमजोर कौरवों को तरह-तरह से प्रताड़ित करते हैं।-4 भीम की यही उग्रता दुर्योधन के मन में स्वाभाविक रूप से ईर्ष्या को जन्म देती है—

स्वाभाविक ही उस मानी के मन में ईर्ष्या जागी।-5

इस रचना में दुर्योधन के चरित्र का उदात्त व मौलिक पक्ष है, उसका पृथ्वी को वीर भोग्या मानने वाला चरित्र। "अंगराज" के दुर्योधन में भी उसके इस चरित्र का निरूपण हुआ है। "जयभारत" में भी वह वसुन्धरा को वीरभोग्या मानता है, वह उसे भिक्षा की वस्तु नहीं मानता—

--------वह वसुन्धरा वीरों की भोग्या,

बल से लेने योग्य, नहीं देने के योग्य।-6

---

1 - जयभारत- पृ0 64

2 महाभारत - आदि पर्व, अध्याय-126

3 जयभारत- पृ0 44

4- वही, पृ0 43-44

5- वही, पृ0 44

6- वही, पृ0 332

समग्रतः "जयभारत" में दुर्योधन के परम्परागत चरित्र का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परिमार्जन व परिष्कार किया गया है।

"जयभारत" के पश्चात् रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत "रश्मिरथी" में दुर्योधन के परम्परागत् असत् पक्ष के परिमार्जन का प्रयास हुआ है। परम्परागत रूप में उनके राज्य लोभी चरित्र की व्यंजना हुई है, किन्तु नवीन व मौलिक रूप में "कर्ण", "अगराज" व "जयभारत" के समान उनके मानवतावादी व कर्मवादी रूप का अंकन हुआ है। डॉ0 बनवारी लाल शर्मा के शब्दों में आधुनिक काल के "प्रबन्ध-काव्यों में सामान्यतया दुर्योधन के चरित्र का परिष्कार किया गया है। यह परिष्कार भावनागत् ही न होकर तार्किक है। दुर्योधन के प्रत्येक गुण, अवगुण के पीछे कुछ कारण निहित हैं, उनके लिए तर्क हैं।"—1 दुर्योधन के परम्परागत असत् चरित्र के परिमार्जन हेतु तार्किकता की दृष्टि प्रमुख रही।

"रश्मिरथी" में दुर्योधन का चरित्रांकन परम्परागत् रूप में ही राज्यलोभी के रूप में वर्णित हुआ है। "कृष्णायन" व "जयभारत" की ही भाँति इस रचना में भी दुर्योधन, पांडवों द्वारा केवल पाँच गाँव लेकर किये जाने वाले संधि के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर देता है। युद्ध की भीषण विभीषिका से निरीह समाज को बचाने के महत् कार्य हेतु वह पाँच गाँव तो छोड़ ही सकता था, किन्तु उसका राज्यलोभ उस पर अधिक प्रभावी रहा-

दुर्योधन वह भी दे न सका, आशीष समाज की ले न सका।
उलटे हरि को बाँधने चला, जो था असाध्य साधने चला।
जब नाश मनुज पर छाता है,
पहले विवेक मर जाता है।-2

1- स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य- बनवारी लाल शर्मा, पृ0-213

2- रश्मिरथी- रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ0- 32

"रश्मिरथी" में दुर्योधन का चरित्रांकन नवीन तथा मौलिक रूप में जातिवाद के विरोधी तथा समतावादी मानव के रूप में हुआ है। रंगसभा में कृपाचार्य द्वारा कर्ण को जातिगत् विषमता के कारण अपमानित किया जाता है। साथ ही राज्य-विहीन होने के कारण भी उसे व्यंग्य सहना पड़ता है। किन्तु दुर्योधन कर्ण के अपमान को नहीं सह पाता। राजकुमार होते हुए भी वह सूत-पुत्र कर्ण का पक्ष लेता है। दुर्योधन जातीय विषमता की भर्त्सना करते हुए, वीरता को मानव का सर्वोत्तम आभूषण मानते हैं। वह कर्ण को अंगदेश का राज्यपद प्रदान करके, उसके मनोबल को सहारा देते हैं। दुर्योधन कहता है-

मूल जानना बड़ा कठिन है, नदियों का वीरों का,
धनुष छोड़कर और गोत्र क्या होता है रणधीरों का?
पाते हैं सम्मान तपोबल से भूतल पर शूर,
जाति-जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर।-1

इस रचना में दुर्योधन के चरित्रांकन का मौलिक व उदात्त पक्ष है उनका कर्मवादी रूप। दुर्योधन व्यक्ति के वंश व जाति को नहीं उसको कर्म को प्रमुख मानता है। व्यक्ति कर्म से उच्च होता है, जन्म से नहीं। उच्च कुलोत्पन्न व्यक्ति निम्नकर्मा होने पर कभी भी आदरणीय नहीं हो सकता—

बड़े वंश से क्या होता है, खोटे हों यदि काम?
नर का गुण उज्जवल चरित्र है, नहीं वंश-धन-धाम।-2

समग्रतः "रश्मिरथी" में दुर्योधन के परम्परागत रूप का आधुनिक नवीन दृष्टिकोण से चरित्रांकन हुआ है।

1- रश्मिरथी- पृ0- 16

2- रश्मिरथी- पृ0- 17

"रश्मिरथी" की बाद की कड़ी "सेनापति-कर्ण" है, जिसमें दुर्योधन के परम्परागत् असत् पक्ष के अनुयायी रूप का परिमार्जन कर नवीन रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस रचना में लक्ष्मीनारायण मिश्र जी ने दुर्योधन के मानवीय संवेदना तथा अन्तर्रानुभूतियों का भी अंकन किया है। दुर्योधन के परम्परागत चरित्र के परिमार्जन हेतु कवि ने मौलिकता व काल्पनिकता का सहारा लिया है; इस रचना पर छायावादी भावसंकुलता, संवेदनात्मकता तथा भावाभिव्यंजकता की प्रवृत्ति का भी स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत् होता है। दुर्योधन का चरित्र मौलिक रूप से भाग्यवादी, द्वन्दशील भावुक मानव, द्रौपदी के प्रति नैतिक तथा संवेदनशील मानव के रूप में चरित्रांकित हुआ है।

"सेनापति - कर्ण" में दुर्योधन द्वारा पांडव विद्वेष के पीछे नवीन धारणा समाहित हुई है। परम्परागत रूप में दुर्योधन राज्य लिप्सा के कारण पांडवों से द्वेष करता है। "सेनापति-कर्ण" में दुर्योधन पांडव का नियोग प्रथा द्वारा जन्म होने के कारण, उनके जन्म को अपने वंश का कलंक मानता है।-1

इस रचना में सर्वप्रथम मौलिक रूप में दुर्योधन का चरित्रांकन भाग्यवादी तथा सामयिक परिस्थितियों से त्रस्त मानव के रूप में हुआ है। वह हठधर्मी तो है ही साथ ही मानसिक रूप से दुर्बल भी है। दुर्योधन कहता है-

> और अंगराज भाई क्या कहूँ मैं तुमसे
> चाहता क्षमा हूँ भाग्यवादी जो हुआ हूँ मैं,
> देखता हूँ भाग्य-चक्र मेरे प्रतिकूल है
> होनहार होकर रहेगी ---------- -2

1- सेनापति-कर्ण-लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0-89

2- वही, पृ0-41

आधुनिक मानवतावादी आदर्शवादी बौद्धिक चेतना व नारी-जागरण के प्रभाव स्वरूप के परम्परागत रूप से द्रौपदी का चीरहरण करवाने वाला दुर्योधन, इस रचना में नवीन रूप में व्यंजित हुआ है। इस रचना में वे द्रौपदी का चीरहरण नहीं करवाते, अपितु उन्हें केवल दासी कहकर अपने अपमान का प्रतिकार करते हैं। द्रौपदी द्वारा दुर्योधन को अन्ध-पुत्र कहकर अपमानित किया जाता है। इसी अपमान का बदला देने के लिए द्यूत-क्रीड़ा में पांडवों की हार पर, अवसर पाकर, दुर्योधन द्रौपदी को दासी कहकर अपमानित करता है-

हार कर हारे जब द्रुपद-सुता को भी
सत्य है सुयोधन ने बस प्रतिकार के
भाव से, बुलाया उसे द्यूत की सभा में था,
और मन्दबुद्धि ने दी संज्ञा उसे दासी की।-1

"सेनापति कर्ण" में दुर्योधन के चरित्रांकन का मौलिक पक्ष है उसका संवेदनशील, यथार्थवादी तथा युद्ध जनित समस्याओं से त्रस्त मानव का रूप। युद्ध के भीषण दावानल में भस्मीभूत निर्दोष योद्धाओं के प्रति दुर्योधन के मन में गहरी पीड़ा है। वह युद्ध क्षेत्र में छल तथा अनीति पूर्ण ढंग से मारे गये महायोद्धाओं यथा- द्रोण, कर्ण, भीष्म आदि के कारण विशेष रूप से मानसिक व्यथा का शिकार होता है। युधिष्ठिर के असत्य वादन के कारण ही द्रोण जैसे महारथी का वध किया गया। दुर्योधन युधिष्ठिर की सत्यप्रियता पर भी व्यंग्य करता है।

समग्रतः इस रचना में दुर्योधन का चरित्र पर्याप्त रूप से परिमार्जित हुआ है।

1- सेनापति कर्ण- पृ0 125

"सेनापति- कर्ण" के बाद "द्रौपदी" प्रबन्ध-कृति में नरेन्द्र शर्मा ने पौराणिक परम्परा का अनुगमन करते हुए, दुर्योधन का चरित्र-चित्रण महाभारतीय कथा के आधार पर किया है। "द्रौपदी" में दुर्योधन परम्परागत रूप में ही राज्यलोभी तथा अहंकारी व्यक्तित्व से समन्वित है। दुर्योधन प्रतीकात्मक रूप में धृतराष्ट्र की अव्यक्त आशाओं और आकांक्षाओं का प्रतीक भी है। इस रूप में वह मौलिक है।

दुर्योधन की हठवादिता व राज्यलिप्सा उसे नैतिक रूप से नीचे गिराती है। वह पाण्डवों से किसी भी प्रकार समझौता करना नहीं चाहता। युधिष्ठिर को युवराज बनाये जाने के प्रश्न पर उसका लोभ प्रत्यक्ष रूप में सामने आ जाता है। वह धृतराष्ट्र से कहता है-

मुझे परिवर्तन नहीं प्रिय, क्योंकि मैं दृढ़ स्वार्थ,
धार्त राष्ट्रों से छिने कुछ, पाय तब कुछ पार्थ।
किन्तु मैं वंचित प्रवंचित नहीं हूँगा तात।
अधिक मैं क्या कहूँ ? है सौ बातों की यह बात।-1

दुर्योधन के चरित्र में राज्यलिप्सा ही नहीं अनैतिकता व मर्यादाहीनता भी है। वह अपने ही पिता के अनुज पुत्रों को कौरवों के कौर पर पलने वाला तथा भिक्षुक कर्मा तक की संज्ञा दे डालता है—

कौरवों के कौर पर पल रहा धर्म,
कर चुका है बहुत दिन वह भिक्षुओं के कर्म।-2

1- द्रौपदी - नरेन्द्र शर्मा, पृ0-18

2- वही, पृ0 -19

"सूर्यपुत्र" में जगदीश चतुर्वेदी ने दुर्योधन के परम्परागत चरित्र का केवल परिमार्जन ही नहीं किया है, बल्कि उदात्तीकरण का प्रयत्न भी किया गया है। आधुनिक नवचेतना के प्रभाव-स्वरूप दुर्योधन का चरित्रांकन मानवतावादी, जातिवाद के विरोधी, कर्मवादी, स्वाधिकारों के प्रति चेतनशील, तथा कर्त्तव्य पर आत्मोसर्ग करने वाले वीर के रूप में हुआ है। उसके अहंकारी चरित्र के पीछे मनोवैज्ञानिक कारणों को उभारा गया है।

इस प्रबन्ध-कृति में दुर्योधन और कर्ण मैत्री को नवीन रूप रूप में व्यंजित किया गया है। पूर्ववर्ती प्रबन्ध काव्य "कृष्णायन" में वे स्वार्थ-वश कर्ण को अंगराज्य प्रदान करके अपने पक्ष में मिलाते हैं। "कर्ण" प्रबन्ध-कृति रश्मिरथी" व "जयभारत" आदि में वे कर्ण के वीरता व शौर्य पर विमोहित होकर उन्हें अंगदेश का शासक बनाते हैं। "सूर्यपुत्र" में दुर्योधन व कर्ण की मित्रता बचपन की मैत्री के रूप में वर्णित किया गया है। बाल्यावस्था में बालक के मन में भविष्य के दूरगामी स्वार्थ-भावना की गुंजाइश नहीं होती। दुर्योधन बिना किसी स्वार्थ-भावना और जातीय भेद के 'सूतपुत्र' कर्ण के साथ मित्रता करता है, जबकि दुर्योधन राजकुमार था, ऐश्वर्य और विलास में पला बढ़ा था –

> मित्र हो गये थे दुर्योधन ------
>
> प्रशंसा करते थे उनके शौर्य-बल का।-1

पूर्ववर्ती "अंगराज", "जयभारत" तथा "रश्मिरथी" प्रबन्ध-कृतियों के समान ही "सूर्यपुत्र" में भी दुर्योधन जातीय विभेद का विखंडन करने वाला तथा जाति की अपेक्षा कर्म को महत्ता देने वाला मानव है। इस रचना में उसका रूप पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षाकृत उग्र है। गुरू कृपाचार्य जब कर्ण को जातीय आधार पर तथा राज्यहीन होने के कारण अपमानित करते हैं, उस समय दुर्योधन उनके वीरता की महत्ता स्थापित करते हुए

1- सूर्यपुत्र- जगदीश चतुर्वेदी, पृ0 42

अंगदेश का राज्यपद समर्पित कर देता है। दुर्योधन न केवल गुरु कृपाचार्य का अपितु समस्त जातिवादियों की भर्त्सना करते हुए, कहता है-

> मैं तुमको देता हूँ सम्पदा, राजपाट,
> मैं तुझको देता हूँ आश्वासन मित्रता का
> मैं कद्र करता हूँ वीर भुजदण्डों की।
>
> वीरों का शौर्य ही उनकी पहचान है।
> बाकी ये विधि निषेध, थोथे हैं, मिथ्या हैं।
> × × ×
> चीर दी हथेली, टपकते रक्त से
> कर दिया राजतिलक महाबली कर्ण का।-1

"सूर्यपुत्र" में दुर्योधन के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उनका स्वाधिकारों के प्रति चेतनशील रूप। इस रचना में दुर्योधन के चरित्र में राज्यलोभ को अधिकार चेतना के रूप में परिवर्तित करके दिखाया गया है। दुर्योधन पांडु के बड़े भाई धृतराष्ट्र का पुत्र था। अतः अग्रज होने के कारण वह नैतिक रूप से स्वयं को राज्य का वास्तविक अधिकारी मानता है। उसके इस अधिकार बोध को नीतिसंगत व तर्कयुक्त कहा जा सकता है, क्योंकि राज्य का अधिकारी अग्रज को ही माना गया है। धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण पाण्डु को शासनाधिकार प्राप्त हुआ था, किन्तु पाण्डु की आकस्मिक मृत्यु के बाद पुनः धृतराष्ट्र ही राज्य के शासन की बागडोर संभालते हैं। अतः धृतराष्ट्र के अग्रज पुत्र होने के कारण दुर्योधन स्वयं को राज्य का वास्तविक अधिकारी मानता है-

> मैं हूँ ज्येष्ठ पुत्र मैं ही करूँगा राज्य
> पाण्डु थे छोटे अनुज धृतराष्ट्र के
> कैसे मैं छोड़ दूँ मेरा यह स्वामित्व
> मेरा अधिकार।-2

1- सूर्यपुत्र-जगदीश चतुर्वेदी, पृ0 49

2- वही, पृ0 63

दुर्योधन में यह अधिकार-बोध की भावना इतनी प्रबल हो उठता है कि उसमें पांडवों के प्रति घृणा व अहंकार की भावना उग्र रूप धारण करने लगती है। वह पांडवों को 'क्रीतदास' के रूप से अलग कोई अधिकार नही देना चाहता। वह कहता है-

चाहें तो आकर रहें वे बन क्रीतदास।-1

"सूर्यपुत्र" में दुर्योधन के उस मिथ्याऽहंकार हठी चरित्र की मनोवैज्ञानिक व्याख्या हुई है। कर्ण की वीरता व अश्वत्थामा की अतुलनीय शक्ति व शौर्य ने दुर्योधन के अहंकार को विशेष रूप से सहयोग प्रदान किया है-

दुर्योधन पर हावी था मिथ्या अहंकार
दुर्योधन पर हावी थे कर्ण के सुतीक्ष्ण बाण
दुर्योधन को विश्वास था अश्वत्थामा के शौर्य का।-2

"सूर्यपुत्र" में दुर्योधन का चरित्र-निरूपण भावुक व संवेदनशील रूप में भी हुआ है। कर्ण के प्रति उसका असीम प्रेम इसी तथ्य का द्योतक है। वह कर्ण से जीवन के प्रत्येक क्षण में साथ रहने तथा जय और पराजय के दिनों में सहभागी बनने का आग्रह करता है-

----- तुम रहना सदैव मेरे समक्ष,
गुप्त मन्त्रणाओं में।
सहभागी मेरे बनना
जय या पराजय में।-3

समग्रतः "सूर्यपुत्र" में दुर्योधन का चरित्र मौलिक व उदात्त रूप में निरूपित हुआ है।

1- सूर्यपुत्र- पृ0 63
2- वही, पृ0 71
3- वही, पृ0 85

भीष्म

भारतीय चरित्रों में भीष्म पितामह महान त्यागी, धर्मनिष्ठ व उदात्त गुणों से सम्पन्न, सर्वोत्कृष्ट रूप में वर्णित हुए हैं। शान्तनु के ज्येष्ठ पुत्र भीष्म का जन्म देवी गंगा के गर्भ से हुआ था। भीष्म पितामह ने अपने पिता के लिए अपूर्व त्याग का परिचय देते हुए, आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत निभाने की भीषण प्रतिज्ञा की थी। इसी कारण ही वे भीष्म कहलाये। इसके अतिरिक्त भीष्म ने जीवन भर जिस त्याग शौर्य, देश-प्रेम, धर्मनिष्ठा व राज्यनिष्ठा का परिचय दिया, वह उनकी उत्कृष्टता व उदात्तता का ही सूचक है।

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में भीष्म के परम्परागत चरित्र की मौलिक व्याख्या हुई है। उनके चरित्र को युगीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हुए, उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों तथा संघर्षों को भी निरूपित किया गया है।

द्वारका प्रसाद मिश्र कृत "कृष्णायन" में भीष्म के परम्परागत चरित्र को मौलिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस रचना में भीष्म का नीतिज्ञ व चिन्तक रूप प्रमुख रूप से उभरा है।

"कृष्णायन" में द्रौपदी-चीरहरण प्रसंग में भीष्म जैसे महान व शीर्षस्थ व्यक्ति के मौन को, नवीन रूप में निरूपित किया गया है। परम्परागत रूप में भीष्म द्वारा द्रौपदी चीरहरण प्रसंग में धारण किया गया मौन, उचित नहीं लगता। "कृष्णायन" में भीष्म के इस मौन का कारण है, पति-पत्नी के सम्बन्ध में हस्तक्षेप न कर पाने की विवशता। जब धर्मराज युधिष्ठिर स्वयं धर्म हार जाते हैं, अपनी ही पत्नी को दांव पर चढ़ा देते हैं, भीष्म क्या कर सकते थे। भीष्म द्रौपदी के चीरहरण की भर्त्सना करते हुए, कहते हैं-

अघ असंख्य देखऊँ जग माही,
यहि तें अधिक दीख अघ नाहीं।
पति-पत्नी सम्बन्ध पै, अविनाशी सब काल
सकेऊँ न करि निर्णय उचित, ताते मौन बिहाल। -1

"कृष्णायन" में भीष्म-पितामह मौलिक रूप में युद्ध-विरोधी किन्तु राजनिष्ठ चरित्र के रूप में निरूपित हुए हैं। भीष्म युद्ध के विध्वंशक ताण्डव-नर्तन के पक्षधर नहीं होते, किन्तु राज्य के प्रति उत्तरदायित्व उन्हें युद्ध के लिए विवश करती है। भीष्म के मन में पाण्डवों के प्रति भी अथाह प्रेम होता है। इसी कारण भीष्म युद्ध करने के लिए तैयार तो होते हैं, किन्तु पाण्डवों का वध न करने की प्रतिज्ञा के साथ। वे कहते हैं:-

मैं नहिं वत्स! समर अभिलाषी
अन्न तुम्हार दिनन बहु खावा
करि रण में ऋण चहत चुकावा
x x x
पै निश्चय दृढ़ मम मन मांही
बधिहों स्वकर पाण्डु सुत नांही। -1

भीष्म युद्ध के भयंकर ताण्डव को रोकने के लिए ही, कर्ण को युद्ध विरत करना चाहते हैं। इसी कारण कर्ण के शौर्य को अपनी निन्दा से शमित करने का प्रयास भी करते हैं। समग्रतः "कृष्णायन" में भीष्म, को विवश व नीतिज्ञ रूप में ही प्रस्तुति मिली है।

"कृष्णायन" के पश्चात् रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत "कुरुक्षेत्र" में भीष्म का चरित्रांकन परम्परागत रूप से हटकर सर्वथा मौलिक रूप में निरूपित किया गया है। यद्यपि महाभारत में भी भीष्म नीतिज्ञ रूप में अधर्म के विनाश के समर्थक रूप में वर्णित हुए हैं। जैसा कि स्वयं कवि ने भूमिका में लिखा है- "महाभारत" में भी भीष्म द्वारा कथित राजतन्त्रहीन समाज एवं ध्वंसीकरण की नीति का वर्णन है।"-2 किन्तु कुरुक्षेत्र में कथानक का मूलाधार महाभारत होते हुए भी उसे सर्वथा नवीन ढंग से प्रस्तुति मिली है।

1- कृष्णायन- पृ0 510

2- कुरुक्षेत्र - रामधारी सिंह 'दिनकर' - भूमिका में, पृ0- 4

"कुरूक्षेत्र" में भीष्म मौलिक रूप में विद्रोही नेता के रूप में चरित्रांकित हुए हैं। वे अन्याय व अनीति के परिशमन हेतु हिंसा को अनुचित नहीं मानते। यदि अधिकार व स्वत्व, नीतिपूर्ण ढंग से न प्राप्त हों, तो उसे छीनकर प्राप्त करना ही श्रेय है। भीष्म कहते हैं-

स्वत्व माँगने से न मिले, संघात् पाप हो जाये,
बोलो धर्मराज, शोषित वे, जियें या कि मिट जाये?
न्यायोचित अधिकार माँगने से न मिले, तो लड़ के,
तेजस्वी छीनते समर को जीत, या कि खुद मरके।-1

"कुरूक्षेत्र" में भीष्म समतावादी चरित्र के रूप में भी निरूपित किये गये हैं। वे समस्त मानवजाति के समान अधिकारों के समर्थक है। समाज में वर्गीय विषमता के कारण कोई आर्थिक रूप से अत्यधिक सम्पन्न है, तो किसी के पास रहने व खाने तक की क्षमता नहीं होती। भीष्म इस विषमता का विरोध करते हुए सबके समान सुख-भाग के प्राप्ति के समर्थक हैं। भीष्म धरती पर शान्ति स्थापना के लिए, सभी मानव के समान महत्ता व अधिकार को महत्वपूर्ण मानते हैं। प्रजा में शान्ति की स्थापना करने के लिए, उनके हृदय को जीतना आवश्यक होता है। हिंसा के बल पर शान्ति स्थापना कभी नहीं हो सकती। भीष्म कहते हैं:-

शान्ति नहीं तब तक, जब तक सुख भाग न नर का सम हो,
नही किसी को बहुत अधिक हो, नहीं किसी को कम हो।
ऐसी शान्ति राज्य करती है तन पर नहीं हृदय पर,
नर के ऊँचे विश्वासों पर, श्रद्धा, भक्ति, प्रणय पर।-2

"कुरूक्षेत्र" में भीष्म अहिंसावाद के औचित्य को पूर्णतया नहीं स्वीकार कर पाते। वे ऐसी अहिंसा को व्यर्थ व क्लैवता का सूचक मानते

1- कुरूक्षेत्र- पृ0-26

2= वहीं, पृ0 25

हैं, जो शोषण को सहन करने की शिक्षा देती हो। भीष्म अत्याचार व अन्याय के परिशमन को मानव धर्म मानते हैं/ वे पशुबल के विनाश हेतु हिंसा को आवश्यक मानते हैं । प्रतिशोध हीनता पर आक्षेप करते हुए, भीष्म । कहते है:-

उसकी सहिष्णुता, क्षमा है महत्व ही क्या,
करना ही आता नहीं है जिसको प्रहार है?
करूणा, क्षमा को छोड़ और क्या उपाय उसे
ले न सकता बैरियों से प्रतिकार है,
प्रतिशोध हीनता नरों में महापाप है।-1

'दिनकर' ने भीष्म के मानसिक अन्तर्द्वन्दों का सहज व मौलिक रूप में चित्रण किया है। 'द्रौपदी-चीरहरण' प्रसंग में कृष्णायनकार ने भीष्म के मौन स्थिति का कारण पति पत्नी के सम्बन्ध में हस्तक्षेप न कर पाने की विवशता व नीति को माना है। जब युधिष्ठिर ने अपनी ही पत्नी को दाँव पर चढ़ा दिया, तो भीष्म क्या कर सकते थे? किन्तु कुरूक्षेत्र में भीष्म अपने इस मौन के प्रति पश्चाताप् करते हैं। चीरहरण के समय द्रौपदी के पुकार को अनसुना करने के कारण, वे गहन आत्मव्यथा का अनुभव करते हैं। भीष्म आत्म-भर्त्सना करते हुए, कहते हैं:-

नर की कीर्तिध्वजा उस दिन, कट गयी देश में जड़ से,
नारी ने सुर को टेरा जिस दिन निराश हो नर से।
"धिक् धिक् मुझे, हुई उत्पीड़ित, सम्मुख राज- वधूटी
आँखों के आगे अबला की लाज, खलों ने लूटी।-2

"कुरूक्षेत्र" में नवीन रूप में भीष्म के हृदय के कोमल व संवेदनशील पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयास हुआ है। इस प्रबन्ध कृति में भीष्म के

1- कुरूक्षेत्र पृ0 30
2- कुरूक्षेत्र- पृ0 46-47

अन्दर छिपी प्रणय-भावना को भी शब्द मिले हैं, जो उनकी प्रण-रूपी जंजीरों में जकड़ा रहता है। अम्बिका के प्रथम प्रणय के आग्रह का स्मरण, भीष्म को व्यथित कर देता हैः-

चढ़ा किसी दिन फूल, किसी का मान न मैं कर पाया,
एक बार भी अपने को था, दान न मैं कर पाया।
वह अतृप्ति थी छिपी ह्रदय के किसी निभृत कोने में।-1

"कुरुक्षेत्र" में भीष्म भाग्यवाद के विरोधी तथा कर्मवादी मानव के रूप में अंकित हुए हैं। भीष्म भाग्यवाद को पाप के आवरण और शोषण के शस्त्र के रूप में देखते हैं। वे कर्म को मानव के उत्थान का सबल साधन मानते हैं। भीष्म भाग्यवाद की भर्त्सना करते हुए कहते हैंः-

भाग्यवाद आवरण पाप का, और शस्त्र शोषण का,
जिससे रखता दबा एक जन भाग दूसरे जन का।
× × ×
नर समाज का भाग्य एक है, वह श्रम, भुजबल है,
जिसके सम्मुख झुकी हुई, पृथिवी, विनीत नभ तल है।-2

'दिनकर' ने भीष्म को समष्टिवादी मानव के रूप में प्रस्तुत किया है। भीष्म व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को महत्ता देते हुए समष्टि की उपेक्षा को दासत्व का कारण मानते हैं। भीष्म के माध्यम से कवि ने "व्यष्टि के स्वार्थ के स्थान पर समष्टि की हित कामना की है। अर्थात् सामाजिक प्राणी का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने हित को लोक हित से एकाकार करके देखे।"- 3 भीष्म समष्टिवाद की महत्ता स्थापित करते हुए, कहते हैं-

---

1- कुरुक्षेत्र - पृ0-55
2- कुरुक्षेत्र, पृ0-94-95
3- आधुनिक महाकाव्य- विश्वम्भर मानव, पृ0 165

तज समष्टि को व्यष्टि चली थी, निज को सुखी बनाने,
गिरी गहन-दासत्व-गर्त के, बीच स्वयं अनजाने।-1

"कुरुक्षेत्र" में भीष्म राजतंत्र के विरोधी मानव के रूप में भी निरूपित किये गये हैं। वे निरंकुश राजतंत्र को मानवतावाद का विनाशक मानते हैं। राजतंत्र की भर्त्सना करते हुए, भीष्म कहते हैं-

राजतंत्र द्योतक है नर की, मलिन, निहीन प्रकृति का,
मानवता की ग्लानि और कुत्सित कलंक संस्कृति का।-2

समग्रतः कुरुक्षेत्र मे भीष्म का चरित्रांकन उदात्तता व आदर्श से परिपूर्ण है। "शरशय्या पर शयित भीष्म द्वारा मानवाधिकारों का उपदेश भी उनको सोद्देश्य कर्मठता का आलेख है, जिससे उनकी तेजस्विता का प्रतिपादन उचित परिप्रेक्ष्य मे हो सका है।"-3 आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी भीष्म के चरित्र की अर्थवत्ता समीचीन है।

"अंगराज" में भीष्म का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है। इस रचना में भीष्म को कौरव पक्ष के चरित्रोत्कर्ष का साधन बनाया गया है। यही भीष्म के चरित्र-निरूपण की नवीनता है। कर्ण की भर्त्सना करने के सन्दर्भ में भीष्म का चरित्र परम्परागत रूप में ही निरूपित हुआ है।

द्रौपदी-चीरहरण प्रसंग में भीष्म कौरवपक्ष के समर्थक ही दृष्टिगत होते हैं। वे चीरहरण-प्रसंग के कारण रूप में द्रौपदी के दोषों को ही मानते हैं। इसी कारण वे विरोध नहीं करते। भीष्म का यह चरित्र सर्वथा नवीन

1- कुरुक्षेत्र- पृ0 100-101
2- वही, पृ0 102
3- आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में पौराणिक चेतना का समाहार आकलन-जया पाठक, पृ0 203

रूप में है। धर्मप्राण व नीतिज्ञ कहे जाने वाले भीष्म द्रौपदी के अपमान को देखकर भी उत्तेजित नहीं होते। यहाँ कवि द्वारा कौरव-पक्ष को निर्दोष दिखाने की चेष्टा परिलक्षित होती है:-

-----पितामह रहा निरुत्तर, उसका दोष विचार।-1

"अंगराज" में भीष्म के चरित्र का आदर्श पक्ष है-उनका युद्ध-विरोधी रूप। भीष्म कौरव तथा पांडव के मध्य युद्धाभिलाषी कभी नहीं रहे। वे भाई-भाई के झगड़ों के प्रतिकूल परिणामों को अपने ज्ञान-चक्षु से पहले ही जान जाते हैं। इसी कारण वे दुर्योधन को आपसी द्वेष का परिशमन करने तथा पांडवों को उचित अधिकार प्रदान करने की सलाह देते हैं। वे दुर्योधन से कहते हैं:-

वत्स पाण्डु सुत भोग चुके हैं राजदंड पर्याप्त।
उन्हें क्षमा दो और करो अब यह दौर्भ्रातृ समाप्त।।
यथाशीघ्र यदि हुई न उनकी बाधायें निर्मूल।
विषम परिस्थिति यहाँ उपस्थित होगी तव प्रतिकूल।।-2

"अंगराज" में भीष्म का चरित्र-चित्रण युद्ध के प्रसंग में परम्परागत ही है। इस रचना में भीष्म कौरवों के समान, पाण्डवों से भी समान भाव से स्नेह करते हैं। कौरवों के पक्ष से युद्ध करने का कारण उनकी राजनिष्ठा ही होती है। भीष्म कहते हैं-

तव समान ही यद्यपि पांडव मम् कुल मान प्रवर्द्धक है।
तथा हृदय से हम उनके ही स्नेही, पक्ष-समर्थक हैं।।
किन्तु राज्य सेवार्थ मुख्यतः राष्ट्रधर्म पालन करने।
राजभाव से हम जायेंगे स्वजनों से भी रण करने।।-3

1- अंगराज- पृ0- 78

2- वही, पृ0- 82

3- अंगराज- पृ0- 160

"अंगराज" में कुछ पक्षों को छोड़कर भीष्म का चरित्रांकन उदात्त गुणों से परिपूर्ण महान व्यक्ति के रूप में हुआ है। "अंगराज" में भीष्म के चरित्र को उच्च आदर्श चरित्र दिखलाया है। ----- भीष्म के अन्तर्द्वन्द्व को विशेष रूप से व्यक्त किया गया है।"-1 पराक्रमी व दृढ़ प्रतिज्ञ भीष्म अपने महत शौर्य से कृष्ण को भी अस्त्र उठाने के लिए बाध्य कर देते हैं। यही भीष्म अर्जुन द्वारा शिखण्डी का ओट लिए जाने पर, ब्रह्मचर्य तथा मर्यादा के पालन हेतु मृत्यु को वरण करते हैं, किन्तु शिखण्डी पर वार नहीं करते। भीष्म के चरित्र के ये दोनों पक्ष परम्परागत हैं।

केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत "कर्ण" में भीष्म पितामह पूर्ववर्ती रचनाओं की अपेक्षा मौलिक रूप में संवेदनशील, नियतिवादी तथा युद्ध के विरोधी मानव के रूप में चरित्रांकित किये गये हैं।

"कर्ण" में सर्वथा मौलिक रूप में भीष्म द्वारा कर्ण का अपमान करने के प्रसंग को मौलिक व्याख्या प्राप्त हुई है। भीष्म कर्ण को दुर्योधन की सबसे बड़ी शक्ति मानते हैं। वे कर्ण को युद्ध से विरत करके, दुर्योधन को भी युद्ध से रोक सकते थे। इसी कारण वे कर्ण के शौर्य को शमित करने के उद्देश्य से ही उसका अपमान करते हैं। शरशय्या पर पड़े भीष्म कर्ण से अपनी अन्तर्वेदना का प्रकटन करते हुए, कहते हैं-

सूत-पुत्र कह तिरस्कार अपमान किया है तेरा,
इसके लिए ग्लानि है भारी दुःखी हृदय है मेरा।
था मेरा उद्देश्य कि तेरा - तेज दुर्बल हो।
जिससे अपने क्रूर काण्ड में, दुर्योधन असफल हो।-2

"कर्ण" में भीष्म युद्ध के विध्वंशक ताण्डव नर्तन के पश्चात् नियतिवादी

1- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध-काव्य -बनवारी लालशर्मा, पृ0-216
2- कर्ण, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ0-79

हो जाते हैं। वे युद्ध के ताण्डव नर्तन को, विधि का विधान मानते हैं। भीष्म नियति के समक्ष मानव को असहाय मानते हैं। "कुरूक्षेत्र" में भीष्म नियतिवाद के विरोधी हैं, किन्तु "कर्ण" में वे नियतिवादी हो गये हैं। वे युद्ध के प्रति अपनी आत्मव्यथा को प्रकट करते हुए कर्ण से कहते हैं:-

पर पुरूषार्थ बदल सकता क्या, विधि की लिखी कहानी,
कर्ण विरोधी नियति का, मानव की भारी नादानी।-1

"कर्ण" के पश्चात् भीष्म का चरित्र-निरूपण करने वाली अगली कड़ी "जयभारत" है। इस रचना में भीष्म का चरित्रांकन परम्परागत रूप के साथ नवीन रूप में भी हुआ है। भीष्म महान त्यागी , दृढ़ प्रतिज्ञ तथा आदर्श गुणों से युक्त मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। "जयभारत" में भीष्म के संवेदनशील रूप का सहज अंकन हुआ है।

"जयभारत" में भीष्म महान त्यागी के रूप में अंकित हुए हैं। उनका यह चरित्र परम्परागत ही है। भीष्म के पिता शान्तनु जिस कन्या के साथ विवाह करना चाहते हैं, उसके पिता शर्त के आधार पर ही अपनी कन्या के विवाह के लिए तैयार थे। यह शर्त होती है, भविष्य में उस कन्या के ही पुत्र को युवराजत्व प्रदान करने की। भीष्म अपने पिता के सुख के लिए ही राज्य का त्याग करते हैं। भविष्य में कोई अन्य बाधा न उत्पन्न हो, इसी कारण से ब्रह्मचर्य की भीषण प्रतिज्ञा करते हैं:-

मैं अपनी भावी भ्राता के लिए छोड़ता हूँ निज राज्य
बाधक बने न आगे जिसमें कोई औरस अविचारी,
मैं विवाह ही नहीं करूँगा बना रहूँगा व्रतधारी।।-2

1- कर्ण- पृ0-80

2- जयभारत- मैथिलीशरण गुप्त, पृ0-35

"जयभारत" में भीष्म आदर्श गुरू भक्त के रूप में भी निरूपित किये गये हैं। अम्बा से विवाह के प्रसंग में गुरू परशुराम से हुए मत भेद के कारण, परशुराम उन्हें युद्ध के लिए आमन्त्रित करते हैं। भीष्म विवशतः गुरू से युद्ध के लिए तैयार होते हैं। किन्तु वे उन पर वार न करके केवल उनका प्रहार रोकते हैं। ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा के कारण भीष्म अम्बा से विवाह नहीं कर सकते थे। इसी कारण वे गुरू की आज्ञा का उल्लंघन कर उनसे युद्ध के लिए विवश होते हैं। किन्तु इस युद्ध में भी वे अपनी मर्यादा से नहीं डिगते-

""देव आप पहले प्रहार कर शत्रुभाव धारण करे,
जिसमें गुरू ब्राह्मण पर उठते हुए न मेरे कर डरें।
वार बचायें मात्र उन्होंने स्वयं प्रहार नहीं किया,-1

"जयभारत" में द्रौपदी चीरहरण प्रसंग में कविद्वारा मौलिक कल्पना का सहारा लेते हुए भीष्म को अनुपस्थित दिखाया गया है। इस कल्पना के पीछे भीष्म की उदात्तता के रक्षा की प्रवृत्ति ही दृष्टिगत होती है। भीष्म को जब द्रौपदी के अपमान की सूचना मिलती है, वे मर्माहत हो उठते हैं। अपनी अन्तर्वेदना को व्यक्त करते हुए वे इस कृत्य को दुर्योधन का स्वभावगत् दोष मानते हैः-

मैंने शास्त्र शस्त्र शिक्षा का किया सभी के लिए प्रयत्न
आशा थी कुल के गौरव की वृद्धि करेंगे सब कुल-रत्न।
पर स्वभाव पर चला किसी का कोई शास्त्र न कोई शस्त्र
और अन्त में आज हमारी कुल की लज्जा हुई विवस्त्र।-2

1- जयभारत- मैथिलीशरण गुप्त, पृ0 37

2- जयभारत, पृ0-151

गुप्त जी ने भीष्म को बौद्धिक तथा नीतिज्ञ रूप में प्रस्तुत किया है। वे युद्ध को रोकने के लिए लगातार प्रयत्नरत रहे, किन्तु असफलता ही उनके हाथ लगी। युद्धानल को प्रज्जवलित करके सुख पाने वाले मानवों का निन्दा करते हुए, वे कहते हैं-

अपना नियन्ता आप होकर भी लोक में,

हन्त निज हन्ता बनता है नर आप ही।-1

भाई-भाई के मध्य बढ़ते कटुता व वैमनस्य का चरम ही महाभारत के युद्ध के रूप में बदल जाता है। भीष्म कर्ण को भी अपने ही सगे भाइयों के विरूद्ध युद्ध करने से रोकते हैं, किन्तु उस पर भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। मानव की इस प्रवृत्ति पर आक्षेप करते हुए, भीष्म कहते हैं:-

"राम और भरत सदा नहीं मिलते।" 2

रामधारी सिंह 'दिनकर' कृत "रश्मिरथी" में भीष्म का चरित्रांकन आधुनिक संवेदना से प्रभावित है। इस रचना में भीष्म युद्ध के विरोधी, मानवतावादी उदार तथा संवेदनशील मानव के रूप में चरित्रांकित हुए हैं। युद्ध के विध्वंशक व क्रूर रूप के प्रति भीष्म का अन्तर्द्वन्द्व व आत्मव्यथा, आधुनिक युग के मानव में निहित युद्ध के प्रति संत्रस्त मानसिकता का ही प्रतीकात्मक रूप प्रतीत होता है।

"रश्मिरथी" में भीष्म युद्ध के विध्वंशक ताण्डव लीला को रचाने वालों की तीव्र भर्त्सना व निन्दा करते हैं। वे कहते हैं कि युद्ध के भीषण दावानल में, स्वयं युद्ध के रचाने वालों का ही विनाश होता है। उनके ही समाज व देश का विनाश होता है। युद्ध की विसंगति की ओर इंगित करते हुए, भीष्म कर्ण से कहते हैं-

अब कहो आज क्या होता है? किसका समाज यह रोता है?

किसका गौरव किसका सिंगार, जल रहा पंक्ति के आर-पार?-3

1- जयभारत - पृ0-378 2- वही- पृ0- 378

3- रश्मिरथी -रामधारी सिंह "दिनकर" पृ0-74

"रश्मिरथी" में भीष्म मौलिक रूप में मानवतावादी व बौद्धिक मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। ऐसे विजय को तुच्छ व हेय मानते हैं, जो मानवता को नष्ट करके प्राप्त की जाती है। वे वीरता को शान्ति के लिए पवित्र-श्रम के रूप में देखना चाहते हैं, न कि विनाशकारी कृत्य के हेतु। मानव की युद्धोन्मुखी मानसिकता पर आक्षेप करते हुए, वे कहते हैं:-

> मानवता ही मिट जायेगी? फिर विजय सिद्धि क्या लायेगी?
> × × ×
> ----हाय वीरता का सम्बल, रह जायेगा धनु ही केवल?
> या शान्ति हेतु शीतल, शुचि-श्रम भी कभी करेंगे वीर परम?-1

"रश्मिरथी" के पश्चात् "सेनापति - कर्ण" में भीष्म का चरित्र कर्ण के प्रति संवेदनशील, युद्ध के विरोधी तथा कर्मवादी मानव के रूप में निरूपित हुआ है। इस रचना में भीष्म के अन्तर्द्वन्द्वों को मौलिक रूप में अंकित किया गया है।

"सेनापति - कर्ण" में भीष्म द्वारा कर्ण के अपमान को मौलिक रूप में व्याख्यायित किया गया है। भीष्म कर्ण के दान और शौर्य के उदात्त गुणों से प्रभावित होते हुए भी उसको एकमात्र जातिगत वैषम्य के कारण अपमानित करते हैं। अपनी दुर्बलता को स्वीकार करते हुए, भीष्म कहते हैं:-

> अर्द्धरथी मानता रहा हूँ, उसे मैं भी जो
> एकमात्र कुल के विचार से, नहीं तो क्या
> × × ×
> दान और शौर्य की विभूति, जो की कर्ण की
> समता करेगी कभी?--------- -2

इस रचना में भीष्म कृष्ण और कृष्णा यानि द्रौपदी को युद्ध का प्रमुख उत्तरदायी मानते हैं। भीष्म के चरित्र का यह पक्ष सर्वथा नवीन है।

1- रश्मिरथी, पृ0 - 74-75

2- सेनापति कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0-180

इस तथ्य के पीछे कवि द्वारा कौरव पक्ष के निर्दोषिता को स्थापित करने का उद्देश्य ही परिलक्षित होता है। भीष्म कुन्ती से कहते हैं:-

रोका नहीं तुमने क्यों कृष्ण और कृष्णा को,
दोनों ने जलाया जब कालानल रण का।-1

"सेनापति- कर्ण" में भीष्म का चरित्रांकन "कुरुक्षेत्र" की भाँति अम्बा के प्रति संवेदनशील भावुक मानव के रूप में हुआ है। शरशय्या पर पड़े भीष्म को अम्बा की याद हो आती है।

इस रचना में "कुरुक्षेत्र" के सदृश ही भीष्म कर्मवादी मानव के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। वे नियतिवादी व्यक्तियों की भर्त्सना करते हुए, कहते हैं कि मनुष्य अपने असफलता का दोष नियति को देकर अपनी दुर्बलता को छिपाना चाहते हैं:-

---- मन्द भाग्य असफल हो
देते हैं सदैव दोष विधि के विधान को।-2

1- सेनापति कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0-123

2- वही पृ0-133

अभिमन्यु

अभिमन्यु अपनी उदात्त वीरता व अप्रतिम साहस के कारण महाभारतीय चरित्रों में विशेष महत्ता का अधिकारी है। लघु वयस में ही अर्जुन व सुभद्रा के पुत्र ने जो कीर्ति अर्जित की है, अन्यत्र दुर्लभ है। परम्परागत रूप में अभिमन्यु का चरित्रांकन संक्षिप्त रूप में ही प्राप्त होता है। अर्जुन पुत्र अभिमन्यु में जन्म के पूर्व गर्भावस्था में ही इतनी सशक्त व तीव्र मानसिक क्षमता होती है कि अर्जुन द्वारा सुभद्रा को चक्रव्यूह वेधन की रीति बताये जाने पर, वे उस शिक्षा को कंठस्थ कर लेते हैं। अभिमन्यु अपने पिता सदृश ही सफल वीर होता है। महाभारत युद्ध के समय अर्जुन के युद्ध के सन्दर्भ में जब बाहर गये होते हैं, उसी दिन कौरव महारथियों द्वारा चक्र व्यूह की रचना की जाती है। इस चक्रव्यूह का वेधन अर्जुन को छोड़कर कोई भी पाण्डव नहीं जानते थे। अन्ततः अभिमन्यु इस कार्य के लिए स्वयं को प्रस्तुत करता है। अभिमन्यु चक्रव्यूह के अन्दर प्रवेश करना जानता था, किन्तु बाहर निकलना नहीं सीख सका था क्योंकि उसके वर्णन के समय सुभद्रा सो गई थी। अभिमन्यु अपने पक्ष के सम्मान व स्वाभिमान हेतु आधी विद्या के ही सहारे चक्रव्यूह में प्रवेश कर जाता है। चक्रव्यूह भेदते हुए वह कौरव सेना में खलबली मचा देता है। किन्तु एकाकी अभिमन्यु पर कौरव पक्ष के सात महारथी एक साथ आक्रमण कर देते हैं। सातों महारथियों का सामना करते हुए अभिमन्यु अपने अप्रतिम शौर्य व वीरता का परिचय देता है। अन्ततः वह साधन हीन हो रथ के टूटे पहिये के सहारे युद्ध करता है, और वीरगति प्राप्त करता है।

आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में अभिमन्यु का चरित्र बहुत ही कम रचनाओं में वर्ण्य-विषय बना है। इसका कारण अभिमन्यु का संक्षिप्त चरित्र ही प्रतीत होता है। आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में अभिमन्यु परम्परागत तथा प्रतीकात्मक रूप में चरित्रांकित किया गया है।

मैथिलीशरण गुप्त कृत जयद्रथ-वध में अभिमन्यु परम्परागत रूप में वर्णित किया गया है। "जयद्रथ-वध में अभिमन्यु द्वारा चक्रव्यूह वेधन तथा सात महारथियों- कृप, कर्ण, दुःशासन, सुयोधन, शकुनि, द्रोण व अश्वत्थामा द्वारा मारे जाने का वर्णन हुआ है।

"जयद्रथ-वध" में अभिमन्यु बैरियों तथा पापियों को उचित दण्ड देना आवश्यक मानते हैं। यहाँ उनके नीतिज्ञ व वीर रूप का ही परिचय मिलता है। युद्ध-क्षेत्र में रण हेतु प्रयास करते समय वे उत्तरा से कहते हैं:-

बदला न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है?
निज शत्रुओं का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए
बदला समर में बैरियों से शीघ्र लेना चाहिए
पापी जनों को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा।-1

चक्रव्यूह-वेधन के पश्चात् अभिमन्यु कौरव दल में विध्वंसक दृश्य उत्पन्न कर देते हैं। अपनी सेना को बचाने के लिए सात-2 महारथी एक साथ मिलकर अभिमन्यु पर वार कर देते हैं। इस विषम परिस्थिति में भी किन्तु वे हताश नहीं होते। अन्ततः वे निःशस्त्र हो जाते हैं। उसके निःशस्त्र होने के बावजूद सातों महारथी उस पर वार करते हैं। इस निन्दनीय कृत्य की भर्त्सना करते हुए, अभिमन्यु कहते हैं:-

निःशस्त्र पर तुम वीर बनकर वार करते हो अहो।
है पाप तुमको देखना भी पामरों सम्मुख न हो।।
दो शस्त्र पहले तुम मुझे, फिर युद्ध सब मुझसे करो,
यों स्वार्थ-साधन के लिये मत पाप-पथ में पद धरो।-2

1- जयद्रथ-वध - मैथिलीशरण गुप्त- पृ0-7

2- वही, पृ0 15

अन्ततः अभिमन्यु जैसा महान वीर कर्ण, द्रोण और कृप जैसे महान कहे जाने वाले तथा दुःशासन, सुयोधन, शकुनि व अश्वत्थामा के महादुष्कर्म का शिकार हो, वीरगति को प्राप्त होते हैं। अभिमन्यु जैसे षोडश वर्षीय बालक द्वारा सात-2 महारथियों के आक्रमण का सामना करना, उसके अप्रतिम शौर्य व वीरत्व का सूचक है।

"जयद्रथ-वध" के पश्चात् कुँवर नारायण कृत "चक्रव्यूह" में अभिमन्यु का चरित्रांकन मौलिक रूप में हुआ है। परम्परागत रूप में अभिमन्यु सातों महारथियों से संघर्ष करते-2 शस्त्र-विहीन हो जाता है। शस्त्र-विहीन होने के बाद भी सातों महारथियों का सामना करने के लिए रथ के टूटे पहिये को साधन बनाता है। अन्ततः वीरगति को प्राप्त होता है। "चक्रव्यूह" में अभिमन्यु का चरित्र ऐसे संघर्षरत मानव का प्रतीक बना है, जो साधन हीन हैं। साधन-हीन मानव अभिमन्यु के सदृश संघर्ष करते-2 अन्ततः निःशेष हो जाता है।

"चक्रव्यूह" में अभिमन्यु निम्न वर्गीय मानवों के प्रतीक बनकर उभरे हैं। सदियों से निम्नवर्गीय मानव समर्थ व साधन सम्पन्न मानव के उत्पीड़न का शिकार बनता रहा है। अभिमन्यु इस रचना में, शोषण के शिकार समस्त मानव वर्ग के प्रतीक बनकर उभरे हैं:-

"मैं बलिदान इस संघर्ष में
कटु व्यंग्य हूँ उस तर्क पर
जो जिन्दगी के नाम पर हारा गया,
आहूत हर युद्धाग्नि में
वह जीव हूँ निष्पाप
जिसको पूज कर मारा गया,
वह शीश जिसका रक्त सदियों तक बहा
वह दर्द जिसको बेगुनाहों ने सहा।-1

1- चक्रव्यूह- कुँवर नारायण, पृ0-65

"चक्रव्यूह" में अभिमन्यु ऐसे संघर्षरत शोषित वर्ग के प्रतीक है, जो साधन-हीन हैं। साधन हीन होते हुए भी वे शोषण के विरूद्ध संघर्षरत रहते हैं। अन्ततः संघर्ष करते हुए उनके जीवन की इति हो जाती है। संघर्षरत मानव के प्रतीक अभिमन्यु कहते हैं:-

मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूँ,
प्रारब्ध जिसका गर्भ ही से हो चुका निश्चित,
अपरिचित जिन्दगी के व्यूह में फेंका हुआ उन्माद।-1

"चक्रव्यूह" में अभिमन्यु के माध्यम से मानव के विवशता तथा नियति का बोध भी कराया गया है। जीवन संघर्षों से जूझने के लिए मानव विवश होता है। जीवन के महासागर में उसे अनेक ऐसे कठिनाइयों को पार करना पड़ता है, जिनके बारे में वह कल्पना तक नहीं करता। किन्तु मानव इसे अपनी नियति मानकर कभी हताश नहीं होता। "चक्रव्यूह" में अभिमन्यु कहते हैं:-

कौन कब बन सकेगा कवच मेरा?
युद्ध मेरा मुझे लड़ना
इस महाजीवन समर में अन्त तक कटिबद्ध
मेरे ही लिए यह व्यूह घेरा,
मुझे हर आघात सहना,
गर्भ निश्चित मैं नया अभिमन्यु पैतृक युद्ध।-2

1- चक्रव्यूह- कुँवर नारायण, पृ0- 100

2- वही, पृ0- 103

भीम

भीम का चरित्र एक साहसी व वीर योद्धा के साथ-साथ दर्पयुक्त, व वाचाल पात्र के रूप में प्राप्त होता है। महाभारत में भीम का चरित्र ओजस्विता व विराट व्यक्तित्व का सूचक है। भीम का जन्म कुन्ती द्वारा पवन देवता के आह्वान से हुआ था। महाभारतीय पात्रों में भीम का व्यक्तित्व उनकी वाचालता व यथार्थवादिता व उग्रता के कारण सहज रूप से विलग दृष्टिगत होता है। अन्याय का विरोध भीम के ही शब्दों में अधिक मुखर हुआ है।

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में भीम के परम्परागत चरित्र में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दृष्टिगत होता है। कहीं - कहीं उनके चरित्रांकन में नवीनता लाने का प्रयास अवश्य हुआ है।

"कृष्णायन" में भी भीम द्वारा दुःशासन का वक्ष चीरकर रक्तपान करना तथा दुर्योधन के वध के लिए अनैतिक ढंग से उसके वर्जित भाग पर प्रहार करना आदि कृत्य परम्परागत रूप में ही वर्णित हुआ है। ये कृत्य उनके प्रतिशोध वृत्ति के ही सूचक हैं।

इस रचना में भीम का सहज व नीतिज्ञ रूप द्यूत-क्रीड़ा के पूर्व प्राप्त होता है। भीम धृतराष्ट्र द्वारा भेजे गये द्यूत-क्रीड़ा के आदेश को हेय मानते हैं। वे द्यूत-क्रीड़ा को घर का सुख नष्ट करने वाली, बैर की जन्मदात्री तथा अनर्थ का मूल मानते हैं:-

नासे द्यूत सुखी गृह नाना, यदि सम् तात अनर्थ न आना।
उपजत बढ़त बैर अनन्ता, द्यूत समीप जात नहि सन्ता।-1

1- कृष्णायन, पृ0-415

आनन्द कुमार कृत "अंगराज" में भीम का चरित्रांकन नवीन रूप में शान्ति के विरोधी व्यक्ति के रूप में हुआ है। भीम दुर्योधन द्वारा भेजे गये शान्ति प्रस्ताव का तीव्र विरोध करते हैं। वे केवल युद्ध को अपना अन्तिम निर्णय मानते हैं। इसी कारण दुर्योधन से क्रान्ति यज्ञ में मिलने का सन्देश देते हुए वे दूत से कहते हैं:-

सहयोगी हम कभी न होंगे शान्ति यज्ञ में,
अपितु मिलेंगे यथाशीघ्र अब क्रान्ति यज्ञ में।-1

मैथिलीशरण गुप्त कृत "जयभारत" में भीम का चरित्रांकन परम्परागत रूप के साथ-साथ नवीन रूप में भी हुआ है। हिडिम्बा प्रसंग मे भीम का चरित्र नवीन रूप में प्रस्तुत हुआ है। राम भक्त गुप्त जी महाभारतीय पात्रों का रामकथा से भी तुलना करते चलते हैं। हिडिम्बा प्रसंग में भी भीम शूर्पणखा व लक्ष्मण का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, स्वयं को लक्ष्मण की अपेक्षा अधिक भावुक व्यक्त करते हैं। भीम हिडिम्बा के अनार्यत्व का सम्मान करते हुए कहते हैं:-

तो तू अपने को भले शूर्पनखा मान ले
लक्ष्मण सा धीर में नहीं हूँ, यह जान ले।

राक्षसी इसीलिए क्या तू जो निशाचरी?
यद्यपि दिवा-सी यह दीप्ति है तुझमें भरी।-2

"सेनापति कर्ण" में भीम के चरित्र के मार्मिक व अनछुये पक्ष का मौलिक चित्रण हुआ है। इस रचना में भीम के चरित्र में घटोत्कच के प्रति पितृ-हृदय का वात्सल्य तथा हिडिम्बा के प्रति कोमल संवेदना दिखाकर, उसके

1- अंगराज - पृ-94

2- जयभारत - 76-77

चरित्र को विशिष्ट गौरव प्रदान किया गया है।

"सेनापति - कर्ण" में भीम के चरित्र का मौलिक पक्ष है उनके द्वारा नारी जाति का सम्मान करना। भीम हिडिम्बा को देवि कहकर सम्बोधित करते हैं। हिडिम्ब-वध प्रसंग में भयभीत हिडिम्बा से भीम कहते हैः-

काम नहीं भय का सम्हालो चित्त अपना।
स्वप्न में भी होगा अपकार नहीं नारी का
मुझसे कहीं भी, देवि, देखकर मुझको,
द्रवित हुई थी तुम भूलता नहीं हूँ मैं।।-1

इस रचना में भीम एक कोमल हृदयी पिता के चरित्र का वहन करते हैं। हिडिम्बा तनय घटोत्कच को वे युद्ध में नहीं भेजना चाहते हैं। अपने पुत्र को, जिसे वे पिता का स्नेह तक नहीं दे सके, स्वार्थवश कालरण में भेजकर मृत्यु के भयंकर अनल में नहीं झोंकना चाहते। वे कहते हैं-

भेजना घटोत्कच को सम्भव नहीं है जो
जीवित हूँ जब तक। अमोघ देवगति है।
कहते तुम भी हो, फिर कैसे मैं तनय को
भेजूँ काल मुख में ?
स्वार्थ साधना में जो
भेजे कालरण में हिडिम्बा के तनय को?-2

यही नहीं, वे हिडिम्बा के प्रति किये गये अपने व्यवहार के प्रति आत्मक्षोभ व ग्लानि व्यक्त करते हुए, स्वयं को पापी मानते हैं। यौवन के

1- सेनापति-कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0-92-93
2- वही, पृ0 211

मद में जिस हिडिम्बा को वे प्रेयसी व पत्नी बनाते हैं, उसी को वे समाज और कुल की मर्यादा के विचार से परित्यक्त कर देते हैं। अपने इस कृत्य के कारण वे गहन अन्तर्द्वन्द्व व आत्मव्यथा झेलते हैं। वे कहते हैं:-

यौवन के मद में बनाया जिसे प्रेयसी
और फिर छोड़ दिया कुल के विचार से।
हाय रे! अभागा यह पापी भार भूमि का,
अब तक बना है, धरा फटती नहीं है जो
ठौर इसे देती पाप टलता जगत का।-1

"सेनापति कर्ण" में भीम मानवतावादी आदर्श पुरुष हैं। वे कहते हैं कि दानवी को भी पुत्र मोह और प्रसव वेदना उसी प्रकार होती है, जैसे सामान्य आर्य नारी को। वे कहते हैं:-

होती है कहो क्या नहीं वेदना प्रसव की।
दानवी को या कि पुत्र मोह होता नहीं।।-2

वे घटोत्कच को युद्ध में नहीं भेजना चाहते क्योंकि उन्हें हिडिम्बा के एकाकी जीवन की भी चिन्ता होती है। घटोत्कच ही उस वनवासिनी माँ का आखिरी अवलम्ब होता है। भीम एक आदर्श पति के चरित्र का निर्वाह करते हुए, कहते हैः-

वत्स तुमको नहीं
राज भोगना है लौट जाओ, वनवासिनी
माता के समीप पुत्र, आँखे बिछी जिसकी
पथ में तुम्हारे -3

1- सेनापति कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, पृ0-211
2- वही, पृ0-212
3- वही, पृ0-215

"कौन्तेय-कथा" में भीम के चरित्र में कौरवों के विरूद्ध प्रबल आक्रोश की अभिव्यक्ति प्राप्त होती है। द्यूत-क्रीड़ा में हारने के बाद पांडव वन-वन भटकते हुए विभिन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए, जीवन व्यतीत करते हैं। अपनी इस असहाय, दुर्दशाग्रस्त जीवन से त्रस्त हो, भीम एक क्रान्तिकारी युवक की भाँति प्रतिशोधानल में जलते हुए जो उद्‌गार व्यक्त करता है, वह उसके अन्दर चलने वाले संघर्ष की अभिव्यक्ति है-

कभी-कभी सोचता हूँ तोड़-फोड़ श्रृंखला,
प्रतिज्ञा की पीस डालूँ धार्तराष्ट्र कुल को।
जैसे सिंह करता विदारण है प्रमत्त नाग,
कुल को बिना प्रयास सहज स्वबल से।-1

वे बन्धु-बान्धवों व गुरु जनों के प्रति प्रेम, विनय व विवेक की श्रृंखला को तोड़कर, प्रतिशोध के प्रति उन्मुख होते हैं। पाण्डवों ने जो भी कष्ट सहे, उसके पृष्ठभूमि में उनकी विनयशीलता व सहनशीलता तथा विवेकी चरित्र का ही प्रमुख योगदान होता है। भीम के कथन में इन्हीं नैतिक-मूल्यों के विखण्डन की प्रवृत्ति प्राप्त होती हैः-

नहीं नहीं, और नहीं, और नहीं, और नहीं,
सद्यो मम् कृतन्त सी यातना निरन्तर।
तोड़ना ही होगा मुझे बन्धन कठिन यह,
प्रेम का, विनय का, विवेक का, विषाद का।-2

समग्रतः भीम का चरित्र एक विद्रोही व क्रान्तिकारी रूप में व्यंजित हुआ है, जिसमें अन्याय व अत्याचार के प्रतिशोध, व सामाजिक नियमों उपनियमों के विखण्डन हेतु अकूत साहस होता है।

1- कौन्तेय-कथा - उदयशंकर भट्ट-पृ0 23
2- कौन्तेय-कथा, पृ0-27

अध्याय - पाँच

जलप्लावन की कथा : पात्रों का चरित्र विकास

मनु

भारतीय वाङ्मय में मनु का चरित्र सर्वाधिक प्राचीन है। इसमें मनु का चरित्र पौराणिक रूप में ऋषि मनु, प्रजापति मनु तथा मानव जाति के आदि पुरुष मनु के रूप में व्यंजित हुआ है। "अग्नि पुराण" में वैवस्वत् मनु को विष्णु के अवतार मत्स्य द्वारा सात दिन पूर्व महा प्रलय की सूचना व सातवें दिन उनकी रक्षा की कथा वर्णित है।-1 वायु पुराण में मनु मानव जाति के आदि पुरुष के रूप में वर्णित हैं। महाप्रलय के बाद ब्रह्मा द्वारा उनका सृजन किया गया। "ब्रह्मा द्वारा अपने शरीर को दो भागों में विभक्त किया, जिसमें एक भाग पुरुष हो गया" यही स्वायम्भुव मनु हुए।-2 ब्रह्म पुराण में स्वायंभुव मनु के प्रजापालक रूप का वर्णन है।-3 विष्णु पुराण में अपने ही स्वरूप स्वायम्भुव मनु को ब्रह्मा जी ने प्रजापालन के लिये प्रथम मनु बनाया।-4 महाभारत के आदि पर्व में मनु विवस्वान के पुत्र के रूप में वर्णित हैं जो अत्यधिक बुद्धिमान थे, उनसे ही रविवंश चला। मनु वंश उन्हीं से ख्याति को प्राप्त हुआ, सभी मानवों से सम्बन्ध हुआ।-5 श्रीमद्भागवद् पुराण में प्रथम मनु स्वायम्भुव मनु थे जिनसे देवता आदि उत्पन्न हुए। ये अन्त काल में समस्त भोगों से विरक्त होकर अपनी पत्नी शतरूपा के साथ तपस्या करने सुनन्दा नदी के तट पर चले जाते हैं।-6 रामचरित मानस में स्वायम्भुव मनु और उनकी पत्नी शतरूपा का वर्णन मिलता है। मनु यहाँ आदर्श, धार्मिक, मर्यादाशील तथा तपस्वी के रूप में वर्णित है।-7 समग्रतः पुराणों में मनु का चरित्र मानव सृष्टि के प्रवर्तक,

---

1- अग्निपुराण पूर्वभाग- अध्याय-2 श्लोक 4 से 17, पृ0-5-6

2- वायु पुराण- अध्याय-10 श्लोक-2-7

3- ब्रह्म पुराण- पृ0 6-7

4- विष्णु पुराण-श्लोक-16-17, पृ0 30

5- महाभारत - आदिपर्वान्तर्गत् सम्भव पर्व - पृ0 548

6- श्रीमद्भागवद् पुराण- पृ0 363,368

7- रामचरित मानस- पृ0 140-148

तपोनिष्ठ, स्मृतिकार तथा धर्मात्मा, प्रजा-पालक, महा-तेजस्वी व यश में प्रख्यात व्यक्तित्व से समन्वित है।

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में मनु का चरित्र सर्वप्रथम् जयशंकर प्रसाद कृत "कामायनी" का वर्ण्य-विषय बना। "कामायनी" रचना के मूल में प्रसाद की विशिष्ट चिंतन दृष्टि थी, अतः मनु का चरित्र इकहरा न होकर बहु-आयामी है। इसमें मनु का व्यक्तित्व पौराणिक मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक व सामान्य मानवी है। कामायनीकार के अनुसार- मनु का चरित्र ऐतिहासिक पुरूष का भी है। कामायनी की भूमिका में कवि ने लिखा है- "मन्वन्तर के अर्थात् मानवता के नवयुग के प्रवर्तक के रूप में मनु की कथा आर्यों की अनुश्रुति में दृढ़ता से मानी गयी है। इसलिए वैवस्वत् मनु को ऐतिहासिक पुरूष ही मानना उचित है।"-1

"कामायनी" में मनु का मानव जाति के आदि पुरूष मनु के पौराणिक रूप के समतुल्य ही वर्णित हुए हैं। महाप्रलय के पश्चात् हिमगिरि के ऊँचे शिखर पर बैठे एकाकी मनु, मानव जाति के प्रथम-पुरूष के रूप में प्रलय प्रवाह का अवलोकन करते हुए, दिखाई देते हैं:-

> हिमगिरि के उतुंग शिखर पर, बैठ शिला की शीतल छाँह,
> एक पुरूष, भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह।-2

कामायनी के 'आशा' सर्ग में मनु के वैदिक ऋषि रूप के दर्शन होते हैं। मनु द्वारा विश्व कल्याण की कामना से स्वच्छ व सुन्दर स्थान चुनकर वहाँ यज्ञ करना, तप के लिए जीवन समर्पण करना, उनके इसी रूप का द्योतक है:-

---

1- कामायनी- भूमिका में कवि, पृ0-7

2- कामायनी- चिन्ता सर्ग- पृ0 15

जलने लगा निरन्तर उनका, अग्नि होत्र सागर के तीर;
मनु ने तप में जीवन अपना, किया समर्पण होकर धीर।-1

तपस्यारत् मनु द्वारा अग्नि होत्र के अवशिष्ट अन्न का कुछ भाग दूर किसी स्थान पर रख दिया जाता है। वे स्वयं के साथ ही समष्टि के प्रति चिन्तनशील हैं। उनके द्वारा अन्न इस आशा के फलस्वरूप रखा जाता है, कि उनके साथ ही यदि कोई और भी मानव महाप्रलय के महाजाल से निकल आया हो तो वह अन्न प्राप्त कर जीवित रह सके :-

अग्नि होत्र अवशिष्ट अन्न कुछ, कहीं दूर रख आते थे,
होगा इससे तृप्त अपरिचित, समझ सहज सुख पाते थे।-2

ऋषि मनु का झुकाव असुर मित्रों किलात व आकुलि के सान्निध्य में यज्ञ में पशुबलि के हिंसापूर्ण कृत्य की ओर होता है। उनका यह रूप भी पौराणिक ही है। मनु द्वारा अपनी ही संगिनी श्रद्धा के पालित छौने का यज्ञ की बलिवेदिका पर बलि देकर यज्ञ की पूर्णाहुति दिया जाता है, यही नहीं वे सोमपान को भी महत्व देते हैं:-

यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी, धधक रही थी ज्वाला,
दारूण दृश्य! रूधिर के छींटे, अस्थि खण्ड की माला।
× × ×
सोम-पत्र भी भरा, धरा था पुरोडाश भी आगे।-3

असुरों के सान्निध्य में ऋषि मनु का आसुरी प्रवृत्तियों की ओर झुकाव का उन्हें 'श्रद्धा' की श्रद्धा से दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका है। धीरे-2 ऋषि मनु जीवन की अपूर्ण लालसा की सम्पूर्ति हेतु श्रद्धा को छोड़कर बुद्धि की ओर

1- कामायनी- पृ0 42

2- कामायनी- चिन्ता सर्ग- पृ0 15

3- वही, पृ0 121-122

उन्मुख होते हैं। श्रद्धा से दूर हटते ही मनु का ऋषि रूप भौतिकता के चका-
-चौंध में जकड़े मानव तथा प्रजा पालक मनु के रूप में वर्णित हुआ है—

हिंसा ही नहीं और भी कुछ, वह खोज रहा था मन अधीर;
× × ×
जो कुछ मनु के करतल गत् था, उसमें न रहा कुछ भी नवीन-1

श्रद्धा को त्यागने के पश्चात् मनु के चरित्र का दूसरा पक्ष उद्घाटित होता है। इड़ा के सम्पर्क में आने के बाद ऋषि मनु के प्रजापति रूप को विकास मिलता है। 'प्रजापति' के महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी होते ही, वे समस्त राज्य के समग्र व बहुमुखी विकास का कार्य प्रारम्भ करते हैं। उनके शासन काल में देश—कृषि, उद्योग, विज्ञान सभी क्षेत्रों में उन्नति करने के साथ ही आर्थिक दृष्टि से सुसम्पन्नता प्राप्त करने में सक्षम हो जाता है:-

देशकाल का लाधव करते वे प्राणी चंचल से हैं,
सुख साधन एकत्र कर रहे जो उनके सम्बल में है,
बढ़े ज्ञान व्यवसाय, परिश्रम बल की विस्तृत छाया में,
नर प्रयत्न से ऊपर आवें जो कुछ वसुधा तल में है।-2

प्रजापति मनु पर भौतिकता का नशा जब प्रभावी होता है, तब वे राज्य के साथ ही प्रजा पर भी अधिकार की आकांक्षा करने लगते हैं। प्रजापति होने का दम्भ उन्हें इस अधिकार बोध के प्रति आकर्षित करता है। इस दम्भ के कारण मनु इड़ा से कहते हैं:-

प्रजा नहीं तुम मेरी रानी, मुझे न अब भ्रम में डालो,
मधुर मराली! कहो "प्रणय के मोती अब चुनती हूँ मैं।"- 3

1- कामायनी, आशा सर्ग, पृ0 143

2- वही, कर्म सर्ग- पृ0 185

3- वही, पृ0- 187

मनु का प्रजापति रूप भी इड़ा पर अधिकार नहीं कर पाता, फलतः उनके निरंकुश शासक का रूप उद्घाटित होता है। मनु द्वारा अपनी देव शक्ति के बल पर जन-विद्रोह का दमन करना, उनके इसी रूप का द्योतक है। अप्रत्यक्षतः उनका यह रूप आधुनिक समय के निरंकुश शासन तन्त्र का ही अंकन है। मनु द्वारा निरीह प्रजा के विद्रोह का अपनी दिव्य शक्तियों के बल पर सामना किया जाता है:-

यों कह मनु ने अपना भीषण अस्त्र सम्हाला,
देव 'आग' ने उगली त्योंही अपनी ज्वाला।
छूट चले नाराच धनुष से तीक्ष्ण नुकीले
किन्तु क्रूर मनु वारण करते उन बाणों को
बढ़े कुचलते हुए खड्ग से जन प्राणों को।-1

अन्ततः विप्लव व विध्वंश मनु को भौतिकता के चकाचौंध से अध्यात्मिक क्षेत्र में मोड़ देता है। भयंकर नर संहार प्रजा का विनाश तथा भौतिकता के व्यामोह का कुपरिणाम मनु का हृदय परिवर्तित कर देता है। वे बुद्धि की शरण से पुनः श्रद्धा की ओर उन्मुख हो उठते हैं।

इड़ा के पास से श्रद्धा तक प्रत्यावर्तन मनु के जीवन लक्ष्य को ही परिवर्तित कर देता है। श्रद्धा के सहयोग से उनके आध्यात्मिक रूप का विकास होता है। समस्त भौतिकता व सांसारिक मायामोह का परित्याग कर वे 'आनन्द' रूपी महाशक्ति की खोज में सन्नद्ध हो उठते हैं। "कामायनी" के मनु का आध्यात्मिक रूप दार्शनिक दृष्टिकोण से निवृत्ति मार्ग के प्रतिनिधि व दुःखवादी दर्शन के समर्थक का है। इड़ा तक पहुँचने से पूर्व मनु का आध्यात्मिक रूप अपूर्णकामजीव के प्रतीक रूप में चरित्रांकित हुआ है। अपनी इसी इच्छा की सम्पूर्ति हेतु वे

1- कामायनी, पृ0-204

भटकते हुए बुद्धि व भौतिकता के व्यामोह से ग्रस्त हुए, अन्ततः इस क्षेत्र में प्राप्त असफलता उन्हें निवृत्ति मार्ग का प्रतिनिधि बना देती है।

कामायनी के रहस्य सर्ग में मनु के आध्यात्मिक रूप की व्यंजना हुई है। मनु सांसारिकता के प्रति विरक्त हो कैलाश प्रदेश में श्रद्धा के साथ आनन्द की खोज में रत हो जाते हैं:-

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो, इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत पर निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।-1

अन्ततः मनु अध्यात्म के उच्च शिखर पर जा पहुँचते हैं। उनमें समस्त ससार को अद्वैत मानकर, सभी को समरूप देखने की नवीन दृष्टि का समन्वय प्राप्त होता है। मनु समस्त जनमानस को अपना अवयव मानते हैं। उनकी दृष्टि में संसार में न कोई शापित है, न तापित; समस्त वसुधा एक समान है, सभी समरूप हैं:-

हम अन्य न और कुटुम्बी, हम केवल एक हमीं हैं,
तुम सब मेरे अवयव हो, जिसमें कुछ नहीं कमी है।
शापित न यहाँ है कोई, तापित पापी न यहाँ हैं,
जीवन वसुधा समतल है, समरस है जो कि जहाँ है।-2

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से मनु का चरित्र मानव मन का प्रतीक है। श्रद्धा मन की भावनात्मक व संवेदनात्मकता की प्रतीक है। एकाकी मनु श्रद्धा यानी भावुकता व संवेदना के सान्निध्य से विश्व सृष्टि करते है, विश्व को मंगल पथ की ओर अग्रसित करते हैं। मन की परम् निधि उसकी भावनात्मकता और संवेदनशीलता ही है:-

---

1- कामायनी- पृ0 272

2- वही, पृ0 285

मेरी अक्षय निधि! तुम क्या हो, पहचान सकूँगा क्या न तुम्हें?
उलझन प्राणों के धागों की, सुलझन का समझूँ मान तुम्हें।-1

यही मन जब श्रद्धा को, भावना को छोड़कर बुद्धि के वशीभूत हो जाता है, तब भौतिकता का व्यामोह मानव-जीवन को संघर्ष एवं अतृप्त इच्छाओं के महागर्त में धकेल देता है। मनु अर्थात् मन श्रद्धा को छोड़कर जब इड़ा अर्थात् बुद्धि के वशीभूत होते हैं, तब वे स्वार्थी, निरंकुश और व्यभिचारी बन जाते हैं। सारस्वत् प्रदेश में मनु का अत्याचार उनके बौद्धिक अतिचार का ही द्योतक है।

आधुनिक युग में मानव बौद्धिकता तथा भौतिकता के व्यामोह में इतना जकड़ा हुआ है कि मानव में भावनात्मकता व संवेदनात्मकता का ह्रास सा होता जा रहा है। यन्त्रवादी सभ्यता ने मानव को आत्मकेन्द्रित व स्वार्थी बना दिया है। बुद्धिवाद व भौतिकता का एकांगी प्रभाव समाज को पतनोन्मुख ही करता है। इड़ा यानि बुद्धि के शब्दों में :-

मैं जनपद कल्याणी प्रसिद्ध, अब अवनति कारण हूँ निषिद्ध,
मेरे सुविभाजन हुए विषम, टूटते नित्य बन रहे नियम्
नाना केन्द्रों में जलधर सम, घिर हट, बरसे ये उपलोपम्
यह ज्वाला इतनी है समिद्ध, आहुति बस चाह रही समृद्ध।-2

भौतिकता की चरम सीमा पर मनु में अहं, स्वार्थ व निरंकुशता की जो प्रवृत्ति जगती है वह उन्हें पतन के गर्त में धकेल देती है। उनके निरकुशता के प्रति प्रजा में विद्रोह भावना जाग्रत होती है। परिणामतः समस्त सभ्यता ही विनष्ट हो जाती है, मनु की हार होती है:-

---

1- कामायनी, पृ0 74

2- कामायनी, आनन्द सर्ग, पृ0 241

वह शासन का सूत्रधार था, नियमन का आधार बना।
अपने निर्मित नव-विधान से, स्वयं दंड साकार बना।-1

अन्ततः मनु अर्थात् मन पुनः श्रद्धा को यानि भावुकता व संवेदना को, ह्रदयतत्व की महत्ता का अनुभूत करते हुए, उनके सान्निध्य में आ जाता है। ह्रदय तत्व के संयोग से मन उदात्त व महत्त पद की प्राप्ति करता है। अप्रत्यक्षतः आधुनिक भौतिकता के व्यामोह में फंसे मानव समाज द्वारा जिस प्रकार ह्रदय तत्व की उपेक्षा हो रही है, उनके लिए यह नया सन्देश भी है। मनु अर्थात् मन का श्रद्धा के समक्ष पुनः समर्पण इसी तथ्य का द्योतक है। वे कहते हैं:-

ले चल इस छाया के बाहर, मुझको दे न यहाँ रहने।
मुक्त नील नभ के नीचे या कहीं गुफा में रह लेंगे।-2

मनु के चरित्र का अन्तिम पक्ष है_उनका सामान्य् मानवी रूप। वे मानवीय दुर्बलता से युक्त ऐसे सहज व सामान्य मानव के रूप में चित्रित हैं, जो सामान्य स्तर से उठकर उदात्त रूप तक पहुँचते हैं। महाप्रलय के पश्चात् एकाकी मनु जिस अवसाद व कुंठा से ग्रस्त दृष्टिगत होते हैं, वह उनके मानवीय दुर्बलता का ही द्योतक है:-

कब तक और अकेले? कह दो, हे मेरे जीवन बोलो?
किसे सुनाऊँ कथा? कहो मत अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।-3

छायावादी काव्य में जीवन के सूक्ष्म पक्षों का, जीवन की गहन-गम्भीर और शाश्वत् समस्याओं पर चिन्तन-मनन की प्रवृत्ति का विकास होता

1- कामायनी, पृ0 213

2- वही, पृ0 222

3- वही, पृ0 48

है। "कामायनी" छायावादी रचना होने के कारण छायावादी प्रवृत्तियों का पृष्ठपेषण करती है। इस रचना में मनु का बहुआयामी चरित्रांकन इसी तथ्य का द्योतक है।

एकाकी पड़े मनु में अदम्य साहस व कर्मवादी चेतना है। आधुनिक युग में कर्मवाद की महत्ता बढ़ी है। एकाकी मनु निर्जन प्रदेश में जिस प्रकार कर्म द्वारा नव-सृष्टि के निर्माण में संलग्न होते हैं, वह उनके कर्मठता का परिचायक है। जीवन के विषम-परिस्थितियों का सामना मात्र भावनाओं के सहारे नहीं होती है, कर्म की महत्ता उसमें विशिष्ट स्थान रखती है। कामायनी के आशासर्ग में मनु के कर्मवादी रूप का ही परिचय है:-

> अर्थ प्रस्फुटित उत्तर मिलतें, प्रकृति सकर्मक रही समस्त;
> निज अस्तित्व बना रखने में, जीवन आज हुआ था व्यस्त।
> तप में निरत हुए मनु, नियमित कर्म लगे अपना करने।
> विश्व रंग में कर्म जाल के सूत्र लगे घन हो घिरने।-1

मनु के चरित्र में अन्तर्द्वन्द्व ग्रस्त भावुक मानव का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित है। सामान्य् मानव सदृश ही, वे जीवन की विषमताओं से भयभीत है। कर्मरत् मनु में एक तरफ किसी से अपनी व्यथा कहने की इच्छा है, तो दूसरी तरफ श्रद्धा द्वारा प्राप्त जीवन-पथ के साथी का आमन्त्रण ठुकरा दिया जाता है। जीवन की निरुपाय स्थिति देख चुकने के बाद, वे पुनः उसे स्वीकार करने से हिचकते हैं। "राम की शक्ति पूजा" में राम के चरित्रगत् अन्तर्द्वन्द्व का विषय हार-जीत है। मनु का अन्तर्द्वन्द्व 'जीवन' को लेकर व्यंजित हुआ है। वे कहते हैं:-

> किन्तु जीवन कितना निरुपाय, लिया है देख नहीं सन्देह।
> निराशा है जिसका परिणाम, सफलता का वह कल्पित गेह।-2

1- कामायनी पृ0- 45

2- वही, पृ0 64

अन्ततः जीवन के अन्तर्द्वन्द में फंसे मनु के उलझन का, श्रद्धा द्वारा जीवन के मंगलमयी विहान की कल्पना द्वारा निवारण किया जाता है।

मनु के चरित्रगत् दुर्बल-पक्ष में उनका भौतिकता के प्रति आकर्षित व्यक्तित्व का निरूपण हुआ है। जीवन में विषय-वासना का प्रवेश ही उसके विखंडन का मूल कारण बनता है। श्रद्धा जैसी जीवन-संगिनी के प्राप्त होने के बाद मानव-सृष्टि के कल्याण में लगे मनु किलात और आकुलि जैसे असुरों के सान्निध्य में आकर, आसुरी प्रवृत्तियों की ओर झुकने लगते हैं। हिंसा, मदिरा, वासना क्रमशः उन्हें अपने चंगुल में लेने लगती हैं। अन्ततः वे अपनी आसुरी प्रवृत्तियों के सम्पूर्ति हेतु इड़ा के पास पहुँचते हैं। इड़ा के सम्पर्क में आकर वे सारस्वत् प्रदेश में भौतिकता व यान्त्रिकता के विकास में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। किन्तु भौतिकता के चकाचौंध में भी उनकी अतृप्त लालसा पूर्ण नहीं होती। अपनी अतृप्त लालसा की सम्पूर्ति हेतु वे निरंकुश रूप धारण कर लेते हैं। किन्तु उनकी निरंकुशता का प्रजा द्वारा पूर्ण प्रतिरोध होता है। फलतः भौतिक सभ्यता व मनु की निरंकुश शक्ति दोनों का पतन होता है।

मनुष्य की उद्दाम इच्छायें उसे उदात्त व निम्न दोनों रूपों की ओर आकर्षित करती हैं। निम्न की ओर उन्मुख मनुष्य जब आघात् पाता है तब उसकी सचेतना वापस आती है। और वह पुनः उदात्त की ओर घूमता है। मनु भी इड़ा के पास से वापस श्रद्धा की ओर उन्मुख होते हैंः-

श्रद्धा का अधिकार समर्पण दे न सका मैं,
प्रतिपल बढ़ता हुआ भला कब वहाँ रूका मैं।-1

1- कामायनी, पृ0 194

मनु अपने कृत्य पर पश्चाताप् करते हैं! वे श्रद्धा से किये गये अपने छलों को याद कर सिहर जाते हैं। श्रद्धा के त्याग व सहनशीलता के समक्ष वे स्वयं को तुच्छ मानते हैं। मनु का यह रूप उनके संवेदनशीलता का द्योतक है। वे श्रद्धा से कहते है।:-

तुमने अपना सबकुछ खोकर, वंचिते! जिसे पाया रोकर,
मैं भगा प्राण जिनसे लेकर, उसको भी उन सबको देकर;
निर्दय मन क्या न उठा कराह, अद्भुत है तव मन का प्रवाह।-1

समग्रतः मानवीय रूप में मनु का चरित्र दुर्बल व सामान्य मानव का है, जिसमें तटस्थता का अभाव है। जीवन की विषमतायें उन्हें शीघ्र ही प्रभावित कर देती हैं, जिससे वे सहज व सरल मार्ग की ओर घूमते हैं। किन्तु जिस मार्ग को वे सुगम मानते हैं वही उन्हें अपनी दुर्गमता का बोध कराने लगता है। अन्ततः वे भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर घूम जाते हैं। डॉ० गोविन्द राम शर्मा के अनुसार - "मानव सभ्यता के संस्थापक के रूप में मनु के चरित्र में जिस पौरूषेय विराटत्व और उत्थानमूलक चारित्रिक गरिमा की अपेक्षा थी, उसे प्रसाद जी कामायनी के मनु में नहीं कर पाये हैं। वास्तव में महाकाव्य के ऐतिहासिक नायक के रूप में उन्हें (मनु को) हम एक महान चरित्र नहीं कह सकते।"-2

मनु की कथा पर आधारित अन्य रचना "ऋतम्भरा" में केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने मनु का चरित्र "कामायनी" की अपेक्षा मौलिक रूप में व्यंजित हुआ है। इस रचना में कवि ने प्राचीन मिथक के माध्यम से आधुनिक युग की समस्याओं का संस्पर्श भी किया है। आधुनिक काल की विभिन्न सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक समस्याओं का शाश्वत् पुरूष मनु के माध्यम से चिन्तन इस काव्य-कृति की अपनी मौलिकता है।

1- कामायनी, पृ० 248-249

2- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डॉ० गोविन्दराम शर्मा, पृ०-262

"ऋतम्भरा" में मनु का चरित्र आधुनिक श्रम की महत्ता व कर्मवादी चेतना से प्रभावित कर्मठ युवा, छायावादी भावुकता से परिपूर्ण संवेदनशील युवा का है। "कामायनी" के मनु के सदृश प्रस्तुत रचना में भी मनु के चरित्र का एक प्रतीकात्मक पक्ष भी है। अन्तर इतना है कि "ऋतम्भरा" के मनु जीवन के यथार्थ के अधिक निकट हैं।

"ऋतम्भरा" में मनु चरित्र का मौलिक पक्ष है उनका कर्मवादी रूप। आधुनिक युग श्रम की महत्ता का युग है। बौद्धिक तथा वैज्ञानिक चेतना के प्रभाव स्वरूप मानव कर्मवाद की ओर उन्मुख हुआ। आधुनिक युग में विभिन्न नवजागरण आन्दोलनों तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों का इस कर्मवादी चेतना के जागरण में विशिष्ट स्थान है। "कामायनी" के मनु भी कर्म को महत्व देते हैं किन्तु उनमें जीवन के प्रति वह उद्दाम चेतना नहीं है जो "ऋतम्बरा" के मनु में है। "ऋतम्बरा" में मनु का चरित्र श्रमशील आधुनिक कर्मठ युवा पुरूष का है। महाप्रलय के बाद ब्रह्मा की प्रथम सृष्टि मनु, जीवन के कठिनतम् विघ्नों को ध्वस्त करते हुए नव-पथ के निर्माण कर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं। वे दिन रात श्रम के पथ पर बिना किसी विश्राम के आगे बढ़ते जाते हैं:-

काट रहा विघ्नों के दल को
पाट रहा तल और अतल को
बाँध प्रलय के चंचल जल को
शिखर शिखर चढ़ता है -1

यहाँ मनु के उद्दाम साहस व श्रम का ही बोध होता है। विघ्नों के दल को काटने वाले मनु तल, अतल को पाटते हुए, प्रलय के चंचल जल को रोकने का उपाय भी करते हैं।

1- ऋतम्बरा, पृ0 248-249

मनु का यह श्रमशील रूप कामायनी के तपस्वी मनु से भिन्न आधुनिक कर्मठ युवा के सदृश है। उनका यह श्रमिक रूप सृजन में कर्म की महत्ता का प्रकटन् है। "कामायनी" के मनु का याज्ञिक कर्म यहाँ शारीरिक श्रम के रूप में प्रकट हुआ है। गाँधीवादी सिद्धान्तों में इसी शारीरिक श्रम को महत्ता प्रदान की गई है। "ऋतम्बरा" के मनु पर गाँधीवादी शरीर-श्रम की चेतना का भी प्रभाव है।

"ऋतम्बरा" के मनु का चरित्र छायावादी भावाभिव्यंजकता व सवेदनशीलता से प्रभावित है। "कामायनी" में भी मनु के इस रूप की प्रतिष्ठा हुई है। किन्तु "ऋतम्बरा" के मनु "कामायनी" के मनु की अपेक्षा अधिक तटस्थ हैं। "कामायनी" में मनु श्रद्धा के आमन्त्रण को विभिन्न अन्तर्द्वन्द्वों से गुजरते हुए स्वीकार कर पाते हैं, किन्तु "ऋतम्बरा" के मनु शतरूपा के उत्कृष्ट सेवा से प्रभावित हो, मुखर रूप में उनके सुहाग कलश के प्रतीक बन जाते हैं।

इस रचना में मनु का प्रतीकात्मक रूप 'कर्म' के प्रतीक है। शतरूपा "कला" की प्रतीक है। 'कर्म' और 'कला' का सम्मिलन विश्व के मंगलमयी कल्याण का प्रणेता बन जाता है। मनु अर्थात् 'कर्म' शतरूपा अर्थात् 'कला' को अपना अभिन्न अंग मानते हैं। कर्म का अस्तित्व बिना 'कला' के असहाय सा होता है, 'कला' उसे उदात्त उत्कर्ष की ओर उन्मुख करती है, घायलावस्था में असहाय पड़े मनु शतरूपा के ही उपचार से स्वस्थ होते हैं, यह इसी तथ्य का द्योतक है। 'कर्म' द्वारा स्वयं 'कला' की महत्ता स्वीकृत की गई है-

मैं सुहाग का कलश बन गया
जब रसधार बनी तुम
साधक बना तपस्विनी! जब
कर्त्तव्य पुकार बनीं तुम। -1

1- ऋतम्बरा, पृ0-128

हम पंथी निर्माण लग्न के
साथी यह आकाश है। -1

कर्म में निरत मनु अचानक घायल हो जाते हैं। एकाकी व निर्जन स्थान में पड़े मनु के पास संयोगवश शतरूपा का आगमन होता है। शतरूपा द्वारा किये गये निःस्वार्थ उपचार व सेवा से मनु स्वस्थ हो जाते हैं। मनु शतरूपा के कर्तव्यशीलता व कल्याणमयी दृष्टि से प्रभावित हो भावुक हो उठते हैं। वे शतरूपा को ही अपने जीवन की मूल कल्पना मानते हुए, उन्हें जीवन-पथ के साथी के रूप में चुनते हैं। यहाँ मनु की भावुकता व मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति हुई है। मनु के इस भावुक रूप का अभिव्यंजना ऋतम्बरा के नवम् व दशम् सर्ग में विशेष रूप से हुई है। मनु अपने भावों को व्यक्त करते हुए शतरूपा से कहते हैं:-

मनु ने कहा, "वही तुम जिसकी
थी दिन रात प्रतीक्षा
हृदय ले चुका है सपने में
जिससे पावन दीक्षा। -2

मनु के संवेदनशील रूप का चित्रण एकादश सर्ग में "पृथ्वी" के आकर्षण में बंधे मानव के रूप में व्यक्त हुआ है। यहाँ पृथ्वी एक नारी के प्रतीक रूप में दृष्टिगत् होती है। मनु पृथ्वी से कहते हैं:-

पर आज निकट हो तुम मेरे,
मेरी सासें छू रही तुम्हारा मृदुल गात
तुम मेरी हो, केवल मेरी। -3

मनु "कामायनी" में 'इड़ा' के आकर्षण में आबद्ध हो उस पर

1- ऋतम्बरा- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', पृ0 131

2- वही, पृ0-126

3- ऋतम्बरा, पृ0-151

अधिकार चाहते हैं। ऋतम्बरा के मनु का आकर्षण 'पृथ्वी' के प्रति है। मानवीय रूप में जहाँ यह पक्ष काम-वासना का द्योतक है, वहीं प्रतीकात्मक रूप में भौतिकता के गहन मोह का भी सूचक है। वस्तुतः मनु का यह चरित्र उनके भौतिकता के व्यामोह में फंसे व्यक्तित्व का ही उद्‌बोधन है।

"ऋतम्बरा" के मनु में सम्पूर्ण पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त करने की आकांक्षा है। वे पृथ्वी को क्षुधामयी व तृषामयी मानते हुए भी उसे अपनी चेतना मानते हैं। अपनी कामना मानते हैं। मनु पृथ्वी पर अपना पूर्ण अधिकार की आकांक्षा व्यक्त करते हुए कहते हैं :-

जिस ओर दृष्टि मेरी जाती
तुम वहीं व्याप्त थी
सपनों के चन्द्रिका -पात्र में मन एकान्त
तुम वहीं व्याप्त थी
मेरे परिचय की पुकार बनकर निशान्त।-1
× × ×
तुम मेरी हो केवल मेरी-2

मनु का यह रूप अप्रत्यक्षतः आधुनिक युग के उद्‌दाम मानवीय लालसा का प्रतीक है। बड़े-2 राष्ट्र सम्पूर्ण विश्व पर अधिकार का स्वप्न देख रहे हैं। आज संवेदनाओं का हनन हो रहा है, चतुर्दिक भौतिकता का व्यामोह भी प्रभावी है। "ऋतम्बरा" के मनु द्वारा पृथ्वी पर अधिकार की आकांक्षा इसी ओर संकेत करती है।

"ऋतम्बरा" भूत,वर्तमान व भविष्य का महाकाव्य है। इसमें मिथकीय कथा के माध्यम् से आधुनिक समस्याओं की प्रस्तुति बड़े ही नियोजित ढंग से हुई है। मनु के द्वारा स्वप्न में देखी गयी सामाजिक, राजनीतिक तथा अन्य

1- ऋतम्बरा, पृ0-149

2- वही, पृ0- 151

परिस्थितियों की दुरवस्था का चित्रण मानों आज के आधुनिक परिस्थितियों की प्रस्तुति ही है। स्वप्न में मनु संसार में पृथ्वी के मोह, भौतिकता के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण, स्वार्थवश किये जा रहे कुकृत्यों को सामाजिक व राजनीतिक विषमता को देख सिहर उठते हैं। ऋतम्बरा की भूमिका में कवि ने लिखा है-"इस पुस्तक में ऐसी समस्यायें अपने आप आ गई जिनके समाधान का पथ ढूँढ निकालने के लिये, न केवल देश के भीतर, प्रत्युत बाहर सम्पूर्ण विश्व में अनेकानेक प्रयोग किये जा रहे थे, जिनका प्रभाव काल और सीमा को पार कर समस्त मानवता पर पड़ने वाला था।"-1

बोल रही सभ्यता इन्हीं, यंत्रों के क्रूर स्वरों में
और मुग्ध तिरती फिरती है, शोणित की लहरों में।
× × ×
रक्तांजलि देते मनुष्य वर माँग रहे आवह से
अणु-परमाणु शक्तियाँ लेकर दौड़ रहे दानव से
जहाँ दृष्टि पड़ती है मिलता वहीं ह्रदय का शव है।-2

यही नहीं राजनीतिक कठोरता, निरंकुश शासन तंत्र, पूँजीपति वर्ग की दानवता के शिकार निम्न वर्ग, प्राकृतिक आपदा में, नारी की मर्यादा व इज्जत का हनन, गरीबी की निम्नतम सीमा पर जी रहे मानव की त्रासद स्थिति इन सभी का चित्रण "ऋतम्बरा" में हुआ है। मनु स्वप्न में इन परिस्थितियों को देखते हैं, तथा मानव जाति के आदि पुरुष होने के कारण वे इन परिस्थितियों के आने से पूर्व ही उसका समाधान मानव सृष्टि रोककर करना चाहते हैं। वे मगलदीप ही बुझा देते हैः-

देखा मंगल दीप जल रहा, मधुर मधुर आँगन में,
× × ×
जाकर उसको बुझा दिया, जाने क्या मन में आया।-3

1- ऋतम्बरा-भूमिका में कवि, पृ0- क

2- वही, पृ0-162-163

3- वही, पृ0-168

"कामायनी" में सारस्वत् प्रदेश का भौतिक विकास तथा रुष्ट हो विनाश करने वाले मनु "ऋतम्बरा" में स्वप्न में भी मानव-जाति के वैषम्यपूर्ण स्थिति का अवलोकन नहीं कर पाते।

आधुनिक नवजागरण आन्दोलनों के प्रभाव स्वरूप उद्भूत चेतना का प्रभाव तो "ऋतम्बरा" पर है ही, साथ ही स्वातन्त्रयोत्तर काल तक दो-दो विश्व युद्धों की विषाक्तता, गाँधी के सुराज्य स्वप्न का विखंडन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मोहभंग की स्थितियों का प्रभाव भी इस रचना पर है। इसी के प्रभाव स्वरूप ऋतम्बरा में धरती पर व्याप्त विध्वंश की ज्वालाओं व सभ्यता के पतन तथा विश्व में साम्राज्य विस्तार हेतु महाशक्तियों के टकराव, यंत्रचालित जीवन में संवेदनाओं का विखंडन, धर्म का पतनोन्मुखता व ह्रास, राजनीतिक व आर्थिक वैषम्य, प्राकृतिक आपदा, मानवता का विलोप , समाज के कमजोर वर्ग व नारी वर्ग की असहाय स्थिति, धन के बदले भावना का विक्रय आदि विषम परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। मनु का चरित्र विश्व प्रेमी समष्टिवादी के साथ-2 आदर्शोन्मुख व्यक्तित्व से समन्वित है। इसी कारण वे आदर्श से परे सृष्टि सभ्यता के विकास का ही निषेध करते है। ब्रह्मा के समक्ष मनु द्वारा अपने प्रश्नाकुल चित्त के भावों का प्रकटन, उनके आदर्शवादी चरित्र का परिचायक है। वे कहते हैं:-

यह कैसा मानव, कैसी उसकी कल्पना,
रोदन क्रन्दन से अखिल लोक है काँपता
कैसी परम्परा, कैसी रक्तप् कामना
× × ×
जल रहा ह्रदय का लोक, न केवल हड्डियाँ
जल रहे विचारों, भावो के आधार भी
जल रहा बुद्धि का वैभव, विपुल विभूतियाँ
जलती पवित्रता करुणा का श्रृंगार भी।-1

1- ऋतम्बरा- पृ0 182

मनु की यह प्रश्नाकुल मानसिकता, संवेदनशील मन की व्यथा व आत्म-व्यग्रता आधुनिक युग के मानव की अपनी पीड़ा है। मनु द्वारा स्वप्न में देखा गया संसार आज की वास्तविकता बनती जा रही है। मनु का अन्तर्द्वन्द व मानसिक व्यथा आधुनिक मानव की व्यथा है।

"ऋतम्बरा" के मनु अन्ततः मंगलदीप को पुनः प्रज्वलित कर विश्व-कल्याण का पथ प्रशस्त करते है। ब्रह्मा द्वारा उनके प्रश्नों का समाधान किया जाता है।वास्तविकता का बोध होने पर मनु 'मंगलदीप' प्रज्वलित कर लघुता को महानता के आवरण से आवृत्त करते हुए, अप्रत्यक्षतः समाज के लघुवर्ग की महत्ता स्थापित करते हैं। मनु का यह चरित्र भी "ऋतम्बरा" की अपनी मौलिक विशिष्टता है। मनु के अनुसारः-

यह जीवन लघुता के प्रकाश का महासिन्धु,
जिसमें शाश्वत् सौन्दर्य पद्म खिलते नवीन।-1

समग्रतः "ऋतम्बरा" में मनु का चरित्र "कामायनी" की अपेक्षा नवीन व युगीन जीवन-सन्दर्भो से जुड़े हुए कर्मठ, श्रमशील, अदम्य पौरूष युक्त, सवेदनशील तथा समष्टि प्रेमी के रूप में व्यंजित हुआ है। उनमें विश्व कल्याण के प्रति सजगता व चेतना मुखरित हुई है।

मनु के चरित्रांकन की दृष्टि से आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में "कामायनी" और "ऋतम्बरा" के बाद की अगली कड़ी "मनवन्तर" काव्य रचना है। "मन्वन्तर" राजेन्द्र किशोर कृत ऐसी काव्य रचना है जिसमें "कामायनी" व ऋतम्बरा से विलग, मौलिक चित्रण हुआ है। प्रतीकात्मक अर्थ योजना के माध्यम से कामायनी व ऋतम्बरा में जिन समस्याओं को उठाया गया है, मन्वन्तर में उन्हीं समस्याओं का समाधान यथार्थवादी व बौद्धिक दृष्टिकोण से किया गया। इस तथ्य के पीछे

1- ऋतम्बरा, पृ0-199

यह तर्क दिया जा सकता है कि "कामायनी" व "ऋतम्बरा" छायावादी रचनायें हैं, जबकि मन्वन्तर 'नयी कविता' की देन है। इसे छायावादी भाव संकुलता एवं काल्पनिक आदर्शवाद के विरुद्ध 'नयी कविता' की यथार्थवादी एवं बौद्धिक चेतना से उत्पन्न विद्रोह कहा जा सकता है।

"मन्वन्तर" में महा प्रलय की पौराणिक घटना को आधुनिक युग की विषमता के रूप में चित्रित किया गया है। यहाँ कवि ने भविष्य के सम्भावित विश्वयुद्ध की परिकल्पना की है। महाप्रलय में जहाँ समस्त सृष्टि का विनाश होता है, वहीं विश्वयुद्ध मानवीय मूल्यों तथा संवेदनाओं को भी ध्वस्त करता है। मानवीय आस्था एवं व्यक्तिगत् तथा सामाजिक मूल्यों का संक्रमण होता है। मन्वन्तर के प्रथम खण्ड में मनु का चरित्र इसी विखंडन का प्रतीक है। वे महाप्रलय (प्रकारान्तर से महायुद्ध) के बाद अपने अस्तित्व के प्रति शंकाकुल है। वे कहते हैं:-

अखण्ड अकाण्ड में और शून्य! शेष, अशेष
जो अहम् है, वह निरर्थक है
------------किन्तु। अर्थ कहाँ है?----- श्रोता
मै कौन हूँ
आहत! विकृत! निरावृत्त! वृद्ध जीर्ण, मृत
किन्तु स्वर हैं।-1

"कामायनी" में श्रद्धा तथा ऋतम्बरा में "शतरूपा" मनु के विश्व कल्याण - पथ की सहगामिनी हैं। "कामायनी" में मनु के द्वारा अन्ततः हृदय तत्व की महत्ता स्थापित की जाती है तथा "ऋतम्बरा" में शतरूपा मनु रूपी कर्म की कला रूपी सहायिका, मित्र व चिर सखी हैं। "मन्वन्तर" में इस तथ्य

1- निकष- 'मन्वन्तर' (1955 ई0)-राजेन्द्र किशोर, पृ0-174

की नवीन व्याख्या हुई है। यहाँ मनु श्रद्धा के सानिध्य में जीवन के यथार्थ धरातल से दूर हो जाते हैं। अध्यात्मिक की ओर झुकाव उनके पलायनवादी कर्मठता से रहित मानव के रूप में हुआ है:-

सुन्दर, नपुंसक मनु सृजन करेगा।

उसे द्वन्द नहीं शान्ति चाहिए। -1

आधुनिक युग में यथार्थवादी दृष्टिकोण व बौद्धिकता की प्रवृत्ति ने आध्यात्मिकता तथा आदर्शवादिता का स्थान गौण कर दिया है। आधुनिक युग में मानव जीवन संघर्षों की विभिन्न गुत्थियों को सुलझाता हुआ, द्वन्दशील हो गया है। वह शान्ति नहीं चाहता अपितु विकास तथा और विकास चाहता है। "मन्वन्तर" के माध्यम से इसी दृष्टिकोण की महत्ता स्थापित की गई है। "मन्वन्तर" में "कामायनी" और "ऋतम्बरा" के कथाधार को भी क्षीण कर दिया गया है। इसमें महा प्रलय तथा उसके पश्चात् श्रद्धा-मनु व इड़ा के कथा का, उनके द्वारा मानव सृष्टि के नवीन विकास का संकेत भरकर दिया गया है। राजेन्द्र किशोर के शब्दों में - "कथा कही नहीं गई है। छोटे-छोटे सन्दर्भ चित्रों में ग्रहण करके संकेतित कर दी गई है।"-2

समग्रतः "मन्वन्तर" में मनु का चरित्र आधुनिक युगीन विषमता से उत्पन्न यथार्थवादी दृष्टिकोण तथा विद्रोहात्मतक चेतना के प्रतिफल स्वरूप परम्परागत शाश्वत् पौराणिक आदि पुरूष मनु से विलग श्लथ व कापुरूष बना दिया गया। मानवीय संवेदनाओं यथा दया, माया, ममता, प्रेम, करूणा आदि गुणों को, भावनात्मकता को विवेकहीनता की सज्ञा प्रदान की गई।

1- निकष, पृ0 185

2- वही- राजेन्द्र किशोर

"कामायनी", "ऋतम्बरा" तथा मन्वन्तर कृतियों के अनुक्रम में "ऋतम्बरा" के मनु का चरित्र ही आधुनिक - युग के मानव का आदर्श बनने में सक्षम है। "कामायनी" की आध्यात्मिकता की चरम सीमा तथा "मन्वन्तर" में घोर यथार्थवादिता मनु चरित्र के उदात्त पक्ष को पूर्णरूपेण उद्घाटित करने में असक्षम हैं।

श्रद्धा

श्रद्धा का वर्णन भारतीय वाङ्मय में मनु की पत्नी तथा शाश्वत् नारी के रूप में प्राप्त होता है। ब्रह्म पुराण में वे शतरूपा के रूप में मनु की अर्धांगिनी है।-1 विष्णु पुराण में ब्रह्मा द्वारा मनु के साथ ही शतरूपा का भी निर्माण किया जाता है, तत्पश्चात् मनु ने अपने ही साथ उत्पन्न हुई, तप के कारण निष्पाद शतरूपा नाम स्त्री को अपनी पत्नी रूप में ग्रहण किया।-2 शिवपुराण के उमा संहिता में भी शतरूपा की यही कथा वर्णित है।-3 श्रीमद्भागवद् पुराण में भी उनका नामोल्लेख हुआ है।4 "रामचरित- मानस" में शतरूपा- आदर्श पत्नी धार्मिक व सदाचारी हैं। वे अपने पति के साथ-साथ तपस्वी जीवन व्यतीत करती है।-5 इससे पूर्व महाभारत में भी उनके इस रूप का वर्णन हुआ है।-6

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में श्रद्धा के चरित्र की सम्यक व्यंजना, सर्वप्रथम "कामायनी" में हुई। जयशंकर प्रसाद जी ने इस रचना में श्रद्धा के चरित्र को बहुआयामी दृष्टि से व्यंजित किया है। इसमें वे प्रतीकात्मक - मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक तथा मानवी रूप में चरित्रांकित हुई हैं। प्रतीकात्मक रूप में वे मनोवैज्ञानिक

1- ब्रह्म पुराण- पृ0-6-7
2- विष्णु पुराण-(श्लोक 16-17, पृ0 30
3- शिव पुराण श्लोक 2-3, पृ0 1623
4- श्रीमद्भागवद् पुराण- पृ0 363, 368
5- रामचरित मानस - 140-148
6- महाभारत- आदि पर्व का सम्भव पर्व पृ0 548

दृष्टि से सवेदना तथा हृदय की वृत्तियों की प्रतीक है, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से अद्वैतवाद की तथा निवृत्ति मार्ग की प्रतिनिधि तथा दुःखवादी दर्शन की समर्थक हैं। अध्यात्म के उदात्त रूप 'आनन्द' की प्राप्ति कराने में श्रद्धा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मानवीय रूप में श्रद्धा सामान्य भावुक तथा गाँधीवादी सिद्धान्तों से प्रभावित नारी के रूप में मुखर हुई हैं, साथ ही उनके साहसी व्यक्तित्व व आदर्श मातृत्व का भी चरित्रांकन हुआ है।

कामायनी में श्रद्धा चरित्र का मनोवैज्ञानिक पक्ष उसकी प्रतीकात्मकता है। श्रद्धा हृदय वृत्तियों की प्रतीक है। मानव, भावना को महत्व देकर, हृदय पक्ष को महत्ता प्रदान करके ही अपनी सभ्यता व संस्कृति का सम्यक् विकास कर सकता है। मनु अर्थात् मन पर हृदय का अनुशासन दूसरे शब्दों में मनु का श्रद्धा से समन्वित् होना हृदय के कोमल भावों को महत्ता प्रदान करना है। श्रद्धा के रूप का चित्रण करते हुए कवि श्रद्धासर्ग में उनके प्रतीकात्मक रूप की ओर संकेत कर देता है:-

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया, उन्मुक्त
मधु पवन क्रीड़ित ज्यों शिशु साल
सुशोभित हो सौरभ संयुक्त।-1
× × ×
नित्य यौवन छवि से ही दीप्त
विश्व की करूण कामना मूर्ति।-2

यही श्रद्धा प्रतीकात्मकता रूप में हृदय पक्ष अर्थात् मन की दया, माया, ममता रूपी मोती के साथ, मधुर भाव, अगाध विश्वास तथा हृदय

1- कामायनी- श्रद्धासर्ग- पृ0 56

2- वही, पृ0 वही, पृ0 57

रत्न प्रदान करती हुई, मानव को सृष्टि के विकास-पथ पर अग्रसित करती है। मानव का हृदय पक्ष उसे सृष्टि कल्याण पथ पर चलने हेतु प्रेरित करता हैः-

दया, माया, ममता, लो आज, मधुरिमा लो, अगाध विश्वास।
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ, तुम्हारे लिए खुला है पास।
बनो ससृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी वह बेल,
विश्वभर सौरभ से भर जाय, सुमन के खेलो सुन्दर खेल।-1

मानव मन को हृदय पक्ष द्वारा ही मानवता की ओर उन्मुख किया जाता है। मानव जब हृदय तत्व की उपेक्षा करके भौतिकता व बौद्धिकता को एकाकी महत्व देता है, तभी सृष्टि, विनाश की ओर अग्रसित होती है. श्रद्धा भी मनु को विश्व में मानवता की कीर्ति फैलाने के लिए प्रेरित करती हैः-

चेतना का सुन्दर इतिहास, अखिल मानव भावों का सत्य,
विश्व के हृदय-पटल पर दिव्य, अक्षरों से अंकित हो नित्य।
× × ×
आज से मानवता की कीर्ति, अनल, भू, जल में रहे न बन्द।-2

"कामायनी" में श्रद्धा के प्रतीकात्मक रूप हृदय-पक्ष की उदात्तता का प्रकटन उस समय होता है, जब मन द्वारा बुद्धि के अंगीकार तथा असफलता के बाद भी वह मनु को पुनः स्वीकृत करती है। उसे पुनः विश्व-कल्याण पथ का पथिक बनाती है। बौद्धिकता के व्यामोह में फंसा मानव- समाज यन्त्रवत् जीवन बिताता हुआ, हृदय पक्ष से दूरातिदूर हो उठता है। फलतः समाज अन्धकारोन्मुख हो क्रियातन्त्र का दास बनता जाता है। वह हिंसा, अभिमान, भौतिकता के प्रति गहरे मोह तृष्णा जनित ममत्व वासना, सतत् संघर्ष, विफलता

1- कामायनी, पृ0 66

2- वही, पृ0 67

आदि के गहन जाल में फंसता हुआ, पतन के गहरे गर्त में गिरता है। मनु को श्रद्धा समाज के इसी रूप को दिखाते हुए बौद्धिकता के व्यामोह से विमुख करने का प्रयास करती है, यद्यपि सारस्वत् प्रदेश में मनु द्वारा किये गये भौतिक व यान्त्रिक सभ्यता की विफलता उन्हें पहले ही उस बौद्धिकता से विमुख करती है। श्रद्धा के शब्दों में :-

यहाँ सतत् संघर्ष, विफलता, कोलाहल का यहाँ राज है,
अन्धकार में दौड़ लग रही, मतवाला यह सब समाज है।
स्थूल हो रहे रूप बनाकर, कर्मों की भीषण परिणति है,
आकांक्षा की तीव्र पिपासा, ममता की यह निर्मम् गति है।-1

श्रद्धा मनु को इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया रूपी त्रिपुरों की आपसी भिन्नता व दुरूहता से अवगत् कराते हुए उसे महानन्द की ओर उन्मुख करती है। त्रिपुरों के महत्वहीनता से अवगत् कराती हुई, वह कहती है:-

यही त्रिपुर है देखा तुमने तीन बिन्दु ज्योतिर्मय इतने,
अपने केन्द्र बने दुख-सुख में, भिन्न हुए हैं ये सब कितने।
ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की।"-2

अन्त में मन पुनः श्रद्धामय अर्थात् हृदय पक्ष को स्वीकार करता है। फलतः स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो जाता है, इच्छा, क्रिया, ज्ञान तीनों का आपस में विलय हो जाता है।

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो, इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे;
दिव्य अनाहत् पर निनाद मे, श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे।-3

1- कामायनी- पृ0 266 (रहस्य सर्ग)

2- वही, रहस्य सर्ग, पृ0 271

3- कामायनी, पृ0-272

श्रद्धा के चरित्र का आध्यात्मिक पक्ष है- उसके द्वारा भौतिकता व यान्त्रिकता के व्यामोह में फँसे तथा उसकी दुरूहता से त्रस्त मानव मन को जीवन की परम शान्ति तथा आनन्द की ओर उन्मुख करना। वह अपूर्ण काम जीव के प्रतीक मन को अध्यात्म के क्षेत्र में अखण्ड आनन्द की प्राप्ति कराती है_

समरस थे जड़ या चेतन, सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती, आनन्द अखण्ड घना था।-1

डॉ0 नन्द किशोर नन्दन के शब्दों में- "मनु के आनंद पथ की प्रदर्शिका श्रद्धा का यह चित्रण उपनिषद और गीतादि के आधार पर हुआ है। अपने उदात्त गुणों के बल पर वह मनु को नटराज शिव के दर्शन तो कराती ही है, इच्छा, ज्ञान तथा क्रिया का समन्वय करके उन्हें अखंड आनन्द के योग्य बनाती हैं। तात्पर्य यह है कि सात्विक गुणों से परिपूर्ण श्रद्धा का सम्पूर्ण चरित्र समग्र विश्व की मंगल भावना का प्रतीक है। उसके चरित्र में उच्चतर प्रवृत्तियों का अत्यंत सफल चित्रण देखने को मिलता है।"-2

"कामायनी" में श्रद्धा के मानवीय रूप का चरित्रांकन अधिक सहज व सम्यक् रूप में हुआ है। छायावादी रचना होने के कारण श्रद्धा के चरित्र पर छायावादी प्रवृत्तियों का विशिष्ट प्रभाव है। छायावादी प्रवृत्ति संवेदनात्मकता तथा सूक्ष्म भावाभिव्यंजकता की रही है। अतः काव्य में स्थूल कथा के स्थान पर सूक्ष्म मनोभावों तथा संवेदनाओं की अभिव्यक्ति प्रमुखतया हुई। छायावादी प्रवृत्तियों के साथ ही आधुनिक नवजागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न चेतना का प्रभाव भी "कामायनी" पर विशेष रूप से दृष्टिगत् होता है। शाश्वत् नारी श्रद्धा मानवीय रूप में समष्टिवादी, देश प्रेमी गाँधीवादी, अहिंसा प्रेमी, संवेदनशील व

1- कामायनी- पृ0 292

2- हिन्दी की आधुनिक प्रबन्ध-कविता का पौराणिक आधार- नंद किशोर नन्दन - पृ0-126

भावुक नारी, आदर्श माता व पत्नी, दृढ़ निश्चयी व आशावादी नारी के रूप में "कामायनी" की वर्ण्य-विषय बनी है। श्रद्धा कामायनी के "श्रद्धा-सर्ग में जीवन से हताश-निराश मनु को उद्बोधित करके काम की प्रेरणा प्रदान करती है, उन्हें जीवन-संघर्ष में प्रवृत्त करती है। यहाँ उनके दृढ़ निश्चयी व आशावादी चरित्र का भी प्रकटन हुआ है। वह सृष्टि के विनाश के ताण्डव नर्तन के बाद भी हताश-निराश नहीं है। वे मनु को जीवन के प्रति, सृष्टि-विकास के प्रति नवीन जागरूकता व चेतना प्रदान करती हैं। दुःख को सुख का मार्ग मानकर, प्रलय को ईश्वर का रहस्य-वरदान मानने वाली श्रद्धा, दृढ़ निश्चयी व्यक्तित्व से संयुक्त है। वे मनु से कहती हैंः-

काम मंगल से मण्डित श्रेय, सर्ग, इच्छा का है परिणाम,
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल, बनाते हो असफल भवधाम्।-1

× × ×

बनो संस्कृति के मूल रहस्य, तुम्हीं से फैलेगी वह बेल,
विश्व भर सौरभ से भर जाय, सुमन के खेलो सुन्दर खेल।-2

आधुनिक नवजागरण आन्दोलन से समुत्पन्न चेतना के कारण जन-मानस में पुरातनता के विखंडन व नवीनता के प्रति आग्रह दृष्टिगत् होती है। "कामायनी" की श्रद्धा भी मनु को इसी नवीनता की ओर उन्मुख करती है। श्रद्धा नवीनता की प्रेमी हैं, वे सृष्टि के परिवर्तन को सहज रूप से स्वीकार करती हैं। उनके अनुसार प्रकृति का श्रृंगार बासी फूल नहीं कर सकते। नूतनता का आनन्द परिवर्तन में निहित है। श्रद्धा इसी नवीनता का समर्थन करती हुई, मनु से कहती हैंः-

पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक,
नित्य नूतनता का आनन्द, किये है परिवर्तन में टेक।-3

1- कामायनी पृ0-63

2- वही, पृ0 66

3- वही, पृ0 65

गाँधवादी सिद्वान्तों की प्रमुख विशिष्टता अहिंसावाद है। "कामायनी" की श्रद्धा पर इसी गाँधीवाद का प्रभाव है। गाँधीवादी अहिंसा व बौद्धिकता के प्रभाव स्वरूप वे देवताओं के नाम पर दी जाने वाली बलि को मानव की स्वार्थमयी प्रवृत्ति कहने का साहस करती है। वे सामाजिक-रूढ़ियों के विखंडन की समर्थक हैं तथा उनके प्रति विद्रोह-भाव रखती है। "कामायनी" के कर्म सर्ग में मनु द्वारा किया गया पशु बलि, श्रद्धा के मन में घोर घृणा व वितृष्णा का संचार करता है । वे मनु के इस कृत्य की भर्त्सना करती हुई, उनसे कहती हैं:-

और किसी की फिर बलि होगी, किसी देव के नाते,
कितना धोखा। उससे तो हम, अपना ही सुख पाते।
× × ×
मनु! क्या यही तुम्हारी होगी, उज्जवल नव मानवता?
जिसमें सब कुछ ले लेता हो, हन्त! बची क्या शवता।-1

उन्नीसवीं शदी के उत्तरार्द्व व बीसवीं शती के पूर्वार्द्व के प्रारम्भ में नवजागरण आन्दोलनों से समुत्पन्न चेतना व्यष्टि की अपेक्षा समष्टिवाद की ओर झुकी। "कामायनी" की श्रद्धा पर इसी समष्टिवादी चेतना का प्रभाव है। वे एकान्त स्वार्थ को भीषण विनाश का कारण मानती हैं। इसी कारण वे दूसरों के सुख में अपना सुख मानने के दृष्टिकोण की महत्ता का प्रतिपादन करती हैं। यहाँ श्रद्धा के समष्टिवादी रूप का अंकन हुआ है। वे कहती हैं:-

अपने में सब कुछ भर कैसे, व्यक्ति विकास करेगा।
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा।
औरों को हँसते देखो मनु, हँसों और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।-2

1- कामायनी, कर्म सर्ग, पृ0-134

2- वही,कर्म सर्ग, पृ0-136

छायावादी भाव संकुलता तथा भावाभिव्यंजकता के प्रभाव स्वरूप "कामायनी" में श्रद्धा के कोमल तथा सूक्ष्म मनोभावों का चित्रण हुआ है। "कामायनी के ईर्ष्या सर्ग में श्रद्धा सामान्य नारी के रूप में प्रस्तुत हैं। अपने प्रति मनु के विरक्ति भाव को देखकर एक सामान्य नारी की भाँति, वे भी व्यथित हो उठती हैं। अपने अन्तर्दन्दों को व्यक्त करती हुई, वे मनु से कहती हैः-

उनके घर में कोलाहल है, मेरा सूना है गुफा द्वार।
तुमको क्या ऐसी कमी रही, जिसके हित जाते अन्य द्वार।-1

"कामायनी" की श्रद्धा आदर्श मातृत्व के कोमल भावों से समन्वित हैं। वे अपने भावी सन्तान के लिए पुआलों से छोटा सा घर बनाती हैं। उस घर में छोटा सा झूला डालती है, तथा आने वाले सन्तान के लिए अपने हाथों से वस्त्र बनाती है। श्रद्धा उस दिन का बड़ी ही बेसब्री से इन्तजार करती है, जब उसके मातृत्व को सफल बनाने वाले, उसके मातृरूप को गौरव प्रदान करने वाले, भावी सन्तान का आगमन होगा। श्रद्धा के इन कोमल भावों का चित्रण "कामायनी" की मौलिकता है। श्रद्धा सोचती हैः-

वह आवेगा मृदु मलयज-सा, लहराता अपने मसृण बाल,
उसके अधरों से फैलेगी, नव मधुमय स्मिति-लतिका प्रवाल।
× × ×
मेरी आँखों का सब पानी, तब बन जायेगा अमृत स्निग्ध,
उन निर्विकार नयनों में जब, देखूँगी अपना चित्र मुग्ध।-2

श्रद्धा की संवेदनशीलता उनके जीव-प्रेमी चरित्र द्वारा भी व्यंजित होता है। वे जीवों का चर्म के लिए किये जाने वाले वध को रोकना चाहती हैं। श्रद्धा जीवों को मांस तथा चर्म के लिए नहीं, अपितु दूध प्राप्ति का साधन

1- कामायनी, कर्म सर्ग, पृ0 148

2- वही, ईर्ष्या सर्ग, पृ0 155

मानती हैं। वे कहती है कि चमड़ा उनका ही आवरण रहे, हमारा काम ऊनों से चले। श्रद्धा का यह रूप छायावादी भावुकता के साथ ही गाँधीवादी सिद्धान्तों से भी प्रभावित है। श्रद्धा द्वारा अपने हाथ से ऊन कातना इसी तथ्य का द्योतक है। वे मनु से पशुओं के प्रति संवेदना व्यक्त करती हुई कहती हैः-

चमड़े उनके आवरण रहें, ऊनों से मेरा चले काम,
वे जीवित हों मांसल बनकर, हम अमृत दुहें, वे दुग्धधाम।
वे द्रोह न करने के स्थल हैं, जो पाले जा सकते सहेतु,
पशु से यदि हम कुछ ऊँचे है, तो भव जलनिधि में बनें सेतु।-1

श्रद्धा के व्यक्तित्व में अद्भुत चारित्रिक दृढ़ता विद्यमान है। आधुनिक नारी-जागरण के प्रभाव स्वरूप आधुनिक युग में नारी पुरुषों के सहारे जीने वाली असहाय जीव मात्र नहीं है, वह स्वयं अपने सहारे अपने पैरों पर चलने में समर्थ है। "कामायनी" की श्रद्धा पर इसी चेतना का प्रभाव है। मनु द्वारा छोड़कर चले जाने पर, श्रद्धा किंचित भी हताश व निराश नहीं होती। वे अपने साथ ही अपने पुत्र का पालन-पोषण पूर्ण सजगता व निपुणता से करती हैं। वे जीवन की विषम परिस्थितियों से हार नहीं मानती प्रत्युत उसे हंसकर स्वीकार कर लेती हैः-

विस्मृत हों वे बीती बातें, अब जिनमें कुछ सार नहीं,
वह जलती छाती न रही अब वैसा शीतल प्यार नहीं।
सब अतीत में लीन हो चलीं, आशा, मधु अभिलाषायें,
प्रिय की निष्ठुर विजय हुई, पर यह तो मेरी हार नहीं।-2

"कामायनी" की श्रद्धा में चारित्रिक दृढ़ता के साथ ही मानवीय दुर्बलता भी है। मनु के बिछुड़ जाने पर श्रद्धा के मन में यह आशंका बनी

1- कामायनी, ईर्ष्या सर्ग, पृ0 150

2- कामायनी - स्वप्न सर्ग, पृ0 181

रहती है कि कहीं उनका पुत्र भी न उनका साथ छोड़ दे। आधुनिक युग में मानव संवेदनात्मक विखंडन का शिकार होता जा रहा है। बौद्धिकता तथा भौतिकता के व्यामोह ने मानवीय कोमल सम्बन्धों में दरार पैदा कर दी है। "कामायनी" की श्रद्धा इसी बात से भयभीत है, कि कहीं उनका पुत्र भी पति की भाँति ही, उनसे रूठ न जाय, इसीलिए वह उसे ज्यादा रोकती-टोकती भी नहीं। यहाँ एक तरफ श्रद्धा की टूटी हुई संवेदना की पुकार है, तो दूसरी तरफ अगाध वात्सल्यपूर्ण मातृहृदयः-

कहाँ रहा नटखट तू फिरता अब तक मेरा भाग्य बना।
अरे पिता के प्रतिनिधि, तूने भी सुख-दुख तो दिया घना,
चंचल तू, वनचर मृग बनकर भरता है चौकड़ी कहीं,
मैं डरती तू रूठ न जाये करती कैसे तुझे मना।-1

श्रद्धा के चरित्र का मौलिक व उदात्त पक्ष है उनका त्यागपूर्ण, क्षमाशील व्यक्तित्व। स्वप्नमें अपने पति मनु पर आये विपत्ति को देखकर, वे विचलित हो उठती हैं। वे मनु के समस्त कठोरता को भूलकर, अपने पुत्र के साथ उन्हें ढूँढने निकल पड़ती हैं। सारस्वत् प्रदेश में घायलावस्था में पड़े मनु को देख वे उनके घावों का उपचार करती हैं। वे मनु को जीवन के प्रति विरक्ति व हताशा से बाहर निकाल कर पुनः नवीन चेतना प्रदान करती हैं, नवजीवन की ओर अग्रसित करती है। श्रद्धा का यह चरित्र उनके आदर्श पतिव्रत्य का परिचायक ही नहीं है, प्रत्युत उनके त्यागी व उदात्त चरित्र का द्योतक भी है। वे मनु से कहती हैं:-

प्रिय अब तक हो इतने सशंक, देकर कुछ कोई नहीं रंक।
यह विनिमय है या परिवर्तन, बन रहा तुम्हारा ऋण अब धन।-2
x x x
तब चलो जहाँ पर शान्ति प्रात में नित्य तुम्हारी, सत्य बात।-3

1- कामायनी स्वप्न सर्ग, पृ0 183
2- कामायनी, पृ0 249
3- वही, पृ0 251

समग्रतः "कामायनी" में श्रद्धा के मानवीय रूप का निरूपण उसके आदर्श, जागरूक तथा संवेदनशील व उदात्त नारी रूप द्वारा व्यंजित हुआ है। डॉ0 लालता प्रसाद के शब्दों में "श्रद्धा का व्यक्तित्व उच्च स्तरीय है। वह अपने जीवन से हताश-निराश मनु को उद्‌बोधित करके 'काम' की प्रेरणा देती है, अपना सहचर बनाकर जीवन-संघर्ष में प्रवृत्त करती हैं। अपने व्यक्तित्व एवं कर्त्तव्य-सेवाशीलता, पातिव्रत्य, सतीत्व, औदार्य, सदाशयता आदि से प्रभावित कर और उनका पथ-प्रदर्शन करके आनन्द की उच्च भावभूमि पर प्रतिष्ठित करती हैं, वह उसकी अपरिमेय बुद्धिमत्ता का परिचायक है।"-1

"कामायनी" के पश्चात् श्रद्धा का चरित्र निरूपण करने वाली अगली कड़ी केदारनाथ मिश्र 'प्रभात्' की "ऋतम्बरा" काव्य-कृति है। इस रचना में श्रद्धा, शतरूपा के रूप में चरित्रांकित हुई है। छायावादी प्रबन्ध रचना होने के कारण इसमें भी उनका प्रतीकात्मक रूप व्यंजित हुआ है। प्रतीकात्मक रूप में शतरूपा कला की प्रतीक है जबकि श्रद्धा ह्रदय तत्व के रूप में चित्रित हुई है।"कामायनी" में वे मानव मन की भावनात्मकता व संवेदनात्मकता के प्रतीकत्व का वहन करती हैं, वहीं "ऋतम्बरा" में मनु रूपी कर्म की चिरसंगिनी 'कला' के रूप में चरित्रांकित हुई है।

"ऋतम्बरा" में शतरूपा पौराणिक रूप में ब्रह्मा के द्वारा निर्मित विशिष्ट कृति है, वे उन्हीं के आज्ञा पर तथा आग्रह पर सृष्टि के विकास व कल्याण हेतु मनु के साधना पथ की चिर संगिनी बनती हैं। "विष्णु-पुराण" व "शिव-पुराण" में भी शतरूपा का निर्माण ब्रह्मा द्वारा किये जाने का वर्णन प्राप्त होता है।

श्रद्धा यानि शतरूपा प्रतीकात्मक रूप में 'कला' की प्रतीक हैं। "ऋतम्बरा" में उनके प्रतीकात्मक रूप की ओर संकेत करते हुए शाश्वत् नारी के कोमल रूप का चरित्रांकन हुआ है।

1- हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व - डॉ0 लालता प्रसाद पृ0-258

यही कला पहली नारी थी, शतरूपा वल्कल वसना,

जिसने सीख लिया नयनों में, पलकों में, छिपकर बसना।-1

कला की महत्ता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निहित है। सृष्टि-रचना में कला का महत्वपूर्ण योगदान है। ब्रह्मा द्वारा शतरूपा के नारीत्व का गौरव तथा सृष्टि में उसके आकर्षण व महत्त्व की व्यंजना प्राप्त होती है। सृष्टि-विकास में उसकी अनिवार्यता के कारण ब्रह्मा शतरूपा से मनु रूपी कर्म की साधना, तपस्या तथा उसके एकाकी जीवन में सहभागी होने का निवेदन किया जाता है:-

प्रकृति न बनी चित्र- विचित्रा, पृथिवी चित्राधार नहीं,

तुम बन जाती यदि अपनी ही, तूली का त्योहार नहीं।

× × ×

बनो साधना, बनो तपस्या, श्रद्धा बनो, पुकार बनो।

मनु के एकाकी जीवन में, शुभे कर्म त्योहार बनो।-2

कला के बिना कर्म का अस्तित्व नगण्य नहीं, तो उदात्त भी नहीं है। कर्म के साथ कला का सहयोग ही उसे विश्व-मंगल की ओर अग्रसित करता है। श्रम क्लान्त पौरूष के लिए 'कला' रूपी शतरूपा ही आश्रयदायिनी जीवनी शक्ति के रूप में प्रकट होती है। मनु के घायल होने पर शतरूपा का अचानक वहाँ पहुँचना तथा उनका उपचार करना इसी प्रतीकात्मक रूप का द्योतक है:-

शतरूपा ने उधर निहारा, पत्तों का दोना ले

दौड़ी, एक निमिष में लौटी, जल अथवा टोना ले।

फिर बैठी घावों को धोने, धीरे हाथ बढ़ाया।-3

"ऋतम्बरा" में शतरूपा के चरित्र का विशिष्ट पक्ष है उनका मानवीय रूप। "ऋतम्बरा" की शतरूपा कोमल तथा लज्जाशील नारी हैं। घायल मनु के

1- ऋतम्बरा- सप्तम् सर्ग, पृ 93

2- वही, पृ0 92-93

3- वही, पृ0-122

उपचार हेतु उनका स्पर्श-मात्र करने पर वह सिहर उठती है। "कामायनी" की श्रद्धा मनु को 'काम' की प्रेरणा देने वाली नारी है, वे स्वयं उन्हें सहचर बनने का आमन्त्रण देती है, किन्तु ऋतम्बरा की शतरूपा उनसे सर्वथा विलग है। यहाँ वे संवेदनशील नारी हैं:-

स्पर्श किया ज्यों ही मनु का, मन उसका घबड़ाया।
यही स्पर्श वह नई हिलोरें, लाता जो जीवन में।
सुख जिसका मादकता बन, छा जाता नयन-नयन में।-1
× × ×
भागी उठकर गई दूर कुछ, खड़ी प्रश्न करती-सी,
कुछ सिहरन से भरी हुई, कुछ विस्मित सी डरती सी।-2

आधुनिक युग में नव चेतना के प्रभावस्वरूप कर्म की महत्ता स्थापित हुई। गाँधीवादी सिद्धान्तों में शरीर-श्रम को विशिष्टता प्रदान की गई है। "ऋतम्बरा" पर भी युगीन चेतना का प्रभाव है। शतरूपा केवल संवेदनशील भावुक नारी ही नहीं है, वह श्रम को महत्व देने वाली कर्मवादी नारी भी हैं। मनु के श्रमशील रूप पर मुग्ध शतरूपा कर्म की महत्ता प्रतिपादित करती हुई, कहती है:-

देखें क्षितिज, दिशाएँ देखें, देखें चकित प्रलय का सागर,
किस प्रकार निर्माण उतरता, श्रम के रक्त-दीप की लौ पर।-3

"कामायनी" की श्रद्धा भी मनु को कर्मपथ की ओर अग्रसित करती है। "ऋतम्बरा" में वे मनु के श्रम-शील व्यक्तित्व पर मुग्ध हैं। "कामायनी" की तुलना में उनके चरित्र की यह मौलिक अभिव्यंजना हुई है।

1- ऋतम्बरा, पृ0 122

2- वही, पृ0- 124

3- वही, पृ0-121

"ऋतम्बरा" में शतरूपा का चरित्रांकन में एक बौद्धिक तथा समष्टिवादी नारी के रूप में हुआ है। "कामायनी" में भौतिकता के व्यामोह में फंसे मनु का, उसी भौतिकतावादी शक्तियों द्वारा पतन होने पर, श्रद्धा उन्हें आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर उन्मुख कर 'महा आनन्द' की प्राप्ति कराती है। "ऋतम्बरा" में शतरूपा मनु को मंगलदीप पुनः प्रज्वलित करने की प्रेरणा देते हुए उन्हें विश्वमंगल के पथ पर अग्रसित करती है। शतरूपा के चरित्र में निहित यह मौलिक पक्ष है। वह मनु द्वारा भयंकर दुःस्वप्न देख जाने के बाद मंगलदीप बुझा देने पर उन्हें सांसारिक परिवर्ननशीलता तथा मानवीय सतत् परिस्थितियों से उन्हें अवगत कराती है। दीप के महत्ता का प्रतिपादन करती हुई वे मनु से कहती हैः-

यह दीपक उस आलोक लोक का प्रहरी
परिचय जिसका तारों की पुस्तक देती
आशाओं का आधार ह्रदय यह नभ का
जिसके द्युति-कण करते सपनों की खेती।-1

"ऋतम्बरा" में शतरूपा का चरित्रांकन मौलिक रूप में आधुनिक युगीन-सन्दर्भो से प्रभावित है। वे भौतिकता के चरम उपासना से उत्पन्न वैषम्य की भर्त्सना करती है। भौतिकता के व्यामोह में फंसकर मानव हिंसक और स्वार्थमयी प्रवृत्तियों से आवृत्त हो, भौतिकता रूपी महाशक्ति के चरणों में भविष्य व वर्तमान दोनों को समर्पित कर देता है। वह मानवता की करूण कराह को अनसुना कर देता है, ऐसी परिस्थिति में विप्लव ही इस समस्या का समाधान करती है। वही मानवता की पुनः जन्मदात्री बनती है। इसी सन्दर्भ में शतरूपा कहती हैः-

वैभव-बल से बल को उकसाया जाता
संघर्ष आग जाती है फिर सुलगाई
मृत्तिका-योजना यह जल-जल कर मिट्टी
मानवता जिसमें प्रथम-प्रथम मुसकायी।-2

1- ऋतम्बरा पृ0-171
2- वही, पृ0-174

"कामायनी" की श्रद्धा भी मानवतावादी तथा समष्टि प्रेमी है। "ऋतम्बरा" की शतरूपा में भी मानवतावादी चेतना है। वे मानवता की व्याख्या करती हुई, भौतिकता , आसुरी प्रवृत्तियों तथा पशुता पर मानवीयता की विजय को ही धुव सत्य मानती हैं। वे मानवता को महा सिन्धु की करूणा, आशा और विश्वास की प्रखर ज्योति तथा आत्मा की मंगलमयी विभा मानती हैं:-

यह गरिमा ही मानव की मानवता है
यह महा सिन्धु के भीतर की करूणा है
विश्वास और आशा की दीप्ति प्रखर है
आत्मा की मंगलमयी विभा अरूणा है।-1

"ऋतम्बरा" के शतरूपा का चरित्र चित्रण "कामायनी" की श्रद्धा की ही भाँति गाँधीवादी अहिंसात्मक चेतना से प्रभावित है। कामायनी की श्रद्धा भी हिंसा रूपी मानवीय पशुता का विरोध करती है। शतरूपा भी इसी मानवी-पशुता की कटु निन्दा करती है। वह पशुता अर्थात् हिंसा की प्रवृत्ति के समक्ष झुकने वाले मानव को, कायर की संज्ञा देती है। वे मानव जीवन का सर्वाधिक काला अध्याय, उसकी इसी कायरता को मानती हैं। मानव जिस पशुता पर विजय प्राप्त कर उदात्त चारित्रिक उत्कर्ष का लक्ष्य प्राप्त करता है, उसी पशुता व हिंसा के चरणों में क्लीव के समान अपना सिर झुका देता है, अर्थात् स्वयं उसी प्रवृत्ति में रमने लगता है:-

सबसे काला अध्याय यही जीवन का,
मानव जिसका दिग्विजयी अभिनेता है।
पशुता के हिंसक चरणों में सिर अपना
वह बार-बार बन क्लीव टेक देता है।-2

1- ऋतम्बरा, पृ0 174

2- वही, पृ0-174

शतरूपा के चरित्र का उदात्त व मौलिक पक्ष है उनकी विश्व-मंगल की कामना। "कामायनी" की श्रद्धा मनु को आध्यात्म के द्वारा विश्व-कल्याण पथ का पथिक बनाती है, किन्तु "ऋतम्बरा" में शतरूपा उन्हें उनके श्रम-शील कर्मवादी रूप में ही 'मंगल-दीप' जलाने व विश्व-सृष्टि करने की उदात्त प्रेरणा प्रदान करती हैं। वे मनु द्वारा देखे गये जड़ भौतिकता से उत्पन्न विषमताओं के स्वप्न की नवीन व्याख्या करते हुए, उसका आशाप्रद चित्र खींचकर मनु को मंगल-दीप प्रज्वलित करने की प्रेरणा देती हैः-

तुमने देखा है इसी घूमते क्रम को
अब अपने पथ की ओर दृष्टि ले जाओ,
यह दीपक तुमने बुझा दिया, क्या सोचा,
छोड़ो विषाद मनु इसको पुनः जलाओ।-1

समग्रत संक्षिप्त चित्रण होते हुए भी शतरूपा का चरित्र "कामायनी" की श्रद्धा की तुलना में उदात्त व आदर्श है। साथ ही साथ आधुनिक युगीन जीवन सन्दर्भों से श्रद्धा की अपेक्षाकृत अधिक जुड़ा हुआ है।

श्रद्धा के चरित्र को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली अगली कड़ी राजेन्द्र किशोर कृत "मन्वन्तर" नामक लम्बी कविता है। इस रचना में "कामायनी" तथा "ऋतम्बरा" में उदात्तता के शिखर पर स्थित श्रद्धा का चरित्र मुख्य स्थान से हटकर गौण हो गया है। इस रचना में दया, माया, ममता, प्रेम व करूणा की मूर्ति श्रद्धा को विवेकहीन माना गया है। प्रतीकात्मक रूप में श्रद्धा युग की वास्तविकता से असम्पृक्त कोरी भावुकता के प्रतीक रूप में वर्णित हुई हैं।

"मन्वन्तर" में श्रद्धा के आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख करने वाले रूप को कायरतापूर्ण माना गया है। "कामायनी" में श्रद्धा अर्थात् ह्रदय पक्ष समरसता की स्थापना द्वारा अपूर्ण काम मनु को पूर्ण काम बनाकर अध्यात्म के चरम सीमा आनन्द लोक तक पहुँचाती है। किन्तु मनवन्तर- में मानव जीवन के कटु वास्तविकता से अनभिज्ञ इस आध्यात्कि महानंद की कोई महत्ता नहीं है। श्रद्धा अर्थात् ह्रदय पक्ष को जीवन के यथार्थ को झेलने में असक्षम मानते हुए, उनकी करूणा को कर्महीनता की ओर अग्रसित करने वाला माना गया है—

और श्रद्धा-दुलारी नारी, अत्याधि भोग और भोग से उत्पन्न
करूणा से उत्पन्न।-2

इड़ा

मनु और श्रद्धा के समान इड़ा का चरित्र भी भारतीय वाङ्मय में वर्णित हुआ है। ऋग्वेद में इड़ा का वर्णन कई स्थलों पर हुआ है, किन्तु पुराणों में भी इड़ा वर्ण्य-विषय बनीं। ब्रह्म पुराण, विष्णु पुराण तथा मत्स्य पुराण में इड़ा को समान रूप से दिव्याभूषणों से अलंकृत व दिव्य रूप वाली बतलाया गया है। इसी प्रकार हरिवंश पुराण में लगभग इसी भाँति इड़ा का वर्णन प्राप्त होता है। मित्रावरुण यज्ञ में दिव्य वस्त्रों को धारण किये हुए तथा दिव्य आभूषणों को पहनी हुई दिव्य शरीर की इड़ा नाम की कन्या उत्पन्न हुई।-1

आधुनिक प्रबन्ध-कृतियों में इड़ा के संक्षिप्त पौराणिक रूप को विस्तार प्राप्त हुआ। इड़ा चरित्र का निरूपण सर्वप्रथम छायावादी प्रबन्ध-कृति "कामायनी" में जयशंकर प्रसाद द्वारा हुआ। "कामायनी" के पश्चात् 'इड़ा' का चरित्र "मन्वन्तर" नामक लम्बी काव्य कृति में राजेन्द्र किशोर द्वारा वर्ण्य-विषय के रूप में चुना गया। "मन्वन्तर" 'नयी कविता' की देन है।

"कामायनी" के प्रमुख पात्रों में इड़ा विशिष्ट महत्व व स्थान की अधिकारिणी है। इस प्रबन्ध कृति में मनु व श्रद्धा की ही भाँति इड़ा का चरित्र-निरूपण भी बहुआयामी है। "कामायनी" की "पार्श्वनायिका" इड़ा के प्रतीकात्मक, मनोवैज्ञानिक व मानवीय रूपों का चित्रण हुआ है। प्रतीकात्मक रूप में. इड़ा बुद्धि के अतिरेक, विलासिता की प्रेरक शक्ति तथा अतिवादी भौतिकता की प्रतीक है। मनोवैज्ञानिक रूप में उनका चरित्र मानव को आध्यात्मिकता से परे रखने वाली, मानवीय दुर्बलता का है। मानवीय रूप में इड़ा आधुनिक बौद्धिक तथा विकासशील नारी की द्योतक है।

==

1- हरिवंश पुराण - दशम अध्याय, पृ0 41

इड़ा का प्रतीकात्मक रूप कामायनी की मुख्य विशिष्टता है। 'इड़ा' बुद्धि की प्रतीक है, दूसरे शब्दों में बुद्धि के अतिरेक की प्रतीक है, जहाँ ह्रदय तत्व की महत्ता नगण्य हो जाती है। "कामायनी" के 'इड़ा' सर्ग के प्रारम्भ में जयशंकर प्रसाद जी ने इड़ा का जिस प्रकार चित्रण किया है, वह उनके इसी प्रतिकात्मक रूप की व्यंजना करता है:-

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल
वह विश्व मुकुट सा उज्जवलतम् शशि खण्ड सदृश था स्पष्ट भाल,
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल,
गुंजरित मधुप से मुकुल सदृश वह आनन जिसमें भरा गात,
वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान,
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिये,
दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलम्ब दिये
त्रिबली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल।-1

यहाँ कवि द्वारा जितने भी प्रतीक है- यथा तर्क जाल सदृश अलकें, विश्व का समस्त ज्ञान-विज्ञान समेटे उर, एक हाथ में कर्मकलश जिससे संसार को सुखी व सम्पन्न बनाया जा सकता है दूसरे हाथ में विचारों का स्वच्छन्द आकाश जो निर्भयता का प्रतीक भी है सत्-रज-तम् गुणों से संयुक्त त्रिबली ये सभी इड़ा के बुद्धि के प्रतीकत्व की पुष्टि करते हैं।

'इड़ा' मनु अर्थात् मन को बुद्धि की ओर उन्मुख करके, उन्हें भौतिक पूँजीवादी व वैज्ञानिक प्रगति हेतु प्रेरित करती है। वह मानव का विकास एक मात्र बौद्धिकता के आश्रय में ही मानती हैं। इड़ा कहती है:-

जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय
जितने विचार संस्कार रहे, उनका न दूसरा है उपाय

1- कामायनी - इड़ा सर्ग, पृ0-172

यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी शोधक विहीन
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन
× × ×
तुम जड़ता को चैतन्य करो, विज्ञान सहज साधन उपाय।-1

आधुनिक युग में पाश्चात्य सभ्यता, वैज्ञानिकता तथा भौतिकता के प्रति बढ़ते व्यामोह के कारण बौद्धिकता की ओर अधिक झुकाव हुआ। छायावादी रचना की विशिष्ट प्रवृत्ति उसके प्रतीकात्मक चित्रण के पीछे आधुनिक चेतना की भी विशेष सहभागिता रही है। किन्तु इस भौतिकता, यान्त्रिकता, तथा बौद्धिकता का वहीं तक महत्व है, जहाँ वह अतिरेक की सीमा न पार करे। अतिरेक जिस क्षेत्र में प्रभावी होगा, वहीं विनाश व विप्लव होगा। सारस्वत् प्रदेश का पतन इसी तथ्य का द्योतक है। दूसरे शब्दों में यह आधुनिक भौतिकता के अतिरेक की ओर उन्मुख मानव के लिए चेतावनी भी है।

"कामायनी" में इड़ा रूपी बुद्धि अपनी तार्किक दृष्टिकोण से मानव को भौतिकता तथा यान्त्रिक सभ्यता के विकास की ओर उन्मुख करती है। सारस्वत् प्रदेश में इड़ा के सहयोग से मनु द्वारा शासन करते हुए, जिस यन्त्रवाद का प्रचार होता है, प्रतीकात्मक रूप में वह आधुनिक युग के उस यान्त्रिक सभ्यता की ओर संकेत करता है। जो बुद्धिवाद के छत्रछाया में विकसित हो रही है। आधुनिक युग में मानव में हृदय तत्व को महत्वहीन तथा मूर्खता मानने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। संवेदना व भावुकता किताबों के विषय बनते जा रहे हैं। हृदय के भावों से दूर हटता जा रहा बुद्धिवादी मानव नितान्त स्वार्थपरायण तथा आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है। "कामायनी" में बुद्धि के तर्कजाल में फंसे मनु तथा सारस्वत् प्रदेश का चित्रण इसी तथ्य का द्योतक हैः-

---

1- कामायनी-इड़ा सर्ग, पृ0 175

इड़ा अग्नि-ज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी,
मनु का पथ आलोकित करती विपद-नदी में बनी तरी,
उन्नति का आरोहण, महिमा शैल-शृंग सी, श्रान्ति नहीं।
तीव्र प्रेरणा की धारा-सी बही वहीं उत्साह भरी।-1

केवल बुद्धि की अति ही मनुष्य को अनेक दुर्गुणों की ओर प्रेरित करती है। इड़ा के चरित्र-निरूपण में प्रसाद ने इस बात को दृष्टि में रखा है। बुद्धि मनुष्य को विलासिता की ओर प्रेरित करती है। इड़ा के व्यक्तित्व में विलासी नारी का रूप प्रतिबिम्बित है। वह मनु को मदिरा पान कराती है। प्रतीकात्मक रूप में अतिवादी, बौद्धिकता द्वारा मानव मन को विलासिता की ओर ले जाया जाता है:-

इड़ा ढालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्यास नहीं,
तृषित कण्ठ को पी-पीकर भी जिसमें है विश्वास नहीं।-2

यहाँ मानव के विलासिता में फँसे तृष्णा युक्त मन का भी अंकन हुआ है। मानव जितना ही भौतिकता व विलासिता की प्राप्ति करता जाता है, उसकी तृष्णा और भी बढ़ती जाती है।

"कामायनी" के दर्शन सर्ग में बुद्धिवाद के दुष्परिणाम सभ्यता में मानवीय संवेदनाओं का हनन, सामाजिक वैषम्य तथा आपसी फूट, सीमाओं का विखण्डन, निरंकुश शक्ति तन्त्र का विकास तथा स्वयं नियमन कर्ता का चारित्रिक पतन, इसी बुद्धिवाद के दुष्परिणाम का द्योतक है। यहाँ आधुनिक युग की भौतिकतावादी तथा यान्त्रिक सभ्यता की ओर कवि का अप्रत्यक्ष संकेत हुआ है। इड़ा द्वारा कवि ने कहलाया है:-

---

1- कामायनी - पृ0 185

2- वही, पृ0 187

अग्रसर हो उठी यहाँ फूट, सीमाएँ कृत्रिम रहीं टूट,
श्रम भाग वर्ग बन गया जिन्हें, अपने बल का है गर्व उन्हें,
नियमों की करनी सृष्टि जिन्हें, विप्लव की करनी वृष्टि उन्हें,
सब पिये मत्त लालसा घूँट, मेरा साहस अब गया छूट
मैं जनपद कल्याणी प्रसिद्ध, अब अवनति कारण हूँ निषिद्ध, -1

अन्ततः बुद्धि के उस तत्व को महत्ता प्रदान होती है जो ह्रदय तत्व के समन्वय से आदर्श रूप धारण कर लेती है। श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र मानव को इड़ा के साथ रहकर मानव के कल्याणमयी संस्कृति के विकास की प्रेरणा इसी तथ्य की ओर संकेतित करती है। मानवीय संवेदना तथा भावनात्मकता के साथ ही बौद्धिक अनुशासन की भी महत्ता है, किन्तु केवल बौद्धिकता का अतिरेक, सामाजिक पतन का कारण भूत रूप ले लेता है। ह्रदय और बुद्धि का समीकरण प्रस्तुत करते हुए "कामायनी" के दर्शन सर्ग में श्रद्धायुक्त बुद्धि की महत्ता स्थापित हुई है। कवि ने अपना यह तर्क श्रद्धा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वे अपने पुत्र मानव को इड़ा के पास छोड़ती हुई कहती है:-

"हे सौम्य! इड़ा का शुचि दुलार, हर लेगा तेरा व्यथा भार,
यह तर्कमयी तू श्रद्धामय, तू मननशील कर कर्म अभय,
इसका तू सब सन्ताप विषय, हर ले हो मानव भाग्य उदय;
सबकी समरसता कर प्रचार, मेरे सुत! सुन माँ की पुकार।-2

इड़ा के चरित्र का दूसरा पक्ष उनका आध्यात्मिक रूप है। भौतिकता, यांत्रिकता व बौद्धिकता से इड़ा सारस्वत् प्रदेश का बहुमुखी विकास प्रारम्भ करती है। किन्तु इन तत्वों का अतिरेक समाज व देश के समक्ष अनेकों समस्याओं को भी प्रस्तुत करता है जो कि देश के विखंडन व पतन का कारण बन जाता है। इसके पीछे

1- कामायनी- दर्शन सर्ग, पृ0 240-241

2- वही, पृ0 245

मानवीय संवेदनाओं तथा भावनाओं के समक्ष मानव द्वारा स्वार्थपरता तथा एकान्त बुद्धिवाद की प्रमुख भूमिका होती है। देश में भौतिकता व यान्त्रिक सभ्यता के अतिरेक की असफलता, इड़ा को किसी समाधान की खोज हेतु प्रेरित करती है। श्रद्धा इसी समय इड़ा को अपने पुत्र मानव को देती हुई, उन्हें मानव - कल्याण का नवीन मार्ग दिखलाती है। श्रद्धायुक्त अर्थात् मानवीय संवेदना व भावनात्मकता से युक्त मानव का सहारा इड़ा अर्थात् बुद्धि लेती है। अन्ततः मानव कल्याण-रत इड़ा अध्यात्म की ओर झुकती हैं। वे समस्त समाज के साथ महा-आनन्द को प्राप्त हेतु आनन्द, मनु व श्रद्धा के दर्शन हेतु जाती है।

"कामायनी" के आनन्द सर्ग में इड़ा का अध्यात्मोन्मुख रूप का चरित्रांकन हुआ है। इड़ा भौतिकता से विरक्त हो, अध्यात्मवाद का प्रश्रय लेती है। इड़ा के द्वारा परम आनन्द की खोज में अपनी प्रजा के साथ हिमालय के साधना प्रदेश में आना, इसी तथ्य का द्योतक है। गैरिक वसना इड़ा का सांसारिकता से परे अध्यात्मोन्मुखता "कामायनी" की विशिष्टता है। इड़ा कहती है:-

हम एक कुटुम्ब बनाकर, यात्रा करने हैं आये

चुनकर यह दिव्य तपोवन, जिसमें सब अघ छूट पाये।-1

इड़ा चरित्र की अन्तिम कड़ी उनके मानवीय रूप की है। आधुनिक नव-जागरण आन्दोलनों, पाश्चात्य सभ्यता व शिक्षा के प्रचार-प्रसार, से बौद्धिकता व वैज्ञानिकता की प्रवृत्ति बढ़ी। आधुनिक नवीन चेतना में मानवतावादी व समष्टिवादी चेतना भी निहित है। मानव द्वारा जब कोरी बौद्धिकता व वैज्ञानिकता का प्रश्रय लेकर विकास किया गया, वह पतन का शिकार हुआ। अन्ततः उसे मानवतावाद तथा मानवीय संवेदना व भावनात्मकता के सहयोग से ही विकास - पथ प्राप्त होता है। इड़ा के चरित्र के माध्यम् से इन्हीं तथ्यों की व्यंजना हुई है।

---

1 कामायनी - आनन्द सर्ग, पृ0 284-285

"कामायनी" में इड़ा का मानवीय पक्ष उदात्त है। आधुनिक देश-भक्ति की चेतना का प्रभाव इड़ा - चरित्र पर दृष्टिगत होता है। वे अपने उजड़े हुए प्रदेश के विकास हेतु प्रयासरत् देशभक्त नारी हैं। मनु से सहयोग माँगती इड़ा के कथन में,उसका देश-प्रेम ही मुखरित हुआ है-

स्वागत्! पर देख रहे हो तुम यह उजड़ा सारस्वत् प्रदेश
भौतिक हलचल से यह चंचल हो उठा देश ही था मेरा
इसमें अब तक हूँ पड़ी इसी आशा से आये दिन मेरा।-1

आधुनिक नव जागरण व नारी-जागरण आन्दोलन के प्रभाव स्वरूप उत्पन्न चेतना तथा आधुनिक दृष्टि सम्पन्न कर्मवादी तथा प्रगतिवादी नारी हैं। इड़ा मानव को दीन हीन बनकर हाथ पसारने के बदले,अपनी आत्मशक्ति, कर्मनिष्ठा व शक्ति से लक्ष्योन्मुख करती हुई कहती हैः-

अपनी दुर्बलता बल सम्हाल गन्तव्य मार्ग पर पैर धरे
मत कर पसार, निज पैरों चल, चलने की जिसको रहे झोंक
उसको कब कोई सके रोक।-2

बौद्धिक व वैज्ञानिक चेतना ने मानव को विकास के नये आयाम भी प्रदान किये। "कामायनी" की इड़ा पर भी इस बौद्धिकता व वैज्ञानिकता का प्रभाव है। वे मनु को इसी बौद्धिकता एवं विज्ञान के सहारे सारस्वत् प्रदेश के विकास की प्रेरणा देती हैंः-

"हाँ तुम ही हो अपने सहाय
जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर किसकी नर शरण जाय।
जितने विचार संस्कार रहे उनका न दूसरा है उपाय।

1- कामायनी-इड़ा सर्ग, पृ0-173

2- वही, पृ0 174

यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी शोधक विहीन,
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन,
तुम जड़ता को चैतन्य करो विज्ञान सहज साधन उपाय।-1

इड़ा का चरित्रांकन गाँधीवादी अहिंसा से भी प्रभावित है। मनु द्वारा इड़ा पर किये गये अत्याचार के फलस्वरूप जन-विद्रोह हो जाता है। मनु और प्रजा के मध्य छिड़े भीषण युद्ध के फलस्वरूप भयंकर जन संहार होता है। इड़ा इस युद्ध को रोकते हुए- 'स्वयं जीने तथा दूसरों को जीने देने' का आह्वान करती है.-

इड़ा अभी कहती जाती थी "बस रोको रण,
भीषण जन संहार आप ही तो होता है
ओ पागल प्राणी तू क्यों जीवन खोता है।
क्यों इतना आतंक ठहर जाओ गर्वीले,
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले।-2

डॉ0 नन्द किशोर नन्दन के शब्दों में -"लोकधर्म और मर्यादा के प्रति उसकी जागरूकता भी उल्लेखनीय है। वह मनु के प्रेम बन्धन में बँधकर भी लोक मर्यादा की उपेक्षा नहीं करती, अपितु राष्ट्र के विकासार्थ मनु के बलात्कार को सहते हुए अपने धैर्य, सहन शक्ति और संयम से काम लेती है।"-3

"कामायनी" की इड़ा पर छायावादी भावुकता का प्रभाव है। दुःखी तथा मार्ग से भटकी हुई श्रद्धा के दुःखों द्रवित इड़ा भावुक हो उठती है। वे श्रद्धा से रुकने तथा अपनी व्यथा बतलाने का आग्रह करती है। यहाँ इड़ा चरित्र में मानवीय संवेदना ही मुखरित हुई है। वे श्रद्धा से कहती हैः-

---

1- कामायनी - इड़ा सर्ग- पृ0 175

2- वही पृ0 205

3- हिन्दी का आधुनिक प्रबन्ध-कविता का पैराणिक आधार-
डॉ0 नन्द किशोर नन्दन, पृ0 127

इस रजनी में कहाँ भटकती
जाओगी तुम बोलो तो,
बैठो आज अधिक चंचल हूँ
व्यथा गाँठ निज खोलो तो।-1

भौतिकता के अतिरेक पूर्ण विकास के कारण उत्पन्न सामाजिक-राजनीतिक वैषम्य तथा विघटन इड़ा को व्यथित कर देता है। वह स्वयं को प्रजा व देश के पतन का उत्तरदायी मानती है। यही नहीं वे मनु को प्रश्रय देने के कारण श्रद्धा का सुहाग छीनने का दोषी भी मानती है। इड़ा कहती है:-

संघर्ष कर्म का मिथ्याबल, ये शक्ति चिन्ह, ये यज्ञ विफल।
भय की उपासना। प्रणति भ्रान्त। अनुशासन की छाया अशान्त।
तिस पर मैंने छीना सुहाग, हे देवि! तुम्हारा दिव्य राग
मैं आज अकिंचन पाती हूँ, अपने को नहीं सुहाती हूँ,
मैं जो कुछ भी स्वर गाती हूँ, वह स्वयं नहीं सुन पाती हूँ।-2

यहाँ इड़ा की अन्तर्व्यथा ही मुखरित हुई है। यही व्यथा उनके भौतिकता के प्रति व्यामोह को भी विखंडित करता है, और इड़ा जीवन में यथार्थ और आदर्श के सम्बन्ध से मानव कल्याण के नवीन पथ पर अग्रसित होती है।

"कामायनी" के पात्रों के चरित्र निरूपण में प्रसाद जी पर्याप्त रूप से युगीन चेतना से प्रभावित हैं। डॉ गोविन्द राम शर्मा के शब्दों में -"कवि ने चरित्र चित्रण के लिए पौराणिक साहित्य का आधार अवश्य ग्रहण किया है लेकिन पात्रों को परम्परागत् धारणा से पृथक नये रूप में प्रस्तुत करने के लिए उसने अपने स्वतंत्र चिंतन और कल्पना-शक्ति का प्रयोग किया है। उनके चरित्र - चित्रण में इतिहास और दर्शन, आदर्श और यथार्थ तथा प्राचीनता और आधुनिकता का

1- कामायनी पृ0 - 187

2- वही, दर्शन सर्ग, पृ0 242

सुन्दर समन्वय दिखाई देता है।"-1

"कामायनी" के बाद इड़ा का चरित्र-निरूपण करने वाली अगली कड़ी राजेन्द्र किशोर की लम्बी काव्य-कृति "मन्वन्तर" है। इसमें छायावादी भाव - संकुलता तथा काल्पनिक आदर्शवाद के विरूद्ध यथार्थवादी तथा बौद्धिक चेतना से उत्पन्न विद्रोह का आरोपण हुआ है। "कामायनी" में इड़ा के बौद्धिक अतिरेक पूर्ण प्रतीकात्मतक रूप की व्यंजना हुई है जो भौतिकता, यन्त्रवादिता तथा विलासिता की ओर मानव मन को उन्मुख करती है। यही इड़ा आशान्ति की जन्मदात्री बौद्धिकता की प्रतीक भी है। "मन्वन्तर" में इड़ा के इस बौद्धिक स्वरूप की नवीन दृष्टिकोण से व्याख्या हुई है। इसमें इड़ा विवेक की प्रतीक है। विवेक ही युगीन यथार्थ को पहचानने में मानव को सक्षम बनाता है,तथा जीवन की जटिल समस्याओं से लड़ने तथा उनका समाधान करने की शक्ति प्रदान करता है। "कामायनी" में इड़ा के अध्यात्मोन्मुख स्वरूप का चरित्रांकन हुआ है किन्तु "मन्वन्तर" की इड़ा मनु व श्रद्धा के पुत्र मानव को लेकर जीवन के कठोर व यथार्थपरक धरातल पर चलती है। आधुनिक युग मे इड़ा के महत्व को उसके इसी विवेक-पूर्ण चरित्र के कारण स्वीकृति मिली। मन्वन्तर की इड़ा कहती है:-

> मैंने जो सपने पाले, वें अपनी आवश्यकता से उत्पन्न हुए थे।
> मैंने निज सत्यों को उद्‌भावित किया था, उनमें स्थिति और स्थापकता थी। - 2

"मन्वन्तर" काव्य कृति के 'मन्वन्तर' खण्ड में इड़ा के द्वारा नवीन मन्वन्तर का प्रारम्भ होता है। "कामायनी" में भी इड़ा मनु व श्रद्धा के पुत्र 'मानव' को लेकर मानव-कल्याण के पथ पर अग्रसित होती है, किन्तु वह मनु तथा श्रद्धा के सहयोग व आर्शीर्वाद हेतु अध्यात्म की ओर झुकने वाली गैरिक वसना नारी

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डॉ0 गोविन्द राम शर्मा, पृ0-261

2- निकष- 3-4, "मन्वन्तर" - राजेन्द्र किशोर, पृ0 182

है। "मन्वन्तर" में इड़ा का यह स्वरूप सर्वथा भिन्न है। इड़ा की इस नवीन सृष्टि में नवीन परम्परा जन्म लेती है, यह परम्परा मनु पुत्रों के द्वारा श्रद्धा एवं मनु के विस्थापन का जन्म देती है। इड़ा कहती है:-

मनु ने जो अंश पत्र उपस्थित किया था
उसका यही अन्त होना था
इसीलिए आओ मेरे असंख्य लाडलों
आज मैं तुम्हें - तुम सबको
इस उद्घाटित भूमिका में
मनु के स्थान पर स्थापित करती हूँ।-1

1- निकष- 3-4, "मन्वन्तर", पृ0-188

अध्याय - छः

शिव कथा : पात्रों का चरित्र विकास

शिव

भारतीय वाड्.्मय में शिव का चरित्र राम और कृष्ण की अपेक्षा भिन्न रूप में वर्णित है। शिव आर्यों तथा अनार्यों दोनों के ही देवता रहे हैं। आर्यों के लिए वे शिव के रूप में आराध्य बने तथा अनार्यों के लिए रूद्र रूप में प्रस्तुत हुए। शिव लीला का सविस्तार चित्रण "शिवपुराण" में हुआ है। इसमें वे अनादि पुरूष हैं। इस पृथ्वी पर वे सर्वप्रथम अवतरित हुए। यहाँ तक कि जब दिन-रात, सत्-असत् आदि का भी अस्तित्व नहीं था, उस समय शिव ही संसार में व्याप्त थे। चारित्रिक दृष्टि से ये सनातनी प्रज्ञा से युक्त, सबसे परे तथा यशस्वी हैं। शिव पुराण में शतरूद्र संहिता में वर्णित है कि महेश्वर के सर्वप्रथम होने वाले महाकाल आदि दस अवतार सर्वदा सज्जनों एवं भक्तों को सुख देने वाले तथा उन्हें भोग एवं मोक्ष को देने वाले हैं।-1 "स्कन्द पुराण" में शिव का चरित्र सर्वाधिक अलौकिक, जगत के कल्याणकर्ता, अद्वैत, महान ज्योतिर्मयी, कभी भी न जन्म लेने वाले पारब्रह्म परमेश्वर के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही नहीं उन्हें व्यवधान रहित निर्गुण, निर्विकार, निर्बाध, निर्विकल्प, निरीह, निरंजन, नित्यमुक्त, निष्काम निराधार तथा सदैव नित्व मुक्त ईश्वर के रूप में वर्णित हुए हैं। स्कन्द पुराण में शिव का उदात्त व लोकहितकारी रूप उस समय भी प्रकट होता है, जब शिव लोक हित की कामना से समुद्र मन्थन से निकले विष को धारण करते हैं। इसी समय से वे नीलकण्ठ कहलाये।-2 "वायु-पुराण" में शिव- रूद्र, भव, शिव, पशुपति, ईश, भीम, उग्र तथा महादेव आदि अनेक नामों से वन्दित किये गये हैं। -3 "अग्नि-पुराण" में शिव द्वारा विष धारण करने का प्रसंग वर्णित है।-4 इसके अतिरिक्त ब्रह्मवैवर्त पुराण, लिंग पुराण,

---

1- शिव-पुराण- शतरूद्र संहिता, श्लोक-1-8, पृ0-1007

2- स्कन्द-पुराण - पृ0-239

3- वायु-पुराण - अध्याय-26, पृ0-194

4- हरेण धारितं कण्ठे नीलकण्ठस्ततोअभवत।।9।। - अग्नि - पुराण (पूर्व भाग) अध्याय-3, पृ0-9

पद्म पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण में भी शिव का वर्णन प्राप्त होता है।

"बाल्मीकि-रामायण" के बालकाण्ड में शिव पार्वती के क्रीडा, तथा भगवान रूद्र द्वारा हलाहल विष के पान की कथा वर्णित हुई है।-1 "महाभारत" के तीर्थयात्रा पर्व में शिव द्वारा आकाश की मेखलाभूत गंगा को अपने सिर पर धारण करने का वर्णन प्राप्त होता है।-2 श्रीमद्भागवद् पुराण में शिव का चरित्र दक्ष प्रजापति के विरोधी, आदर्श पति, त्यागी एवं संयमी तथा देव और दैत्यों के कल्याण के लिए समुद्रमंथन के समय हलाहल का पान करने वाले महान नीलकंठ शंकर के रूप में प्राप्त होता है। भगवान शंकर उस विष को हंथेली पर रखकर पान कर गये। उस विष को शंकर जी ने कण्ठ के नीचे नहीं उतारा, विष के कालकूट होने के कारण उसके प्रभाव से शंकर जी का कण्ठ नीला पड़ गया, इसीलिए उन्हें नीलकण्ठ कहते हैं।-3

"रामचरित-मानस" में शिव रामभक्त के रूप में वर्णित हुए हैं। राम पर सन्देह करने के कारण सती का त्याग करने वाले, महान तपस्वी, योगी, के रूप में वर्णित हुए हैं। शिव को संसार के स्वामी, त्रिपुरासुर का वध करने वाले, तीनों लोकों में महिमान्वित, चर , अचर, नाग, मनुष्य व देवताओं द्वारा वन्दित समर्थ, सर्वज्ञ व कल्याण रूप में भी वर्णित किया गया है।-4

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में राम और कृष्ण की तुलना में, शिव का चरित्र बहुत ही कम वर्ण्य-विषय बनाया गया है। जिन रचनाओं में शिव का अंकन हुआ है, उनमें भी प्रायः उनके परम्परागत चरित्र को ही अधिक

1- वाल्मीकि रामायण- बालकाण्ड, सर्ग 36 व 45

2- तां दधार हरो राजन्गंगा गगन मेखलाम ललात देगे पतिता माला मुक्तामयीमिव।।9।। महाभारत तीर्थयात्रा पर्व अध्याय-108 पृ0-584

3- श्रीमद्भागवद्पुराण- चतुर्थ स्कन्ध, पृ0-269

4- रामचरित मानस - बालकाण्ड, पृ0-55-110

उठाया गया है। किन्तु आधुनिक युगीन परिप्रेक्ष्य का प्रभाव भी शिव के चरित्रांकन पर दृष्टिगत होता है। आधुनिक प्रबन्ध रचनाओं में "दैत्यवंश"-1 तारकवध"-2, पार्वती"-3, विषपान"-4, "विजयपथ"-5 तथा सत्य की लाश शिव के कन्धे"-6 आदि काव्यकृतियों में शिव का चरित्रांकन प्राप्त होता है।

"दैत्य-वंश" में हरदयालु सिंह ने शिव द्वारा विषपान करने की घटना का वर्णन किया है। "तारक-वध "एवं "पार्वती" महाकाव्य में शिव परम्परागत रूप में भी आधुनिक युग के अनुरूप मौलिक रूप में निरूपित हुए हैं। "विषपान" खण्ड काव्य में सोहनलाल द्विवेदी ने शिव द्वारा विषपान करने के परम्परागत चरित्र को ही मौलिक रूप में वर्णित किया है। डॉ0 राम गोपाल शर्मा के शब्दों में -"कवि ने समुद्र -मन्थन की घटना द्वारा राष्ट्र की शक्ति को नई दिशा दी है तथा सम-सामयिक परिस्थितियों का विष पीकर शिव के समान मृत्युंजयी बनने के लिए प्रेरित किया गया है।"-7 "विजयपथ" में उदयशंकर भट्ट ने किरातार्जुनीय कथा को वर्ण्य-विषय बनाया है। "सत्य की लाशः शिव के कन्धे" में शिव प्रसाद सिंह ने सती के दाह के प्रसंग में शिव का वर्णन किया है।

हरदयालु सिंह जी ने "दैत्यवंश" में शिव को देवों और दैत्यों दोनों के कल्याण हेतु कालकूट विष का पान करने वाले पौराणिक चरित्र

1- दैत्यवंश- हरदयालु सिंह

2- तारक - वध- गिरिजा दत्त शुक्ल 'गिरीश', रचना-सन्- 1946 ई0

3- पार्वती-रामानंद तिवारी, प्र0 सं0- 1955 ई0

4- विषपान- सोहनलाल द्विवेदी, प्र0प्र0-2003 वि0

5- विजय पथ- उदयशंकर भट्ट, प्र0प्र0-2009 वि0

6- सत्य की लाशःशिव के कन्धे- डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, प्र·प्र·2014 वि0

7- हिन्दी शिव काव्य का उद्भव और विकास- डॉ0 रामगोपाल शर्मा, पृ0-109

के रूप में वर्णित किया है। शिव का चरित्र परम्परागत रूप में समष्टि का कल्याण करने वाले तथा महान त्यागी के रूप में अंकित हुआ है। सागर मन्थन के पश्चात् समुद्र से घोर हलाहल निकलता है, इसकी ज्वाला से समस्त देवता तथा दैत्य दोनों ही झुलसने लगते हैं। उस समय विष्णु द्वारा प्रार्थना किये जाने पर शिव ही समस्त विष का पान करके देवताओं और दैत्यों को त्राण दिलाते हैं:-

सुनि वचन हरि के संभु हलाहलहिं निजकर में लियो।
अरू सुमर प्रभु पद कंज वाको पान हर्षित हिय कियो।
जे जैति जैति कृपालु शंकर असुर देवन मिलि कह्यों।
पुनि सपति सागर मंथन हित तिन आय वासुकि को गह्यो।।-1

गिरिजादत्त शुक्ल कृत "तारक-वध" में शिव-चरित्र के परम्परागत दोनों रूपों {शिव व रूद्र} का चित्रण हुआ है। परम्परागत रूप के साथ-साथ मौलिकता का समावेश भी दृष्टिगत होता है। रूद्र और शंकर के सन्दर्भ में अपना विचार व्यक्त करते हुए कवि ने भूमिका में लिखा है- रूद्र और शंकर में कोई मौलिक भिन्नता नहीं है, दोनों ही अन्योन्य प्रतिक्रियात्मक हैं। जहाँ रूद्रत्व की शक्ति पराकाष्ठा को पहुँचती है और आगे अपने लिए मार्ग नहीं पाती, वही ऊर्ध्वगति को त्याग कर शंकरत्व को धारण करती है और अधोगामिनी होकर चलती है।----अगतिशील, भयानक, हिंसक रूद्र प्रगतिशील मनोहर अहिंसक शंकर के रूप में परिणत होते हैं, और जहाँ पहले अगति को अपने हृदय में धारण करके प्रगति ज्वालामुखी पहाड़ को ऊँचाई पर चढ़ रही थी, वहाँ अब प्रगति को अंक में धारण करके अगति महासमुद्र के तल को ओर धँसने लगती है। रूद्र आकाश है और शंकर पाताल, इन्हीं दोनों के बीच में सम्पूर्ण जीवन दामिनी की कौंध और नदियों के कलरव के स्वर में प्रवाहित होता चलता है।"-2 शिव स्वर्गलोक में अनुरागी तथा पृथ्वी

1- दैत्यवंश- हरदयालु सिंह, सर्ग-3, पृ0-38
2- तारकवध- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', भूमिका में कवि,- पृ0-7

पर विरागी रूप में वर्णित हुए हैं अर्थात् आध्यात्मिक स्तर पर उन्हें रागोन्मुख वर्णित किया गया है तथा भौतिक स्तर पर उन्हें विरागी तथा ज्ञान के प्रति उन्मुख रूप में प्रस्तुत किया गया है।

"तारक-वध" में रूद्र रूप में शिव का चरित्र सृष्टि संहारक का ही दृष्टिगत होता है। रूद्र का यह चरित्र विचित्र है। रूद्र को महाशक्ति जगत में नवल सृष्टियाँ रच-रच के प्रसन्न करना चाहती हैं, रिझाना चाहती हैं, किन्तु उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे क्षुब्ध होकर महाशक्ति अपनी ही रचना को मिटाने लगती हैं। महाशक्ति का यह कृत्य ही रूद्र को अमित तोष पहुँचाता है-

खीझ अन्त में अपनी रचना वह लग गयी मिटाने।
उसकी खीझ विलोक रसिक व लगे मधुर मुसकाने।
इसी खीझ को चखकर बोले अब थोड़ा मधु पाया।
× × ×
महाकोप ने महाशक्ति की मोहन शक्ति दिखायी।।-1

शिव संहारक रूप में रूद्र हैं तथा विश्वकल्याण कर्ता के रूप में शिव हैं। उनका दोनों ही रूप चिरस्थायी नहीं है। उनके सृष्टि के विनाश व निर्माण का कार्य निरन्तर होता चला आ रहा है। "ताण्डव नर्तन" के पश्चात रूद्र रूप शिव के रूप में परिवर्तित होने लगता है। संहरणशील रूद्र शिव रूप में हिंसा का विरोध करने लगते हैं। उनकी कठोर भावनायें, कोमल संवेदनशीलता में तथा सहृदयता में परिवर्तित होने लगती है। वे रति पति मदन से कहते हैं:-

---

1- तारक वध- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', पृ0-34

शंकर ने संकोच हृदय का अपना नहीं छिपाया।
x x x
हे रति पति हत्या करने का मुझे न काम बताओ।
मानस सरसे, नव रस बरसे वह संवाद सुनाओ।-1

"तारक-वध" में कामदहन-प्रसंग में नवीन मौलिकता दृष्टिगत होती है। कामदहन के रूपक को अहिंसात्मक व रचनात्मतक रूप प्रदान किया गया है। इस रचना में शिव द्वारा कामदेव के संहार के स्थान पर काम विकार के विनाश को निरूपित किया गया है:-

भार उमंग गयी सब मारी, सृष्टि मरी बिन मारे।
नव लावण्य विनाश देखती रहीं प्रकृति मन मारे।।-2

इस रचना में शिव समष्टिवादी चरित्र के रूप में भी निरूपित हुए हैं। विरागी व तपस्या में निरत शिव कामदेव द्वारा रखे गये विवाह-प्रस्ताव को समष्टि के कल्याण के लिए ही स्वीकार करते हैं। वे कामदेव से कहते हैं:-

मदन करो जो भावे तुमको मैं सबका ही अनुचर।
जैसे हो कल्याण जगत का कार्य करो वह सत्वर।।-3

"तारक-वध" में शिव अध्यात्म व गृहस्थी दोनों को एक दूसरे का पूरक बताते हैं। वे संसार के प्रति निरपेक्ष दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए पार्वती से कहते हैं कि परिवर्तन जीवन का आवश्यक क्रम है। परिवर्तन ही नवरस का दाता है-

---

1- तारक-वध- पृ0-45

2- तारक-वध पृ0-46

3- तारक-वध- पृ0-412

रात बिना दिन, रात बिना दिन नीरस होगा ज्यों ही।
प्रिये, समाधि तथा तन-मन-रस को तुम समझो त्यों ही।
परिवर्तन से क्यों डरती हो? वह नवरस का दाता।
महाकाल का चक्र रुचिर वह जीवन खेल विधाता।-1

"तारक-वध" प्रसंग में शिव के दोनों रूपों का अद्‌भुत अंकन प्राप्त होता है। रुद्र रूप में वे जिस तारक के अरि दल के संहारक होते हैं, तारक के शक्ति के उन्नायक होते हैं, शिव के रूप में आते ही वे उस तारक के संहार हेतु निरत दृष्टिगत होते हैं। दूसरे रूप में जो शक्तियाँ अपनी सीमा का अतिक्रमण करती हैं, प्रकृति के अनुरूप उनका विनाश आवश्यक हो जाता है। शिव तारक के शक्ति दाता होते हुए भी उसके संहारक बनते हैं क्योंकि तारक अपनी सीमा का अतिक्रमण कर चुका थाः-

तारक अरि-दल संहारक था, समाधिस्थ मैं होकर
तारक का संहार करूँगा अब सब ममता खोकर।
× × ×
भौतिक अस्त्र दिये दानव को अमरलोक में हमने।
पायेंगे ब्रह्मास्त्र षडानन जायेंगे जब रण को।
× × ×
अपनी ही करनी से दानव अपनी मौत मरेगा।-2

"तारक-वध" के पश्चात् शिव के चरित्र का वर्णन करने वाली अगली कड़ी "पार्वती" महाकाव्य है। इस रचना में शिव योगेश्वर तथा वीतरागी रूप के साथ-साथ आदर्श गृहस्थ के रूप में भी अंकित हुए हैं। आधुनिक नवीन चेतना का प्रभाव भी शिव के चरित्रांकन पर दृष्टिगत होता है।

1- तारक-वध- पृ0 425

2- तारक-वध- पृ10 431

"पार्वती" के प्रथम सर्ग में शिव के परम्परागत अनादि, अनन्त स्वरूप का वर्णन हुआ है। कवि शिव के अवतार की कल्पना नहीं कर सकता इसीलिए उसने शिव के अलौकिक रूप को स्वीकार करते हुए उन्हें अनादि काल से हिमालय के कैलाश पर्वत पर निवास करने वाले चिर निवासी के रूप में वर्णित किया है-

अखिल हिमालय का चूड़ामड़ि उन्नत और उज्जवल कैलाश।
करतेजहाँ अनादि काल से चिर अनन्त शंकर आवास।-1

"पार्वती" में शिव के योगेश्वर रूप का भी अंकन किया गया है। दक्ष के यज्ञ में शिव के अपमान के कारण सती रुष्ट हो जाती हैं तथा पति की आज्ञा के विपरीत दक्ष यज्ञ में भाग लेने के कारण स्वयं को ही भस्म कर देती हैं। सती के भस्म हो जाने के बाद शंकर वीतरागी बनकर अखण्ड तपस्या में निरत हो जाते हैं। "पार्वती" के सर्ग-3 में शिव के इस योगेश्वर रूप की प्रस्तुति हुई है:-

चिता भस्म विभूति भूषित देह पर धर चर्म।
उपास्मित कर धारणा में इन्द्रियों के धर्म।
अचल पर आसीन निश्चल देह से निस्पन्द।
पूर्ण अन्तर्लीन करके नयन तीनो बन्द।-2

रामानन्द तिवारी ने 'कामदहन' प्रसंग का परम्परागत रूप में चित्रित करते हुए, उसकी मौलिक व्यंजना की है। "तारक-वध" में भी कामदहन प्रसंग को काम विकारों के विनाश के मौलिक कल्पना से जोड़ा गया है। "पार्वती" में शिव काम के सतत अनुराग को पतन व हानि का द्योतक मानते हैं।

1- पार्वती - रामानन्द तिवारी, सर्ग-1, पृ0-43

2- पार्वती- सर्ग-3,पृ0-69

काम-देह के उपासक उन्नति नहीं कर सकते। शिव कहते हैः-

काम-देह की उपासना के सतत् अनुरागी,
हुए सर्वदा अमर हीनता और हानि के भागी,
जब जब चले काम-विग्रह को बना आप सेनानी।
तब तब सदा पराजय रण में असुर दलों ने जानी।-1

यहाँ अप्रत्यक्षतः आधुनिक मानव जीवन के प्रति नवीन सन्देश भी छिपा हुआ है। शिव का यह काम के अति का विरोधी, चेतनाशील चरित्र आधुनिक सन्दर्भों में आदर्श व अनुकरणीय है। मानव काम-विग्रह के द्वारा ही विभिन्न विषम समस्याओं का दमन कर सकता है।

आधुनिक युग के आर्य समाज का प्रभाव भी शिव के चरित्र चित्रण पर दृष्टिगत होता है। "पार्वती" में शिव का चरित्रांकन मौलिक रूप में तप के समर्थक का है। यह तप श्रम के सन्निकट अर्थ को ध्वनित करता है। शिव काम को नहीं तप को महत्ता प्रदान करते हैं। तप ही शक्ति का साधन होता है। तप से पूत अनंग काम ही जग के लिए मंगलमयी होता है। तप प्रसूत शक्ति पर विजय स्वयं बलिहारी होती है :-

काम नहीं, तप है जीवन में मन्त्र महत्तम जय का,
तप से करो शक्ति का साधन, तप ही तन्त्र अभय का,
तप से पूत अनंग काम ही जग का मंगलकारी,
तपः प्रसूत शक्ति पर होती विजय स्वयं बलिहारी।-2

"पार्वती" में शिव का चरित्रांकन नवीन रूप में आधुनिक शान्ति की चेतना से भी प्रभावित है। शिव शान्ति के समर्थक हैं। वे शान्ति को विश्व रूपी पथिक का आश्रय मानते हैं। उनके अनुसार शान्ति के सघन छाया

1- पार्वती- पृ0-125
2- वही, पृ0-125

में ही विश्व को मधु विश्राम प्राप्त हो सकता है। शान्ति में ही श्रम की सफलता छिपी होती है तथा नवल श्रम की प्रेरणा निहित होती है-

पथिक का आश्रय उन्हीं की शान्ति रूपी सघन छाया,
बैठ जिसमें विश्व ने पथ का मधुर विश्राम पाया,
शान्ति है श्रम की सफलता, प्रेरणा भी नवल श्रम की।-1

इस रचना में शिव का चरित्र-चित्रण मौलिक रूप में बौद्धिक चेतना से प्रभावित रूढ़ धर्म के विरोधी के रूप में हुआ है। शिव रूद धर्म का विरोध करते हुए जगत-कल्याण के लिए उपयुक्त कृत्य को ही धर्म मानते हैं। शिव कहते हैं:-

धर्म केवल इन्द्रियों के हैं न अन्तिम ध्येय नर के,
वृत्तियों में निहित इनकी बीजमन्त्र प्रशस्त स्मर के।-2

"पार्वती" में शिव को सर्वथा नव्य रूप में नारी के अधिकारों तथा उसके स्वत्व को महत्व देने वाले चरित्र के रूप में अंकित किया गया है। शिव का यह चरित्र आधुनिक मानवतावादी तथा बौद्धिक चेतना के साथ-साथ नारी-जागरण की चेतना से भी प्रभावित है। शिव नारी को सम गौरव का अधिकारी मानते हैं:-

अरून्धती को मान्य मुनिवरों को तथा,
दे समान सत्कार, शम्भु ने सर्वथा,
किया प्रमाणित शील तपोव्रत धारिणी,
महिलायें सम गौरव की अधिकारिणी।-3

1- पार्वती - पृ0-154

2- पार्वती - पृ0-155

3- पार्वती - पृ0-172

शिव का चरित्रांकन आधुनिक युगीन संवेदना से भी प्रभावित है। इस रचना में शिव के चरित्र का सर्वथा उदात्त पक्ष है, उनके द्वारा नारी को जागरूकता व संचेतना का संदेश देना। परम्परागत रूप में नारी प्रायः पुरूषों के द्वारा स्वर्णश्रृंखला में बँधकर दासों के समान जीवन व्यतीत करती आयी हैं। शिव नारी को इस स्वर्ण श्रृंखला के विखण्डन व स्वत्व के जागरूकता का संदेश देते हैं। वे नारी को स्वर्णभार उतार कर आत्मोत्थान करने का सन्देश देते हैं —

ये स्वर्ण श्रृंखलायें धारण कर तन में,
नारी बनती बन्दी नर के बन्धन में।
श्रृंगार नहीं ये भार रूप और छवि के,
उपकार नहीं, ये हैं विकार नर कवि के,
कर इन्हें दीन को दान स्वच्छ कर तन,
करके स्वरूप का ध्यान शक्ति दो मनको।-1

इस प्रबन्ध कृति में शिव के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उनका नारी के प्रति बौद्धिक दृष्टिकोण। परम्परागत रूप में नारी के प्रति व्याप्त रूढ़ियों की वे तीव्र भर्त्सना करते हैं। शिव का यह चरित्र समाजसुधारक नेता के रूप में परिलक्षित होता है। शिव उस समाज पर आक्षेप करते हैं जिसमें नारी को दीन-हीन माना जाता है। वे उस पुरूष वर्ग की भी कटु निन्दा करते हैं जो नारी के मन की तुलना में उसके तन को ही महत्ता देता है। यही नहीं शिव नारी के हीनता में पुरूष की भी हीनता मानते हैं। वे कहते हैं:-

जीवन संस्कृति की माप सदा ही नारी,
नर की नय का ध्रुव निकष सर्वदा नारी,
नर भ्रष्ट हुआ कर आराधन बस तन का,

1- पार्वती- पृ0-261-262

उन्नत होगा कर मान हृदय से मन का।

वन्दिनी बनाकर नारी को बन्धन में

खोई स्वतन्त्रता नर ने भी जीवन में।-1

"पार्वती" में शिव का चरित्रांकन मौलिक रूप में एक आदर्श व प्रेमी पति के रूप में हुआ है। शिव पार्वती को ज आत्मपूर्ति तथा अपने तप का वरदान मानते हैं। पार्वती के गर्भावस्था के दिनों में शिव द्वारा पार्वती की देखभाल सहज भाव से किया जाता है। पार्वती के स्वास्थ्य तथा आराम के लिए उन्हें प्रातः भ्रमण के लिए प्रेरित करते हुए शिव कहते हैं:-

यह प्रातः का भ्रमण सहज व्यायाम तुम्हारा,

स्वास्थ्य मनोरंजन दोनों का एक सहारा,

होगा दोहद सुखद गर्भ को स्फूर्ति मिलेगी,

सहज प्रसव में मूर्त योग की मूर्ति खिलेगी।-2

यही नहीं वे पार्वती को खुश रखने के लिए उनसे हास-परिहास करते हैं, उन्हें आदर्शपरक नीतियों से परिचित कराते हैं। शिव पार्वती के साथ-साथ हमेशा छाया की भाँति लगे रहते हैं तथा उनके कष्टों को दूर करने में सन्नद्ध रहते हैं। शिव पुरुष होने के कारण उनसे दूर नहीं रहते प्रत्युत एक सच्चे सहचर व जीवन साथी के रूप में, पार्वती के प्रति अपने कर्त्तव्यों का सहज भाव से निर्वाह करते हैं।

"पार्वती" में शिव मौलिक रूप में एक आदर्श पिता के रूप में भी प्रस्तुत हुए हैं। शिव अपने पुत्र के पालन पोषण पर समुचित ध्यान देते

1- पार्वती- पृ10-262

2- पार्वती- पृ0-265

हैं। वे पार्वती से कुमार को अधिक समय तक गोद में न रखने, तथा स्वतन्त्र छोड़ने के लिए कहते हैं, क्योंकि इससे शिशु का विकास अवरुद्ध होता है। शिव का यह रूप उनके उदात्त पिता रूप का ही द्योतक है-

कहा शिव ने, "देवि जीवन का यही चिरमन्त्र
चाहता प्रति जीव रहना सदा पूर्ण स्वतन्त्र
अंक बन्धन से न शिशु का करो रुद्ध विकास,
मोह बनकर प्रेम हरता प्रगति का उल्लास।-1

एक सामान्य पिता की भाँति शिव भी अपने पुत्र स्कन्द कुमार की शिक्षा हेतु चिन्तित हो उठते हैं। परशुराम के गुरु रूप में मिलने पर उनके साथ कुमार को भेजते समय शिव का ह्दय द्रवित हो उठता है।

समग्रतः "पार्वती" में शिव का चरित्रांकन परम्परागत रूप के साथ लौकिक धरातल पर उदात्त चरित्र के रूप में हुआ है।

उदयशंकर भट्ट कृत "कौन्तेय कथा"-2 में भी शिव द्वारा अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान करने की घटना का वर्णन किया गया है। यह कथा संस्कृत कवि भारवि के "किरातार्जुनीय" काव्य पर आधारित है। "महाभारत" के आरण्यक पर्व में भी शिव द्वारा अर्जुन को दिव्य शक्ति प्रदान करने का वर्णन प्राप्त होता है। शिव अर्जुन से प्रसन्न होकर कहते हैं- हे पापरहित! आज से तुम्हारा पराक्रम और तेज मेरे समान हो गया है। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, तुम पूर्व समय के ऋषि हो, तुम युद्ध में सब शत्रुओं को जीतोगे, तुम्हारे शत्रु चाहे देवता भी हों तो भी तुमसे पराजित होंगे।-3

1- पार्वती- पृ0 296

2- कौन्तेय-कथा- उदयशंकर भट्ट, तीसरा संस्करण-1963 ई0

3- समं तेजश्च वीर्यं च ममाद्य तव चानघ।
प्रीतस्तेऽहं महाबाहो पश्च मां पुरुषर्षभं।।53।।
ददानि ते विशालाक्ष चक्षु3 पूर्वऋषिर्भवान्।
विजेष्यसि रणे शत्रुनपि सर्वान्दिवोकसः।।54।।
महाभारत आरण्य पर्व, अध्याय-40,पृ0-225

"कोन्तेय-कथा" में भट्ट जी ने शिव द्वारा अर्जुन को पशुपत अस्त्र प्रदान करने के पीछे उनके उदात्त व लोक हितकारी दृष्टिकोण का अंकन कर, मौलिक स्वरूप प्रदान किया है। "कोन्तेयकथा" की भूमिका में कवि ने लिखा है- "महादेव ने न्याय, धर्म तथा सृष्टि की अक्षुण्णता बनाये रखने के लिए अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दिया। जिसके द्वारा अर्जुन ने कौरवों को जीतकर न्याय की प्रतिष्ठा की।"-1 शिव का चरित्र आधुनिक युगीन संवेदना से भी जुड़ा हुआ है।

इस रचना में शिव का चरित्रांकन आधुनिक मानवतावादी चेतना से प्रभावित है। शिव उन लोगों की तीव्र भर्त्सना करते हैं, जो भौतिकता के आकर्षण में निर्लिप्त हो वैभव की मदिरा पीकर, मानवता का ही विस्मरण कर जाते हैं। मानवता के शत्रुओं का विनाश तो निश्चित ही होता है-

जो वैभव की मदिरा पी सब भूल गये मानवता,
जो भूले मनुज प्रकृति है, विश्वास मिथः अनुभूति।
यदि युद्ध न भी हो तो वे स्वयं नष्ट होंगे ही,
यह विकार जीवन का रोगों की तरह भयंकर।-2

"कोन्तेय-कथा" में शिव मौलिक रूप में समतावादी चरित्र के रूप भी निरूपित हुए हैं। आधुनिक युग में जाति-वर्ग के भेदों को ध्वस्त करते हुए मानव के समान अधिकारों के प्रति जागरूकता की चेतना का उन्मेष हुआ। "कौन्तेय-कथा" के शिव भी जातिवर्ग के गौरव को मिथ्या कटुता का कारण मानते हैं। किसी को ऊँचा या नीचा नहीं मानते, प्रत्युत सभी का समान

1- कोन्तेय-कथा- भूमिका में कवि

2- कोन्तेय-कथा, पृ0-72

भाव से उन्नति का अवसर प्राप्त होने के समर्थक हैं। वे अर्जुन से कहते हैं:-

> है जाति वर्ग का गौरव मिथ्या कटुता का कारण,
> औ सृष्टि विषमता का भी वह बनता हेतु भयंकर।
> कोई ऊँचा या नीचा है नहीं जगत् में अर्जुन,
> उन्नति करने का अवसर सबको मिलना ही शुभ है।-1

इस रचना में शिव का चरित्रांकन आधुनिक गाँधीवाद से भी प्रभावित है। शिव युद्ध को आवश्यकता नहीं अपितु अन्तिम उपाय मानते हैं। प्रथमतः शत्रु का हृदय परिवर्तन कर उसे सत पथ पर लाना ही अधिक श्रेयस्कर है। किन्तु यदि सभी उपाय ध्वस्त हो जाये, तभी न्याय सृष्टि के लिए युद्ध का पथ स्वीकार करना चाहिए-

> पर युद्ध नहीं आवश्यक, अन्तिम उपाय है वह तो,
> परिवर्तन हृदय हृदय का ही है कौशल जीवन में।
> जब ध्वस्त उपाय सभी हों, तब न्याय सृष्टि के हित ही।
> क्षत्रिय को रण के पथ में जाना तब धर्म्य, वरद है।-2

समग्रतः इस रचना में शिव का चरित्रांकन उदात्त व आदर्श रूप में हुआ है। आधुनिक सन्दर्भों में इन आदर्शों की विशिष्ट महत्ता है।

1- कौन्तेय कथा, पृ0-73-74

2- कौन्तेय कथा, पृ0-76

पार्वती

पार्वती का चरित्र परम्परागत रूप में आदि शक्ति के रूप में वर्णित हुआ है। वाल्मीकि-रामायण, ब्रह्म-वैवर्त पुराण, शिव-पुराण, स्कन्द-पुराण में पार्वती जगत स्वामिनी तथा जगदम्बा महेश्वरी के रूप में वन्दित हुई हैं।

आधुनिक प्रबन्ध-काव्यों में "पार्वती" का चरित्र बहुत कम वर्णित हुआ है। जिन रचनाओं में पार्वती का चरित्रांकन हुआ है, उनमें वे अलौकिक व दिव्यशक्ति के रूप में अधिक मुखरित हुई हैं। उनके लौकिक व सहज मानवीय चरित्र का निरूपण दिव्य रूप के अपेक्षाकृत कम है।

"तारक-वध" में गिरिजादत्त शुक्ल ने पार्वती का चरित्रांकन परम्परागत रूप में ही किया है, किन्तु कहीं-कहीं उनके लौकिक चरित्र के दर्शन भी होते हैं। "तारक-वध" में पार्वती सृष्टिकर्ता व सृष्टि विनाशक रूप में शिव की आदि शक्ति हैं। लौकिक रूप मे पार्वती शिव की परम भक्त, प्रेमिका तथा आदर्श पत्नी के रूप में चित्रित की गई हैं।

'गिरीश' ने पार्वती को आदि शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। वे अलौकिक व दिव्य शक्ति है, उनका आविर्भाव ब्रह्म से होता है। आदि शक्ति प्रकृति-रसज्ञा भी है, प्रकृति अपना विस्तार उन्हीं के हाथ से पाती है। इसके साथ ही वे प्रकृति को सजाकर, नवल सृष्टियाँ कर-करके आदि शिव को रिझाना चाहती हैं। किन्तु शिव के ऊपर इसका कोई प्रभाव न देख वे क्रुद्ध हो इस सृष्टि को मिटा देती हैं। महाशक्ति का महाकोप शिव की प्रसन्नता का कारण बनता है। इसी कारण आदिशक्ति द्वारा सृष्टि रचना व विनाश का कार्य सम्पन्न होता है:-

नवल सृष्टियाँ कर आद्या ने निज श्रृंगार दिखाये।
नेति नेति वादी प्रियतम को नहीं एक भी भाये।

महाकोप में महाशक्ति की मोहन शक्ति दिखायी।
इसीलिए रचनायें करती, उन्हें बिगाड़ा करती।-1

आदिशक्ति का दूसरा रूप लौकिक धरातल पर पार्वती के रूप में वर्णित हुआ है। इस रूप में पार्वती परम्परागत व मौलिक दोनों रूपों में वर्णित हुई है। परम्परागत रूप में पार्वती शिव की परम भक्त व प्रेमिका हैं। शिव को प्राप्त करने के लिए वे कठोर तपस्या करती हैं। अन्ततः शिव को प्रसन्न करने में सफल होती हैं।

"पार्वती" के चरित्र में लौकिक तत्वों का सन्निवेश भी हुआ है। शिव से विवाह के पश्चात् पार्वती आदर्श पत्नी के रूप में वर्णित हुई हैं। वे शिव के अखण्ड प्रेम की कामना करती हैं। शिव से मान करती पार्वती का रूप सामान्य नारी सदृश ही लौकिक है। वे शिव से कहती हैं:-

त्याग समाधि बने प्रभु मेरे, तन-मन रस के चाहक।
किन्तु समाधि न लेंगे फिर मानूँ क्यों यह नाहक?
परिवर्तन से मैं शंकित हूँ दो आनन्द अनश्वर।
जो यह सम्भव हो न, मुझे मत छेड़ो हे विषधर!-2

रामानन्द तिवारी कृत "पार्वती" महाकाव्य में पार्वती का चरित्र "तारक-वध" की अपेक्षा मौलिक व सहज रूप में वर्णित हुआ है। इस रचना में पार्वती के चरित्र में लौकिक अलौकिक दोनों तत्वों का सन्निवेश हुआ है। डॉ० गोविन्द राम शर्मा के शब्दों में -"पार्वती को कवि ने मनुष्यलोक की आदर्श गृहिणी के रूप में अंकित किया है।"-3 "पार्वती" में पार्वती

1- तारक वध- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', पृ०-34

2- वही, पृ०-423-424

3- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य -डॉ० गोविन्द राम शर्मा, पृ०-413

का चरित्रांकन आदर्श गृहिणी के साथ-साथ, जागरूक व बौद्धिक नारी के रूप में भी हुआ है। पार्वती समष्टि कल्याण की इच्छुक , नारी के स्वत्व व सम्मान के प्रति सचेत नारी भी हैं।

"पार्वती" में भवानी के रूप में पार्वती समष्टिवादी नारी के रूप में परिलक्षित होती हैं। वे दानवों के हिंसक उत्पीड़न से देवताओं को मुक्त कराना चाहती हैं, किन्तु इसके लिए वे अहिंसापूर्ण मार्ग अपनाते हुए दानवों के समक्ष सन्धि प्रस्ताव रखती हैं। वे बार-बार शिव को दानवों के पास यह सन्देश लेकर भेजती हैं कि दानव पाताल का राज्य लेकर दिव को त्रस्त करना छोड़ दें:-

देवी दे सन्देश भेजती हठकर शाश्वत् शिव को।
"दानव लें" पाताल राज्य निज, नित्य मुक्ति दें दिव को।-1

पार्वती संवेदनशील आदर्श प्रेमिका के रूप में भी चरित्रांकित हुई हैं। शिव के प्रति उत्कृष्ट प्रेम के कारण वे उन्हें प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करती हैं। पार्वती का तापसी रूप परम्परागत ही हैं किन्तु प्रेमिका के रूप में उनके हृदय के संवेदनाओं का अंकन मौलिक रूप में वर्णित हुआ है। पार्वती नित्य प्रति शिव के पूजन हेतु तपस्यारत समाधिलीन शंकर के पास जाती हैं, किन्तु अचानक कामदेव पर रुष्ठ होकर शिव उसे भस्म कर अन्यत्र चले जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में पार्वती का भक्त हृदय रो पड़ता है। वे विषम अन्तर्दन्द में फंस जाती हैं:-

व्यर्थ मान निज रूप और रति, सेवा आराधन को।
लुटे पथिक सी रह न सकी औ लौट न सकी भवन को।
सखियों के समक्ष लज्जा औ दुख का गोपन करती,
निःश्वासों के संग अश्रुओं का संरोधन करती।-2

1- पार्वती - रामानन्द तिवारी, पृ0-25

2- वही, पृ0-126

"पार्वती" में पार्वती नीतिज्ञ नारी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। पार्वती रूप और लावण्य को मन की मनोहर भ्रान्ति तथा देह के अनुराग को इन्द्रियों की शान्ति मात्र मानती हैं। इसी कारण वे तप को महत्ता देती हैं। वे कहती हैं:-

रूप और लावण्य है मन की मनोहर भ्रान्ति,
देह का अनुराग केवल इन्द्रियों की भ्रान्ति
× × ×
पूत हो तप से अमृत वरदान बनते शाप
शुद्धता करता प्रमाणित उग्र तप से हेम।-1

पार्वती समस्त जीवों से प्रेम करने वाली सहृदय नारी के रूप में भी चित्रित हुई हैं। वन्य जीवों से अमित प्रेम के कारण वे वन के हरिणों को अपने हाथ से निवार खिलाती हैं। पार्वती के प्रति सहज लगाव के कारण पक्षी वृन्द निर्भीक होकर उनके हाथ पर बैठकर उनके हथेली पर रखे निवार के कणों को चुगते हैं। पार्वती का यह चरित्र सहज मानवीय है-

हाथ से खाते हरिण थे भयरहित नीवार
और पाते थपकियों में पार्वती का प्यार,
बैठ कोमल करतलों पर पक्षियों के वृन्द,
बीनते नीवार कण थे भयरहित स्वच्छन्द।-2

"पार्वती" महाकाव्य में पार्वती समष्टिवादी नारी के रूप में चरित्रांकित हुई हैं। वे अपने व्यक्तिगत निजी स्वार्थों के ऊपर उठकर उदात्त चरित्र का वहन करती हैं। पार्वती समस्त विश्व के कल्याण व सुख की कामना रखती हैं। शिव की साधना में संलग्न पार्वती का विश्व-प्रेम भी मुखरित होता है-

---

1- पार्वती, पृ0-131

2- पार्वती, पृ0-134

भर ह्रदय में बिपुल करुणा और पावन प्रेम।
साधना में कर समाहित विश्व का हित-क्षेम।
कर बसन्त प्रभात में नव अग्नि का आधान,
उमा करतीं पुनः विधिवत् वेदिका निर्माण।-1

रामानन्द तिवारी ने पार्वती के चरित्र पर आधुनिक नारी जागरण से प्रभावित व्यक्तित्व का आरोपण किया है। पार्वती नारी के भोग्या मानने के परम्परागत दृष्टिकोण की तीव्र भर्त्सना करती हैं। वे नारी को संस्कृति पथ पर नर का सहकारी मानती हैं। पार्वती नारी के भोग्या रूप का निषेध करते हुए कहती हैं:-

हो भोग भारत से मुक्त निर्मला नारी,
होगी संस्कृति पथ में नर की सहकारी।-2

पार्वती का चरित्रांकन गाँधीवाद से भी प्रभावित है। पार्वती विश्राम के क्षणों में सूत कातती हैं। तकली से सूत बनाने कृत्य का आरोपण प्रायः सभी पौराणिक नारी पात्रों पर किया गया है। सीता से लेकर श्रद्धा तक तकली कातती दिखायी गयी हैं। "पार्वती" में पार्वती भी तकली से सूत बनाती हैं:-

चंचल तकली घूम रही श्वासों की गति-सी।
विरच रही थी सूत्र सृष्टि की विश्व नियति सी।-3

1- पार्वती - पृ0-141

2- वही, पृ0-263

3- वही, पृ0-269

"पार्वती" महाकाव्य में पार्वती में आदर्श व सहज मातृत्व का गुण सन्निहित है। स्कन्द को शिक्षा हेतु गुरु आश्रम भेजते समय मातृह्रदय के प्रेम-प्रसूत दुर्बलता के कारण एक बार वे व्यथित हो उठती हैं, किन्तु पुत्र-कल्याण की कामना उन्हें साहस प्रदान करती है। पार्वती अपने पुत्र स्कन्द को आदर्शमयी शिक्षा देते हुए, गुरु आश्रम जाने की अनुमति दे देती है:-

श्रेष्ठ विद्या हेतु जाओ वत्स मेरे धीर,
× × ×
हो सुशिक्षित तुम करोगे विश्व के गुरु कार्य।-1

पार्वती के चरित्र का मौलिक पक्ष उनका लोककल्याण करने वाला समाजोद्धारक रूप है। तारक के तीन पुत्रों द्वारा बसाये गये त्रिपुर में ज्ञान, बल और भौतिकता के अति के कारण समाज में वैषम्य पूर्ण अस्तव्यस्तता व्याप्त हो जाती है। पार्वती इन त्रिपुरों का विनाश नहीं अपितु विकास चाहती हैं। इसी कारण वे जयन्त व स्कन्द को जन-जीवन के कल्याण हेतु प्रेम व अहिंसा का मार्ग अपनाने की शिक्षा देती हैं। प्रेम के द्वारा त्रिपुर निवासियों का ह्रदय परिवर्तन करना चाहती हैं। इसी सन्दर्भ में पार्वती जयन्त से कहती है:-

तात! त्रिपुर के जन जीवन है शोचनीय अति निःसन्देह।
कर न सकी यदि शक्ति तुम्हारी संरक्षित जीवन का क्षेम।
ज्ञान-शक्ति की स्फूर्ति चाहती अभी कान्ति सा कोमल प्रेम।-2

पार्वती प्रेम को ही जनोत्थान में महत्वपूर्ण मानती हैं। हिंसा व निरंकुश शक्ति द्वारा जनमानस में परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। त्रिपुरों

1- पार्वती - पृ० -305

2- वही, पृ०-476

में ज्ञान, बल और वाणिज्य की अतिशयता प्रेम के अभाव में ही अतिचार बन जाता है। पार्वती कहती हैं:-

इसी प्रेम के बिना बन गया राजतपुर का ज्ञान-विमोह।
इसी प्रेम के बिना छा रहा आयस पुर में बल-विद्रोह।
इसी प्रेम के बिना स्वर्णपुर पाल रहा केवल व्यापार।
बिना प्रेम के ज्ञान, शक्ति और अर्थ सहज बनते अतिचार।-1

यहाँ त्रिवर्गों में व्याप्त समस्याओं का आधार सामाजिक ही है। जहाँ ज्ञान, शक्ति और भौतिकता ह्रदय तत्व अर्थात् प्रेम को छोड़कर स्वतन्त्र रूप से चरम की ओर बढ़ते हैं, वही विषमता आ जाती है। ज्ञान, शक्ति और प्रेम के संमीकरण से ही इस वैषम्य को नष्ट किया जा सकता है। इसी कारण पार्वती शिवत्व का सन्देश देती हैं। प्रेम का सन्देश देती है।

"पार्वती" महाकाव्य में पार्वती शिव संस्कृति की समर्थिका तथा अन्याय की विरोधी नारी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। जन समाज के अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए जहाँ वे प्रेम का मार्ग दिखलाती हैं, वहीं अन्यायी व उत्पीड़क जनों के लिए शक्ति-प्रयोग का सन्देश भी देती हैं। विश्व से अन्याय को दूर करने तथा धर्मपथ का प्रशस्त करने के लिए वे शक्ति-प्रयोग को आवश्यक मानती है। एक वीर माता की भाँति अपने पुत्र को विश्व-कल्याण हेतु रण में भेजती हुई, वे स्कन्द से कहती हैं:-

करो विश्व में निर्मित शिव संस्कृति कल्याणी,
है वीरों का धर्म विश्व का अनय मिटाना,
जिन्हें न नय प्रिय उन्हें शक्ति का स्वाद चखाना,

1- पार्वती पृ0-476

जाओ रण में श्रेय शक्ति की सदा विजय हो,
दूर धर्म के पुण्य मार्ग से दुर्बल भय हो।-1

समग्रतः "पार्वती" महाकाव्य में पार्वती का चरित्र उदात्त व आदर्श नारी के रूप में अंकित हुआ है। डाॅ0 नंद किशोर नंदन के शब्दों में_ "पुराणों में जहाॅ पार्वती का चरित्र अलौकिकता का छाप लिए हुए है वहाॅ श्री रामानन्द तिवारी ने पार्वती को मानवीय धरातल पर अंकित किया है और यही कवि के मौलिक दृष्टि का परिचायक है।"-2 पार्वती का चरित्र युगीन सन्दर्भो के अनुरूप उदात्त रूप में प्रस्तुत हुआ है।

1- पार्वती - पृ0-334

2- हिन्दी की आधुनिक प्रबन्ध-कविता का पौराणिक आधार- नंद किशोर नंदन, - पृ0-130

स्कन्द

शिव और पार्वती के पुत्र स्कन्द का चरित्रांकन पुराणों में अलौकिक व दिव्य शक्ति के रूप में हुआ है। "ब्रह्म पुराण" में स्कन्द कार्तिकेय के नाम से वर्णित है। अग्नि द्वारा शिव के वीर्य को धारण न कर सकने पर, उसे गंगा के तट पर कृतिकाओं में डाल दिया जाता है। कृतिकाओं से कार्तिक का जन्म होता है।-1 "शिवपुराण" में स्कन्द को परम तेजस्वी व महाबली कहा गया है।-2 "स्कन्द पुराण" में स्कन्द को वित्ताधिप, महासेन, पावक, षटमुख, अंशज, गांगेय, कार्तिकेय, गुह, स्कन्द, उमासुत, देवसेनापति, सेनानी, शिखिध्व कुमार व शक्तिधारा आदि नामों से वन्दित किया गया है। शंकर के अंश से उत्पन्न कुमार को जगत का रक्षक व स्वामी तथा देवताओं को सहारा देने वाला कहा गया है।-3 श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण में भी कार्तिकेय का वर्णन प्राप्त होता है।-4

आधुनिक प्रबन्ध-रचनाओं में स्कन्द का चरित्रांकन परम्परागत अलौकिक रूप में ही हुआ है किन्तु उनके कार्यों को आधुनिक नवीन संवेदना से जोड़कर मौलिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

"तारक-वध" में स्कन्द अवतारी व दिव्य दो रूपों में वर्णित हुए हैं। अवतारी रूप में वे श्रृंगी ऋषि के रूप में हैं, तथा दिव्य रूप में कार्तिकेय के रूप में वर्णित हुए हैं। दिव्य रूप में कार्तिकेय जन्म के 15 दिन बाद ही किशोरावस्था प्राप्त कर लेते हैं। तथा बिना किसी शिक्षा के रण के लिए

1- ब्रह्म-पुराण- अध्याय-128, श्लोक-23, पृ0-720

2- शिव-पुराण- रुद्र संहिता- कुमार खण्ड, पृ0-660

3- स्कन्द-पुराण, पृ0-190-192

4- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सर्ग-37, पृ0-81

प्रयाण करते हैं। उनके चरित्र का सर्वाधिक अलौकिक पक्ष श्रृंगी ऋषि में उनका शेष होना है।.

इस रचना में स्कन्द दिव्य पात्र के रूप में निरूपित हुए हैं। किन्तु उनके कार्य लोक कल्याण से जुड़े हुए सर्वथा मौलिक व लौकिक हैं। डॉ0 गोविन्द राम शर्मा के शब्दों में -"तारकवध में आज के युग की अनेक समस्याओं को स्थान दिया गया है। उस पर वर्तमान युग की गाँधीवादी और साम्यवादी विचारधाराओं का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई देता है। अहिंसा द्वारा दानवेन्द्र तारक के हृदय -परिवर्तन के प्रयत्न में गाँधीवाद की अहिंसा प्रतिबिम्बित दिखाई देती है।"-1

"तारक-वध" में स्कन्द जनवादी चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। रण हेतु प्रयाण करते समय स्कन्द अपने जीवन का उद्देश्य दानवों का विनाश तथा अमरों का सतत विकास के रूप में प्रस्तुत करते है। इसके साथ ही वे समस्त असहाय व दीन मानवों के जीवन में खुशी भरना चाहते है। असहाय व दीन मानवों के प्रति उनकी यह संवेदनशीलता, उनके उदात्तता का ही द्योतक है। वे कहते हैः-

दानव नाश तथा अमरों का सतत् विकास करूँगा,
मानव जो रोते निशि-वासर उनमें हास भरूँगा।-2

"तारक वध" में कार्तिकेय या स्कन्द समन्वयवादी व समतावादी चरित्र के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। वे मानव, दानव तथा देवता सभी के तापों को समान भाव से निवारण करने के लिए सन्नद्ध होते हैं। यहीं नहीं वे सभी के अधिकारों के प्रति भी जागरूक हैं। वे कहते हैं-

---

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डॉ0 गोविन्दराम शर्मा, पृ0-45

2- तारक वध - पृ0-432

दानव, मानव, देव सभी का ताप-निवारक।
मैं सबका ही भाग प्रीति से वितरण कारक।-1

स्कन्द का चरित्र निरूपण आधुनिक गाँधीवाद के अहिंसावादी चेतना से प्रभावित है। स्कन्द अहिंसावादी सिद्धान्तों के समर्थक हैं। वे तारक जैसे महाक्रूर व हिंसावादी असुर के वध के लिए अहिंसा व प्रेम का अस्त्र प्रयोग में लाते हैं। स्कन्द अहिंसा व प्रेम के समक्ष भौतिक अस्त्र-शस्त्रों को नगण्य मानते हैं। वे तारक के पास सन्देश भेजते हुए कहते हैं :-

लिए प्रेम का वाण समर करने जाता हूँ।
कोई आकर लड़े नहीं ऐसा पाता हूँ।
लेकर भौतिक अस्त्र न रण में ठहर सकोगे।
कर मुझसे संग्राम आपदाग्रस्त थकोगे।-2

"तारक - वध" में स्कन्द का चरित्रांकन आधुनिक गाँधीवादी सत्याग्रह से प्रभावित है। स्कन्द सत्याग्रह के द्वारा तारक पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं। वे कहते हैं कि कोटि कोटि नर-नारी अपने प्राणों का उत्सर्ग करके अपने अधिकार व स्वतन्त्रता को प्राप्त करेंगे, किन्तु इस युद्ध में वे अस्त्र के नाम पर एक तिनका भी हाथ में नहीं लेंगे। वे कहते हैं:-

मरने के ही हेतु हमारे वीर चलेंगे
निर्दयता के भाव तुम्हारे सकल ढलेंगे।-3

स्कन्द का यह चरित्र सर्वथा मौलिक है। वे श्रृंगी ऋषि के माध्यम से सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ देते हैं। अन्ततः उन्हें अपने इस महत कार्य

1- तारक वध- पृ0-439

2- वही, पृ0-446

3- वही, पृ0-447

में सफलता भी प्राप्त होती है। तारक का हृदय परिवर्तन करके वे उसे सत प्रवृत्तियों को ओर उन्मुख करते हैं। डॉ0 सुमित्रा नन्दन पन्त के शब्दों में--"कार्तिकेय या कुमार द्वारा हिंसात्मक आदिम साधनों से तारक का वध न कराकर कवि ने श्रृंगी ऋषि द्वारा अहिंसात्मक प्रयोगों से तारकासुर का हृदय परिवर्तन तथा रूपान्तर कर प्राचीन कथा के प्रेत को जीवित रूपक में परिणित कर दिया है। प्राचीन कथानक के भीतर से, उसकी सीमाओं का अतिक्रमण कर आधुनिकतम गाँधी युग का दर्शन मूर्तिमान रूप में चलता फिरता प्रतीत होता है।"-1

"तारक-वध" में स्कन्द का चरित्रांकन आधुनिक मानवतावादी चेतना से भी प्रभावित है। स्कन्द समस्त विश्व से प्रेम करने वाले समष्टिवादी तो हैं, साथ ही वे समस्त संसार से दानवता का विनाश करके मानवता का विकास करना चाहते हैं। वे कहते हैं:-

दानवता हो नष्ट विकसिता मानवता हो।
पाये व्यक्ति विकास - शक्तिगत पाशवता हो।-2

"तारक - वध" के पश्चात स्कन्द के परम्परागत पौराणिक चरित्र को मौलिक रूप में निरूपित करने वाली अगली कड़ी "पार्वती" महाकाव्य है। इस रचना में स्कन्द सहज मानवीय तथा सर्वथा मौलिक रूप में चित्रित हुए हैं। "तारक-वध" में स्कन्द को अलौकिक व दिव्य चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है, किन्तु "पार्वती" में स्कन्द का चरित्र सहज स्वाभाविक व लौकिक रूप में प्रस्तुत हुआ है। उनके चरित्र में कहीं भी अतिरंजना व दिव्यता नहीं है। जन समाज के उत्थान कर्ता, स्वदेश प्रेमी, आदर्श पुत्र, कायरता

1- तारकवध- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', भूमिका में सुमित्रानन्दन पंत, पृ0-2

2- तारक वध- पृ0-540

जन्य अहिंसा के विरोधी, दास प्रथा के विरोधी तथा नारी के गरिमा के समर्थक रूप में चरित्रांकित हुए हैं। डॉ0 नन्द किशोर नन्दन के शब्दों में - “"पार्वती" के अन्तर्गत कुमार का चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक व मानवीय होकर आया है। कवि ने "कुमार-संभव" में वर्णित कुमार के चरित्र के अस्वाभाविक विकास की अपेक्षा उसके क्रमिक और स्वाभाविक विकास पर विशेष ध्यान दिया है।"-1 स्कन्द को सहज मानवीय रूप में निरूपित किया गया है।

"पार्वती" में स्कन्द का चरित्र-निरूपण मौलिक रूप में जन-सेवी के रूप में हुआ है। "तारक वध" में स्कन्द को अति दिव्य रूप में चित्रित करते हुए, उन्हें जन्म के मात्र 15 दिनों में किशोर बना दिया जाता है। किन्तु "पार्वती" में स्कन्द सहज मानवीय रूप में प्रस्तुत हुए हैं। बालक स्कन्द मार्ग में छोटे-छोटे नदी नालों को पार करने के लिए शिलाओं की सेतु बना देते हैं, ताकि उनके साथ-2 अन्य मानवों की भी सहायता हो सके, उनका मार्ग सहज हो सके। यहाँ स्कन्द में सहज नेतृत्व की भावना भी दृष्टिगत होती है:-

मार्ग में आती कभी कोई अगम जलधार,
वन्य वीरों में दिव्यता पराक्रम अपूर्व विराट,
स्कन्द सेनानी बना कैलास का सम्राट।-2

शिक्षार्जन हेतु गुरु आश्रम जाने के लिए तत्पर स्कन्द सामान्य बालक सदृश लगते हैं। प्रथम बार विद्यालय जाने में बहुत से बालकों को अपूर्व ललक व उत्साह होता है। इसी उत्साह का आरोपण स्कन्द के चरित्र पर भी हुआ है। वटुक का वेष बनाकर, कमर में कौपीन बाँधकर तथा कंधे

1- हिन्दी की आधुनिक प्रबन्ध-कविता का पौराणिक आधार- डॉ0 नन्द किशोर नन्दन, पृ0-132-133

2- पार्वती महाकाव्य - रामानन्द तिवारी, पृ0-302

पर धनुष लेकर, गुरू आश्रम के लिए प्रस्थान करने को तैयार स्कन्द में इसी बाल सुलभ उत्सुकता का दर्शन होता है:-

दूसरे ही दिन पिता का प्राप्त कर आदेश,
और धारण आश्रमोचित कर वटुक का वेश,
बाँधकर कोपीन कटि में, स्कन्ध पर तूणीर,
हो गया उद्यत प्रयाण निमित्त निर्भय वीर।-1

किन्तु विदा की घड़ी आते ही स्कन्द एक सामान्य बालक सदृश अधीर हो जाते हैं। माता-पिता के प्रति सहज प्रेम के कारण वे अपने धैर्य को खोने लगते हैं, उनकी आँखों में आँसू आ जाता है। माता-पिता के वियोग की स्थिति उन्हें बाधित कर देती है:-

ले जननी से विदा करुणा-पूर्ण द्रवित कुमार,
पोंछ दृग, आया पिता के पास अन्तिम बार,
और चरणों में विनय से किया मौन प्रणाम।-2

"पार्वती" में स्कन्द के चरित्र पर आधुनिक जनवादी व्यक्तित्व का आरोपण हुआ है। स्कन्द तारक के निरंकुश शासन से पीड़ित व प्रताड़ित जनमानस का उद्वार करते हैं। स्कन्द तारक के हिंसावादी चरित्र की भर्त्सना करते हुए कहते हैं:-

दानवेन्द्र ! कर चुके बहुत तुम जग में करुणा का विस्तार,
शिशुओं का चीत्कार करुण औ अबलाओं का हाहाकार
गूँज रहा शाश्वत दिगन्त में वन तव करुणा का जयकार।-3

1- पार्वती महाकाव्य - पृ0 304

2- वही, पृ0-305

3- पार्वती सर्ग-17, पृ0-364

इस रचना में स्कन्द कर्मवादी व आदर्शवादी चरित्र के रूप में भी अंकित हुए हैं।वे मुनियों की निस्पृहता, देवताओं के विलासी प्रवृत्ति तथा मानव की निष्क्रियता व अकर्मण्यता को ही मानव के पतन का कारण मानते हैं। स्कन्द कहते हैं:-

ऋषि मुनियों की निस्पृहता औ अमरों का स्वच्छन्द विलास,
तथा नरों की निष्क्रियता में छिपा मनुजता का उपहास।-1

1- पार्वती, सर्ग-17, पृ0 -364

तारक

तारक असुर जाति का महाक्रूर शासक था, जो अपने अत्याचारों के कारण शिव के पुत्र स्कन्द द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है। "शिव-पुराण" में तारक को बराङ्गी के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है। तारक को महाबलवान व विशालकाय कहा गया है। देवगणों को दुःख देने के लिए ही तारक का जन्म होता है। बड़े-बड़े मायावियों को भी मोहित करने वाला महामायावी दैत्य अपनी माता की आज्ञा लेकर सभी देवताओं को जीतने के संकल्प से, तपस्या करता है।-1

आधुनिक प्रबन्ध काव्यों में शिवकथा के खलपात्र तारक का चरित्रांकन परम्परागत धरातल पर होते हुए भी, मौलिक रूप में हुआ है।

हरदयालु सिंह ने "दैत्यवंश" में तारक का चरित्रांकन सर्वथा मौलिक रूप में किया है। रावण, हिरण्यकश्यप आदि असुर चरित्रों की भाँति तारक के चरित्र को भी नवीन रूप में प्रस्तुत करके उसके चरित्रोन्नयन का प्रयास हुआ है।

"दैत्यवंश" में तारक आदर्श व मर्यादाशील चरित्र के रूप में अंकित हुआ है। दैत्य-सेना का नेतृत्व करते हुए तारक से जब देवी कालिका युद्ध करने को उद्यत होती हैं, उस समय तारक का मर्यादाशील रूप प्रकट होता है। तारक देवी कालिका से युद्ध नहीं करता, क्योंकि वह नारी पर आक्रमण करना मर्यादाहीनता मानता है। तारक कहता है:-

कह तारक हम तियनि पै, कबहुँ न डारत तीर,
भेजु सपदि तापस सुतहिं, बनत बड़ो जो वीर।-2

1- शिवपुराण - रुद्र संहिता, अध्याय-15, पृ0-455-456

2- दैत्यवंश - हरदयालु सिंह, पृ0-90

गिरिजादत्त शुक्ल कृत "तारक-वध" में तारक के परम्परागत चरित्रों का अंकन करते हुए, अन्ततः उसे मौलिक रूप में गाँधीवादी चेतना से प्रभावित दिखलाया गया है। "तारक-वध" की भूमिका में कवि ने लिखा है -"अन्तिम स्थिति तो तब आती है जब तारकासुर का हृदय परिवर्तन हो जाता है, उसे कार्तिकेयत्व की प्राप्ति होती है।"-1 परम्परागत रूप में तारक विलासी तथा हिंसावादी शासक के रूप में वर्णित हुआ है।

तारक का चरित्रांकन परम्परागत रूप में एक विलासी व निम्न प्रवृत्ति के शासक के रूप में हुआ है। तारक के एक महल में देश - देश की अपहृत बालायें कैद रहती हैं। यह उसके अनैतिकता व विलासिता का ही द्योतक हैः-

एक महल था जहाँ देवियाँ देश - देश की,
आनीता बल सहित मूर्ति-सी व्यथा क्लेश की।
तारक-खर वासना अनल आहुति होती थीं।
दुर्बलता के साथ धर्म खोकर रोती थीं।-2

इस रचना में तारक हिंसावाद का समर्थक है। वह हिंसा की साधना करने वाले भोगवादी तथा रुद्र के उपासक के रूप में चित्रित हुआ है। वह हिंसा-साधना व भोग को अपना धर्म मानता है। नारद द्वारा लाये गये कार्तिकेय के अहिंसावादी उपदेशों का निषेध करते हुए, वह कहता हैः-

हिंसा की साधना नहीं हम छोड़ सकेंगे
रुद्रदेव सम्बन्ध नहीं हम तोड़ सकेंगे।
भोग हमारा धर्म भोग ही कार्य निरन्तर।-3

1- तारक वध- भूमिका में कवि.

2- तारक वध- पृ0-258

3- वही, पृ0-450

"तारक-वध" में तारक के चरित्र का सर्वथा मौलिक व नव्य पक्ष है, उसका ह्रदय-परिवर्तन। तारक का महाक्रूर चरित्र अहिंसा व सत्य के समक्ष झुक जाता है। अहिंसा पर हिंसा के पराजय को देखकर तारक नवीन उदात्त चेतना से अभिभूत हो उठता है। वह यथार्थ से परिचित होने के पश्चात् स्वयं अहिंसावादी सिद्धान्तों को स्वीकार करता हुआ, कार्तिकेय का अनुगामी हो जाता है-

सत्य प्रेम की विजय देख ली आँखों आगे
अहंकारः अंगार शीत, विचलित हतभागे।
आनन पर थे भाव दीप्तिमय दमक रहे थे।-1

अन्ततः तारक राज्य त्याग कर, कार्तिकेय का अनुगामी हो जाता है। वह अपने पुत्र तारकाक्ष को राज्य सौंपकर स्वयं कार्तिकेय के भक्ति में लीन हो जाता है। अन्ततः वह श्रृंगी ऋषि के प्रेम में अत्यधिक विह्वल हो महानिद्रा में लीन हो जाता है -

श्रृंगी ऋषि की ओर एकटक तारक रहे निरखते।
रूप-पियूष पानकर अविरत नयन नहीं थे थकते।
अति अदम्य अनुराग वेग से ऋषि शान्ता चरणों पर
धर कर शीश सदा को सोये परम शान्त दानव वर।-2

तारक के चरित्र का यह पक्ष उसकी उदात्तता का ही द्योतक है। तारक का ह्रदय परिवर्तन, दानवी प्रवृत्तियों एवं विचारों को त्याग कर कल्याणमयी सत्प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख होना तथा अन्ततः कार्तिकेयत्व की प्राप्ति करना मौलिक तथा आदर्श है।

1- तारक-वध, पृ0 -469

2- तारक-वध- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', पृ0-470

रामानन्द तिवारी कृत "पार्वती" में तारक का चरित्रांकन परम्परागत रूप में ही निरंकुश हिंसावादी तथा अत्याचारी शासक के रूप में हुआ है। मौलिक रूप में उसको आदर्श व विवेकी पिता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तारक के परम्परागत निरंकुश चरित्र पर विचार व्यक्त करते हुए डॉ0 राम गोपाल शर्मा ने लिखा है- तारक ब्रह्मा से वरदान पाकर इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह स्वयं को अबध्य समझने लगता है। उसका जीवन एक ओर तो तप से जुड़ा हुआ है और दूसरी तरफ, वह दुष्कर्मों की चरम सीमा पर पहुँच जाता है।------ तपस्या के साथ यदि सदुद्देश्य जुड़ा हुआ न हो तो वह पाप का मूल बन जाती है।-1 और यही पाप तारक के मृत्यु का कारण बन जाता है।

"पार्वती" में तारक के चरित्र का मौलिक पक्ष है, उसका आदर्श पिता का चरित्र। युद्ध के समय अपने पुत्रों को विलासरत देखकर वह उनकी तीव्र भर्त्सना करता है। तारक अपने पुत्रों को उनके विवेक से परिचित कराते हुए उन्हें अप्सराओं के रास-रंग से बाहर निकालकर युद्ध के व्यापक तैयारी का आदेश देता है। एक दानव होते हुए भी उसका विवेकी व कर्तव्यपरायण पितृरूप उदात्त ही है।

1- हिन्दी शिवकाव्य का उद्भव और विकास - डॉ0 राम गोपाल शर्मा, पृ0-344

आधार - ग्रन्थ

परिशिष्ट-1

उपजीव्य कृतियाँ

1- अशोक वन- गोकुलप्रसाद शर्मा विनीत, संस्करण-1953 ई, प्रकाशक-हिन्दी प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद।

2- अंगराज- आनन्द कुमार, रचना-1950 ई0, प्रकाशक-राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली।

3- उत्तरायण- रामकुमार वर्मा, प्र0सं0-1972 ई0, प्रकाशक-राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट- दिल्ली।

4- उत्तरजय- नरेन्द्र शर्मा

5- उर्मिला- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'- सरस्वती पत्रिका

6- उर्मिला- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रचना-1934 ई0, प्र0सं0-1957 ई0, प्रकाशक- अतरचन्द कपूर एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली।

7- एकलव्य- डॉ0 रामकुमार वर्मा, तृ0 सं0-1989 ई0, प्रकाशक-साहित्य भवन प्रा0लि0, इलाहाबाद ।

8- एकलव्य - राजेश्वर मिश्र,प्र0-1966 ई0

9- एकलव्य- शोभानाथ पाठक,प्र0-1983 ई0

10- ओ अहल्या- डॉ0 रामकुमार वर्मा, प्र0 सं0-1985 ई0, प्रकाशक-साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद ।

11- ऋतम्बरा- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', प्र0सं0-1957 ई0, प्रकाशक- अजन्ता प्रेस प्रा0 लि0 पटना-4

12- कर्ण- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', रचना-सन् 1950 ई0, प्रकाशक- नवभारत प्रकाशन खजांची रोड, पटना-4

13- कनुप्रिया- धर्मवीर भारती §प्र0 सं0-1959 ई§, आठवाँ संस्करण-1984 ई0, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ बी/45 कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

14- कल्याणी-कैकेयी- राधेश्याम द्विवेदी, संस्करण-1950 ई0

15- कामायनी- जयशंकर प्रसाद, संस्करण-1984 ई0, प्रकाशक-
प्रसाद प्रकाशन, प्रसाद मन्दिर गोवर्द्धन सराय, वाराणसी-1

16- कुरुक्षेत्र- रामधारी सिंह 'दिनकर' §रचना 1974 ई0§ द्वितीय
संस्करण, प्रकाशक - उदयाचल प्रकाशन, पटना

17- कैकेयी- शेषमणि शर्मा, रचना-1942 ई, प्र0 प्रकाशन-
1952 ई0, प्रकाशक - रामनारायण लाल, इलाहाबाद

18- कैकेयी- केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', रचना-1951 ई0, प्रकाशक-
अजन्ता प्रेस लि0 पटना

19- कौन्तेयकथा- उदयशंकर भट्ट, तृतीय संस्करण-1963 ई0,
प्रकाशक-आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट,
दिल्ली-6

20- कौशल-किशोर- बल्देव प्रसाद मिश्र, प्रथम संस्करण-1934 ई0,
प्रकाशक- साहित्य भवन प्रा0लि0, इलाहाबाद

21- कृष्णायन- द्वारका प्रसाद मिश्र, प्र0 1945 ई0, प्रकाशक- हिन्दी विश्व
भारती कार्यालय, लखनऊ ।

22- गुरुदक्षिणा- विनोदचन्द्र पाण्डेय, प्र0 संस्करण-1962 ई0, प्रकाशक-
रामनारायण लाल बेनी प्रसाद- इलाहाबाद

23- चक्रव्यूह- कुँवर नारायण, प्रथम संस्करण-1956 ई0, प्रकाशक-
राजकमल पब्लिकेशन्स लि0, बम्बई।

24- जयद्रथ-वध- मैथिलीशरण गुप्त, 1910 ई0, प्रकाशक-
साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी।

25- जयभारत- श्री मैथिलीशरण गुप्त, 1952 ई0, प्रकाशक-
साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी।

26- तारकवध- गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', प्रथम संस्करण-1958 ई0,
प्रकाशक भारती भण्डार लीडर प्रेस, इलाहाबाद

27- द्वापर- मैथिलीशरण गुप्त, संस्करण-1936 ई0, प्रकाशक- साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी

28- दैत्यवंश- हरदयालु सिंह, संस्करण-1940 ई0, प्रकाशक- इण्डियन प्रेस लि0, इलाहाबाद

29- द्रौपदी- नरेन्द्र शर्मा, प्र0सं0 1960 ई0, प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6

30- नकुल- श्रीसियाराम शरण गुप्त, रचना-1946 ई0 प्रकाशक- साहित्य प्रेस चिरगाँव, झाँसी

31- निकष﴾मन्वन्तर﴿ भाग-1-4 राजेन्द्र किशोर,सन्-1955 ई0, प्रकाशक- साहित्य भवन लि0, प्रयाग

32- पंचवटी- श्री मैथिलीशरण गुप्त संस्करण 2046 वि0 प्रकाशक- साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी

33- पार्वती- रामानन्द तिवारी, प्रथम संस्करण-1955 ई0, प्रकाशक- श्रीमती शकुन्तला रानी नयापूरा कोटा, राजस्थान

34- पांचाली- रांगेय राघव,प्र0 संस्करण-1955 ई0, प्रकाशक- सरस्वती पुस्तक सदन,मोती कटरा, आगरा

35- प्रियप्रवास- अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध',रचना-1913 ई0

36- प्रवाद पर्व- नरेश मेहता - रचना-1975 ई0, प्रकाशन-1977 ई0, प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1

37- बालिवध- डॉ0 रामकुमार वर्मा,प्र0 सं0-1989 ई, प्रकाशक- साहित्य भवन प्रा0 लि0, इलाहाबाद-3

38- भूमिजा- रघुवीरशरण मिश्र, द्वि0 संस्करण-1967 ई0, प्रकाशक- भारतीय साहित्य प्रकाशन, मेरठ

39- महाप्रस्थान- श्री नरेश मेहता, रचना-1974 ई0, संस्करण- 1981 ई0, प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

40- माण्डवी- हरिशंकर सिन्हा

41- माण्डवी- राजेन्द्र तिवारी- प्र0 संस्करण-1980 ई0, प्रकाशक- कलरव प्रकाशन, इलाहाबाद

42- माण्डवी- राजेश्वर मिश्र रत्न, प्र0 संस्करण-1990 ई0, प्रकाशक- विद्या साहित्य संस्थान, इलाहाबाद

43- रश्मिरथी- रामधारी सिंह "दिनकर", प्रथम संस्करण- 1952 ई0, संस्करण-1990 ई0

44- रामचरित-चिन्तामणि- रामचरित उपाध्याय- प्र0 सं0-1920 ई0, प्रकाशक- ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर ।

45- राम की शक्ति-पूजा- (अपरा में) सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", 14वाँ संस्करण- 1984 ई0, प्रकाशक-भारती भण्डार लीडर रोड, इलाहाबाद

46- रामराज्य- डॉ0 बल्देव प्रसाद मिश्र,

47- रावण-महाकाव्य- हरदयालु सिंह, प्र0 सं0-1952 ई0, प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली-6

48- वैदेही-वनवास अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', रचना-1941 ई0, षष्ठ संस्करण-सम्वत् 2032 वि0, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी।

49- शबरी- वचनेश, प्र0 सं0-1936 ई0, प्रकाशक- रामकुमार मिश्र विशारद

50- शबरी- रत्नचन्द शर्मा, रचना-1966 ई0

51- शबरी- नरेश मेहता, रचना-1975 ई0, प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

52- शबरी- धनञ्जय अवस्थी, प्र0 सं0-1981 ई0, प्रकाशक- संगम प्रकाशन इलाहाबाद-3

53- शबरी- मायादेवी मधु- प्रकाशक- कौशाम्बी प्रकाशन, प्रयाग

54- शम्बूक- डॉ0 जगदीश गुप्त (प्र0 सं0-1977 ई0), संस्करण- 1990 ई0, प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

55- शूर्पणखा- प्रीतम सिंह 'बगरेचा'

56- सत्य की जीत- द्वारिका प्रसाद महेश्वरी, प्र0 सं0-1975 ई0, प्रकाशक- ज्वाला प्रसाद विद्यासागर, इलाहाबाद

57- संशय की एक रात- श्री नरेश मेहता, तृतीय संस्करण-1990 ई0, प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन- इलाहाबाद

58- साकेत-सन्त- डॉ0 बलदेव प्रसाद मिश्र, प्र0 सं0- 1946 ई0, प्रकाशक- विद्यामन्दिर लि0 नई दिल्ली

59- साकेत- श्री मैथिलीशरण गुप्त, संस्करण संवत्-2048 वि0, प्रकाशक- साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी

60- सूर्यपुत्र- जगदीश चतुर्वेदी, प्र0 संस्करण-1975 ई0,

61- सेनापति-कर्ण- लक्ष्मीनारायण मिश्र, प्रथम-संस्करण-1958 ई0, प्रकाशक- किताब महल जीरो रोड, इलाहाबाद

62- हिडिम्बा- श्री मैथिलीशरण गुप्त, प्र0 सं0-1950 ई0, प्रकाशक- साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी (उ0प्र0)

परिशिष्ट-2

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1- अवधी के आधुनिक प्रबन्ध काव्य- डॉ0 श्याम सुन्दर मिश्र, "मधुप', प्र0 संस्करण-1983 ई0, प्रकाशक-सुलभ प्रकाशन, लखनऊ

2- आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों में पौराणिक चेतना का समाहार एवं आकलन- डॉ0 जया पाठक, प्र0 प्रकाशन-1989 ई0, प्रकाशक- भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली

3- आधुनिक हिन्दी कविता में महाभारत के कुछ पात्र- डॉ0 पुष्पपाल सिंह, प्रथम संस्करण-1971 ई0, प्रकाशक- अमित प्रकाशन, गाजियाबाद

4- आधुनिक हिन्दी काव्य और पुराण कथा- डॉ0 मालती सिंह, प्रथम संस्करण-1985 ई0, प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

5- आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन- डॉ0 वी0पी0 वर्मा, प्र0 संस्करण-1971 ई0, प्रकाशक- लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा

6- आधुनिक प्रतिनिधि हिन्दी महाकाव्य- डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त, प्र0 संस्करण-1971 ई0, प्रकाशक- पंचशील प्रकाशन, जयपुर

7- आधुनिक हिन्दी कृष्ण काव्य की सामाजिक पृष्ठभूमि- डॉ0 प्रभात दूबे प्रकाशक- प्रगति प्रकाशन, आगरा

8- आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी-भावना - डॉ0 शैल कुमारी, प्र0 संस्करण-1951 ई0, प्रकाशक-हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद

9- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में पाश्चात्य् चिन्तन- डॉ0 राम किशन सैनी, प्रथम संस्करण-1980 ई0, प्रकाशक- पंचशील प्रकाशन, जयपुर

10- आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों का शिल्प विधान - डॉ0 श्याम नन्दन किशोर, प्रकाशन-1963 ई0, प्रकाशक-सरस्वती पुस्तक सदन-आगरा

11- छायावाद काव्य शिल्प - डॉ0 प्रतिमा कृष्णबल, प्रकाशन - 1971 ई0, प्रकाशक- राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली

12- द्विवेदी युगीन खण्ड काव्य- डॉ० सरोजिनी अग्रवाल, प्र० सं०-1987 ई०, प्रकाशक- सुलभ प्रकाशन, लखनऊ

13- द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य- डॉ० रामसकल राय शर्मा, प्रकाशन-1966 ई०, प्रकाशक - अनुसधान प्रकाशन, कानपुर

14- धर्मवीर भारतीः कनुप्रिया तथा अन्य कृतियाँ- डॉ० ब्रज मोहन शर्मा- प्रकाशक-भारती भाषा प्रकाशन, दिल्ली

15- नयी कविता के प्रतिमान- डॉ० लक्ष्मी कान्त वर्मा, प्रकाशक- भारती प्रेस, इलाहाबाद

16- नयी कविता और पौराणिक गाथा- डॉ० रामस्वार्थ सिंह, प्र० सं०-1980 ई० प्रकाशक- क्लासिकल पब्लिकेशन्स नई दिल्ली

17- नई कविता की मानक कृतियाँ- डॉ० जीवन प्रकाश जोशी, प्र० संस्करण- 1981 ई०, प्रकाशक- सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली

18- नई कविता के प्रबन्ध काव्य शिल्प और जीवन दर्शन - डॉ० उमाकान्त गुप्त प्र० संस्करण-1985 ई०, प्रकाशक- वाणी प्रकाशन दिल्ली

19- नई कविता पुरातन सूत्र- डॉ० मानसिंह वर्मा, प्र० संस्करण-1991 ई०, प्रकाशक- राधा पब्लिकेशन्स दिल्ली

20- पुराख्यान और कविता - डॉ० लक्ष्मीनारायण शर्मा, प्रकाशक- नेशनल पब्लिकेशन्स हाऊस,नई दिल्ली-2

21- बीसवीं शती हिन्दी काव्य - प्रतिनिधि कवि- देवर्षि सनाढ्य,संस्करण- 1961 ई०, प्रकाशक- सरस्वती सदन,मसूरी

22- भारत का सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास- पी०एन०चोपड़ा

23- भारतीय वाङ्मय में सीता का स्वरूप-विकास- डॉ० कृष्ण दत्त अवस्थी प्र० संस्करण-1974 ई०, प्रकाशक- प्रतिभा प्रकाशन इलाहाबाद

24- महाकवि हरिऔध- डॉ0 गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, तृ0 संस्करण-
1959 ई0, प्रकाशक- रामनारायण लाल इलाहाबाद

25- महाभारत का आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्यों पर प्रभाव - डॉ0 विनय
प्रथम संस्करण-1966 ई0, प्रकाशक- सन्मार्ग प्रकाशन, नई दिल्ली

26- मिथक और आधुनिक काव्य- डॉ0 शम्भू नाथ सिंह, प्र0 संस्करण-1985
ई0, प्रकाशक- नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली

27- मिथक एक अनुशीलन - डॉ0 मालती सिंह, प्र0 संस्करण-1988 ई0,
प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद

28- मिथक उद्भव और विकास तथा हिन्दी साहित्य- डॉ0 उषापुरी
विद्या वाचस्पति

29- मैथिलीशरण गुप्त का काव्य §संस्कृत स्रोत के सन्दर्भ में§ - डॉ0 एल0 सुनीता
प्रकाशन-1982 ई0, प्रकाशक- हिन्दी विभाग, कोचीन

30- मैथिलीशरण गुप्त: कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता- डॉ0 उमाकान्त गुप्त

31- मैथिलीशरण गुप्त के काव्य के अन्तर्कथाओं के स्रोत-डॉ0 शशी अग्रवाल, प्र0 संस्करण-
1977 ई0, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

32- रामकथा के नारी पात्र- डॉ0 श्रीमती आशा भारती, प्र0 संस्करण-1987 ई0,
प्रकाशक- शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली

33- रामकाव्य परम्परा विकास और प्रभाव - डॉ0 आशा भारती, संस्करण-
1984 ई0, प्रकाशक, शारदा प्रकाशन, नई दिल्ली

34- स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य -डॉ0 बनवारी लाल शर्मा, प्र0 संस्करण-
1972 ई0, प्रकाशक- रामा पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर

35- स्वातन्त्रोत्तर हिन्दी महाकाव्य- डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त, प्र0 संस्करण-
1973 ई0, प्रकाशक- गाडोदिया पुस्तक भण्डार, राजस्थान

36- हिन्दी साहित्य में कृष्ण- डॉ0 सरोजिनी कुलश्रेष्ठ, 1965 ई0,

37- हिन्दी की आधुनिक प्रबन्ध कविता का पौराणिक आधार- डॉ0 नन्दकिशोर नन्दन प्रथम संस्करण-1978 ई0, प्रकाशक- प्रकाशन संस्थान दिल्ली

38- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास-§भाग-9§,सम्पादक- सुधाकर पाण्डे प्र0 संस्करण-सं0 2034 वि0,

39- हिन्दी राम काव्य का स्वरूप और विकास- डॉ0 प्रेमचन्द्र महेश्वरी, प्रथम सस्करण- 1983 ई0, प्रकाशक- वाणी प्रकाशन-दिल्ली

40- हिन्दी महाकाव्यों में नारी-चित्रण- डॉ0 श्यामसुन्दर व्यास, प्र0 संस्करण-1963 ई0, प्रकाशक- साहित्य संगम मथुरा

41- हिन्दी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व- डॉ0 लालता प्रसाद सक्सेना, प्रकाशक- निर्मल प्रकाशन जयपुर

42- हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन- डॉ0 परमलाल गुप्त, प्रकाशक- निर्मल प्रकाशन संस्थान,जयपुर

43- हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास- §भाग-1 व 2§, गणपति चन्द्र गुप्त, चतुर्थ-संस्करण-1990 ई0,

44- हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों में चरित्र चित्रण- डॉ0 प्रेमकली शर्मा, प्र0 सं0-1986 ई0, प्रकाशक- बांके बिहारी प्रकाशन,आगरा-3

45- हिन्दी के आधुनिक पौराणिक महाकाव्य- डॉ0 देवी प्रसाद गुप्त, प्र0 सं0-1972 ई0, प्रकाशक- उपमा प्रकाशन,उदयपुर

46- हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन- डॉ0 देवीप्रसाद गुप्त, प्र0 सं0-1968 ई0, प्रकाशक- अपोलो पब्लिकेशन जयपुर-3

47- हिन्दी प्रबन्ध काव्य में रावण- डॉ0 सुरेश चन्द्र निर्मल, प्र0 सं0-1975 ई0, प्रकाशक- भावना प्रकाशन,नई दिल्ली

48- हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ- डॉ0 नगेन्द्र, प्रकाशक- नेशनल पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली

49- हिन्दी साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियाँ- §तीन व्याख्यान§ डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी, 1969 ई0, प्रकाशक- केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,आगरा

50- हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास- डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी,

51- हिन्दी शिव-काव्य का उद्भव और विकास- डॉ0 रामगोपाल शर्मा, प्र0संस्करण-1970 ई0, प्रकाशक- राजस्थान प्रकाशन, जयपुर

52- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य- डॉ0 गोविन्दराम शर्मा, प्रकाशन-1959 ई0, प्रकाशक- हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली

53- हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ- डॉ0 शिवकुमार शर्मा, बारहवाँ सस्करण-1990 ई0- प्रकाशक- अशोक प्रकाशन,नई दिल्ली-6

54- हिन्दी कविता में युगान्तर- प्रो0 सुधीन्द्र, प्र0 संस्करण-1950 ई0, प्रकाशक- आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली

55- हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास §अष्टम भाग§ सम्पादक- डॉ0 विनय मोहन शर्मा, प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा,काशी

56- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप -विकास- डॉ0 शम्भूनाथ सिंह, द्वि0 संस्करण- 1962 ई0, प्रकाशक- हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय,वाराणसी

57- हिन्दी साहित्य के प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक- विश्वम्भर उपाध्याय, द्वितीय संस्करण-1955 ई0, प्रकाशक- सरस्वती पुस्तक सदन,मोती कटरा,आगरा

58- हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा- डॉ0 लक्ष्मीनारायण दूबे, प्र0 संस्करण- 1967 ई0, प्रकाशक - विन्ध्याचल प्रकाशन छतरपुर

59- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास-§दशम भाग§,प्रधान सम्पादक-डॉ0 नगेन्द्र, प्र0 संस्करण-संवत 2028 वि0, प्रकाशक- नागरी प्रचारिणी सभा,काशी

कोश-

1- हिन्दी साहित्य कोश §भाग दो§ सम्पादक- धीरेन्द्र वर्मा, द्वितीय सस्करण-1986 ई0, प्रकाशक- ज्ञानमण्डल लि0 ,वाराणसी

संस्कृत ग्रंथ

1- ब्रह्मपुराण - अनुवादक - तारणीश झा, प्र0 सं0-1976 ई0, प्रकाशक- प्रभात शास्त्री साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

2- श्रीविष्णु-पुराण- गीता प्रेस गोरखपुर,

3- श्रीशिवमहा पुराणम् §प्रथम व द्वितीय खण्ड§ - टीकाकार व सम्पादक- आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री,प्र0 सं0-1990 ई0,

4- श्रीमद्भागवत्-महापुराणम् §प्रथम व द्वितीय खण्ड§ नवम् संस्करण- सं0 2042, प्रकाशक - गीताप्रेस गोरखपुर

5- हरिवंश-पुराण , प्रकाशक- गीताप्रेस गोरखपुर

6- अग्नि - पुराणम् §पूर्व भागः§- अनुवादक-तारणीश झा, प्र0सं0-सन् 1986 ई0 प्रकाशक- हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग

7- ब्रह्मवैवर्त पुराण , सम्पादक- तारिणीश झा, प्र0 सं0-1985 ई0, प्रकाशक- प्रभात शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

8- स्कन्द पुराण- प्राप्ति स्थल- राजकीय केन्द्रीय पुस्तकालय इलाहाबाद

9- महाभारतम् प्रकाशक- भुवनवाणी ट्रस्ट मौसमबाग, लखनऊ

10- श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण §खण्ड 1 व 2§ - दसवाँ संस्करण-सं0 2048, प्रकाशक- गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस गोरखपुर

11- रामचरित मानस- प्रकाशक- गीताप्रेस गोरखपुर

पत्रिकाएँ-

1- आलोचना - §जून 1964 ई0§ सम्पादक- शिवनन्दन सिंह चौहान,

2- वीणा पत्रिका- अंक 4 §फरवरी 1961 ई0§, सम्पादक-कमलाशंकर मिश्र,

3- सरस्वती पत्रिका - भाग-15, संख्या-6, प्राप्ति स्थल- हिन्दी साहित्य सम्मेलन संग्रहालय, प्रयाग

4- हिन्दुस्तानी पत्रिका, भाग-54, अंक-1, §1983 ई0§, हिन्दुस्तानी ऐकेडमी, इलाहाबाद